खण्ड २ : बुनियादी शिक्षा में विभिन्न विषयों का शिक्षण

खण्ड ३ : परिशिष्ट

अभ्यास पाठ

खण्ड १

दुनिया
शिक्षालय संग

अध्याय १

बुनियादी शाला और सामाजिक जीवन

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह हमेशा अपने साथियो के साथ रहना, उठना-बैठना, वातचीत आदि करना चाहता है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपनी जाति के व्यक्तियो के बीच मे रहे, सहयोग से कार्य करके अपने जीवन का विकास करे। मनुष्य ने समाज मे रहने की इस प्रवृत्ति का प्रदर्शन अनेक रूपो मे किया है। कभी-कभी तो मनुष्य अपनी इस प्रवृत्ति के कारण ही उन्नतिशील, सुविधाजनक स्थानो मे इतने घने वस गए है कि उनका आर्थिक तथा सामाजिक जीवन वडा जटिल वन गया है। मेकड्यूगल महोदय ने अपनी पुस्तक 'समाज मनोविज्ञान'[1] मे मनुष्य की इसी प्रवृत्ति की ओर सकेत करते हुए मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्ति को ही वडे शहरो मे आवादी के घने होने का कारण वताया है। मनुष्य द्वारा वनाये गए समूह चाहे छोटे हो या वडे, स्वाभाविक हो या कृत्रिम, प्रत्येक मनुष्य इनमे से किसी-न-किसी का सदस्य अवश्य होता है। हम अपने जीवन मे वहुधा सगी-साथियो या रिश्तेदारो की याद किया करते है तथा उनके बीच ही रहना चाहते है। यह अपने साथियो तथा कुटुम्बियो के वीच रहने की भावना भी इसी सामाजिक प्रवृत्ति का ही रूप है। यह भी देखने मे आता है कि सामान्यत हम अपनी आयु, स्थिति तथा स्वभाव मे समता रखने वाले लोगो के साथ रहना पसन्द करते हैं। हमारे मित्र भी ऐसे ही लोग होते है, जिनका स्वभाव और रुचियाँ हमसे

सामाजिक प्रवृत्ति

१. विलियम मेकड्यूगल, सोशल साइकॉलोजी, पृष्ठ २६६।

मिलती हो तथा जिनके अनुभव हमारे अनुभवो के अनुकूल ही हो। यही कारण है कि पिछडी जातियाँ लगातार एक क्षेत्र या भूभाग मे वसी पाई जाती है। गाँव, कस्वो या शहरो में एक ही जाति के लोगो का प्रायः एक ही मुहल्ले में वसने का भी यही कारण है। वहुधा हम देखते है कि एक मुहल्ले में व्राह्मण अधिक रहते हैं, दूसरे मुहल्ले में व्यापारी, तो किसी दूसरे में मजदूर और अन्य किसी में एक ही प्रकार के काम करने वाले व्यक्तियो के घर अधिक पाये जाते है। यह सव इसीलिए होता है कि प्रायः मनुष्य ऐसे व्यक्तियो के वीच रहना चाहता है जिनके धार्मिक विश्वास, परम्पराएँ, विचार, सामाजिक स्थिति, व्यापार-रुचि आदि उससे मिलते-जुलते हो।

हम वहुधा देखते है कि जव कुछ व्यक्ति कुछ काल तक साथ-साथ रहते हैं, तो उनमे संसृष्ट जीवन का विकास होता है। यह उनके एक-से कार्यों, रुचियो एवं विचारो के कारण होता है। हमारी शालाओ मे भी ऐसा ही होता है। वालक अपने दैनिक जीवन का अधिकाश समय शाला मे अपने साथियो के साथ रहकर व्यतीत करते है। हमारी वुनियादी शालाओ मे तो वालको के ससृष्ट जीवन का उचित विकास और भी अधिक सम्भव है, क्योकि वुनियादी शाला के वालको को समाज मे प्रचलित उद्योग के माध्यम से ही शिक्षा दी जाती है। वुनियादी शाला वालको के समाज के वहुत ही निकट रहती है। वुनियादी शालाओ के वालक अन्य शालाओ के वालको की अपेक्षा अधिक समय तक एक साथ काम करते, रहते तथा अनुभव प्राप्त करते हैं। वे आयु, विचार, रुचि, प्रकृति आदि मे प्रायः समानता रखते हैं। यही समानता उन्हे अपनी जाति के प्रति जागरूक वनाती है। इसीलिए वे आपस मे अच्छा सम्वन्ध रखते है। इन सव वातो के अतिरिक्त वालको के एक साथ रहने, काम करने आदि मे उनकी मूल प्रवृत्तियाँ, विशेषकर सामाजिक मूल प्रवृत्तियाँ ही अधिक सहायक होती है, क्योकि वालको का स्वभाव ही है कि वे साथ-साथ रहे

कुटुम्बियो आदि के बीच रहना चाहता है। कुछ वडा होने पर उसे लगभग अपनी आयु के वालक अच्छे लगते है तथा वह उनके बीच रहता और खेलता है। युवक होने पर उसके साथियो की सख्या तथा दायरा और भी वढ जाता है। वचपन मे उसके साथियो का समूह छोटा होता है। युवक होते-होते उसके सामाजिक जीवन का क्षेत्र वढ जाता है। युवक अपने साथियों के बीच रहने के लिए लालायित रहता है, पर जव यह सम्भव नही होता तव वह अपने पुराने या भविष्य के सचमुच या काल्पनिक साथियो के विचारो मे डूवा रहता है। प्रौढो मे भी सामाजिक प्रवृत्ति होती है, पर उनमे कुछ स्वतन्त्र विचार-धारा तथा अहभाव भी आ जाता है। पर वालक तो वहुत ही अच्छे सामाजिक प्राणी होते है, क्योंकि उनके जीवन का प्रत्येक कार्य सामाजिक महत्त्व रखता है। वुनियादी शाला के वालको के सम्वन्ध मे तो यह और भी अधिक सत्य है।

हमने अभी देखा कि मनुष्य और विशेषत वालक वहुत ही अच्छा सामाजिक प्राणी होता है। पर मनुष्य या वालको का समूह केवल कुछ पत्थरो को इकट्ठा करके वनाये गए समूह से वहुत भिन्न होता है, इनका समूह भीड आदि से भी भिन्न होता है, क्योकि भीड तो कुछ कारणो या घटनाओ के कारण कुछ समय के लिए वन जाती है। भीड क्षणिक अस्थायी प्रयोजन के लिए या क्षणिक प्रभावशाली भावना के कारण इकट्ठी होती है। यह दूसरी वात है कि भीड सामाजिक समूह वन जाय या कुछ सामाजिक-समूह भीड में परिणत हो जायँ।

सामाजिक जीवन क्या है ?

सामाजिक समूह में एकत्व होना वहुत आवश्यक है। एकत्व एक-सी रुचियो, कार्यों, आदर्शों आदि से आता है। यह एकत्व कई प्रकार का हो सकता है। भीड में यह एकत्व की भावना अस्थायी तथा मामूली स्तर की होती है। गोष्ठी भीड से अधिक सगठित तथा अधिक स्थायी होती है। समाज सवसे अच्छा तथा उच्च-कोटि का समूह है, क्योकि इसके उद्देश्य व्यापक तथा पूर्ण जीवन से सम्वन्धित होते हैं। इस तरह

हम देखते हैं कि विभिन्न प्रकार के समूहो में एकता या एकत्व का स्तर विभिन्न होता है। समूह चाहे किसी भी प्रकार के हो पर उनमें भावनाओ, विचारो या कार्यो की वहुत ही उच्च-कोटि की एकता या समानता पाया जाना सम्भव नही है। हम सवने वहुधा देखा है कि जव कभी कही गाना-वजाना होता है, तव तवला, हारमोनियम, सारंगी, मंजीरा आदि सभी वाद्य-यन्त्रो का उपयोग अलग-अलग किया जाता है। परन्तु सभी वाद्य-यन्त्रो के अलग-अलग वजते हुए भी एक मधुर सुर या लय सभी के उचित मेल से निकलती है। सामाजिक एकता भी प्राय. इसी प्रकार की होती है। समाज में अनेक व्यक्ति अलग-अलग रहते, सोचते तथा विचारते हैं पर उनके समूह का 'समूह-मन' भी होता है। यह 'समूह-मन' उन्हीं प्रवृत्तियो से प्रकट होता है, जो प्रवृत्तियाँ समाज के सव व्यक्तियो में समान होती हैं। इसीलिए हम देखते हैं कि किसी समूह में भावनात्मकता अधिक होती है, तो अन्य मे वुद्धि-तत्त्व अधिक होता है। पर साधारणत. यह देखा जाता है कि समूह की प्रतिक्रियाएँ वैयक्तिक प्रतिक्रियाओ से निम्न स्तर की होती हैं। इसीलिए लीवोन महोदय ने लिखा है कि पण्डितो की सभा भी जव कोई सामूहिक निर्णय करती है तव उसका निर्णय उस फैसले से भिन्न नही होता जिसे वुद्धिहीनो के समूह ने किया हो।

रीति, चलन या व्यवहार हमारे किसी कार्य के करने की आदत पडने से ही वनते हैं। इस प्रकार वने हुए व्यवहार, रीति या चलन को समूह या समाज के लोग विना किसी वाधा या विचार के मानते हैं। कालान्तर मे यही परम्परा वन जाती है। परम्परा किसी भी समूह के वर्तमान और भविष्य के सदस्यो को एक सूत्र मे वाँधती है। यही वन्धन जव वर्तमान से भविष्य की सीमा मे प्रवेश करता है तव हम कहते हैं कि हमारी परम्परा का निर्वाह हो रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि परम्परा के निर्वाह मे समान परिस्थितियों मे समान अनुभव या प्रतिक्रियाएँ ही समाज के व्यक्ति या सदस्य करते हैं। यही परम्परा-पालन है, तथा सामाजिक समूह की यही विशेषता है। इस तरह हम कह सकते

हैं कि रीति या परम्परा समाज के सामाजिक जीवन के अलिखित नियम हैं जो समाज के आदर्शों तथा आचरण को व्यक्त करते हैं।

समाज या समूह के उपरोक्त दरशाये दो रूप (१) एकत्व तथा (२) परम्परा-पालन उसके स्थिर रूप को प्रदर्शित करते हैं। ये दोनो रूप समाज के सामाजिक जीवन मे स्थिरता लाते हैं। पर सामाजिक जीवन का एक और रूप भी है जिसकी प्रमुख विशेषता 'विकास' है। सामाजिक जीवन की यह विशेषता उसे शक्तिशाली बनाती है तथा नई परिस्थितियो के अनुरूप अपनी रीतियो तथा परम्पराओ मे परिवर्तन करने की प्रेरणा देती है। यह परिवर्तन निम्न तीन प्रकार से सम्भव है—

१ अव्यक्त रूप से समाज के प्रभावशाली व्यक्तियो के प्रभाव से।

२. व्यक्त रूप से समाज के सदस्यो के विचार-विनिमय आदि के बाद।

३ समाज मे बहुत अधिक सख्या मे अन्य नये सदस्यो के आगमन से।

बुनियादी शालाओ के सगठन आदि पर विचार करते समय शाला-समाज के इसी विकास एव परिवर्तन वाले रूप पर अधिक ध्यान देना आवश्यक है। हमारी बुनियादी शालाएँ जनतन्त्र प्रणाली की समर्थक हैं। बुनियादी शाला को समाज के अनुरूप रखकर, या हम यो कह सकते हैं कि बुनियादी शाला को समाज का छोटा रूप देकर, बालक के सभी गुणो के उचित विकास की सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयत्न किया जाता है। बुनियादी शाला के इस नये स्वरूप के कारण शाला-सगठन तथा शासन मे भी नवीन दृष्टिकोण लाना आवश्यक है। चूंकि समाज को जीवित तथा उन्नत रखने के लिए विकास एव परिवर्तन आवश्यक है इसलिए बुनियादी शालाओ मे भी, जो समाज का छोटा रूप है, विकास और परिवर्तन अवश्यम्भावी है। इस दृष्टि से बुनियादी शालाओ की शासन तथा सगठन-सम्बन्धी समस्याएँ अन्य शालाओ से कुछ भिन्न ही रहेगी।

किसी भी समूह के प्रसूत सामाजिक तत्त्व उस समूह के सदस्यो

के मानसिक, शारीरिक, सवेगात्मक आदि अनुभवो को निश्चित करके उनकी पुष्टि करते हैं। फलस्वरूप उस समूह के सदस्य अन्य समूहों के लोगों से भिन्न हो जाते हैं। समूह या समुदाय मे रहने की प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति अपने अन्य साथियो से दया, सहानुभूति तथा अपनी बात की पुष्टि की कामना करता है। इतना ही नहीं, कुछ शरीर-सम्बन्धी परिवर्तन भी इस इकट्ठे रहने की प्रवृत्ति के कारण ही होते हैं। इकट्ठे रहने की प्रवृत्ति के कारण हमारे नाड़ी-संस्थान के साइनाप्स (Synopses) में शक्ति-प्रवाह मे रुकावट या प्रतिरोध कम होता है। साथ-ही-साथ कुछ गिल्टियो तथा मांसल स्नायुओ की कार्यक्षमता अधिक बढती है। यही कारण है कि किसी समूह में रहने वाले सदस्य अपने साथियों के साथ आवश्यकतानुसार समजन (Adjustment) करने को तैयार रहते हैं तथा आवश्यकता पडने पर अपनी क्षमता से अधिक परिश्रम करके साथियो या समाज की परम्पराओ की रक्षा करने को तत्पर हो जाते हैं। यही काम करने एव आवश्यकतानुसार समंजन करने की क्षमता समूह-जीवन की विशेषता है जो समूह मे विद्यमान रहती है। समूह मे सदस्य व्यक्तिगत रूप से अपने अन्य साथियो के विचारो एव भावनाओ से बहुत अधिक प्रभावित होते रहते हैं। इस कारण समूह अपने सदस्यो के आचार-व्यवहार को बनाने, उनमें आवश्यकतानुसार सुधार करने तथा संयत बनाने का बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली साधन बन जाता है।

बुनियादी शाला के सामाजिक जीवन का प्रभाव

यही बात शाला, विशेषत. बुनियादी शाला, मे और भी अधिक मात्रा मे पाई जाती है। बालक की रुचियाँ, विचार, भावनाएँ, आचार-व्यवहार सभी शाला के सामाजिक जीवन से प्रभावित होते हैं। यह दूसरी बात है कि बच्चे बुराई की ओर जायँ या अच्छाई की ओर, पर शाला के सामाजिक जीवन के प्रभाव से वे बच नहीं सकते। वैसे तो बुनियादी शालाओ मे सामाजिक जीवन का ऐसा विशुद्ध और निर्मल वातावरण निर्मित होता है

कि बालको के बुराई की ओर जाने की सम्भावनाएं प्राय नगण्य रहती है, पर अन्य शालाओ मे इसकी सम्भावना अवश्य रहती है। बाल-स्वभाव कोमल, ढलने योग्य, सहज रूप से निर्देश ग्रहण करने तथा प्रभावित होने योग्य रहता है, अत शाला मे आते ही परोक्ष या अपरोक्ष रूप से अपने अन्य साथियो के अनुरूप समजन करने लगता है। बालक की समूह मे रहने की प्रवृत्ति उसे अपने साथियो के बीच रहने की प्रेरणा देती है, और वह अपने शाला-समाज के बीच अपनी कोमल तथा ढलने योग्य आयु के अनेक वर्षों तक रहकर उससे प्रभावित होता रहता है। अपने साथियो की सद्भावना और किये गए कार्यों का अनुमोदन तथा स्वीकृति साथियो की मित्रता तथा सहयोग की प्रमुख शर्ते होती है। अत इनकी प्राप्ति के लिए वह अपने आचार-व्यवहार को अपने साथियो के अनुरूप बनाने लगता है। कभी-कभी बालक अपने कुटुम्ब मे प्रचलित विचारो, आदर्शों और अपनी शाला के साथियो के विचारो, आदर्शों तथा व्यवहारो मे साम्य नही देखता है।[1] ऐसी स्थिति मे वह अपनी शाला के साथियो के आचार-विचारो, व्यवहार और आदर्श ग्रहण करने का प्रयत्न करता है, क्योंकि ऐमा करने से उसका शालेय जीवन सुखी और प्रसन्नता-पूर्ण होने लगता है और वह सुरक्षा का अनुभव करने लगता है। समय के साथ केवल उसका बाह्य आचरण ही शाला के साथियो के अनुरूप नही होता वरन् उसकी हृदयगत भावनाएँ, प्रवृत्तियाँ और आदर्श धीरे-धीरे शाला के साथियो के जनमत के प्रभाव से बदलते और दृढ होते रहते है। कालान्तर मे किसी तरह बालक अपने साथियो के अनुरूप हो जाता है। शाला-समाज के अलिखित नियम, परम्पराओ और रीति-रिवाजो के रूप मे उसके नैतिक नियम और शाला-समाज का जनमत उसका नैतिक समर्थन बन जाते है। साथ-ही-साथ अपने साथियो की अस्वीकृति का भय बालक से उनके अनुरूप कार्य तथा आचरण कराया करता है।

१. यह सम्भावना बुनियादी शालाओ मे प्राय नही-सी है, क्योंकि बुनियादी शालाएँ समाज और कुटुम्ब के प्रतिबिम्ब के समान ही होती हैं।

वैसे तो बालक के व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले अनेक साधन तथा संस्थाएँ हैं जैसे कुटुम्ब, घर, सामाजिक वातावरण, धार्मिक या अन्य प्रकार के समुदाय आदि और यह आवश्यक नही है कि शाला-समाज ही का उस पर सबमे अधिक प्रभाव पडे तथा वह शाला-समाज के अनुरूप ही अपने व्यक्तित्व का सृजन तथा विकास करे। पर होता यह है कि बालक के शाला मे भरती होते ही शाला के अन्य बालक उसे कौतूहल तथा अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं। वे उस पर शाला की परिस्थितियो की प्रतिक्रिया का निरीक्षण करते है तथा यदि वह शाला के अन्य बालको के समान व्यवहार करता है तो उसे शीघ्र ही शाला-समूह मे शामिल किया जाता है। यदि ऐसा नही होता तो उसे येनकेन प्रकारेण शाला-समूह के अनुरूप आचरण करने के लिए बाध्य किया जाता है। वास्तव मे अधिकाश बालक कम या अधिक समय मे अपनी शाला के अन्य बालको के अनुरूप आचरण करने लगते हैं। नम्रता, दूसरो से सीखना और अधीनता स्वीकार करना मनुष्य मे सहज रूप मे पाए जाते हैं। अपना प्रभुत्व जमाना और झगडा करना मनुष्यो मे कम ही पाया जाता है। नम्रता और अधीनता स्वीकार करना आदि हममे हमारे बचपन से ही सामाजिक परम्पराओ और रीति-रिवाजो के बन्धनो मे रहने के कारण आते हैं। यही कारण है कि अपने पूर्व अभ्यास के कारण अधिकाश बालक शाला मे जाते ही जल्दी शाला-समाज के समान बनने लगते हैं। हाँ कुछ बालक ऐसे अवश्य होते हैं जो शाला की सामाजिक व्यवस्था की उपेक्षा करते हैं और उसे मान्यता नही देते। यहाँ तक कि वे उसके प्रति विद्रोह भी करते हैं। यह विद्रोह दो प्रकार से प्रदर्शित होता है—१ तुरन्त शालेय जीवन मे ही, या २ बाद के जीवन में। नेपोलियन में सहार करके जीतने की अभिलाषा तथा कार्ल मार्क्स में तात्कालिक समाज-व्यवस्था के प्रति घृणा उनके शालेय जीवन मे अन्य साथियो की घृणा और तिरस्कार के विद्रोह के फलस्वरूप ही रहे।

कुछ बालक कमजोर होते हैं। वे दिखावे के लिए तो शालेय परम्प-

राओ का पालन करते हैं, पर अपने अन्दर एक भिन्न दुनिया बसाकर शाला के सामाजिक जीवन से दूर ही रहने लगते है। शाला के शान्त, नीरस, उदासीन बालक इसी प्रकार के होते है। इस प्रकार के बालक आगे चलकर बहुत ही पक्की तथा दृढ समाज-व्यवस्था के पोषक होते है। शालाओ मे नियमो की बहुत ही अधिक कठोर व्यवस्था के कारण इस प्रकार के बालक बन जाते हैं। आगे चलकर वे जनतन्त्रवादी ससृष्ट (Corporate) जीवन के विरुद्ध हो जाते है। लोकतन्त्र या जनतन्त्रवादी ससृष्ट जीवन मे व्यक्तिगत भावनाओ एव विचारो का आदर तथा विकास सभी के अधिकारो की रक्षा तथा समानता का विचार करके किया जाता है। ऐसा जीवन उन्हें प्रिय नही होता।

अतः हमारे भारत जैसे देश की जनतन्त्रवादी विचार-धारा के अनुरूप शाला-सगठन तथा प्रबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक तत्त्वो और व्यक्तिगत प्रवृत्तियो मे सुरुचिपूर्ण साम्य और सुधार स्थापित किया जाय। इससे आवश्यकता से अधिक व्यक्तिवाद सामाजिक प्रभाव से दब जायगा तथा सामाजिक तत्त्व व्यक्तिगत विशेषताओ को प्रभावित करके उनका दमन न कर सकेंगे।

शिक्षा का प्रभाव सम्पूर्ण ससार पर देखा जा सकता है। प्रारम्भिक काल से मनुष्य कुछ-न-कुछ सीखता ही आया है। इसी सीखने से उसके जीवन मे परिवर्तन हुए तथा वह सभ्यता के शिखर पर पहुँच पाया है। मनुष्य के आचार-विचार, उसका समाज सभी शिक्षा के कारण बदलते रहे हैं। अत यदि हम यह कहे कि शिक्षा के कारण ही उसके जीवन का विकास और उसकी उन्नति हुई है तो कोई अत्युक्ति न होगी। वास्तव मे जीवन की उन्नति शिक्षा के आधार से ही हो सकती है। मनुष्य की क्या कहे ससार के अन्य सभी जीव जैसे घोड़ा, बिल्ली, चूहा, पक्षी, कीडे-मकोडे, सभी शिक्षा के कारण ही अपना अस्तित्व बनाए है। घोसले बनाना,

विभिन्न समयो मे शिक्षा के उद्देश्य और बुनियादी शिक्षा

दाना चुगना, अण्डे सेना, उड़ना, आवाज करना आदि सभी शिक्षा ही पर निर्भर है।

भिन्न-भिन्न समयो मे शिक्षा के अर्थ तथा उद्देश्य भिन्न-भिन्न रहे हैं। प्राचीन काल मे स्पार्टा मे शिक्षा का उद्देश्य बलवान सैनिक तैयार करना था। भारत मे धर्म की प्रधानता रही, अत: यहाँ आत्मा का विकास तथा धार्मिक पवित्रता शिक्षा का मुख्य ध्येय रहा। इसी प्रकार रूस मे 'श्रमिको का राज्य-निर्माण' करने के साधनो का ज्ञान देना शिक्षा का उद्देश्य है।

समय-समय पर विभिन्न दार्शनिको ने भी शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य बतलाए। प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री रूसो ने शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का प्रकृति से सामजस्य स्थापित करना बतलाया। हॉब्स ने व्यक्तिगत उन्नति को प्रधानता दी। हीगेल नामक दार्शनिक ने सामाजिक भावना के विकास को शिक्षा का प्रधान उद्देश्य माना। विद्वानो ने समय-समय पर जीविकोपार्जन, अवकाश के समय का अच्छा उपयोग, चरित्र-गठन, कार्य द्वारा अनुभव की प्राप्ति आदि शिक्षा के उद्देश्य माने है।

समय-समय पर विद्वानो ने शिक्षा के कुछ भी उद्देश्य माने हो, पर यह सत्य है कि हम किसी भी प्राणी की कल्पना समाज के बाहर नही कर सकते हैं। हम आज जो कुछ भी है अपने सामाजिक वातावरण के कारण ही है, जिसमे हम उत्पन्न हुए तथा पले है। हमारा अच्छा या बुरा जो भी आचरण है वह सभी सामाजिक है। हमारी जो भी आदते आज हैं वे हमारी मूल प्रवृत्तियो तथा सामाजिक वातावरण के परस्पर प्रभाव के कारण ही बनी हैं। हमारे आसपास का वातावरण नई मूल प्रवृत्तियो को जन्म नही देता, वह तो हमारी मूल प्रवृत्तियो के विकसित होने तथा कार्य करने के लिए क्षेत्र-निर्माण करता है तथा इन्ही दिशाओ की ओर हमें मोडता है। यह दूसरी बात है कि ये दिशाएँ या परिस्थितियाँ समाज की दृष्टि से उपयुक्त हो या अनुपयुक्त। सामाजिक वातावरण तो केवल व्यक्ति को समाज के सामूहिक कार्यों तथा अनुभवो मे भाग लेने की सुविधा देता है।

वैसे तो व्यक्ति और समाज के अधिकारो मे साम्य नही दिखाई देता है। इस समस्या का हल प्लेटो तथा एरिस्टॉटल आदि विद्वानो ने समाज के अधिकारो मे व्यक्ति के अधिकारो का समावेश करने का सुझाव देकर किया। इससे कुछ हद तक व्यक्ति तथा समाज के अधिकारो का वैषम्य दूर हो गया। वास्तव मे मनुष्य का कोई व्यक्तिगत महत्त्व नही है। वह समाज की इकाई है। जब हम इस विचार को मान लेते है तब शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को अपना स्वयं का पूर्ण विकास करने मे सहायक होकर समाज की भलाई करना हो जाता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि हमारा विकास ऐसा हो कि वह हमारे समाज के लिए उपयोगी हो। हमारा ऐसा विकास जो समाज के अन्य व्यक्तियो के लिए उपयोगी न हो, व्यर्थ है। इस प्रकार के विकास से हमारा व्यक्तिगत लाभ भले ही हो, पर इससे हमे सर्वांगीण सफलता नही मिल सकती। परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि समाज का महत्त्व सबसे अधिक है, व्यक्ति का नही। केवल समाज को बडा तथा व्यक्ति को नगण्य मानने से अनेक हानियाँ हैं। इससे व्यक्ति आँख बन्द करके समाज का अनुकरण करेगा तथा समाज उसे जैसे चाहे नचाएगा। समाज के राजनीतिक तथा जातिगत गुट्ट उसमे अनेक बुराइयाँ फैलाएँगे। अत हमारी शिक्षा का उद्देश्य तो 'समाज के हित के साथ-साथ व्यक्ति का सर्वांगीण तथा वांछित विकास' होना चाहिए।

बालक के सामाजिक जीवन मे बुनियादी शाला एक विशेष महत्त्व रखती है। बुनियादी शाला ऐसी परिस्थितियो का निर्माण करती है जिससे विचारों, भावनाओ तथा कार्यो की ऐसी प्रतिक्रिया होती है जो समाज की परम्पराओं, रीतियो तथा आदर्शों के अनुकूल हो। इतना ही नही, वह ऐसे विचारो, भावनाओ तथा कार्यो के उद्भूत होने के अवसर ही नही आने देती जो सामाजिक जीवन के प्रतिकूल हो। बुनियादी शाला मे पाँच प्रवृत्तियो को शिक्षा के माध्यम के रूप मे चुना गया है। इन प्रवृत्तियो का जीवन से अधिक सम्बन्ध है। इन प्रवृत्तियो के माध्यम से शिक्षा देने के लिए निम्न पाँच प्रकार के अभ्यास का अवलम्बन किया जाता है—

१. शुद्ध और स्वस्थ जीवन विताने का अभ्यास।

२. स्वावलम्बन का अभ्यास।

३ किसी एक उत्पादक बुनियादी उद्योग का अभ्यास।

४. समाज मे नागरिकता का अभ्यास।

५ रचनात्मक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का अभ्यास।

इन उपरोक्त पाँच प्रकार के अभ्यासो से बुनियादी शाला के सामाजिक जीवन मे ऐसी गति आती है कि बालक समाज के अनुकूल आचरण करता, तथा सोचता-विचारता हुआ भी स्वतत्र जीवन व्यतीत करके अपना ऐसा विकास करता है जो अधिक समाजोपयोगी होता है। बुनियादी शाला में आचरण, व्यवहार, चरित्र आदि का विकास परोक्ष रूप से शाला के सामाजिक वातावरण में आप-से-आप होता जाता है। यही कारण है कि बुनियादी शालाएँ चरित्र तथा बालक के सर्वांगीण विकास के लिए गैर बुनियादी शालाओ से अधिक उपयुक्त है। बुनियादी शालाएँ बालको को केवल समाज की रक्षित परम्पराओ का ज्ञान देने वाली सस्थाएँ ही नही हैं वरन् वे उन्हे समाज मे चले आये हुए दूषित प्रभावों से भी बचाती हैं। अत बुनियादी शालाएँ केवल समाज के स्थायित्व को रखने वाली सस्थाएँ न होकर उसे विकसित करने वाली भी हैं।

वास्तव मे सामाजिक जीवन केवल निष्क्रिय ही नही होता, वह प्रगतिशील भी है। आज तक की इतिहास की घटनाओ पर जब हम विचार करते हैं तो पता चलता है कि समाज विकास की ओर ही बढता जा रहा है। जो कुछ भी हो, हमे इतना तो मानना ही पडेगा कि समाज उन्नति या अवनति की ओर बढता जा रहा है। अत. आगे बढना या बदलना समाज के लिए आवश्यक है, चाहे वह अच्छे के लिए हो या बुरे के लिए। समाज के बदलने से नई परिस्थितियाँ पैदा होती हैं। इन नई परिस्थितियो के उचित निर्वाह के लिए यह आवश्यक है कि हम बालको को इसके लिए उचित रूप से तैयार करे। अत. हमें बालको मे बदलते हुए सामाजिक जीवन से साम्य स्थापित करने की क्षमता पैदा

करनी चाहिए।

इसके साथ-साथ बालकों के व्यक्तित्व के विकास के लिए पूर्ण स्वतन्त्र क्षेत्र भी आवश्यक है। हमारा देश जनतन्त्रवादी गणतन्त्र है। अत. हमारे देश के प्रत्येक व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक या अन्य सभी प्रकार के विकास के लिए स्वतन्त्र सामाजिक वातावरण आवश्यक है। इस स्वतन्त्र सामाजिक वातावरण में रहकर ही वह अपना तथा अपने देशवासियो की उन्नति के लिए प्रयत्नशील रह सकता है। यह तभी सम्भव है जब देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपने ऐसे विकास के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता हो कि उसका विकास सम्पूर्ण समाज के उचित विकास में सहायक हो। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति पर पडने वाले समाज के प्रभावो का ऐसा साम्य स्थापित किया जाय कि उसके व्यक्तित्व के विकास मे बाधा उपस्थित न हो। व्यक्ति अपना समुचित विकास करता हुआ अपने सामाजिक वातावरण, परम्पराओ तथा आदर्शो से साम्य स्थापित कर सके।

बुनियादी शालाएं समाज का छोटा रूप ही होती हैं। हम अपनी प्राचीन शिक्षा, सस्कृति और सभ्यता का असली रूप इनमे पाते हैं। यदि हम चाहते हैं कि शालेय सामाजिक जीवन के अनुभव बालको को जीवन-यापन मे सहायक हो तो यह आवश्यक है कि हमारी शालेय समाज की रुचियाँ, गतिविधियाँ, आदतें, उद्देश्य तथा कार्य शाला के बाहर के बडे समाज के अनुरूप हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि शाला मे जीवन की कठिन एव जटिल परिस्थितियो को किसी-न-किसी रूप मे स्थान मिलना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि बालक के शालेय जीवन की समाज के जीवन से समानता होनी चाहिए। शाला मे बालको को यथार्थ जीवन अच्छी तरह बिताने की कला आनी चाहिए, क्योकि बिना यथार्थ जीवन व्यतीत किये वे जीवन के लिए योग्य नही बनाए जा सकते हैं। इसीलिए बुनियादी शालाओ मे पाँच प्रकार के अभ्यासो के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। इन अभ्यासो के द्वारा

बुनियादी शालाएँ समाज का एक रूप बनकर बालकों का उचित विकास करती हैं।

पर हमे यह न भूल जाना चाहिए कि आज का जीवन क्रमश जटिल होता जा रहा है। प्राचीन काल के समान वह सरल नही रहा है। प्राचीन काल में व्यक्ति अपने कुटुम्ब या समाज मे चलने वाली सरल क्रियाओ तथा धन्धो को सरलता से सीख लेता था, पर अब सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियो के बदलने तथा जटिल होने के कारण व्यक्ति के सामाजिक आचारों तथा व्यवहारो मे बडी जटिलता आ गई हैं। आज समाज की परम्पराएँ तथा आदर्श व्यक्ति के समाज मे बदलती परिस्थितियों मे आचरण या व्यवहार के लिए मार्गदर्शक नही बन पा रही है। इसीलिए आज का व्यक्ति उन्हे बिना किसी सशय के स्वीकार भी नही करता है। दूसरी बात यह है कि विज्ञान के आविष्कारो ने हमारी दुनिया बहुत छोटी कर दी है, हमे एक-दूसरे पर बहुत अधिक निर्भर कर दिया है। इससे हमारा जीवन और जटिल हो गया है। इसके साथ व्यक्ति मे जनतन्त्रवादी भावना का सम्यक् विकास भी हो रहा है। इस भावना के कारण व्यक्ति जीवन-यापन करते हुए और विकसित होते हुए अपने साथियो से ऐसे व्यवहार की कामना करता है कि उसे ऐसे निर्णयो मे भाग लेने का अधिकार हो जो उसे प्रभावित करते हो। गुफा के जीवन से आज तक मनुष्य अपने ऊपर नाजायज दबाव या प्रभाव डलने से अप्रसन्न होता रहा है। मनोवैज्ञानिको ने भी प्रयोगो से यही सिद्ध किया है कि ऐसे जीवो के लिए जो कोई क्रिया करने को तत्पर नही है जबरदस्ती क्रिया कराना दुखदायी होता है। पर व्यक्ति मे दूसरो के अधीन रहने की प्रवृत्ति भी है। इसका सबसे सरल तथा सीधा-सादा रूप कुछ व्यक्तियो द्वारा अधिक लोगों को शासित किया जाना था। कालान्तर में इस स्वरूप मे जटिलता आती गई। प्राचीन काल मे ग्रीक लोगो ने प्रभावशाली तथा प्रबल समूहो के सदस्यो के प्रति आदर तथा उच्च भावना पर बल दिया। हमारे देश मे अति प्राचीन काल से ही व्यक्तियो की समानता पर बल

दिया गया है। पर वीच मे प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण यह परम्परा न चल सकी। अव हम स्वतन्त्र हो गए हैं तथा पुन जनतन्त्रवाद के समर्थक हुए हैं। जनतन्त्रवाद तथा वैज्ञानिक आविष्कारो ने मनुष्य के जीवन मे जटिलता ला दी है। इस जटिलता के कारण वुनियादी शालाओ के शिक्षको तथा कार्यकर्ताओ के लिए यह आवश्यक है कि—

१. हमारे समाज के जीवन की गूढ तथा जटिल वातें सरल तथा स्पष्ट रूप मे वुनियादी शालाओ मे रखी जायँ।
२. वुनियादी शाला का जीवन उच्च तथा स्वस्थ वनाया जाय।
३. जटिल जीवन की प्रतिकूल तथा विभिन्न वातो को वुनियादी शाला मे सतुलित तथा अनुरूप रखा जाय।
४ वुनियादी शाला के सामाजिक जीवन के अनुभवो को शक्तिशाली तथा उपयोगी वनाया जाय।

वुनियादी शाला—सामाजिक जीवन के प्रति वदले दृष्टिकोण का प्रतीक

शाला वच्चो का घर की अपेक्षा अधिक वडा समूह है। घर मे वालक अपने भाई-वहनो के साथ खेलता तथा उठता-वैठता है। पर ये सभी एक-सी आयु के नही होते। साथ-ही-साथ इनकी सख्या भी निश्चित तथा कम होती है। शाला में वालको का समूह अधिक वडा होता है तथा उनकी आयु भी प्राय एक-सी होती है। वे समाज के विभिन्न कुटुम्वो के होते है। इन कुटुम्वो में वुद्धि, अनुभव, नैतिक विकास विभिन्न होता है। अत शाला मे इन सभी स्तरो के वालकों के एक साथ वैठने-उठने, कार्य आदि करने से एक ऐसे सामाजिक वातावरण का निर्माण होता है जो अनेक प्रकार की क्रियाओ या कार्यों के अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार वालक शाला में अपने घर के छोटे से सकुचित समूह से विभिन्न एक वड़े समूह में प्रवेश करता है। शाला में आकर उसकी रुचियो का विकास होता है, वह आपस मे विश्वास तथा सहनशीलता से काम करना सीखता है। शाला में उसे अपनी सामाजिक सामान्य

प्रवृत्तियों जैसे सहानुभूति, निर्देश, खेल, अनुकरण आदि के विकास के लिए क्षेत्र मिलता है। शाला मे अनेक बातें सामान्य तथा सार्वलौकिक होती हैं जिनका उपयोग शाला के सभी बालक समान रूप से करते हैं। शाला की इमारत, शाला का पुस्तकालय, मूलोद्योग, परम्पराएँ, रीति-रिवाज, खेल, नियम सभी के लिए एक-से होते हैं। शाला-समाज के सदस्य शाला के सामाजिक जीवन में रुचि रखते हैं, अपनी योग्यतानुसार भाग लेते तथा लाभ उठाते हैं। यही कारण है कि बालको में अपनी शाला के प्रति मोह और आदर की भावना आ जाती है और वे शाला की उन्नति, सफलता तथा असफलता में अपनी उन्नति, सफलता और असफलता मानने लगते हैं। शाला मे बालक अपनी आयु वालो के साथ सहयोग से कार्य करना तथा आगे बढने के लिए स्पर्धा की भावना रखता है। इस प्रकार शाला सहयोग तथा परस्पर प्रतिक्रियात्मक समूह बन जाता है।

विभिन्न स्तरो की शालाओं का जीवन विभिन्न होता है तथा उनका एक विशेष सामाजिक जीवन भी होता है। छोटे बच्चो को छोटे समूह अच्छे लगते हैं। उन्हें घर का वातावरण ही अच्छा लगता है। अत छोटे बच्चो की शालाएँ घर का प्रतिबिम्ब ही होनी चाहिएँ। बड़े होने पर बालको का दृष्टिकोण विस्तृत होने लगता है तथा कुछ बडे समूह उन्हे अच्छे लगने लगते हैं। युवक होने पर तो उन्हे बड़े समूह ही अच्छे लगते हैं। बालक इस समूह के सदस्यो से अपने सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। अतः माध्यमिक शालाएँ प्राय. बडी ही होनी चाहिएँ। ऐसी शालाओं का सामाजिक जीवन जहाँ बालक दिन के केवल कुछ घण्टे ही व्यतीत करते हैं उन शालाओ के सामाजिक जीवन से भिन्न होता है जहाँ बालक रहते, खाते-पीते, सोते तथा वर्ष का अधिकाश समय व्यतीत करते हैं। हमारी बुनियादी शालाओ की सावास शालाओ के रूप में कल्पना की गई है। अत. इन बुनियादी शालाओ में सामाजिक जीवन का समुचित विकास तथा बालको के सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ होने की सम्भावनाएँ रहती हैं।

प्राचीन काल मे शाला का प्रमुख कार्य शिक्षा देना था तथा बौद्धिक विकास ही शिक्षा का ध्येय माना जाता था। ऐसी क्रियाएँ जिनसे प्रत्यक्ष रूप से बौद्धिक विकास न हो गौण मानी जाती थी। कालान्तर में जीवन की जटिलता बढी तथा पश्चिमी देशो मे १९वी शताब्दी के अन्त मे जब नागरिकता के ज्ञान पर अधिक बल दिया जाने लगा तब नागरिक-शास्त्र तथा इतिहास विषयो को पाठ्यक्रम मे जोडा गया। अब 'सामाजिक अध्ययन' विषय ने इनका स्थान ले लिया है। पहले बालको द्वारा शाला मे ऐतिहासिक घटनाओ को याद करने, समाज की रचना तथा विकास का ज्ञान देने, सरकार के स्वरूपो पर विचार करने आदि से यह मान लिया जाता था कि उनमे अच्छी नागरिकता के गुणो का समावेश होगा। शिक्षको का ध्यान शालेय सामाजिक जीवन की ओर रहता ही नही था। बल्कि शालेय सामाजिक जीवन की गतिविधियाँ तथा क्रियाएँ शिक्षण-कार्य मे बाधक मानी जाती थी। जब कभी बालको की क्रियाशीलता प्रबल, तीव्र तथा हानिकारक रूप से प्रकट होने लगी तो शिक्षको ने बालको की सामाजिक क्रियाओ की ओर उदासीनता दिखलाई तथा इन सामाजिक क्रियाओ की उपेक्षा ही की। पर कालान्तर मे जब इस उपेक्षा से कोई लाभ न हुआ तो बालको के सामाजिक जीवन की गतिविधियो तथा क्रियाओ को पाठ्यक्रमेतर क्रियाओ के रूप मे क्लिष्ट रूखे बौद्धिक शिक्षण के साथ-साथ स्थान दिया गया।

बालको की सामाजिक क्रियाएँ उनकी अतिरिक्त ऊर्जा या शक्ति के निकास-मार्ग है। ये सामाजिक क्रियाएँ उनकी बुराइयो का रेचन करके उन्हे ठीक मार्ग पर चलाने मे सहायक होती है। इनसे उनके शिक्षण तथा नैतिक विकास में सहायता पहुँचती है। अब तो मनोवैज्ञानिक खोजो ने इन सामाजिक क्रियाओ को और भी अधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया है। आज के परिवर्तनशील जटिल सामाजिक जीवन मे बालक को भविष्य के लिए तैयार करने के लिए यह आवश्यक है कि शालेय सामाजिक जीवन का सगठन तथा प्रबन्ध उचित ढग से किया जाय, जिससे शाला के बालको

मे भावी जीवन की जटिल परिस्थितियो का सामना करने की शारीरिक, मानसिक तथा अन्य सभी प्रकार की क्षमता का विकास हो सके ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शालेय जीवन की सामाजिक गतिविधियो तथा क्रियाओं के प्रति प्रारम्भ में शिक्षको का बडा विरोध रहा। पर कालान्तर मे यह विरोध उदासीनता, सहनशीलता तथा अन्त में शिक्षण के लिए आवश्यक साधन के रूप में मान्यता देने मे बदल गया। यही कारण है कि अब बालको के शालेय जीवन की सामाजिक क्रियाओ एवं गतिविधियो को पाठ्यक्रमेतर न मानकर सह-पाठ्यक्रमगामी माना जाता है। बुनियादी शिक्षा के प्रणेता महात्मा गाँधी तथा अन्य सभी शिक्षा-शास्त्रियो ने तो शालेय सामाजिक जीवन के अभ्यास को बालको को ज्ञान देने का एक आधार ही बनाया है। अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री तो अनुभव को ही शिक्षा मानते हैं। बुनियादी शालाओ मे न केवल बालको के शालेय सामाजिक जीवन का समुचित उपयोग किया जाता है, वरन् आवश्यकतानुसार गाँव या शहर के समाज के बीच पर्यटन करके, उन्हें उपयुक्त अवसरो पर निमंत्रित करके, बालको का अपने गाँव या शहर के समाज की परिस्थितियो से परिचय कराया जाता है। बुनियादी शाला मे इस प्रकार अनेक प्रकार से प्रगतिशील सामाजिक अनुभवो के उपयुक्त क्षेत्र का निर्माण करके बालकों को यथार्थ नागरिक जीवन से परिचित कराया जाता है। इस प्रकार बुनियादी शाला मे बालकों को भविष्य के यथार्थ जीवन की परिस्थितियो का सामना करने का प्रशिक्षण मिलता है।

अध्याय २

बुनियादी शाला का संगठन तथा प्रबन्ध

सगठन या प्रबन्ध के द्वारा हम किसी सस्था या अन्य वस्तु को उसके आदर्श तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि हम प्रबन्ध या सगठन करते समय उन उद्देश्यो को सामने रखें जिनके अनुसार हम कार्य करते है या सस्था चलाना चाहते है। इन उद्देश्यो के आधार पर ही हम सच्चे एव उचित सगठन का निर्माण कर सकते है। जब तक ये उद्देश्य ठीक न होगे तथा मनोवैज्ञानिक ज्ञान मे ओतप्रोत न होगे तब तक हमारी प्रबन्ध या सगठन की योजना उचित न होगी।

शाला-संगठन के सिद्धान्त

सगठन के सामान्य सिद्धान्त प्राय सभी क्षेत्रो मे एक-से ही होते हैं। मोटर यूनियन, रेल विभाग, शाला, ध्रुव-यात्रा के लिए प्रस्थान के लिए बनाई गई सस्था आदि सभी क्षेत्रो मे प्रबन्ध तथा सगठन आदि के सामान्य सिद्धान्तो मे अधिक भेद नही होता। भेद या अन्तर तो इनके ब्यौरे या भीतरी क्षेत्रो के सगठन या प्रबन्ध के सिद्धान्तो मे होता है। इस दृष्टि से यदि हम शाला-सगठन या प्रबन्ध के सिद्धान्तो पर विचार करे तो हमे पता चलेगा कि तत्सम्बन्धी हमारे निम्न सिद्धान्त मुख्य रहेगे—

१ शाला-सगठन या प्रबन्ध का प्रमुख कार्य बालक को स्वय सोचने वाला तथा क्रियाशील नागरिक बनाना है।
२ किसी भी शाला मे बालक ही सगठन या प्रबन्ध का प्रमुख अंग है।
३ अधिकार और उत्तरदायित्व या कर्तव्य दोनो साथ-साथ जाते

हैं। कर्तव्य का पालन न करना ही अधिकार से वंचित रहना है।

४. किसी भी शाला-सगठन या प्रवन्ध मे अच्छाइयाँ तथा बुराइयाँ दोनो रहती हैं।

५. जिन व्यक्तियो को शाला-संगठन या प्रवन्ध-सम्वन्धी नीति प्रभावित करती है उनमें से अधिक-से-अधिक व्यक्तियो द्वारा नीति-निर्धारण में परामर्श लेना चाहिए।

६. कर्तव्य और कार्यों मे सशय या दुविधा होने से समय तथा शक्ति व्यर्थ खर्च होती है।

७ शाला से सम्वन्धित व्यक्तियो की विशेष योग्यताएँ तथा विशेष प्रशिक्षण अधिकतम वालकों के लाभ के लिए उपयोग मे लाने चाहिएँ।

इन उपरोक्त सिद्धान्तो पर जव हम विचार करते हैं तो हमे पता चलता है कि कुशलता शाला-संगठन या प्रवन्ध की प्रमुख आवश्यकता है। शिक्षको की प्रसन्नता या अप्रसन्नता तथा उनकी रुचियो या अरुचियो का कही भी विचार नही किया गया है। फिर भी इससे हमे यह नही सोचना चाहिए कि शाला-सगठन या प्रवन्ध मे हमे शिक्षको का विचार करना आवश्यक नही है। चाहे शाला हो या अन्य संस्था, मानवीय अधिकार अर्थात् कार्यकर्ताओ के अधिकारो का विचार किसी भी सगठन या प्रवन्ध के लिए आवश्यक रहता है। कार्यकर्ताओ के मानवीय अधिकारो मे निम्न वातें शामिल होती हैं—

१. यदि कर्तव्यो का उचित पालन किया गया है तो अपनी स्थिति या नौकरी मे पक्के या मुस्तकिल होने का अधिकार।

२. उत्तरदायित्वो तथा अधिकार प्रदर्शित करने का अधिकार।

३. उचित कार्य तथा परिश्रम करने पर किये गए काम का आदर तथा वढाई का अधिकार।

४. संगठन या प्रवन्ध के सभी क्षेत्रो मे सहयोग, आदर तथा सूझ-बूझ की आवश्यकता का मान करना।

इस दृष्टि से जब हम बुनियादी शाला-सगठन या प्रबन्ध पर विचार करते हैं तो हमे पता चलता है कि बुनियादी शाला-सगठन मे सगठन या प्रबन्ध-सम्बन्धी किन पहलुओ पर विचार किया गया है। बुनियादी शाला लोकतन्त्रवाद की पोषक है तथा शाला के सामाजिक जीवन का उचित उपयोग करके यह बालको मे नागरिकता के अच्छे गुणो का विकास करती है। अत. यह आवश्यक है कि बुनियादी शाला के सगठन तथा प्रबन्ध मे भी इन्ही बातो का समावेश होना चाहिए। बुनियादी शाला-सगठन एव प्रबन्ध की प्रमुख बातें निम्न हैं—

१. जनतन्त्र प्रणाली के आधार को मान्यता देना।
२ शोषणविहीन सर्वोदयवाद की स्थापना करना।
३. स्वावलम्बन पर बल देना।
४ श्रम को महत्त्व देना।
५ कर्तव्य और योग्यता का आदर करना।
६ बालक के सर्वांगीण विकास की स्थापना करना।
७ सबके लिए अनिवार्य तथा नि शुल्क शिक्षा को महत्त्व देना।
८ समाज मे प्रचलित मूलोद्योग को ज्ञान का स्रोत मानना।
९ बालको को शाला तथा शिक्षा का प्रमुख अग मानना।

१. जनतन्त्र प्रणाली के आधार को मान्यता देना

जनतन्त्र या लोकतन्त्र यह अपेक्षा रखता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने साथियो द्वारा जीवित, विकसित होने वाला ऐसा जीव समझा जाय जिसे ऐसे निर्णयो मे भाग लेने का अधिकार होगा जो उसे प्रभावित करते हो। बुनियादी शाला का सगठन तथा प्रबन्ध भी इस प्रकार का होता है कि वहां के प्रत्येक बालक को उसे प्रभावित करने वाला प्रत्येक निर्णय लेते समय अपना मत प्रदर्शित करने का अधिकार रहता है। बुनियादी शालाओ की व्यवस्था मे प्रत्येक बात शाला-समाज द्वारा निश्चित की जाती है। आयोजन की व्यवस्था, भोजन, सफाई, पर्यटन सम्बन्धी सभी निर्णयो मे शाला-समाज

की राय ली जाती है तथा बहुमत की जो राय होती है वैसा ही किया जाता है। शाला-समाज द्वारा लिये गए निर्णयो को सभी अपना समझकर कार्यान्वित करते है। वे इन निर्णयो का आदर करते है तथा इनके अनुसार आचरण इसलिए करते हैं कि इनसे समाज का हित होता है। इस प्रकार इनके कार्य स्वय-प्रेरित तथा स्वयं-सचालित होते है। पर शाला तथा शिक्षण के कुछ कार्य छात्रो की बुद्धि तथा अनुभवो के क्षेत्र के वाहर के होते है। ऐसे कार्यों के सम्बन्ध मे निर्णय लेते तथा इन्हे कार्यान्वित या सम्पन्न करते समय शिक्षक जनतान्त्रिक प्रणाली के सिद्धान्तो को दृष्टिगत रखते हुए उचित सुझाव देते है। ऐसे अवसरों पर शाला-समाज तथा शिक्षको की सामूहिक वैठक मे ही विचार करके निर्णय लिये जाते हैं। साधारणत. अन्य सभी कार्यों का उत्तरदायित्व शाला-समाज पर ही रहता है। शाला-समाज अपना मत्री एवं उपमत्री चुनता है जो अपने-अपने उत्तरदायित्व का यथोचित निर्वाह करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वुनियादी शाला में जनतान्त्रिक प्रणाली के अनुसार कार्य होता है तथा उसे मान्यता दी जाती है।

वुनियादी शिक्षा का एक सिद्धान्त शोषणविहीन सर्वोदय समाज उपस्थित करना भी है। प्राणीमात्र मे सहानुभूति और प्रेम उपस्थित करना, धनी और गरीव का भेद मिटाना, ऊँच और नीच का भेद मिटाना, सर्वोदय समाज उपस्थित करता है। वुनियादी शाला मे ऊँच और नीच, गरीव और अमीर का कोई भेद नही माना जाता। इससे वुनियादी शाला मे एक ऐसे समाज का निर्माण होता है जिसकी वुनियाद न्याय पर होती है तथा जिसका मत्र अहिंसा और सत्य रहता है। इस तरह वुनियादी शाला अपने समाज मे नया जीवन देकर सजीव, स्वावलम्बी तथा उत्साही व्यक्ति का निर्माण करती है।

२. शोषणविहीन सर्वोदयवाद की स्थापना

वुनियादी शिक्षा के जन्मदाता महात्मा गांधी स्वावलम्बन को सच्ची शिक्षा की कसौटी मानते थे। उस समय स्वावलम्बन से उनका अर्थ यह

३. स्वावलम्बन पर बल देना

था कि बालकों के उद्योग से जो वस्तुएँ तैयार की जायँ उनसे इतनी आमदनी हो कि कम-से-कम शिक्षक का खर्च निकल आए। पर स्वावलम्बन का कमाई के रूप में अर्थ सम्पूर्ण नही है। स्वावलम्बन का यह अर्थ तो पहलू का एक अग ही है। प्रारम्भ मे गाँधीजी ने देश की गरीबी को देखकर आर्थिक स्वावलम्बन पर ज़ोर दिया, पर उनका ध्येय केवल कमाई करना ही नहीं था। स्वावलम्बन का सच्चा अर्थ तो परावलम्बन से मुक्ति प्राप्त करना है। दूसरे पर निर्भर न रहने वाले व्यक्ति को ही हम स्वावलम्बी कहेगे। बुनियादी शाला बालक को उद्योग सिखाकर आर्थिक स्वावलम्बन देती है। स्वयं क्रिया करके बालक ज्ञान-प्राप्ति मे भी स्वावलम्बी हो जाता है। समाज-सेवा, सफाई तथा श्रम करके बालक इन्द्रियो की गुलामी से स्वतन्त्र होता है। इस तरह बुनियादी शाला बालक को तीन प्रकार का स्वावलम्बन प्रदान करती है—१. आर्थिक स्वावलम्बन, २ बौद्धिक स्वावलम्बन, तथा ३. आत्म-नियन्त्रक स्वावलम्बन।

इन तीनो प्रकार के स्वावलम्बनो के अभ्यास तथा निर्वाह के लिए यह आवश्यक है कि बुनियादी शाला अपने साधनो में स्वावलम्बी हो। साथ-ही-साथ शाला-सगठन तथा प्रबन्ध भी ऐसा होना चाहिए कि शाला-समाज अपनी आवश्यकताओ को कम-से-कम करने मे सफल हो सके। मूलोद्योग के द्वारा श्रम करके बालक कुछ-न-कुछ कमाई तो कर ही सकते हैं। खाद्यान्नो की पैदावार से लेकर सफाई, पिसाई, भोजन बनाना, कपास की पैदावार से लेकर वस्त्र बनाने तथा पुराने वस्त्रो की मरम्मत करना और गृह उद्योग के अन्तर्गत गृह बनाने की आवश्यक सामग्री की तैयारी करना आदि भी आर्थिक स्वावलम्बन मे सहायक होते है। आर्थिक स्वावलम्बन कितने ही अश में क्यो न हो, उद्योग द्वारा उत्पादन करके बालक भावी जीवन में स्वावलम्बी कुटुम्ब का निर्माण करने का प्रशिक्षण अवश्य ले लेता है।

बुनियादी शाला में स्वय क्रिया करके बालक बहुत-सा ज्ञान प्राप्त करते

हैं। अपनी ही क्रिया द्वारा अर्जित ज्ञान सच्चा ज्ञान होता है। ऐसा ज्ञान वालको को शक्ति देता है तथा उन्हे पराधीनता से मुक्ति दिलाने में सहायक होता है। स्व-अर्जित ज्ञान से हमारा जो विकास होता है उसके लिए वुनियादी शाला के वालको को दूसरो का मुँह नही ताकना पडता। इस तरह वुनियादी शाला वौद्धिक स्वावलम्वन भी सिखलाती है।

वुनियादी शाला का सगठन तथा व्यवस्था कुछ ऐसी होती है कि उसमें ऊँच और नीच, गरीव और अमीर का कोई भेद नही होता। इससे एक वर्गहीन समाज की रचना होती है। इस वर्गहीन समाज के निर्माण के लिए आवश्यक है कि वालक अपने मन और इन्द्रियो तथा वर्वर प्रकृति पर नियन्त्रण रखना सीखें। वुनियादी शाला का सगठन वालक की वर्वर प्रकृति, मन और इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखने मे सहायक होता है।

वुनियादी शाला का सगठन एव प्रवन्ध वालक मे श्रम के प्रति निष्ठा स्थापित करने मे सहायक होता है। अपने रहने के स्थान, शरीर तथा कपडो की सफाई, भोजन, वस्त्र, घर आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक कार्य करने से तथा ग्राम-सुधार कार्यक्रमो आदि से श्रम और भोग के वीच सुन्दर सामजस्य स्थापित होता है। इस तरह वुनियादी शाला का सगठन श्रम और समाज-कल्याण को महत्त्व देता है तथा वालको को इसकी ओर प्रेरित करता है।

४. श्रम को महत्त्व देना

इसके लिए यह आवश्यक है कि शाला-प्रवन्धक समाज-सेवा के प्रत्येक अवसर से लाभ उठाने के लिए तत्पर रहे तथा समाज-सेवा शाला-समाज का आवश्यक अग हो जाय। इतना होने पर ही वालको को भावी जीवन के लिए तैयार तथा शिक्षित करने का कार्य शाला-जीवन के विधिवत् चलने से आप-से-आप हो सकेगा।

वुनियादी शाला मे सभी काम सवके करने योग्य समझे जाते है। कहने का तात्पर्य यह है कि छोटे-वडे सभी काम सव सदस्य करते हैं; ऊँच और नीच का कोई भेद नही माना जाता। एक धनी व्यक्ति के वालक

५. कर्तव्य और योग्यता का आदर करना

और एक चमार या मेहतर के बालक के काम अलग-अलग नहीं होते। साथ-ही-साथ बौद्धिक और शारीरिक श्रम के कार्यों मे भी कोई भेद नही माना जाता। अभी तक शारीरिक श्रम के कार्यों को लोग हेय दृष्टि से देखते थे, पर बुनियादी शाला मे शारीरिक श्रम करने वाले कोई अलग व्यक्ति नही होते। यदि शारीरिक श्रम करने वाला व्यक्ति अधिक उत्तरदायित्व से कार्य करता है तो उसे शाला-समाज आदर से देखती है। इस तरह बुनियादी शाला-सगठन या प्रवन्ध मे बौद्धिक और शारीरिक श्रम करने वालो के लिए अलग-अलग प्रकार के काम देने की कोई व्यवस्था नही होती। इतना ही नही, कोई धन आदि देकर भी आदर का पात्र बनने मे समर्थ नही हो सकता। बुनियादी शाला-व्यवस्था तथा प्रवन्ध मे कर्तव्य-पालन तथा ऊँच-नीच का अभेद ही प्रमुख है।

अभी तक चली आई शिक्षा-पद्धति मे शालाओ का मुख्य ध्येय बालक का मानसिक विकास करना था। पर बुनियादी शाला बालको के व्यक्तित्व के अन्य अगो के विकास का भी ध्यान रखती है।

६. बालक के सर्वांगीण विकास की स्थापना करना

यह बालक के मानसिक विकास के साथ-साथ सामाजिक, शारीरिक, नैतिक, आध्यात्मिक आदि सभी प्रकार के विकास का प्रयत्न अपने पाँच प्रकार के अभ्यासो द्वारा करती है। बुनियादी शाला का सगठन तथा प्रबन्ध इस प्रकार किया जाता है कि शाला और समाज के सभी साधन बालक के सभी प्रकार के विकास के लिए उपयुक्त रीति से जुटाए जा सकें। बुनियादी शाला का उद्देश्य व्यक्तिगत रूप से बालक को अपने स्वभाव के सभी तत्वो और शक्तियो मे सामजस्य रखते हुए अपना सम्पूर्ण विकास करने योग्य बनाना, बालक के लिए उसकी सभी मूल प्रवृत्तियो के शोध तथा प्रयोग के साधन जुटाना, अपनी रुचियों को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता देकर एक ऐसे आदर्श को उसके सामने रखना कि जो उसके जीवन मे प्रेरणा और नियन्त्रण का कार्य कर सके तथा इस

प्रकार उसकी मूल प्रवृत्तियो और शक्तियो मे सामजस्य वनाए रखकर अपने आदर्श पालन में प्रवृत्त रखने योग्य वनाना है। इस प्रकार वुनियादी शाला अपने छात्रों मे ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करती है जिसमे सामजस्य होता है, जो पूर्ण विकसित होता है, तथा जो अपनी रुचियो का उचित विकास करते हुए दूसरो के विकास में सहयोग देने की क्षमता रखता है।

बुनियादी शिक्षा अनिवार्य तथा नि शुल्क शिक्षा की कल्पना करती है। इसके अनिवार्य तथा निःशुल्क होने के कारण इसकी पहुँच देश के गरीव तथा अमीर सभी तक रहेगी। अत वुनियादी शालाओ मे कालान्तर मे ऐसे कुटुम्वो के वालक भी प्रवेश करेंगे जिनका शिक्षा के प्रति कभी कोई झुकाव ही न रहा हो या जिनमे कोई भी सदस्य शिक्षित न हो। अत यह आवश्यक

७. सवके लिए अनिवार्य तथा नि शुल्क शिक्षा को महत्त्व देना

है कि वुनियादी शाला का प्रवन्ध तथा सगठन इस वदलते हुए समय मे आवश्यक परिवर्तन के साथ उदार दृष्टि से स्थिति सम्हालने मे समर्थ होना चाहिए। आज हम जनतन्त्र के युग मे रह रहे हैं। जनतन्त्र अपने सदस्यो की उचित शिक्षा-दीक्षा पर ही टिक सकता है। अत. सभी की शिक्षा की व्यवस्था आवश्यक होती है। वुनियादी शिक्षा इसीलिए अनिवार्य नि शुल्क शिक्षा को मान्यता देती है। अनिवार्य शिक्षा के कारण विभिन्न स्तर के कुटुम्वो के वालको का शालाओ मे भरती होना अवश्यम्भावी है। फलस्वरूप शिक्षा-स्तर मे भी कमी हो सकती है। इस परिस्थिति मे वुनियादी शालाओ के शिक्षको तथा प्रवन्धको को शाला के छात्रो की मनोवैज्ञानिक, वातावरण तथा वशानुक्रम से प्राप्त परिस्थितियो के प्रति जागरूक रहना आवश्यक होगा। इससे शिक्षा-स्तर गिरेगा नही।

वुनियादी शिक्षा एक उत्पादक मूलोद्योग पर आधारित है। कार्य या कर्म के फलस्वरूप प्राप्त होने से ज्ञान निश्चित, उपयोगी और सहायक होता है। हम जीवन-भर साइकिल चलाने, तैरने या वन्दूक चलाने की

८. समाज में प्रचलित मूलोद्योग को ज्ञान का स्रोत मानना

वातें करें, पर इनके सीखने के लिए सम्वन्वित क्रियाओ का अभ्यास न करें, तो हमे साइकिल चलाना न आएगा। हम पानी मे कूदते ही डूव जायँगे तथा आवश्यकता पडने पर वन्दूक वन्दूक न रहकर केवल लकड़ी का डण्डा ही रहेगी। इसीलिए वुनियादी शिक्षा मे मूलोद्योग की क्रियाओ को ज्ञान का आधार तथा स्रोत माना है। पर हमे यह जान लेना चाहिए कि इसमे क्रियाएँ केवल मूलोद्योग से ही सम्व-न्धित नही रहती हैं। हमारे जीवन से सम्वन्ध रखने वाली—कपडे की सफाई, कमरा झाडना, विस्तर उठाना, भोजन पकाना, खेल-कूद करना, सास्कृतिक कार्यक्रम करना आदि—सभी क्रियाएँ करना आवश्यक रहता है। इन्ही क्रिग्राओ के आधार से वालक विभिन्न क्रियाओ का ज्ञान प्राप्त करते हैं। अत उनका ज्ञान निश्चित, पूर्ण तथा जीवनोपयोगी होता है।

९. वालकों को शाला तथा शिक्षा का प्रमुख अंग मानना

विभिन्न समयो में शाला तथा शिक्षा के भिन्न-भिन्न अगो पर कम या अधिक महत्त्व दिया गया है। प्राचीन काल मे समाज की आव-श्यकताओ पर अधिक वल दिया जाता था। मध्य-युग में शिक्षक तथा पाठ्य विपय अधिक महत्त्व के समझे जाने लगे। आधुनिक युग में शिक्षा-क्षेत्र मे किये गए अनेक अनुसन्धानो तथा प्रयोगो आदि के फलस्वरूप वालक ही शिक्षा का केन्द्र-विन्दु माना जाने लगा है। पाश्चात्य शिक्षा-शास्त्रियो में सवसे पहले रूसो ने वालक को अधिक महत्त्व देने पर वल दिया। इनके वाद तो अनेक शिक्षा-शास्त्रियो ने शिक्षा में वालक को महत्त्वपूर्ण वतलाया। पेस्टालाजी, फ्रावेल, जॉन ड्युई आदि अनेक शिक्षा-शास्त्रियो ने इस वात पर अधिक वल दिया कि शिक्षक को न केवल पाठ्य-विषय की तैयारी करना आवश्यक है वरन् उसे शिक्षा ग्रहण करने वाले वालक तथा उसकी मानसिक, शारीरिक तथा अनेक क्षमताओ तथा कमजोरियो से भी परिचित होना चाहिए।

बुनियादी शिक्षा में भी बालक को शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अग माना गया है। बुनियादी शाला का संगठन तथा प्रबन्ध इस प्रकार का होता है कि बालक की क्रियाशीलता का अधिक-से-अधिक उपयोग किया जा सके। बुनियादी शाला में पाँचों प्रकार के अभ्यास बालक की क्रिया करने की लालसा या प्रवृत्ति का समुचित उपयोग करके लाभ पहुँचाते हैं। बुनियादी शालाओ मे मूलोद्योग या जीवन से सम्बन्धित अन्य क्रियाएँ करने से बालक को आत्म-विश्वास तथा आत्म-सन्तोष होता है। साथ-ही-साथ बालक के हाथ और मस्तिष्क का गहरा सम्बन्ध स्थापित होता है।

मनोविज्ञान-शास्त्री बालक की व्यक्तिगत विशेषताओ का आदर करने तथा ध्यान रखने पर अधिक बल देते हैं। बुनियादी शाला मे उद्योग के चुनाव से लेकर कार्यक्रम के निश्चित करने तथा उसे पूर्ण करने तक या सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमो मे भाग लेते समय बालक की स्वतन्त्रता तथा व्यक्तित्व का ध्यान रखा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बुनियादी शाला मे बालक को शाला का महत्त्वपूर्ण अग माना जाता है। इतना ही नही, बुनियादी शाला के प्रबन्ध तथा संगठन मे कोई ऐसी बात नही आती जो बालक के विकास मे बाधक हो। बुनियादी शाला का सगठन तथा प्रबन्ध तो बालक के सर्वांगीण विकास मे सहायक होता ही है। बुनियादी शाला तो एक सहकारी सस्था के समान कार्य करती है। यहाँ बालक समाज के अन्य बालको की संगति में रहकर परस्पर आदान-प्रदान करते हुए अपना विकास करते हैं। बुनियादी शाला में पाँच प्रकार के अभ्यास बालक मे सहयोग की प्रवृत्ति तथा किसी लक्ष्य के लिए अपने साथियो के सहयोग से कार्य करने की क्षमता का विकास करते हैं। यहां एक ऐसे वातावरण का निर्माण होता है जहाँ बालक अपनी रुचियो तथा अपने विचारो के अनुरूप अपना विकास करने के लिए स्वतन्त्र होता है।

इस तरह हम देखते हैं कि बुनियादी शाला का सगठन तथा प्रबन्ध

हमारे देश में जनतन्त्रवादी गणतन्त्र के सिद्धान्तो के अनुरूप ही होता है। यहाँ शाला-समाज के सदस्य समाज के लिए आवश्यक कार्य स्वय सोच-समझकर करते हैं। यहाँ के आयोजन—सास्कृतिक एव सामाजिक—सभी जनतान्त्रिक प्रणाली से निर्णीत होकर सचालित होते हैं। सभी कार्य करने मे सहयोग की भावना की प्रधानता होती है। व्यक्ति के लाभ की अपेक्षा समाज के लाभ का ध्यान अधिक रखा जाता है। बालक ही शिक्षा तथा शाला का केन्द्र-बिन्दु माना जाता है।

अध्याय ३

अनुशासन, पारितोषिक और दण्ड

अच्छी तरह प्रशिक्षित सेना को अनुशासित सेना कहा जाता है। वास्तव मे अनुशासित मस्तिष्क ही प्रशिक्षित मस्तिष्क है। पर अधिकार प्रभाव तथा दबाव मे रखा गया मस्तिष्क भी अनुशासित मस्तिष्क माना जाता है। यदि प्रभाव तथा दवाव के रूप मे अनुशासन को ले तो अनुशासनहीनता का अर्थ प्रभाव तथा दवाव मे न रहना ही माना जायगा। आम तौर पर साधारण जीवन मे प्रभाव तथा दवाव मे न रहने वाले व्यक्ति किसी-न-किसी कठिनाई मे पड़ते हैं तथा उन्हे अपने दोषपूर्ण आचरण के कारण दण्ड भुगतना पडता है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि अनुशासन का अर्थ दण्ड या दवाव, डाँट-फटकार के रूप मे ही किया जाय। पर शिक्षा सीखने तथा प्रशिक्षण के रूप मे होती है अत सम्पूर्ण शिक्षा प्रमुखतः अनुशासन ही है। अनुशासन ने दण्ड या दवाव का रूप तो गौण रूप से ले लिया है।

अधिकार तथा प्रभाव के रूप में जब अनुशासन को लिया जाता है तब यह माना जाता है कि अनुशासित व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के प्रभाव तथा अधिकार मे है। पर स्वत. के अधिकार मे रहने वाले व्यक्ति को भी अनुशासित व्यक्ति कहा जाता है तथा जो व्यक्ति स्वत. अपनी भावनाओं के अधिकार मे रहता है उसे अनुशासित व्यक्ति नही कहा जाता। ऐसा व्यक्ति बिना सोचे-समझे कार्य करता है तथा परिस्थितियो का ध्यान नही रखता। अपने ही अधिकार मे रहने के अनुशासन का रूप अनुशासन के प्रश्न को चरित्र या आचरण से सम्बन्धित करता है। हम बहुधा देखते

है कि अच्छे आचरण वाला व्यक्ति अपने अधिकार या प्रभाव मे रहने वाला होता है। अच्छे आचरण का व्यक्ति विश्वसनीय भी होता है तथा समाज की भलाई के कार्यों मे सहायक होता है। बुरे आचरण के व्यक्ति का अपने पर अधिकार नही होता या यदि उसका अपनी भावनाओ तथा विचारो पर अधिकार हुआ भी तो उसके आचरण को सामाजिक उन्नति की भावना प्रभावित नही कर पाती तथा वह स्वार्थी वन जाता है।

अनेक विद्वानो ने कहा है कि अपने पर अधिकार आवश्यक है। 'फिचे' नामक दार्शनिक का कथन था कि राज्य का प्रमुख उद्देश्य अपने अस्तित्व को अनावश्यक वनाना है। लिण्डहल भी स्वत पर अधिकार पाने को शैक्षणिक उद्देश्य वनाने पर वल देता था। इस प्रकार अनुशासन के प्रश्न का सम्वन्ध चरित्र से सम्वन्धित वन जाता है।

अनुशासन का ऐतिहासिक दृष्टिकोण

प्रारम्भिक काल से १९वी शताब्दी के अन्त तक शाला का प्रमुख कार्य वालक को कुछ ज्ञान देना था। अत शाला मे सुनसान वातावरण तथा ऊपरी व्यवस्था रखने पर अधिक वल दिया जाता था। उस समय कक्षा तथा शाला के वालको को शान्त तथा चुप वैठाना इतना महत्त्व का समझा जाता था कि अनुशासन रखने के लिए अलग से 'अनुशासन शिक्षक' रखे जाते थे। उस काल में अनुशासन का स्वरूप वहुधा कठोर, सकुचित तथा नकारात्मक होता था।

मध्यकाल मे तो राज्य तथा चर्च के अधिकार वहुत अधिक वढ गए थे। व्यक्ति सम्पूर्ण रीति से इनके अधिकार मे रहता था, साथ-ही-साथ वालक घर तथा शाला के अधिकार मे। इसीलिए साधारण तथा मामूली दोषो पर भी कठोर दण्ड दिया जाता था। शाला तथा घरो मे वालको से शान्त तथा चुप वैठने की अपेक्षा की जाती थी। पर वालको से ऐसी अपेक्षा करना उचित नही था। इसका परिणाम यह हुआ कि ऊपर से तो वालक शान्त तथा चुप रहने लगे तथा आन्तरिक रूप से उनके आचरण मे अनेक अतिक्रम (Deviations) हुए।

फ्रांस तथा अमेरिका की क्रान्तियो के कारण पश्चिमी देशो मे निरंकुश तथा राजतन्त्र शासन की नीव हिली तथा विचार-स्वातन्त्र्य पर बल दिया गया। अधिकार तथा निरकुशता के विरुद्ध इन शक्तियो का आविर्भाव हुआ। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति का ध्येय ही 'स्वतन्त्रता, समानता तथा भाईचारा' का था। रूस की राज्य-क्रान्ति के भी वही परिणाम हुए। इन विचारो का बालकों की शिक्षा पर बडा प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप शालेय जीवन मे भी 'स्वतन्त्रता, समानता तथा भाईचारे' की भावना बढने लगी। १८वी शताब्दी मे रूसो ने बालक को प्रौढ़ अधिकार से स्वतन्त्र करने के आन्दोलन का प्रारम्भ किया। रूसो का कथन था कि बालक को अकेला स्वतन्त्र रहने दो। इससे उसका अच्छा तथा स्वाभाविक विकास होगा, प्रौढ़ों के अधिकार तथा सम्पर्क से वह दूषित होगा। आधुनिक शिक्षा-शास्त्री भी बालक की स्वतन्त्रता के पक्ष में है। इसीलिए आधुनिक काल में अनुशासन की विचार-धारा रूसो की विचार-धारा से कुछ मेल खाती है तथा प्राचीन काल के अनुशासन से बहुत ही भिन्न है।

प्राचीन तथा आधुनिक काल मे अनुशासन-सम्बन्धी विचार-धारा मे विरोधाभास का प्रमुख कारण मानव-स्वभाव सम्बन्धी विचारो मे विरोध होना है। प्यूरिटन तथा अन्य धार्मिक लोग इस बात मे विश्वास करते थे कि बालक का जन्म बुराई मे होता है तथा इस बुराई से बचाने के लिए कठोर प्रशिक्षण आवश्यक है। इसीलिए इस प्रकार की विचार-धारा वाले लोगो का विश्वास था कि 'डण्डे का उपयोग न करने से बालक बिगड जाते है।'

इनके विपरीत रोमेंटिक लोगो का विचार था कि व्यक्ति स्वभावतः ही अच्छा है तथा वह प्रौढ़ो की बुरी आदतो के सम्पर्क मे आकर बुराई ग्रहण करता है। अत. इन लोगो ने बालक की स्वतन्त्र क्रियाओ पर बल दिया। इस विचार-धारा के लोगो ने बाल-जीवन को सुखद तथा स्वयं मे पूर्ण बनाने पर बल दिया। उन्होंने शिक्षा को प्रौढ़ जीवन के लिए

तैयारी का साधन न माना। इसलिए इन लोगो ने समाज को ही प्रमुख रूप से बालक की बुराइयो का कारण समझा। फ्रायड आदि मनोविज्ञान-शास्त्रियो ने भी भावनाओ को दबाने के दुष्परिणामो की ओर संसार का ध्यान आकर्षित किया है तथा सिद्ध कर दिया है कि विरोधी बालक कठोर अनुशासन का ही फल हैं। अत. आजकल अधिकार, अनुशासन, तथा दण्ड बालको के दोषपूर्ण आचरण के प्रधान कारण माने जाने लगे हैं।

१९वी शताब्दी मे मनोविश्लेषण-आन्दोलन भी चला। इसने शिक्षा में रुचि को महत्त्वपूर्ण माना। इससे पहले चर्च, राज्य तथा बूढे-पुराने यह निश्चित करते थे कि बालक को क्या पढाया जाय, पर इस आन्दोलन ने सीखने की प्रक्रिया मे रुचि को उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण मानने पर बल दिया। बालक की रुचियो को महत्त्वपूर्ण मानने का मतलब यह था कि बालक को स्वतन्त्रता दी जाय।

सन् १९०० के पूर्व विधिवत् अनुशासन (Formal discipline) के सिद्धान्त को भी बहुत मान्यता प्राप्त थी। इस सिद्धान्त के अनुसार मानव-मन अनेक क्षमताओ का योग था, तथा इन क्षमताओ को कुछ विशेष विषयो के अध्ययन से तेज तथा विकसित किया जा सकता था, जैसे तर्क-शक्ति बढाने के लिए गणित, रेखागणित और स्मृति बढाने के लिए लेटिन आदि पढकर। इतना ही नही, पाठ्य-विषय जितना कठिन तथा नीरस हो उतना ही अच्छा माना जाता था। पर थार्नडाइक, जेम्स, वुडवर्थ आदि मनो-विज्ञान-शास्त्रियो के प्रयोगो ने विधिवत् अनुशासन (Formal discipline) के सिद्धान्त को अमान्य ठहराया। उन्होने सिद्ध किया कि इससे किसी भी क्षमता का विकास नही होता। हाँ, एक परिस्थिति मे सीखी बातो का उपयोग आवश्यकता पडने पर अन्य परिस्थितियो मे भी किया जा सकता है, यदि दूसरी परिस्थिति मे भी सीखी गई परिस्थिति के तत्त्वो का समावेश हो। इसे 'प्रशिक्षण का स्थानान्तरण' कहते हैं (Transfer of training)। अत. बालक को कोई पाठ्य-वस्तु जबरदस्ती याद कराने से कोई लाभ नही। फलस्वरूप शाला मे बालक की रुचियो तथा स्वतन्त्र

क्रियाओं को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा।

इसके साथ-साथ कुछ विद्वानो ने इच्छा-शक्ति को नैतिक तथा सामाजिक आचरण को प्रेरणा देने वाला माना है। उनके अनुसार अनुशासन केवल कानूनो तथा नियमों के वाह्य आचरण द्वारा पालन मे नही है; वह तो इच्छा-शक्ति के उचित नियन्त्रण मे है। फलस्वरूप विधिवत् अनुशासन का सिद्धान्त पुन: नैतिक तथा सामाजिक प्रशिक्षण के क्षेत्र मे लागू किया जाने लगा।

आधुनिक काल में अनुशासन के दृष्टिकोण में अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री जॉन ड्युई ने आमूल परिवर्तन कर दिया है। उनके अनुसार अभी तक चले आये अनुशासन-सम्बन्धी दृष्टिकोण मे सबसे बडा दोष यह है कि वह शिक्षण से मानसिक विकास तथा अनुशासन से नैतिक विकास सम्भव मानता रहा है। पर ड्युई ने बालक के व्यक्तिगत तथा सामाजिक विकास को एक-दूसरे का पूरक माना है। फलस्वरूप शालेय सामाजिक जीवन बालक के व्यक्तिगत विकास का आधार बन गया है। ड्युई ने अपनी पुस्तक 'द स्कूल एण्ड सोसायटी' मे लिखा है कि ऐसे कार्यो को जिनका कुछ सामाजिक परिणाम हो, सामाजिक और सहकारिता के उपायो द्वारा करने से विशिष्ट तथा अनोखे प्रकार का अनुशासन प्राप्त होता है। इस प्रकार हम देखते है कि ड्युई का सम्पूर्ण शिक्षा-दर्शन वैयक्तिक नियन्त्रण के स्थान पर सामाजिक नियन्त्रण, किसी क्रिया को करने के लिए कर्तव्य और आदर्शवादी नियन्त्रणो के स्थान पर रुचि को महत्त्वपूर्ण मानता है। ड्युई के अनुसार अनुशासन शाला-समाज द्वारा सभी के लिए किये गए कार्यो में सदस्यों के सम्बन्धों मे निहित रहता है। अतः अनुशासन की दृष्टि से बालक के उचित विकास के लिए शाला का सामाजिक तथा प्राकृतिक स्थूल वातावरण बड़े महत्त्व का है तथा इसके लिए भय, पारितोषिक तथा नियमों की आवश्यकता नहीं है।

हमने देखा है कि प्राचीन काल से आज तक अनुशासन के अनेक रूप रहे हैं। प्राचीन काल मे अनुशासन डण्डे के जोर से स्थापित किया जाता

अनुशासन तथा बुनियादी शालाएँ

था। उस समय भय तथा शक्ति से नियमो तथा कानूनो का पालन कराया जाना अनुशासन के लिए आवश्यक माना जाता था। १९वीं शताब्दी मे लोकतन्त्र की स्थापना तथा शिक्षको के बहुत ही अधिक मारने-पीटने के पागलपन के विरुद्ध प्रतिक्रिया होने के कारण अनुशासन स्थापित करने मे पहले जैसी कठोरता अनावश्यक मानी जाने लगी। कुछ मनोविज्ञान-शास्त्रियो ने प्रवृत्तियो के विधिवत् प्रशिक्षण को अनुशासन के लिए आवश्यक माना और सद्गुणो की सूची बनाकर उनके कठोर अभ्यास से उपयुक्त आदतो के निर्माण पर बल दिया। फ्रोब्येल के सिद्धान्तो तथा किंडर-गार्टन पद्धति के प्रचलन से शालाओं में बालक की स्वतन्त्र क्रियाओ के अवसर प्रदान करके अनुशासन स्थापित करना उचित माना जाने लगा। कुछ विद्वानो ने अनुशासन को इच्छा-शक्ति के समुचित विकास का ही रूप दिया, पर अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री जॉन ड्युई ने अनुशासन के दृष्टिकोण मे आमूल परिवर्तन करके शालेय सामाजिक जीवन तथा वातावरण के उचित उपयोग पर अधिक बल दिया।

हमारे देश मे केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो ने बुनियादी शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा माना है। बुनियादी शालाएँ लोकतत्र की पोषक हैं तथा उनका सगठन और प्रबन्ध आदि भी लोकतन्त्र के आधार पर ही होता है। बुनियादी शालाओ मे स्वशासन द्वारा बालको मे उत्तरदायित्व की भावना का विकास किया जाता है। अत. यह स्वाभाविक ही है कि बालको मे उत्तरदायित्व-वहन की भावना जितनी सबल होगी वे अनुशासन के भार को ऊँचा उठाने मे उतने ही अधिक सहायक होगे।

बुनियादी शाला मे उद्योग की क्रिया कराने का एक ऐसा शस्त्र है जो अनायास बालको के जीवन मे स्वय अनुशासन स्थापित करता है। उद्योग मे दक्षता लाने तथा उचित प्रगति करने के लिए यह आवश्यक है कि बालक मन लगाकर काम करे। मन लगाकर काम करने से उत्पादन

भी बढता है तथा उद्योग मे क्षमता प्राप्त होती है। इसलिए बालक स्वाभाविक ढग से व्यवस्थापूर्वक कार्य करते हैं। इस तरह भी व्यवस्था तथा क्रियाएँ स्वानुशासित होती हैं।

बुनियादी शालाओं मे शालेय सामाजिक जीवन की व्यवस्था लोकतन्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार होती है। वहाँ सभी बराबर हैं तथा सबके लिए सभी कार्य वाला सिद्धान्त चलता है। अतः बालक स्वय परिस्थितियो तथा आवश्यकताओ के अनुकूल अच्छी परम्पराओ, रीति-रिवाजों तथा नियमों का निर्माण करते हैं। वे केवल निर्माण ही नही करते, वरन् उनका लगन तथा सचाई से पालन भी करते हैं।

बुनियादी शालाओं मे सभी प्रकार की पराधीनता से दूर रहकर स्वाधीनता या स्वावलम्बन तथा आत्म-निर्भरता मे बालक शरीर तथा मन दोनों की पराधीनता को बुरा मानते हैं। वे अपने कर्तव्यो का ध्यान रखते हुए अपने अधिकारों का उचित उपयोग करके अपने जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति का प्रशिक्षण पाते हैं। इस तरह वे केवल समाज-व्यवस्था चलाने तथा अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करने के लिए ही स्वावलम्बी नही बनते, वरन् उनके संस्कार और प्रवृत्तियाँ भी स्वावलम्बी हो जाती हैं।

वास्तव मे बुनियादी शालाएँ बालकों को स्वावलम्बन की क्रियात्मक शक्ति देने वाली संस्थाएं हैं। इसीलिए तो बुनियादी शालाओ मे शिक्षा का माध्यम अक्षर न होकर सामाजिक वातावरण होता है। सामाजिक वातावरण उन्हें समस्याओं का ज्ञान और उनके समाधान करने का अभ्यास भी कराता है। इससे उनमें न्याय और तर्क की प्रवृत्तियो का विकास आप-से-आप हो जाता है। चूंकि शालेय समाज मे शिक्षक एक विशिष्ट स्थान रखता है तथा उन्हें सच्चा रास्ता दिखलाता है, वे उसका आदर करते हैं तथा सहज श्रद्धा प्रदान करते हैं।

बुनियादी शाला की व्यवस्था बालक ही करते हैं। शिक्षक तो मार्ग-दर्शक के रूप मे रहता है। इस तरह बालक बुनियादी शाला की सम्पूर्ण

व्यवस्था अपने हाथ मे लेते हैं। वे सहयोग तथा स्वावलम्बन से कार्य करते हैं तथा समाज को उपयुक्त नागरिकता की ओर बढाते हैं। इससे उनमे आत्म-विश्वास और सहयोग से कार्य करने के सस्कार पडते हैं। फल-स्वरूप द्वेष, ईर्ष्या, मतभेद, घृणा आदि भाव उनके मन मे आने ही नही पाते। पर यदि ऐसा कभी हुआ भी तो 'शाला-पचायत' द्वारा उनका निरा-करण बालक स्वय न्यायपूर्ण ढग से कर लेते हैं। अत बुनियादी शालाओ मे अनुशासन भंग होने का प्रश्न ही नही उठता। बुनियादी शालाओ का सम्पूर्ण वातावरण सहानुभूतिपूर्ण भी होता है। इससे बालको मे भय, दण्ड, पक्षपात आदि की ग्रथियां उत्पन्न ही नही होती। फलस्वरूप बालक सरलता के मार्ग को छोडकर विकृत मार्ग को अपनाता ही नही है।

बुनियादी शालाओ में अनुशासन की समस्या न होने का एक और कारण भी है। बुनियादी शालाओ में बालको की प्रवृत्तियो, अभिरुचियो आदि को ध्यान मे रखकर कार्य दिये जाते है। बालको के नेतृत्व तथा आत्म-प्रकाशन की भावनाओ के उचित विकास तथा सन्तुष्टि के लिए विभिन्न सास्कृतिक एव सामाजिक कार्यक्रम दिये जाते हैं। ये कार्यक्रम भी बालको की शिक्षा के माध्यम बन जाते है। इन कार्यक्रमो की व्यवस्था, सचालन, संगठन आदि सभी बालक आपसी सहयोग और सफाई से करते हैं। इस तरह बुनियादी शालाओ में बालक सतुष्ट, सहकारी तथा प्रसन्नता का जीवन व्यतीत करते हैं। यह सन्तोष, सहकारिता और प्रसन्नता उन्हे अच्छे सस्कारो की ओर प्रेरित करती है तथा अनुशासन मे रखकर उनका तथा उनकी समाज का उचित विकास करती है। बुनियादी शालाओ में बालको को अनुशासन मे रहते हुए भी अनुशासन का भान नही होने पाता। साथ-ही-साथ, चूंकि यह अनुशासन उन्ही का निर्मित है, इसलिए वे इसके अनुसार चलने में कोई रुकावट भी नही डालते।

आज हम जहाँ-तहाँ अनुशासनहीनता की चर्चा सुनते है। पत्र-पत्रिकाओ में भी इस सम्बन्ध के अनेक समाचार प्रकाशित होते है। इनके कारणो पर जब हम विचार करते हैं तो पता चलता है कि जीवन की

अनुशासनहीनता के कारण

जटिलता तथा हमारी परम्पराओ एव रीति-रिवाजो के समय के अनुसार न वदलने के कारण ही समाज मे अनुशासनहीनता की वृद्धि हो रही है। सामाजिक परिस्थितियो का प्रभाव शाला पर भी पड़ता है।

श्री हुमायूं कवीर ने भारत की विशिष्ट परिस्थितियो का अध्ययन करके अपनी पुस्तिका 'स्टूडेंट इण्डिसिप्लिन' में अनुशासनहीनता के कारणो पर विस्तार से विचार किया है। सन् १९५५ मे नई दिल्ली मे एक 'युवक समारोह' के अवसर पर भी वालको की अनुशासनहीनता के कारणो पर समुचित विचार किया गया था। इसके अलावा समय-समय पर अनेक विद्वानो द्वारा लिखे गए लेखो मे भी अनुशासनहीनता के कारण जनता के सामने उपस्थित किये जाते रहे हैं। इन सव कारणो मे निम्न कारण प्रमुख हैं—

हम वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की जहाँ-तहाँ आलोचना सुनते रहते हैं। आलोचना मे वहुधा वर्तमान शिक्षा का परीक्षा पर वल देना, पाठ्य-क्रम

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली

तथा पुस्तकों का उचित न होना, योग्य शिक्षकों की कमी, शाला-व्यवस्था तथा संगठन जनतंत्रीय प्रणाली से न होना आदि वातें ही वतलाई जाती हैं। आज अभिभावको का ध्येय वालको को किसी भी प्रकार उचित या अनुचित उपायो द्वारा परीक्षा मे पास कराना होता है। शाला के अध्यापको का व्यक्तित्व भी प्रभावशाली नही होता। छात्र अध्यापको से अधिक प्रभावित होते हैं। पर शिक्षण-कार्य की अच्छी क्षमता न होने तथा प्रभावहीन व्यक्तित्व होने के कारण आज के शिक्षक वालको को प्रभावित करने तथा आदर पाने मे असमर्थ होते हैं। इससे वर्तमान शिक्षक वास्तविक रूप मे वालको के सच्चे नेता या नेतृत्व करने योग्य भी नही रह गए हैं। उन्हें तो अव ट्यूशन करके पैसा कमाने की धुन रहती है। शाला की व्यवस्था भी जनता को प्रभावित करने वाली नही होती। इनसे शक्ति तथा भय के वल पर अनुशासन रखने का प्रयत्न किया जाता

है। फलस्वरूप बालको मे विद्रोह की भावना का विकास होता है। पाठ्य-क्रम तथा पाठ्य-पुस्तकें भी समय के अनुकूल तथा बालको के मानसिक, शारीरिक तथा अन्य विकास के अनुरूप नही हैं। इससे शिक्षा मे बालको की रुचि तथा प्रेम नही रहता। इसके साथ-साथ बालक-बालिकाओ की व्यक्तिगत जानकारी प्राप्त करके उन्हे उचित शिक्षा मे लगाने व शिक्षा देने की व्यवस्था भी हमारे देश मे अभी नही के बराबर है। बालक बिना किसी उद्देश्य के केवल पढना चाहता है। इसलिए वह किसी-न-किसी शाला या महाविद्यालय मे पढता है। उसकी रुचि एव योग्यता का विचार हो ही नही पाता।

उचित व्यावसायिक तथा प्राविधानिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था भी हमारे देश मे नही हो पाई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली बालको के अनुकूल नही है।

हमारा देश गरीब है। देश की आबादी बढती जा रही है। पर धन की वृद्धि उस अनुपात मे नही हो रही है। बेकारी भी बढती जा रही है।

आर्थिक परिस्थिति का ठीक न होना

इसका परिणाम यह होता है कि बालको को अपने भविष्य के सम्बन्ध मे सशय बना रहता है। उन्हे यह विश्वास ही नही हो पाता कि उनकी शिक्षा उनको रोजी देने मे समर्थ हो सकेगी। साथ-ही-साथ गरीबी आदि के कारण अनेक गरीब पर योग्य बालक इस निरुपयोगी शिक्षा पाने से भी वचित रह जाते है। इससे उनमे असन्तोष बढता है।

हम प्राय. प्रतिदिन ऐसे उदाहरण देखा करते है जिनसे हमे लक्षित होता रहता है कि आज के सामाजिक जीवन मे मानवीय तथा नैतिक

समाज मे नैतिक भावनाओं की कमी

मूल्यो की अपेक्षा भौतिक मूल्यो का महत्त्व अधिक है। समाज मे स्वार्थपरता अधिक पाई जाती है। घूसखोरी, भ्रष्टाचार अधिक बढ रहा है। इन सब कारणो से व्यक्ति का विश्वास आज तक मान्यता-

प्राप्त ग्रादर्शों से उठता जा रहा है। उसे जो वास्तव मे यथार्थ दिख रहा है उसे ही वह अधिक महत्त्वपूर्ण मानने लगा है। पहले कौटुम्बिक तथा सामाजिक वन्धन तथा विश्वास व्यक्ति मे अच्छे संस्कारो का विकास करते थे। पर अब तो उनकी जड़ें ही खोखली हो गई हैं; ये कौटुम्बिक तथा सामाजिक विश्वास शक्तिहीन हो चले हैं। इस कारण वालकों के सामने उचित आदर्श नही रह पा रहे हैं।

वालको का अधिकाश समय घर मे ही व्यतीत होता है। समाज मे प्रचलित दूषित प्रवृत्तियाँ कुटुम्ब के सदस्यो को प्रभावित करती है जिसका प्रभाव वालक पर अवश्यंभावी रूप से जान पडता है। अपने कुटुम्ब के सदस्यो की बुरी ग्रादतो, दूषित कार्यों ग्रादि का बुरा प्रभाव भी वालकों पर पडता है। गरीवी, शरावखोरी, जुआ आदि का समाज में चाव होने से समाज के लोगों के घर का वातावरण तथा कौटुम्बिक जीवन कलहपूर्ण होता हैं। अशिक्षा भी इस कलहपूर्ण जीवन को वनाने में सहायक होती है। इस कलहपूर्ण जीवन का वालको पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और वे अनुशासनहीन हो जाते हैं।

घर का दूषित वातावरण

शाला के कार्यों मे अनुचित वाह्य हस्तक्षेप होने से भी शाला के अनुशासन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। समाज के लोग शाला के वालको को अपने स्वार्थों की पूर्ति-हेतु हड़ताल करने, जुलूस निकालने या अन्य प्रकार से प्रचार करने के उपयोग मे लाते है। इससे वालकों मे अनुशासनहीनता की वृद्धि होती है।

राजनीतिक दलवन्दी

कुछ विद्वानो ने अनुशासनहीन वालको का अध्ययन करके यह वतलाया है कि अनुशासनहीन वालकों मे शारीरिक विकृति, मन्द-वुद्धि तथा मानसिक ग्रथियो वाले वालको की सख्या ही अधिक पाई जाती है। इस तरह शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणो से भी अनुशासनहीनता

शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक कारण

की वृद्धि होती है ।

शिक्षकों के पुराने विचार और भय-दण्ड का अधिक उपयोग

भारत मे अधिकाश शिक्षक पुराने विचारो के होते है। वे वालको की रुचि तथा प्रवृत्तियो का ध्यान ही नही रखते। सकीर्ण विचारो के कारण वे वालको को स्वतन्त्रता देना भी ठीक नही समझते। इतना ही नही, वालको के थोडा-बहुत शोर करने या स्वतन्त्र क्रिया करने पर वे दण्ड देकर उन्हे भयभीत करना अच्छा समझते हैं। इससे वालको की प्रवृत्तियो का दमन होता है तथा वे विद्रोही होकर अनुशासनहीन होने लगते हैं।

शिक्षक-अभिभावक सहयोग की कमी

शाला के कार्य को चलाने तथा अनुशासन बनाए रखने के लिए शिक्षक-अभिभावक सम्बन्ध दृढ तथा घनिष्ठ होना अति आवश्यक है। हमारे देश मे इनके सहयोग की केवल कमी ही नही है वरन् अधिकाश स्थानो मे इनमे आपसी विरोध ही दिखाई देता है। इसका प्रभाव अनुशासन पर वडा विपरीत पडता है। अतः इनमे सहयोग होना आवश्यक है। यह सहयोग वालको को समझने मे सहायक होता है। यह घर के वातावरण का ज्ञान शिक्षको को कराता है। यदि दोनो के सम्बन्ध ठीक रहे तो समाज के लोग-शाला के अनेक कार्यो मे अपना समुचित सहयोग दे सकते हैं।

खेलकूद तथा सह-पाठ्य-क्रमगामी क्रियाओं के सुसंगठन की कमी

खेलकूद तथा सह-पाठ्य-क्रमगामी क्रियाओ की उचित व्यवस्था से वालको के अवकाश के समय का सदुपयोग होता है तथा उनमे सामाजिक गुणो का विकास भी होता है। अनुशासन की दृष्टि से उनका वडा महत्त्व है। पर हमारे देश मे इन पर बहुत ही कम समय व्यतीत किया जाता है। अनेक शालाओ मे तो इनकी व्यवस्था भी ठीक से नही होती। पुराने शिक्षक तो इन पर समय खर्च करना अनुचित समझते हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि एक विशेप आयु के वाद वालक-वालिकाएं परस्पर मिलने के इच्छुक रहते हैं। दमन द्वारा उन्हे अलग-अलग रखने से अनेक रूपों में अनुशासनहीनता की स्वाभाविक प्रवृत्ति दिखाई देती है। इस स्वाभाविक प्रवृत्ति के दमन से अनेक ग्रंथियां भी वनती हैं तथा व्यवहार मे विकृति आ जाती है।

युवको की युवावस्थागत उत्तेजनाओ का प्रस्फुरण

इसके विपरीत कुछ विद्वान् सहशिक्षा को अनुशासनहीनता का एक कारण मानते हैं। सह-शिक्षा वाली शालाओं मे वहुधा वालिकाओ को पत्र लिखना, उनके विकृत नाम रखना, गन्दे गीत गाना तथा आवाजें कसना आदि अधिक होता है। ये सव वातें अनुशासन को विगाड़ती है।

सह-शिक्षा

प्राय. शाला के शिक्षको मे गुट्ट वन जाते है। ये गुट्ट आपस मे द्वेप रखते हैं जिसका वुरा प्रभाव वालकों पर पडता है। अतएव अनुशासनहीनता का एक कारण शाला के शिक्षको की गुटवन्दियाँ भी है।

शिक्षको की गुटवन्दी

आज हम लोकतन्त्रीय युग में रह रहे हैं। हमारा देश भी एक लोकतंत्रीय गणतन्त्र है। अतः यदि हम चाहते है कि हमारी शालाओ के वालक लोकतन्त्र की भावना से ओतप्रोत हो तो हमे अपनी शालाओ मे भी लोकतन्त्रीय वातावरण रखना आवश्यक है। हमारी वुनियादी शालाओं की व्यवस्था तो लोकतन्त्रीय रहती ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि वुनियादी शाला की व्यवस्था, संगठन, क्रियाएँ, आदर्श, सभी लोकतन्त्र के आधार पर आधारित होते हैं। इसलिए वुनियादी शालाओ मे अनुशासन की समस्या प्राय. नही ही रहती। वास्तव मे अनुशासन वनाए रखने मे वातावरण वडा सहायक होता है। यदि वातावरण का उचित नियन्त्रण सम्भव हो सके, जैसा कि वुनियादी शालाओ मे होता है, तव तो अनुशासन रखने में वाधा न होगी। शाला मे उचित वातावरण वनाए

अनुशासन स्थापित करने के साधन—सकारात्मक

रखने वाले साधनो को ‘सकारात्मक’ साधन कह सकते है। पर इनके साथ-साथ भय, दण्ड आदि के बल पर भी प्राचीन काल मे तथा आज भी कई शालाओ मे अनुशासन बनाए रखने के प्रयत्न किये जाते हैं। ऐसे साधनो को ‘नकारात्मक’ सावन कहते हैं।

शिक्षको का उत्कृष्ट व्यक्तित्व तथा अच्छी आर्थिक स्थिति

वालको पर शिक्षक का बहुत अधिक प्रभाव पडता है। अत. यदि शिक्षक का व्यक्तित्व उच्च कोटि का है तो बालक आप-से-आप उसके प्रति आदर की भावना रखेगे। शिक्षक के व्यक्तित्व से तात्पर्य है उसकी शैक्षणिक योग्यता, कार्यकुशलता, विचार, रुचि आदि से। अत जिस प्रकार का शिक्षक होगा वालक उसका अनुकरण करके वैसे ही वनेंगे। यदि शिक्षक स्वय अच्छाइयो का भण्डार है तो वालक भी इन्हे ग्रहण करेंगे और अनुशासित रहेगे। पर यदि शिक्षक मे दोष है तो हमे यह आशा करनी ही चाहिए कि वालक उनका अनुकरण करेंगे तथा बुरे वनेंगे।

वालकों का स्वानुशासन

अनुशासन के वदलते रूप की चर्चा करते समय हमने विचार किया था कि अव अनुशासन रखने की जिम्मेदारी केवल शिक्षक की ही नही मानी जाती। अभिभावक तथा वालको को भी इसमे अपना पार्ट अदा करना पडता है। अनुशासन अव एक साधन माना जाने लगा है। साध्य तो एक अच्छा तथा उचित सामाजिक जीवन व्यतीत करना है जो लोकतन्त्र के सिद्धान्तो पर आधारित हो। इसके लिए स्वानुशासन की नीति ही अनुकूल हो सकती है। अनुशासन से वालक स्वतंत्रता तथा अधिकार का सदुपयोग करके अपने उत्तरदायित्व को निभाते हुए अपने समाज के विकास मे सहायक होते हैं। स्वानुशासन वालको मे सहयोग की भावना को भी दृढ करता है। वालक अपनी शाला से अपनत्व भाव रखते हैं तथा शाला के सामान्य स्तर को भी ऊँचा उठाते है। यह वालकों को कार्य करके सीखने की ओर प्रेरित करता है। स्वानु-

शासन से बालको को नेतृत्व ग्रहण करने का भी बल मिलता है।

पर स्वानुशासन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि स्वानुशासन की योजना विचारपूर्वक बनाई तथा कार्यान्वित की जाय, शाला के प्रधान तथा अन्य शिक्षक इसके महत्त्व को समझें और इसे सफल बनाने के लिए प्रयत्नशील रहे, बालको मे कार्यो का उचित विभाजन किया जाय तथा सभी के कार्यों का उचित समन्वय किया जाय, योग्य बालको को ही कार्य-भार के लिए चुना जाय तथा आवश्यकतानुसार उन्हे उचित सलाह तथा सहायता दी जाय।

इसके साथ-साथ हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि स्वानुशासन की कोई भी योजना एकदम से चालू न की जाय। पहले कुछ क्षेत्रो को जैसे खेलकूद, भाषण प्रतियोगिता, वादविवाद, पुस्तकालय, वाचनालय, विशेष दिवस आदि मे से कुछ को चुना जाय तथा इनकी व्यवस्था के लिए बालको की समितियां बनाई जायं। वे समितियाँ अपने शिक्षको तथा प्रधानाध्यापक के सहयोग से कार्य करें। बुनियादी शालाओ मे तथा उनसे सलग्न छात्रावासों में लोकतंत्र प्रणाली के आधार पर स्वराज्य-शासन-प्रणाली को अपनाया जाता है। कार्यों का बँटवारा विभिन्न बालको मे कर दिया जाता है। प्रत्येक विभाग के लिए मत्री तथा उपमत्री रहते हैं। ये मंत्री तथा उपमंत्री शाला के विभिन्न कार्य जिम्मेदारी तथा कुशलता से करते हैं। विषम परिस्थितियो मे पूर्ण समाज की बैठक मे विचार करके आवश्यक निर्णय लिये जाते हैं। चूंकि ये निर्णय उन्ही के द्वारा लिये गए होते हैं बालक इन्हें न केवल मान्यता देते है वरन् इनके अनुसार कार्य करना अपना कर्तव्य समझते हैं। इस प्रकार अनुशासन उन्हे प्रभावित करता है तथा अनुशासन मे रहने के लिए प्रेरणा देता है।

अभी तक चली आई शिक्षा-प्रणाली में परीक्षा को अधिक महत्त्व दिया जाता था। बालक स्वभावत· ही क्रियाशील रहता है। अभी तक उसकी क्रियाशीलता का उचित उपयोग नही किया जाता था। शाला-व्यवस्था

उचित शिक्षा-प्रणाली की व्यवस्था

भी जनतन्त्रीय नही थी। शाला में डर, मारपीट, आदि की प्रधानता थी, जिसका प्रभाव ठीक नही पडता था। इन सब दोषो के कारण बुनियादी शिक्षा को अपनाया गया। बुनियादी शालाओ की व्यवस्था भी जनतन्त्रीय रहती है। बालको की क्रियाशीलता का समुचित उपयोग उद्योग की क्रियाओ के करने मे किया जाता है, मारपीट, डर आदि के लिए कोई स्थान ही नही है। बुनियादी शालाओ मे परीक्षाओ को भी अनावश्यक अधिक महत्त्व नही दिया गया है। बुनियादी शाला में शिक्षको तथा बालको का उद्देश्य ऊपर से कोई ज्ञान-भडार अपने दिमाग में भरने का नही रहता, उसका ध्येय तो शालेय सामाजिक जीवन को अच्छी-से-अच्छी तरह व्यतीत करके उसी के तथा मूलोद्योग के आधार से शिक्षा ग्रहण करना रहता है। अत. बालको मे स्वावलम्बन, अच्छे विचारो तथा आदतो का निर्माण तथा विकास होता है। इस दृष्टि से बुनियादी शिक्षा अनुशासनहीनता दूर करने के लिए अधिक उपयुक्त है।

अभिभावको की आर्थिक स्थिति ठीक होने से वे बालको को अच्छी शिक्षा दे सकेंगे। देश में धन अधिक होने से बेकारी की समस्या भी हल

शिक्षको तथा अभिभावकों की आर्थिक स्थिति का सुधार

हो जायगी। इससे बालको को सशय की स्थिति मे न रहना पडेगा। बेकारी, सशय तथा उपयुक्त शिक्षा का अभाव बालको में अनुशासनहीनता बढाता है। अतः अनुशासन के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षको तथा अभिभावको की आर्थिक स्थिति मे पर्याप्त सुधार किया जाय।

शाला, विशेषकर बुनियादी शाला, समाज का ही छोटा रूप होती है। अत' जैसा समाज होगा वैसी ही बुनियादी शाला। इसलिए यदि हम

समाज मे स्वस्थ वातावरण का निर्माण

अपनी शाला मे अनुशासन रखना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हम पहले समाज मे स्वस्थ वातावरण का निर्माण करे। शाला में हम

कितनी ही अच्छी बातो का समावेश करें, पर उन्ही बातो के स्वस्थ विकास के लिए यदि समाज मे उपयुक्त वातावरण नही है तब हमारी शाला मे किया गया परिश्रम बेकार होगा। आज की शालाओ मे अनुशासनहीनता की जड समाज के अस्वस्थ तथा अनैतिक वातावरण ही मे है। अत. अनुशासन के लिए आवश्यक है कि समाज की नैतिकता का स्तर बढाया जाय तथा स्वस्थ वातावरण का निर्माण किया जाय।

घर के दूषित वातावरण में सुधार

बालको का अधिकाश समय अपने कुटुम्बियो के बीच रहने मे ही व्यतीत होता है। अतः यदि कुटुम्ब मे अनैतिकता रही या लड़ाई-झगडे, चोरी, शराबखोरी आदि रही तो उसका विपरीत प्रभाव बालक पर भी पड़ेगा और वह भी इन बुरी आदतों को आप-से-आप ग्रहण करेगा। हम बालको से ऐसी अपेक्षा कैसे कर सकते हैं कि शाला मे वे सफाई से रहना, सच बोलना सीखें और अपने कुटुम्ब या घर मे गन्दे वातावरण तथा झूठ, चोरी आदि बातों के होते हुए भी वे इन बुराइयों से दूर रहे। हमारे घर और समाज के दूषित वातावरण के कारण ही हम बहुधा देखा करते हैं कि शाला मे सच बोलने, दूसरो की सहायता करने, बीडी या तम्बाखू न पीने, रात को जल्दी सोने तथा सुबह जल्दी उठने के सम्बन्ध मे पढने के बाद भी बालको को सच बोलने, दूसरो की सहायता करने, बीडी-तम्बाखू न पीने, और जल्दी सोने तथा जल्दी उठने की अच्छी आदते नही पड़ती हैं। अत. हमारे लिए अपने घर तथा कुटुम्ब में स्वस्थ वातावरण का निर्माण करना अति आवश्यक है।

बहुधा राजनीतिक दल बालको को अपने स्वार्थ-साधन हेतु राजनीति के चक्कर मे खीच लेते है। यही बाहर का सघर्ष धीरे-धीरे शाला मे भी

बालकों को राजनीतिक दल-बन्दियो से दूर रखना

स्थान पा लेता है। शाला के अनुशासन पर इसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। अत शिक्षको तथा समाज के सदस्यो का यह कर्तव्य है कि बालको को इस दूषित वातावरण तथा दल-

वन्दियो से वचाते रहे। वास्तव मे समाज को यह ध्यान मे रखना चाहिए कि बालक किसी विशेप दल या व्यक्ति के स्वार्थ के लिए नही होते, वे तो राप्ट्र की सम्पत्ति है, अत उनका उपयोग राप्ट्र के हित सावन के लिए ही होना चाहिए। राप्ट्र कानून वनाकर भी राजनीतिक दलो द्वारा वालक-वालिकाओ का उपयोग वन्द कर सकता है।

शाला की सुव्यवस्था

शाला मे अनुशासन रखने के लिए शाला की सुव्यवस्था का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए उचित परम्पराओ का निर्माण, शाला का अच्छा स्तर, निश्चित नियमावली तथा सुव्यवस्थित दैनिक कार्यक्रम, पठन-पाठन की सामान्य सुविधाएँ, जैसे रोशनी, पुस्तकालय आदि की अच्छी व्यवस्था, होनी चाहिएँ। शाला मे पठन-पाठन की सामान्य सुविधाओ के होने से वालक आपसी झगडो, ऊधम तथा शोर-गुल से वचते हैं, क्योकि शाला की सुव्यवस्था उन्हे इसके लिए अवसर ही नही देती।

बालकों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा उचित निर्देशन की व्यवस्था

शाला में अनुशासनहीनता के उग्र रूप का प्रमुख कारण बालको की शारीरिक विकृति तथा मानसिक ग्रथियो का पड जाना भी है। अत यह आवश्यक है कि शाला के वालको का व्यक्तिगत ज्ञान शिक्षको को रहे, जिससे वे यथासमय वालको का उचित निर्देशन कर सके। वैसे तो आजकल सभी शिक्षको तथा प्रधानाध्यापको के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक माना जाता है, पर उन्हें रोग-निदान सम्वन्धी मनोविज्ञान का ज्ञान भी थोडा-वहुत होना चाहिए। इसमे शिक्षको को वालको की मानसिक ग्रथियो का पता भी सरलता से लग सकेगा तथा उनका थोडा-वहुत निदान भी हो सकेगा। पाश्चात्य देशो मे तो शालाओ मे मनोविज्ञान-शास्त्री तथा डॉक्टर आदि भी वालको की तत्सम्वन्धी जाँच तथा निर्देशन के लिए रहते हैं, क्योकि अनुशासनहीनता के उग्र रूप का कारण ये ग्रथियाँ ही होती है। इनका उपचार वडी सावधानी से करना चाहिए। किसी भी प्रकार का दण्ड तथा

कठोरता इस प्रकार के मामलो मे वालको के जीवन को ही नष्ट कर सकती है। अतः यह आवश्यक है कि शाला मे बालको के परिवार उनके इतिहास, आर्थिक, सामाजिक स्थिति आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए। आवश्यकतानुसार अनुशासनहीनता के उग्र रूप का निदान मनोवैज्ञानिक ढंग से किये जाने की सुविधाएँ होना भी आवश्यक है।

बुनियादी शालाओ मे पांच प्रकारके अभ्यास ही शिक्षा के माध्यम होते हैं। इन अभ्यासो के द्वारा न केवल वालको का सर्वांगीण विकास ही किया जा सकता है, वरन् ये अभ्यास वालको के सम्बन्धमे आवश्यक जानकारी भी शिक्षको को करा देते हैं। इन अभ्यासो द्वारा शिक्षक वालको की प्रवृत्तियो, रुचियों आदि का ज्ञान प्राप्त करके समयानुसार उनकाउचित निर्देशन कर सकता है। अत हम कह सकते हैं कि बुनियादी शालाएँ सरलता से वालको का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करके उचित मार्ग-दर्शन करने मे सहायक होती हैं।

वालको के उचित विकास के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक तथा अभिभावक बालको के सम्बन्ध मे अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करें,

अभिभावको तथा शिक्षकों के घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना

पर यदि यह जानकारी प्राप्त करके शिक्षको तथा अभिभावको ने अलग-अलग अपने तक ही सीमित रखी तो इससे अधिक लाभ होने की सम्भावना नही है। इस जानकारी का आदान-प्रदान आवश्यक है। इसके अभाव में शाला मे किये गए कार्यो पर पानी फिर सकता है तथा घर मे किये गए उन्नति के कार्यो पर शाला की परिस्थितियां विपरीत प्रभाव डाल सकती हैं। अत दोनो क्षेत्रों के अनुभव तथा गतिविधियां एक-दूसरे के लिए सहायक तथा पूरक वन जायँ इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षको तथा अभिभावको के सम्बन्ध घनिष्ठ हो तथा दोनो को एक-दूसरे के क्षेत्र मे किये जाने वाले कार्यो का समुचित ज्ञान हो।

शिक्षको तथा अभिभावको के घनिष्ठ सम्वन्व का वालक पर भी

अच्छा प्रभाव पडता है। वह शिक्षकों का और भी अधिक आज्ञाकारी बनता है तथा उन्हें आदर से देखने लगता है। इस प्रकार शिक्षको तथा अभिभावको का अच्छा सम्बन्ध बालको तथा शाला दोनो के लिए हितकारी होता है। इससे शाला के अनुशासन को दृढ करने मे भी सहायता मिलती है।

बुनियादी शालाओ की व्यवस्था तथा कार्य-प्रणाली कुछ ऐसी होती है कि शिक्षको तथा अभिभावको का अधिक-से-अधिक सहयोग प्राप्त हो जाता है। बुनियादी शाला की सफाई, सामाजिक तथा सास्कृतिक कार्यक्रम, मूलोद्योग की गतिविधियाँ, सभी गाँव के कोने-कोने मे पहुँच जाती हैं। शाला के समाचार-पत्र, खेलकूद के सामान, पुस्तकालय की पुस्तके, सभी गाँव के समाज के उपयोग में लाने की व्यवस्था बुनियादी शाला करती है। बुनियादी शाला के प्रबन्ध तथा सगठन मे भी अभिभावको का हाथ रहता है। इससे अभिभावको की रुचि बुनियादी शालाओ के कार्यो मे रहती है। बुनियादी शालाओ मे प्रतिमास, प्रति पखवारे या तिमाही मे बालको सम्बन्धी विवरण अभिभावको के पास भेजा जाता है। इससे अभिभावको को बालको के विकास तथा उनकी गतिविधियो का पता चलता रहता है। बुनियादी शालाओ मे अभिभावक-परिषद् की बैठके भी समय-समय पर होती रहती है। इन परिषदो मे शाला तथा स्थानीय स्थिति के अनुसार मूलोद्योग की नई योजनाओ और अन्य कार्यक्रमो आदि के सम्बन्ध मे विचार-विनिमय होता है।

खेल-कूद अनुशासन रखने का बहुत अच्छा साधन है। इससे अवकाश के समय का सदुपयोग किया जा सकता है तथा बालको को भी व्यस्त रखा जा सकता है। खेल-कूद से शारीरिक विकास मे सहायता मिलती है। मनोविज्ञान-शास्त्रियो ने बतलाया है कि बालको की शक्ति का पूर्ण उपयोग न होने पर वह अनुचित क्रियाओ के रूप मे ऊधम या अन्य असामाजिक कार्यो द्वारा फूट निकलती है। खेल-कूदो से सामाजिक गुणो के अभ्यास तथा विकास का अवसर भी

खेल-कूद तथा सह-पाठ्य-क्रमगामी क्रियाओ का सुसंगठन

मिलता है। समूह मे कार्य करना, दूसरे का सहयोग लेना, नेता बनना, संयम-साधन करके मुखिया की आज्ञा मानना, न्यायोचित कार्य करना आदि खेल-कूद के द्वारा ही सम्भव हैं। कठिनाइयो में भी प्रसन्न रहकर उचित कार्य करने का अभ्यास भी खेल-कूद द्वारा होता है। शरीर को चुस्त, फुर्तीला बनाना तथा अपने उद्वेगो को वश में रखने का अभ्यास भी उन्ही के द्वारा सम्भव है। प्रतिस्पर्धा की भावना से कठिन कार्य करके अपने को ऊँचा बनाने तथा अपनी शाला के नाम को ऊँचा उठाने की भावना भी बालको मे खेल-कूद तथा अन्य प्रतियोगिताओं से ही आती है। सह-पाठ्य-क्रमगामी क्रियाएं बालकों की रुचियो को पुष्ट करके उसके व्यक्तित्व को निखारती हैं। इन क्रियाओ द्वारा बालकों मे ऐसे गुणो तथा आदतो का विकास होता है जो उसे अच्छा नागरिक बनने में सहायक होती हैं। ये बालको के मस्तिष्क, हृदय तथा आत्मा का भी विकास करती हैं। इनके अभ्यास से बालको मे स्वानुशासन की भावना का विकास होता है। इस दृष्टि से खेल-कूद तथा सह-पाठ्य-क्रमगामी क्रियाओ का महत्त्व बहुत अधिक है।

बुनियादी शालाओ मे शुद्ध और स्वस्थ जीवन बिताने, समाज में नागरिकता के अभ्यास तथा रचनात्मक और सास्कृतिक प्रवृत्तियो के अभ्यास द्वारा बालको मे सहयोग, भाईचारा, दया, न्याय आदि भावनाओं का भी विकास किया जाता है। वैसे तो बुनियादी शालाओ में स्वावलम्बन तथा मूलोद्योग के अभ्यास के कारण अलग से विदेशी खेल-कूद आदि की व्यवस्था करना अति आवश्यक नही है, फिर भी समाज मे प्रचलित देशी खेलों की व्यवस्था करना वर्जित नही। वास्तव मे स्वावलम्बन तथा मूलोद्योग के अभ्यास मे ही बालक थक जाते हैं, अत: अलग से खेल का घण्टा बुनियादी शालाओ मे नहीं रखा जाता। पर खेल-कूद की व्यवस्था होना आवश्यक है।

अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री जॉन ड्युई ने बालक के सामाजिक जीवन को ही उसके व्यक्तिगत विकास का आधार माना है। बालक के अनुभवो के इस सामाजिक दृष्टिकोण तथा बालक की क्रिया का नैतिक

नैतिक शिक्षा

मूल्यो से बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राचीन काल मे नैतिक भावनाओ के विकास के लिए नरक के भय का सहारा लिया जाता था। धर्म की शिक्षा हमे सिखाती थी कि दुष्कर्म करने से हमे नरक के दुःख भोगने पड़ेंगे। नरक की यातनाओं का विवरण भी बडा भयानक और दर्दनाक था। इन यातनाओ का डर लोगो को दुष्कर्म से दूर रखने की प्रेरणा देता था। पर आज के युग मे जिस प्रकार अनुशासन कायम रखने के लिए भय, तथा मारपीट को अनुपयुक्त माना जाने लगा है, उसी प्रकार नैतिक भावनाओं के विकास के लिए नरक की यातनाओ का डर भी अनुपयुक्त माना जाने लगा है। आज तो बालक को नैतिक बनाने के लिए सद्-व्यवहार, सत्य, शील, न्याय इत्यादि का जीवन व्यतीत करना आवश्यक समझा जाने लगा है। केवल इन गुणो की शिक्षा देने से ही काम नहीं चलता, इन गुणो को बालको के जीवन और चरित्र के विभिन्न अग बना देना आवश्यक है। बालको पर हमे नैतिक आदर्श जबरदस्ती न लादना चाहिए, बल्कि बालको के जीवन मे उदाहरण द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जायँ जिनमे बालको को नैतिक व्यवहार के आचरण का अवसर मिले।

बुनियादी शालाओं मे नैतिक आदर्श बालको पर नहीं लादे जाते। वहाँ पाँच प्रकार के अभ्यासो द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती है जिनमे बालको को नैतिक व्यवहार करना पडता है। बुनियादी शालाओ मे इन पाँच प्रकार के अभ्यासो, स्वस्थ जीवन बिताने के अभ्यास, स्वावलम्बन के अभ्यास, उत्पादक बुनियादी उद्योग के अभ्यास, नागरिकता के अभ्यास तथा रचनात्मक और सास्कृतिक प्रवृत्तियो के अभ्यास द्वारा बालक-बालिकाओ को समाज मे जीवन-यापन का प्रशिक्षण दिया जाता है। इससे बुनियादी शालाओ के बालक-बालिका लोकतन्त्र के लिए सहायक शासन-व्यवस्था, व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के वहन तथा सामाजिक सहयोग का पाठ सीखते है। बुनियादी शालाओ मे नैतिकता की शिक्षा

भय या दण्ड पर आधारित नही रहती। वहाँ तो स्वाभाविक रूप मे सामाजिक जीवन के विकास मे जो बातें सहायक होती हैं, उन्ही का पालन किया जाता है। अतः वहाँ जो समाज के लिए नैतिक है वही बालक के लिए नैतिक हो जाता है। इसलिए वहाँ बालक-बालिका अपने सामाजिक आदर्शों का पालन करने तथा उन तक पहुँचने मे गौरव का अनुभव करते हैं। बुनियादी शालाओ मे शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्य-क्रम आदि को तो महत्त्व दिया ही जाता है, पर इससे अधिक महत्त्व वहाँ वास्तविक सामाजिक जीवन का रहता है, क्योकि बुनियादी शिक्षा जीवन द्वारा जीवन के लिए ही दी जाती है।

पुरस्कार की व्यवस्था

पुरस्कार के सम्बन्ध मे शिक्षा-शास्त्रियो तथा विद्वानों मे विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वान् पुरस्कार को अनुशासन रखने तथा बालको को अच्छे कार्यों की ओर प्रवृत्त करने मे बडा उपयोगी समझते हैं। हरबर्ट ने प्रयोगो द्वारा यह सिद्ध किया है कि सीखने में पुरस्कार, दण्ड और फल की अवहेलना का क्या प्रभाव पडता है। उसने निष्कर्ष निकालकर बतलाया कि बड़े लडकों पर प्रशंसा का अधिक प्रभाव पडता है; लड़कियो पर लड़कों की अपेक्षा प्रशंसा अथवा निन्दा का प्रभाव कम पड़ता है। हरबर्ट इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रशंसा निन्दा से तथा निन्दा फल की अवहेलना से अधिक उत्साह देने वाली होती है। ल्यूबा भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है।

कुछ विद्वानो के अनुसार पुरस्कार देने से निम्न लाभ होते हैं—

१ पुरस्कार बालको मे स्वस्थ प्रतियोगिता तथा स्पर्धा की भावनाएँ लाता है। ये भावनाएँ उनके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा अन्य-विकासो की दृष्टि से बड़ी उपयोगी हैं।

२. पुरस्कार बालकों को नियम-पालन तथा अच्छे कार्यों की ओर प्रवृत्त करने मे बडा सहायक होता है। इससे वे कार्य-परायण बनते हैं तथा उनकी नैतिक उन्नति होती है।

३ पुरस्कृत होने पर बालक तथा उसके अभिभावक दोनो प्रसन्न होते हैं और कार्य करने मे उत्साह रखते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुरस्कार बालको को अच्छे कार्य करने, नियम मानने तथा नैतिकता से रहने आदि की प्रेरणा देते है। पर इस ससार की अच्छी वस्तुओं मे बुराई का पक्ष भी होता है। उसी प्रकार पुरस्कार को भी कुछ शिक्षा-शास्त्री कभी-कभी उपयुक्त नही समझते। वे निम्न कारणो से पुरस्कार को उपयुक्त नही मानते—

१. प्राय अधिक क्षमता, बौद्धिक तथा शारीरिक, आदि बातो पर ही बालक पुरस्कार प्राप्त करते है। इससे हम यह कह सकते हैं कि पुरस्कार बालक को ईश्वर की दी गई इस क्षमता के कारण मिलता है न कि उसकी लगन या परिश्रम को पुरस्कृत करने के लिए।

२ पुरस्कार थोडे से बालको को ही मिलता है जिससे कभी-कभी अन्य बालक परिश्रम करना व्यर्थ ही समझकर प्रयास छोड देते हैं। इससे उनमे कार्य के प्रति उदासीनता आ जाती है।

३ पुरस्कार द्वेष तथा ईर्ष्या को बढाता तथा प्रश्रय देता है, क्योकि पुरस्कार पाने वाले बालक से अन्य बालक ईर्ष्या करने लगते हैं।

४ कभी-कभी बालक केवल पुरस्कार मे प्राप्त होने वाली वस्तु की कीमत के लोभ से ही परिश्रम या कार्य करते हैं। यह भावना उचित नही है, क्योकि इसमे कर्तव्य की अपेक्षा प्रलोभन की ही प्रधानता रहती है।

उपरोक्त विवेचन से पता चलता है कि पुरस्कार देने मे अच्छाइयाँ तथा बुराइयाँ दोनो हैं। पर व्यावहारिक जीवन मे यह देखा जाता है कि पुरस्कार बालको मे बचत तथा परिश्रम की प्रेरणा देता है और उन्हे उन्नति की ओर उन्मुख करने मे सहायक होता है।

पुरस्कार के प्रकार

पुरस्कार को हम दो भागो मे विभाजित कर सकते हैं—

१ वस्तु के रूप मे दिये जाने वाले पुरस्कार। इस प्रकार के पुरस्कारो

मे पुस्तकें, चीजें, कपडे, दवात, कलम, रुपए-पैसे आदि आते है। इस प्रकार के पुरस्कार देते समय हमें इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि वस्तुएँ टिकाऊ तथा वालको के लिए उपयोगी हो। इसके लिए अच्छी पुस्तकें, पढाई-लिखाई की सामग्री, बुनियादी उद्योग की सामग्री, जैसे चरखा, पोनी, तकली आदि, उपयुक्त रहते है। छात्र-वृत्तियाँ भी इसी प्रकार के पुरस्कार के रूप हैं।

२ वस्तु के रूप मे न रहने वाले पुरस्कार। इस प्रकार के पुरस्कार मे प्रमाण-पत्र, सम्मान-पट, अच्छे आचरण पर नम्वर, मौखिक या लिखित प्रशंसा या कक्षा में ऊँची तथा महत्त्वपूर्ण स्थिति का पद देना, विश्वास करने लगना इत्यादि आते हैं। नि शुल्क शिक्षा-व्यवस्था आदि भी इसी प्रकार के पुरस्कार का दूसरा रूप है।

शालाओ मे निम्न आधारो पर वालको को पुरस्कार दिया जा सकता है—

१. अच्छा आचरण तथा व्यवहार।
२. अध्ययन की दक्षता।
३. अच्छी हाज़िरी।
४ अच्छा स्वास्थ्य।
५. खेल-कूद का अच्छा स्तर।
६ पाठशाला की उन्नति मे सहायक होना या सक्रिय योग देना।
७ सह-पाठ्य-क्रमगामी क्रियाओ मे दक्ष होना।
८ समाज-सेवा, साहस, दया आदि के कार्य।
९ लेख, कहानी, कविता आदि में प्रवीणता।
१०. शाला के आयोजनो के संगठन में निपुणता या दक्षता।

इन उपरोक्त आधारों के अतिरिक्त सफाई से रहने, वडो का आदर करने, नियमित रूप से गृहकार्य करने आदि अनेक वातो के लिए वालकों को पुरस्कार दिया जा सकता है। यह दूसरी वात है कि अनेक वातो में पुरस्कार शायद केवल प्रतिदिन की प्रशंसा के रूप मे ही हो।

पुरस्कार के प्रभाव को बनाए रखने की शर्तें

हमने देखा है कि पुरस्कार बालको को प्रेरणा देता है। पर इसमें अनेक दोप भी है। इन दोपो को निम्न बातें ध्यान में रखने से दूर किया जा सकता है—

१ पुरस्कार केवल *तात्कालिक नैतिक आचरण या उद्देश्य की पूर्ति* के लिए न देकर आचरण पर हमेशा पडने वाले प्रभाव को देखते हुए दिया जाना चाहिए। इस प्रकार पुरस्कार केवल शासन तथा दबाव मे रखने का साधन न होकर शिक्षा देने का साधन होना चाहिए।

२ पुरस्कार लगातार परिश्रम, लगन, अच्छे आचरण पर दिया जाय न कि किसी विशेप कार्य की निपुणता या क्षमता पर। हमारी शालाओ मे बहुधा सबसे तेज़ दौडने वाले, सबसे अच्छे कूदने वाले, सबसे अच्छे लेख लिखने या वादविवाद करने वालो को पुरस्कार दिये जाते है। पर इन विभिन्न दशाओ में लगातार परिश्रम तथा लगन से काम करने वालो तथा प्रथम या द्वितीय न आने वालो का ध्यान नही रखा जाता।

३ पुरस्कार लगातार परिश्रम तथा लगन से कार्य किये जाने वालो को दिये जायँ, चाहे उन्हें सफलता मिले या न मिले।

४ पुरस्कार बहुत सरलता तथा आसानी से भी न मिलना चाहिए।

५ पुरस्कार देते समय बालक-बालिकाओ के मन मे इस बात को अच्छी तरह भर देना चाहिए कि किन गुणो या अच्छे कार्यो के कारण उन्हे पुरस्कार दिये जा रहे है। इससे बालक-बालिकाओ को सद्गुणो से प्रेम होगा तथा वे केवल पुरस्कार मे मिलने वाली वस्तुओ से ही लोभ न करेंगे।

६ प्रारम्भ मे बालक को समय पर शाला आना, समय पर सफाई से कार्य करना, अपनी वस्तुएँ व्यवस्था से रखना, लगन तथा मेहनत से कार्य करना, आदि छोटी-छोटी बातो पर ही पुरस्कार

देना चाहिए, क्योंकि जीवन मे ये ही बातें अधिक महत्व की रहती हैं। यदि ये आदतें बालक-बालिकाओ में पड़ गईं तो उच्च नैतिक बातो को वे बाद में सीख सकते हैं। प्रारम्भ से ही नैतिक आदर्शो के लिए पुरस्कार देने से आगे चलकर बड़ी हानि होती है। हम बालक-बालिकाओ से प्रारम्भ से ही 'सचाई सबसे अच्छी है' आदि उच्च नीति की बातें समझने की अपेक्षा नही कर सकते।

७. पुरस्कार-विशेष बालक को न देकर टोली या कक्षा को सामूहिक रूप में दिया जाय।

बुनियादी शालाओं मे पुरस्कार

बुनियादी शालाओ मे व्यक्तिगत पुरस्कार की अपेक्षा सामूहिक पुरस्कार को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। बुनियादी शालाएँ स्वस्थ सामाजिक जीवन तथा सामाजिक आयोजनो पर अधिक बल देती हैं, अत: सफाई व समय पर कार्य करना, कताई-बुनाई, बगीचे की क्यारियो की देख-रेख, प्रार्थना आदि कार्यक्रमो की सफलता तथा अच्छी तरह कार्य करने पर टोलियों या कक्षाओ को पुरस्कार दिया जा सकता है। इससे बालक-बालिकाओं मे सामूहिक भावना बढ़ेगी तथा वे रुचि और लगन से कार्य करेंगे।

पारितोपिक या पुरस्कार देते समय बुनियादी शाला मे एक प्रदर्शनी का आयोजन करने तथा बालको के अभिभावको को निमन्त्रित करने से अभिभावकगण भी अपने बच्चो की रचनात्मक प्रवृत्ति से परिचित हो सकेंगे। साथ-ही-साथ इससे शाला की प्रतिष्ठा भी बढेगी। बुनियादी शाला मे बालको द्वारा बनाई गई या उनकी वस्तुओ के बनाने में सहायक वस्तुएँ ही पुरस्कार के रूप में देना ठीक रहता है। इससे बालक अपने द्वारा निर्मित वस्तु को पाकर प्रसन्न होते हैं तथा और भी अधिक उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं। उद्योग के विकास मे भी ऐसा पारितोपिक सहायक होता है।

जहाँ तक हो पारितोषिक के रूप में बहुत अधिक मूल्य की वस्तु नहीं देनी चाहिए, क्योंकि वस्तु का बहुत अधिक मूल्य बालक-बालिकाओ मे लोभ की भावना का विकास करता है।

शालाओ मे शिक्षको की गुटबन्दी का अन्त

शालाओ में रहने वाली शिक्षको की गुटबन्दी का शाला के बालको पर दूषित प्रभाव पडता है। बालक इससे द्वेष-भाव, अभिमान आदि के शिकार बनते हैं। कभी-कभी तो शिक्षक आपसी मन-मुटाव के कारण बालको तक से द्वेष रखने लगते हैं। अत शाला के अनुशासन के हितार्थ शिक्षको की गुटबन्दी का अन्त आवश्यक है।

अनुशासन स्थापित करने के साधन—नकारात्मक

अनुशासन स्थापना के लिए नकारात्मक साधनो मे दण्ड, प्रतिबन्ध आदि आवश्यक हैं। पर दण्ड या प्रतिबन्ध के आधार पर स्थापित अनुशासन बालक के ऊपर लादा तथा थोपा गया अनुशासन ही रहता है। इस प्रकार का अनुशासन भय रहने तक ही चलता है। परन्तु कुछ मनोविज्ञान-शास्त्री दण्ड देना लाभकारी भी मानते है। उनका कथन है कि प्रत्येक प्रकार की प्रवृत्ति, अच्छी या बुरी, प्रोत्साहन से बढती तथा उसके दबाने से निर्बल होती है। इस तत्त्व को लेकर वे शाला मे दण्ड का कुछ स्थान अवश्य रखना चाहते है। वे कहते हैं कि रचनात्मक कार्यों मे लगाए रहने से बालको को बुरी प्रवृत्तियो के प्रदर्शन का अवसर नही मिल पाता, फिर भी यदि दण्ड का भय न रहे तो बालक लोभ आदि मे पड़कर बुरे काम कर सकते हैं।

बुनियादी शालाओ मे दण्ड

बुनियादी शालाओ मे बालक क्रियाशील रहते है। उद्योग की विभिन्न क्रियाओ तथा अनेक प्रकार के सामाजिक तथा सास्कृतिक आयोजनो मे व्यस्त रहने के कारण बुनियादी शाला के बालक बहुत कम अपराध करते है। बुनियादी शिक्षा स्वावलम्बन तथा मानवोचित गुणो पर आधारित है। अतः उससे दूसरो का शोषण करने

तथा अन्य अपराध करने की भावना ही नहीं आती। इस तरह हम देखते है कि बुनियादी शालाओं में दण्ड का बहुत कम स्थान है। बुनियादी शिक्षा का आधार सत्य और अहिंसा है। यह प्रणाली शाला मे बालक को शोषण से स्वयं मुक्त कराती है तथा समाज के अन्य सदस्यो को भी शोषण से मुक्त कराने का लक्ष्य रखती है। बुनियादी शाला में स्वस्थ परम्परा तथा वातावरण का निर्माण और विकास होता है, अत. अपराधो की इसमें बहुत कम गुन्जाइश रहती है। इस तरह बुनियादी शालाओ में शारीरिक तथा आर्थिक दण्ड की आवश्यकता ही नही है। हाँ, यदि वंश-परम्परा या अन्य कारणो से कोई अपराध भी करता है तो उसमें नैतिक दण्ड द्वारा अपराध या भूल के प्रति ग्लानि या पश्चाताप की भावना उत्पन्न करनी चाहिए।

दण्ड देने के नियम

मेफोर्ड ने अपनी पुस्तक 'द डॉन ऑफ केरेक्टर' में लिखा है कि "दण्ड ने यदि अच्छा प्रभाव डाला तो वह भूल करने से रोक सकता है। पर वह न उचित भावना को उत्पन्न कर सकता और न उसका विकास कर सकता है।" इस प्रकार मेफोर्ड महोदय भी दण्ड को बालक के सुधार में एक निषेधात्मक साधन मानते हैं। अत. इसका प्रयोग जितना कम किया जाय उतना ही अच्छा है। पर यदि दण्ड का उपयोग किया भी जाय तो निम्न नियमो का ध्यान रखना चाहिए—

१. दण्ड देने से पहले अपराधी का अपराध सिद्ध करा देना चाहिए। दण्ड निर्धारित करते समय भूल करने वाले बालक की भी बात सुनना तथा उस पर उचित बल देना और विचार करना चाहिए।
२. दण्ड उतना ही होना चाहिए जितनी भूल या अपराध हो। दण्ड की मात्रा निर्धारित करते समय बालक के अपराध करने के हेतुओ पर भी विचार करना चाहिए; बालक के व्यक्तित्व का भी ध्यान रखना चाहिए।
३. दण्ड अपराध के अनुसार होना चाहिए, जैसे, यदि बालक शाला

में देर मे आता है तो उसे शाला में देर तक रोक सकते हैं। मेवकन ने अपनी पुस्तक 'चरित्र गठन' मे लिखा है कि "अधिक खाने वाले को भूखा रखना, उद्दण्ड को नम्रता के लिए बाध्य करना, आलसी से काम करवाना चाहिए। इससे वालक वह भूल या अपराव फिर न करेंगे।"

४ वालक को वार-वार दण्डित नही करना चाहिए, क्योकि इससे वालक का भय दूर हो जाता है या वह कायर और आत्मविश्वास-हीन हो जाता है।

५ दण्ड निश्चित होना चाहिए।

६ दण्ड तुरन्त तथा अनिवार्य होना चाहिए। ऐसा नही होना चाहिए कि एक-सा अपराव करने पर कुछ वालको को दण्ड दिया जाय तथा कुछ को छोड दिया जाय।

अध्याय ४

शाला-भवन तथा शिक्षण-सामग्री

हमारा देश अमेरिका जैसे देशो के समान धनी नही है। आज देश के सामने निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का प्रश्न भी उपस्थित है। अतः हमे शाला-भवन के निर्माण की समस्या को जितनी मितव्ययिता से हो सके हल करना चाहिए। पाश्चात्य देशो मे तथा कही-कही हमारे देश मे भी शाला के लिए बडी-बडी सुन्दर इमारतें बनवाई गई हैं, पर देश की आर्थिक स्थिति तथा भारतीय सस्कृति के अनुरूप हमे सादगी पर ही अधिक बल देना चाहिए।

शिक्षा, विशेषत बुनियादी शिक्षा, बालक के केवल बौद्धिक विकास से ही सम्बन्धित नही है। बुनियादी शिक्षा तो बालक का सर्वांगीण विकास—शारीरिक, नैतिक, बौद्धिक आध्यात्मिक—करने का लक्ष्य रखती है। बुनियादी शिक्षा बालक को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करके उसे समाज-हित मे पूर्ण सहयोग देने योग्य बनाती है। बालक के इस प्रकार के सर्वतोमुखी तथा सतुलित विकास के लिए पाँच प्रकार के अभ्यासो तथा जीवन की ठोस परिस्थितियो के आधार पर अनेक कार्य-कलाप बुनियादी शालाओ मे कराए जाते है। ये सभी कार्य-कलाप स्थानीय जीवन की आवश्यकताओ को पूर्ण करने मे सहायक होते हैं। इस कार्य मे बुनियादी शाला के शिक्षक, विद्यार्थी तथा जनता, सभी अपने-अपने विवेकपूर्ण कार्यों से उक्त लक्ष्य की पूर्ति करने मे सहायक होते ही हैं, पर शाला भी अपना सहयोग देती है तथा विशिष्ट स्थान रखती है। शाला के इस सम्बन्ध मे दो प्रकार के कार्य होते हैं—(१) शाला मे स्वास्थ्यवर्धक वातावरण का निर्माण करना, तथा

(२) बालकों मे स्वस्थ तथा सरल नागरिक जीवन व्यतीत करने की स्वस्थ आदतो का निर्माण करना। ये कार्य सफलता से करने तथा शालेय जीवन को सामाजिक नागरिक जीवन की स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति मे सहायक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि बुनियादी शाला-भवन का निर्माण शालेय जीवन तथा स्थानीय सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर किया जाय।

बुनियादी शाला के लिए भवन-निर्माण के समय न केवल स्थिति, आकृति आदि पर विचार करना आवश्यक रहेगा, वरन् इस बात पर भी

बुनियादी शाला-भवन का निर्माण

विचार करना होगा कि बुनियादी शाला-भवन के निर्माण से बुनियादी शिक्षा के उद्देश्य पूर्ण होते है या नही। बुनियादी शाला एक सावासिक सस्था के रूप मे मानी जाती है। हालाँकि आज अधिकाश बुनियादी शालाएँ सावासिक नही है, पर यदि बुनियादी शाला सावासिक हो तो शाला अपना उद्देश्य अधिक सरलता से पूर्ण करने मे सफल हो सकती है। बुनियादी शाला के सावासिक होने के कारण बालको के लिए छात्रावास तथा शाला के अध्यापको के लिए निवास की सुविधाओ का ध्यान भी बुनियादी शाला-भवन के निर्माण करते समय रखना पडेगा, पर व्यावहारिक दृष्टि से बुनियादी शिक्षा के अधिक प्रचलित तथा अनिवार्य होने पर यह सम्भव नही दिखाई देता कि गाँव तथा शहर के छोटे-छोटे बालक अपने घरो मे न रहकर शाला के छात्रावासो मे रहे। अत छात्रावासो का निर्माण उतना आवश्यक प्रतीत नही होता, पर शिक्षको के निवास की सुविधा तो बुनियादी शाला-भवन के पास ही होनी चाहिए। इससे शिक्षक बुनियादी शाला के विभिन्न क्रिया-कलापो मे समुचित योगदान दे सकेंगे। वैसे तो सभी शिक्षको के निवास की व्यवस्था बुनियादी शाला-भवन के पास होनी चाहिए, पर यदि यह सम्भव न हो तो कम-से-कम शाला के आधे शिक्षको के लिए व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए।

इसके साथ-साथ हमे यह भी नही सोचना चाहिए कि बुनियादी

शाला-भवन का निर्माण सरकार या अन्य संस्था करा दे। बुनियादी शाला-भवन का निर्माण तो शाला के शिक्षक, बालक तथा गाँव की जनता द्वारा हो तो अधिक अच्छा रहेगा। हाँ, भवन-निर्माण-सम्बन्धी प्राविधिक (टेक्निकल) बातो के लिए सरकारी या सार्वजनिक संस्थाओ के मन्त्रियो से आवश्यकतानुसार सलाह आदि ली जा सकती है। अत: यह आवश्यक है कि सरकारी या अन्य दूसरे साधनो पर निर्भर न रहकर बुनियादी शाला-भवन के निर्माण के लिए हमे स्थानीय साधनो पर ही निर्भर रहना चाहिए तथा इन स्थानीय साधनों का समुचित उपयोग करना चाहिए। स्वय बालक, शिक्षक तथा जनता मिलकर यदि भवन-निर्माण के कार्य में सहयोग दें तो भवन-निर्माण तो होगा ही, साथ-ही-साथ अनेक शैक्षणिक अवसरो का समुचित उपयोग भी बालको के लाभार्थ किया जा सकेगा। इससे खर्च भी कम होगा तथा समय की बचत होगी, अपने शालेय जीवन की प्रमुख आवश्यकता की पूर्ति का गौरव भी शिक्षको, बालकों तथा गाँव की जनता को प्राप्त होगा।

उपरोक्त सामान्य बातो के साथ-साथ हमे शाला-भवन की स्थिति तथा आकृति के सम्बन्ध मे अनेक बातो का ध्यान भी रखना पड़ेगा। इनमे से कुछ मुख्य बातें निम्न हैं—

वातावरण की स्वच्छता तथा सुन्दरता जिससे बालको का स्वास्थ्य अच्छा रहे तथा उनमे सफाई से रहने की आदत पड़े। इसके लिए यह

स्थिति

आवश्यक है कि शाला-भवन शहर या गाँव के बाहर शुद्ध हवा के स्थान मे बनवाया जाय।

यदि आवश्यकतानुसार शाला-भवन गाँव या शहर के बीच मे ही बनवाना आवश्यक हो तो उसे किसी बगीचे या पार्क के पास बनवाना चाहिए। इससे शाला के बालको को शुद्ध वायु मिलती रहेगी। पर हमे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शाला-भवन बाजार, स्टेशन, कारखानो, प्रधान सड़को आदि के पास न बनवाया जाय। इनसे शाला-भवन जितनी दूर रहेगा उतना ही अच्छा है। इन स्थानो से शाला-भवन दूर रहने से इन

स्थानो मे होने वाले कोलाहल तथा दूषित वातावरण का प्रभाव नही पड सकेगा।

शाला-भवन से सलग्न खेल के मैदानो की भी समुचित व्यवस्था का ध्यान हमे रखना चाहिए। शहर या गाँव के वाहर शाला-भवन वनवाने से खेल के मैदानो की अडचन नही पडेगी। पर हमे इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि शाला गाँव या शहर से इतनी दूर न हो जाय कि पहली तथा दूसरी कक्षा के छोटे-छोटे वालक-वालिकाओ को शाला तक पैदल जाने मे अडचन हो।

वहुधा देखा जाता है कि गाँव की शालाओ मे आस-पास के गाँवो से भी वालक-वालिकाएँ पढने आते हैं। इनके लिए भी शाला-भवन वीच मे या पास मे ही पडना चाहिए।

साधारणत शाला-भवन शान्तिपूर्ण स्थान पर ही वनवाना चाहिए।

शाला-भवन ऊँचे टीले पर वनना चाहिए। इससे वर्षा-ऋतु मे कीचड आदि का डर नही रहेगा। जमीन ढालू होने से वरसाती पानी वहकर निकल जायगा।

वुनियादी शाला मे कृषि या वागवानी करना आवश्यक है, क्योकि इससे शाला-समाज की अन्न की आवश्यकता की कुछ हद तक पूर्ति होती है। अत यह आवश्यक है कि वुनियादी शाला-भवन के आसपास की भूमि भी कृषि तथा वगीचे के उपयुक्त हो।

वुनियादी शाला-भवन की स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि सूर्य का प्रकाश विना किसी रुकावट के कक्षा के सभी स्थानो मे सुविधा से पहुँच सके।

आकृति

शाला-भवन की आकृति कई प्रकार की वनाई जा सकती है जैसे अग्रेजी के यू, ई, एल आदि अक्षरो के आकार की। इनमे यू तथा एल आकार विशेष उपयोगी माना जाता है।

वुनियादी शाला मे आठ कक्षाएँ होती है। अत कम-से-कम पाँच कमरे वुनियादी शाला-भवन मे अवश्य होने चाहिएँ। तीन या चार कक्षाएँ

स्थान तथा प्रकाश पेड के नीचे खुले मैदान मे लगाई जा सकती हैं। ठण्ड तथा अच्छे मौसम मे तो कक्षाएँ वृक्षो के नीचे या धूप मे लगाई जा सकती हैं। इसके साथ-साथ बुनियादी शालाओ के लिए उद्योग, विज्ञान, प्रदर्शनी आदि के लिए अतिरिक्त कक्ष भी होना आवश्यक है। प्रधानाध्यापक तथा अध्यापक-कक्ष और दीर्घशका, लघुशंका आदि की भी उपयुक्त व्यवस्था होनी चाहिए। दीर्घशका तथा लघुशंका के लिए टट्टे का उपयोग कर गड्ढे आदि करके व्यवस्था की जा सकती है।

बुनियादी शाला-भवन में साधारणत. प्रति बालक १५ वर्गफुट स्थान अवश्य होना चाहिए। इस हिसाब से यदि कक्षा मे ४० बालक हो तो २८ फुट × २२ फुट का कमरा होना चाहिए। शाला-भवन के कमरे की ऊँचाई भी १६ या १७ फुट होनी चाहिए। कही-कही देखने मे आता है कि कमरा बहुत लम्बा कर दिया जाता है। कमरा ३० फुट से अधिक लम्बा होने से शिक्षक की आवाज बालको तक पहुँचने मे अडचन होती है।

शाला-भवन मे प्रकाश तथा वायु के आवागमन की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। शाला-भवन मे प्रकाश की अच्छी व्यवस्था के लिए शाला का मुख पूर्व की ओर बनवाना चाहिए। इससे पूर्व तथा पश्चिम का प्रकाश मिल सकेगा। कक्षा के बालको को प्रकाश बाईं ओर से ही मिलना चाहिए। इससे लिखते समय कापी या स्लेट पर अँधेरा नही पड़ता।

वायु तथा प्रकाश के लिए शाला-भवन की खिडकियाँ फर्श से साढे तीन या चार फुट ऊँचाई पर बनवानी चाहिएँ। खिडकियो का क्षेत्रफल कमरे के कुल क्षेत्रफल का २० प्रतिशत होना चाहिए। कमरे की खिडकियाँ तथा दरवाजे आमने-सामने होने से वायु का आवागमन समुचित रहता है।

बुनियादी शाला में शिक्षण में सहायक विभिन्न प्रकार की सामग्री की आवश्यकता पडती है। मूलोद्योग के शिक्षण के लिए आवश्यक यंत्र, कच्चा सामान, अन्य विषयो के समवायित ज्ञान के लिए आवश्यक मानचित्र,

बुनियादी शाला के लिए आवश्यक शिक्षण-सामग्री

चार्ट आदि, सुन्दर लिपि में बडे स्पष्ट अक्षरो से लिखे तथा बने होने चाहिएँ। इन्हे कक्षा की दीवार पर इतनी ऊँचाई पर टाँगना या गाडना चाहिए कि बालक सरलता से पढ सकें। पहली कक्षा मे धन, ऋण, मूत्र, कहानियो के चित्र, मूलोद्योग की विभिन्न क्रियाओ का सही ढग आदि दीवारो पर टाँगना चाहिए। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी या अन्य कक्षाओ मे भी गाँव, जिला, राज्य, देश तथा विभिन्न देशो के नक्शे, रहन-सहन के चित्र, भापा-विपय के उपयोगी शब्दो के वाक्य-प्रयोग, मुहावरे, समानार्थी तथा विरुद्ध शब्दो की तालिकाएँ आदि होने चाहिएँ। मूलोद्योग कक्ष में सूत के अक, फलित गति आदि निकालने के सूत्र, उद्योग की विभिन्न प्रक्रियाओ को सही ढग से करने की विधियो के चित्र आदि होने चाहिएँ।

कक्षा में महापुरुपो, दर्शनीय स्थानो आदि के चित्र भी रखने चाहिएँ। कक्षा में आदर्श तथा नीति-वाक्य या वाक्याश भी लिखे रहने चाहिएँ।

इन वस्तुओ के अतिरिक्त कक्षा मे श्यामपट, आसन या डेस्क आदि भी होने चाहिएँ।

प्रत्येक कक्षा मे श्यामपट अवश्य होना चाहिए। श्यामपट के बिना शिक्षक का कार्य ठीक रीति से चल ही नही सकता। वास्तव मे श्यामपट

श्यामपट

शिक्षक का अभिन्न मित्र है। पर यह मित्र का काम तभी कर सकता है जब कि इसका उचित उपयोग किया जाय। बहुधा देखा जाता है कि अनेक शिक्षक इसका उपयोग ही नही करते या कुछ दूसरे आवश्यकता से अधिक उपयोग करते हैं। यदि श्यामपट का उपयोग आवश्यकतानुसार कम या अधिक हो तो यह शिक्षण के लिए बडा उपयोगी साधन सिद्ध हो सकता है।

श्यामपट निम्न कारणो से शिक्षक के कार्य को हल्का करके शिक्षण को उपयोगी तथा सरल बनाता है—

१. श्यामपट द्वारा श्रवणेन्द्रिय की सहायता के लिए नेत्रो का उपयोग किया जाता है।

२. श्यामपट किसी वस्तु अथवा वस्तु-सम्बन्ध पर वालको का ध्यान केन्द्रित करने में सहायक होता है।

३ श्यामपट की सहायता से पाठ्य-वस्तु, उदाहरण तथा गृह-कार्य आदि को सम्पूर्ण कक्षा के सम्मुख एक साथ रखा जा सकता है।

४. श्यामपट पर याद रखने वाले नाम, शब्द, वाक्य, तथ्य आदि लिखे जा सकते है। उन्हे आवश्यकतानुसार जितनी देर तक जी चाहे रख सकते हैं।

५. श्यामपट पर अध्ययन की प्रक्रियाओ के लिए आवश्यक तुलनात्मक चार्ट आवश्यकतानुसार सरलता से वनाए जा सकते है।

६ कौशल पाठो जैसे मूलोद्योग आदि में सीखने योग्य प्रक्रिया को श्यामपट की सहायता से समझाया तथा सिखाया जा सकता है।

७ वालको के लिए पढी हुई वस्तु के अभ्यास तथा प्रयोग के लिए श्यामपट का उपयोग किया जा सकता है।

८ श्यामपट का प्रयोग शिक्षक के लिए आवश्यकतानुसार अधिक विचार करने तथा अप्रासगिक वातो से वचे रहने में सहायक होता है।

९ श्यामपट शिक्षक के सिवाय वालको को आवश्यक सूचनाएँ देने, शाला-व्यवस्था सम्वन्धी वाते लिखने, दैनिक विशेष समाचार आदि के लिखने के लिए उपयोग में आ सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षण के लिए श्यामपट अनेक प्रकार से सहायक होता है। चूंकि मित्र ही जीवन में सहायक होता है, इसलिए हम श्यामपट को शिक्षण-कार्य मे सहायक होने के कारण शिक्षक का अभिन्न मित्र कह सकते हैं।

श्यामपट कई प्रकार के होते हैं, जैसे दीवार मे सीमेंट के बने हुए, लकडी के सरलता से उठाए जाने वाले, लकड़ी के स्टैण्ड पर फिट किये

श्यामपट के प्रकार

जाने वाले लपेट श्यामपट आदि। इनमे से दीवार मे बने हुए सीमेंट के श्यामपट अधिक उपयोगी होते हैं। ये लम्बे तथा बडे होते हैं जिससे इन पर अधिक विषय-वस्तु लिखी जा सकती है। पर वे पक्की इमारतो की दीवारो मे ही बनाए जा सकते हैं। हमारे देश मे पक्की इमारतो वाली शालाएँ कम ही हैं। अत. दीवार के सीमेंट के श्यामपट हमारे बहुत कम काम के सिद्ध होंगे। लपेट श्यामपट हल्के होते हैं तथा एक स्थान से दूसरे स्थान को सरलता से ले जाए जा सकते हैं। पर ये भी मँहगे पडते हैं तथा इन पर बहुत कम पाठ्य-वस्तु लिखी जा सकती है।

हमारे देश मे लकडी बहुतायत से मिलती है। शालाओ की इमारतें पक्की तथा बडी नही होती। हमारी शालाओ मे ठण्ड या गरमी मे अधिकाश समय आवश्यकतानुसार धूप या पेड की छाया मे ही पढाई की जाती है। अत लकडी के, बिना स्टैण्ड या स्टैण्ड वाले, श्यामपट हमारे देश के लिए उपयुक्त रहते हैं। ये सरलता से उठाए-धरे जा सकते हैं। पर हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि श्यामपट बहुत छोटे न हो। कई शालाओ मे निरीक्षण के समय केवल २ या ३ फुट लम्बे और १½ फुट चौडे श्यामपट देखे गए हैं। इतने छोटे श्यामपट केवल नाममात्र को ही रखे जा सकते है। ये शिक्षण मे अधिक उपयोगी सिद्ध नही हो सकते। श्यामपट कम-से-कम ५ फुट लम्बा और ३ फुट या ३½ फुट चौडा अवश्य होना चाहिए। श्यामपट को प्रकाश की दिशा के अनुकूल उपयुक्त स्थान मे रखना चाहिए। श्यामपट पर इससे चमक न पडेगी तथा बालक इस पर लिखी पाठ्य-वस्तु सरलता से पढ सकेंगे।

आसन तथा डेस्क

बुनियादी शालाओ मे आसन तथा डेस्क इस प्रकार के होने चाहिएँ कि जिनसे विद्यार्थी की शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक उन्नति हो, विद्यार्थी का ध्यान पढने मे लगा रहे और वह रुचिपूर्वक अध्ययन करे। परन्तु ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जबकि विद्यार्थी के बैठने की जगह सुविधापूर्ण

हो, विद्यार्थी अच्छी तरह से बैठ सके तथा खडे होने, पढ़ने आदि मे भी उसे पूर्ण सुविधा रहे। इस ध्येय पर ध्यान रखते हुए ही बुनियादी शालाओ मे आसन या डेस्को का चुनाव किया जाना चाहिए।

वैसे तो डेस्क कई प्रकार के होते हैं। किसी-किसी डेस्क मे तो छ: बालक तक एक साथ बैठ सकते है। किन्तु मुख्यतया डेस्क चार प्रकार के ही होते हैं।

१. तीन बालक एक साथ बैठने वाले डेस्क। ये बडे होते हैं। इससे इनके नीचे सफाई ठीक तरह से नहीं की जा सकती। साथ-ही-साथ बीच वाले बालक को निकलने आदि मे असुविधा होती है।

२. दो बालकों के बैठने योग्य डेस्क। इन्हें ड्युअल डेस्क कहते हैं। इनमे दो बालक बैठ सकते हैं। इनमे भी उठाने-धरने की सुविधा नही रहती। इससे सफाई अच्छी तरह नही हो पाती। ये डेस्क भी तीन प्रकार के होते हैं। (१) धन डेस्क, (२) ऋण डेस्क तथा (३) शून्य डेस्क। धन डेस्क मे सीट और डेस्क के बीच का अन्तर छ: इंच रहता है, जिससे खडे होने और आने-जाने मे सुविधा रहती है। ऋण डेस्क मे आसन कुछ डेस्क के भीतर घुसा रहता है जिससे लिखने मे सुविधा होती है। शून्य डेस्क मे आसन और डेस्क के छोर एक सीध मे रहते हैं जिससे पढने मे सुविधा होती है। डेस्को मे ढक्कन लगाकर तथा बैठने के आसनो को परिवर्तनशील बनाकर इन तीनो प्रकार के डेस्को की सुविधाएँ एक ही डेस्क मे उपलब्ध की जा सकती हैं।

३. एक बालक के बैठने योग्य डेस्क। इन्हें सिंगल डेस्क कहते हैं। यह सबसे उत्तम होते है। इनके साथ बैठने के लिए कुरसी या स्टूल अलग से रहता है। इन्हे सरलता से उठाया-रखा जा सकता है। फलस्वरूप सफाई आदि भी ठीक रहती है। इनमें डेस्क तथा स्टूल या कुरसी के बीच का अन्तर आवश्यकतानुसार घटाया-बढाया भी जा सकता है।

४. मुशी डेस्क। ये डेस्क कचहरियो मे वैठने वाले मुशियो के काम में आने वाले डेस्को के समान होते हैं। अत इन्हे मुशी डेस्क कहते हैं। इन डेस्को के उपयोग से वालक को अलग से वैठने के लिए कुरसी या स्टूल आवश्यक नही रहता। इनके उपयोग के समय वालक सामने डेस्क रखता है तथा जमीन पर दरी या फट्टी पर वैठकर लिखता-पढता है। ये डेस्क हल्के तथा सस्ते होते हैं। ये आवश्यकतानुसार सरलता से उठाए-रखे भी जा सकते हैं। वुनियादी शालाओ मे स्थान की कमी के कारण मूलोद्योग के लिए वहुधा डेस्क हटाने तथा पुनः रखने पडते हैं। इसलिए मुशी डेस्को का उपयोग सुविधाजनक होता है।

डेस्क चाहे किसी प्रकार के भी उपयोग मे लाए जायँ, पर वे ऐसे होने चाहिएँ कि वालक को असुविधा न हो। ढलवाँ डेस्क मे ढाल का कोण १५ डिग्री का होना चाहिए जो कि आवश्यकतानुसार कम-अधिक भी किया जा सके, जिससे वालक सीधा बैठे। डेस्को के साथ सलग्न सभी आसनो मे पीठ होनी चाहिए। आसन का वाहरी भाग कुछ ढलवाँ तथा भीतरी भाग कुछ गोलाई लिये होना चाहिए। आसन की चौडाई जाँघ की चौडाई का दो-तिहाई भाग हो। ऐसे आसन पर वैठने से दवाव-स्थान पर असर नही पडता। आसन पर वालक को सीधा टिककर वैठना और सिर सीधा रखना चाहिए, पढते समय पुस्तक की दूरी १२ इच रखनी चाहिए। इससे आँखो पर बुरा प्रभाव नही पडता।

इन उपरोक्त वातो पर ध्यान देते हुए डेस्क तथा आसन वनाए जाने चाहिएँ। इन्हे पुस्तकाधार तथा पीठासन भी कहते है। यदि डेस्क तथा आसन ऐसे न होगे तो वच्चो के स्वास्थ्य पर वुरा प्रभाव पडेगा। दोपपूर्ण डेस्क तथा आसनो पर वैठने का शारीरिक प्रभाव यह होगा कि वालको की पीठ झुक जायगी तथा रीढ की हड्डी टेढी पड जायगी। इससे कन्धे झुक जायंगे या गोल हो जायेंगे, नेत्र-दृष्टि भी कमज़ोर हो जायगी। दोप-पूर्ण डेस्को तथा आसनो का मानसिक प्रभाव यह होगा कि शारीरिक

अस्वस्थता के कारण विद्यार्थी अपना पूर्ण ध्यान पढाई की ओर न लगा सकेंगे, तथा वे अध्ययन मे भी रुचि न लेंगे। इससे वे पूर्ण रूप से शिक्षा ग्रहण करने मे असमर्थ होंगे। दोषपूर्ण डेस्को तथा आसनो का नैतिक असर यह होगा कि अस्वस्थता के कारण बालक धृष्ट और चिड़चिडा हो जायगा। फलस्वरूप कक्षा का अनुशासन भग होने की सम्भावनाएँ बढ़ जायँगी; नेत्र-दृष्टि कमजोर होने से चश्मे की आवश्यकता भी पड़ने लगेगी। इन सब कारणों से बालक की वास्तविक उन्नति तथा प्रगति रुक जायगी। अत. डेस्को तथा आसनो के सम्बन्ध मे पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए।

डेस्क दीवार के समकोण रखा जाना चाहिए। इससे अच्छी सुविधा रहती है तथा प्रकाश आदि भी ठीक से आ सकता है। प्रत्येक डेस्क के चारो तरफ १८ इंच का अन्तर रखा जाना चाहिए। इससे शिक्षक घूम-फिरकर निरीक्षण कर सकता है। डेस्क ऐसे रखने चाहिएं कि प्रत्येक बालक के लिए १५ इंच जगह बैठने के लिए निश्चित रहे तथा १८ इंच जगह बीच मे रहे। इसके अतिरिक्त छ कतारो से अधिक कतारें न हो तो अच्छा रहता है। अधिक कतारे होने से बालक श्यामपट-कार्य पूर्णरूप से देख नही पाते। डेस्को पर बालको को छोटे-बड़े ऊँचाई के अनुसार बैठाया जाना चाहिए। छोटे बालक सामने तथा ऊँचे बालक पीछे, इस प्रकार बैठाना ठीक रहता है। डेस्क बालक की ऊँचाई के अनुसार ही होने चाहिएँ। डेस्क तथा आसन इतने ऊँचे होने चाहिएं कि आसनो पर बैठने पर बालको के पैर जमीन पर टिके रहे, वे सीधे बैठे हों तथा सिर ऊँचा किये हो। बालको मे सीधा बैठने तथा सीधा खडे होने की आदत भी होनी चाहिए। बहुधा यह देखा जाता है कि डेस्को और आसनो के असुविधाजनक होने से बालक अपनी आकृति बिगाड लेते हैं। वे झुक-कर खडे होते हैं और उनकी छाती भीतर की ओर घुसी-सी हो जाती है। अत इन बातो को रोकना चाहिए। बचपन से ही अच्छी आदतें डालने से ये बाते रोकी जा सकती है तथा नेत्र-दृष्टि भी अच्छी बनाई जा सकती है।

अध्याय ५

कार्य-विभाजन, समय-विभाग-चक्र आदि

किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक तथा बुद्धिमानी से करने के लिए यह आवश्यक है कि उस कार्य को पूर्ण करने की विधि तथा उससे सम्वन्धित अन्य कार्यों पर पहले से ही विचार कर लिया जाय। शाला-कार्य के सम्वन्ध मे भी यही वात सत्य है, क्योंकि शिक्षको के लिए इस वात की जानकारी होना आवश्यक है कि मानव-जीवन के कौनसे अनुभव वालको को देने आवश्यक हैं तथा शिक्षक और वालक मिलकर किस प्रकार अपने ध्येयो, उद्देश्यो तथा आदर्शों तक पहुँचेंगे। अतः बुनियादी शालाओ मे की जाने वाली क्रियाओ तथा कार्यों की सूची तथा उनको दिये जाने वाले समय की पूर्व योजना वना लेना वहुत आवश्यक तथा लाभकारी होता है। इससे समय तथा शक्ति व्यर्थ व्यय होने से वचती है तथा शिक्षक सही रास्ते से दूर नही हो पाता। पूर्व योजना के आधार पर कार्य-विभाजन से दुविधा तथा अनावश्यक पुनरावृत्ति से भी वचाव होता है। इससे शिक्षको तथा वालको को पहले से सोच-विचारकर, निश्चित तथा व्यवस्थित ढग से कार्य करने की आदत पडती है। इससे बुनियादी शाला मे की जाने वाली क्रियाओ तथा कार्यों और इनके आधार से दिये जाने वाले ज्ञान पर यथोचित ध्यान, वल आदि दिया जा सकता है। कार्य तथा इनके आधार पर दिये जाने वाले ज्ञान की पूर्व योजना वनाने से शिक्षक को विभिन्न विपयो के वीच सह-सम्वन्ध स्थापित करने मे वडी सहायता मिलती है।

कार्य-विभाजन तथा पूर्व-आयोजन की आवश्यकता

बुनियादी शाला मे की जाने वाली क्रियाओं तथा कार्यों और उनके आधार पर दिये जाने वाले ज्ञान की वार्षिक, मासिक तथा दैनिक इकाइयाँ बनाते समय अनेक बातो का ध्यान रखना आवश्यक होता है। वार्षिक इकाइयाँ बनाते समय निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक तथा उपयोगी रहता है।

पाठ्य-क्रम की इकाइयाँ

१ कक्षा मे छात्रो की सख्या।

२ बालको का मानसिक स्तर।

३. पाठ्य-क्रम मे निर्धारित की गई पठन-सामग्री, उसका स्तर तथा मात्रा।

४. ज्ञान को आत्मसात् करने की बालको की क्षमता।

५. वर्ष-भर मे शिक्षण के लिए दिया जाने वाला समय।

६. वर्ष-भर मे बालकों द्वारा किये जाने वाले उद्योग तथा अन्य शिल्प-सम्बन्धी कार्य।

७. वर्ष-भर मे मनाए जाने वाले त्यौहारो, समारोहों तथा आयोजनो का विवरण।

८ वर्ष के विभिन्न अवसरो पर अध्ययन के लिए उपयोगी पुस्तकों की सूची।

इन उपरोक्त बातो पर विचार करके वर्ष-भर के कार्यक्रम की विस्तृत रूप-रेखा तैयार करना बुनियादी शाला के शिक्षको के लिए आवश्यक रहता है। यह विस्तृत रूप-रेखा बनाकर अन्तिम रूप प्रदान करने के बाद अर्ध-वार्षिक, मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक इकाइयो का निर्माण किया जाता है। सम्पूर्ण वर्ष-भर की रूप-रेखा को दो भागो मे विभाजित करके अर्ध-वार्षिक इकाइयाँ बना दी जाती हैं। अर्ध-वार्षिक इकाइयाँ बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किस क्रिया तथा कार्य और उससे सम्बन्धित ज्ञान को पहले तथा किसे बाद मे स्थान दिया जाय। इस पर विचार करते समय ऋतु, माह, स्थानीय आवश्यकताओ और विशेपताओ

का ध्यान भी रखना चाहिए।

अर्ध-वार्षिक इकाइयाँ बनाने के लिए मासिक इकाइयो का बनाना उपयोगी होता है। मासिक इकाइयो के बनाते समय माह मे पडने वाले त्यौहार, तथा विशेष दिवस आदि का ध्यान रखना चाहिए। साथ-ही-साथ इन्ही त्यौहारो और दिवसो से सम्बन्धित विषयो, क्रियाओ आदि के अध्ययन तथा लेखन-कार्य का ध्यान रखना चाहिए।

वार्षिक, अर्ध-वार्षिक और मासिक इकाइयाँ बनाकर कार्य-अनुसूची बनाने से समय-समय पर बालको की प्रगति का परीक्षण, आवश्यकतानुसार आगे की अनुसूचियो मे परिवर्तन करना आदि कार्य यथासमय पूर्ण करने मे सहायता प्राप्त होती है। इससे कार्य करने वालो को भी अपनी शक्ति तथा क्षमता का पता चलता है। फलस्वरूप उनमे आत्म-विश्वास पैदा होता है।

बुनियादी शाला मे प्रत्येक कक्षा के कार्य तथा समवायित ज्ञान की वार्षिक इकाई बनाकर प्रत्येक बालक को उसकी प्रति देना उपयोगी रहता है। अर्ध-वार्षिक तथा मासिक इकाइयो की एक-एक प्रति भी बालको को देने से बालको को की जाने वाली क्रियाओ तथा उनके आधार से दिये जाने वाले ज्ञान का पता रहता है।

वार्षिक, अर्ध-वार्षिक और मासिक इकाइयो के सम्बन्ध मे शिक्षको को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ये इकाइयाँ यथासमय समाप्त हो। इसके लिए मासिक इकाइयो को प्रतिमाह पूर्ण करने का ध्यान रखना चाहिए। पर कभी-कभी यह हो सकता है कि मासिक इकाई जल्दी या देर से पूर्ण हो। मासिक इकाई जल्दी पूर्ण होने पर बचे समय का सदुपयोग करने के लिए अगले माह की क्रियाओ तथा पाठ्य-क्रम के विषयो को ले लेना चाहिए। माह में कार्य पूर्ण न होने पर आवश्यकतानुसार सशोधन करना उपयोगी रहता है। यदि मासिक इकाइयाँ यथासमय पूर्ण होती जायँ तो अर्ध-वार्षिक तथा वार्षिक इकाइयाँ तो आप-से-आप पूर्ण होती जायँगी। आरम्भ मे एक-दो वर्ष वार्षिक, अर्ध-वार्षिक या मासिक इकाइयो के बनाने

मे विशेप कठिनाइयाँ आएँगी तथा आवश्यकतानुसार कुछ कम या अधिक परिवर्तन करना आवश्यक रहेगा, पर बाद मे इन इकाइयो की पूर्व योजना बनाने मे कोई कठिनाई न होगी।

सामने के चार्ट मे सक्षेप मे कक्षा ५ की वार्षिक तथा माहवार योजना का प्रारूप आवश्यकतानुसार संशोधन करके उपयोगार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

बुनियादी शाला मे दैनिक कार्यक्रम तैयार किया जाना अति आवश्यक है, क्योंकि बुनियादी शाला के शिक्षक को इस बात का पता होना चाहिए कि उसे दिन मे कौन-कौनसे क्रिया-कलाप कराना तथा उनके आधार से कक्षा मे किन-किन बातों का अध्ययन कराना आवश्यक है। दैनिक कार्यक्रम बुनियादी शाला के शिक्षक का पथ-प्रदर्शन करता है। दैनिक कार्यक्रम की रूपरेखा बनी रहने से वह अन्दाज़िया यहाँ-वहाँ भटकता नही है। बुनियादी शिक्षक को न केवल दैनिक कार्यक्रम बनाकर ही सन्तुष्ट होना चाहिए वरन् उसके अनुसार कार्य करके उसे दिन के अन्त मे देखना चाहिए कि कितना तथा कैसे कार्य किया गया और अगले दिन का कार्यक्रम क्या रहेगा। उसे आवश्यकतानुसार अगले दिन के कार्यक्रम से सामंजस्य भी स्थापित कर लेना चाहिए। बहुधा देखा जाता है कि शिक्षक दैनिक कार्यक्रम दस-पन्द्रह दिन मे एक दिन, खासकर छुट्टी आदि के दिन, बैठकर जल्दी से बना लेते है। इस प्रकार दैनिक कार्यक्रम बना लेने से इन्स्पेक्टर या अधिपाठक भले ही नोट-बुक भरी देखकर खुश हो जायँ पर जिस उद्देश्य से दैनिक कार्यक्रम बनाया जाता है वह पूर्ण नहीं हो पाता।

दैनिक कार्यक्रम

बुनियादी शाला के लिए दैनिक कार्यक्रम बनाते समय निम्न बातो पर विचार करना ठीक होगा—

१. कक्षा, दिनाक।

२. कार्यकलाप तथा समय का लेखा। इसके अन्तर्गत की जाने वाली क्रियाओं का उल्लेख होना चाहिए। क्रियाएँ या कार्य मूलोद्योग,

...क अध्ययन	भाषा	कला	शारीरिक शिक्षा
...री केन्द्र ...द सरस्वती ...नक ...चायत	१. २. ३. ४. ५. गत मास के समान ६ रचना— १. दीवाली २ भेड़ा घाट का मेला ७ वाचन— १ गुड २ भक्त रैदास ३ सोने के कुडल ४ सिंदवाद एक साहसी व्यापारी	१ दीवाली का उत्सव कलात्मक ढंग से मनाना	पुनरावृत्ति
...मन के साधन ...र्ग ...सीह	१. २ ३ ४ ५. गत मास के समान ६. वाचन — १. माडव गढ २ रेल का इजन ३. वायुयान ४ चतुराई का पुरस्कार	समयानुकूल कला का ज्ञान	पुनरावृत्ति
...निर्यात ...ममोहन राय	१ २ ३. ४ ५ गत मास के समान ६ रचना— मेले की यात्रा ७ वाचन— १. पर्वतराज हिमालय	पुनरावृत्ति	पुनरावृत्ति

शिल्प, सामाजिक जीवन या प्रकृति-अध्ययन सम्बन्धी हो सकते है। इनसे सम्वन्धित क्रियाओ के साथ-साथ इनके आधार से दिये जाने वाले ज्ञान के स्रोत, जैसे मातृभाषा, गणित, सामान्य-विज्ञान, सामाजिक अध्ययन आदि, का उल्लेख भी किया जाना चाहिए। जहाँ इन वातो का उल्लेख किया जाय वही इनमे लगने वाले समय का उल्लेख या विवरण भी दिया जाय।

३. क्रियाशीलन का स्पष्टीकरण। इसके अन्तर्गत की जाने वाली क्रिया का विकास कैसे होगा तथा उसके अन्तर्गत कौन-कौनसे कार्य कराए जायँगे आदि वातो का सक्षेप मे विवरण आता है।

४. समवायित ज्ञान। क्रिया के आधार तथा माध्यम से ज्ञान के जिस-जिस क्षेत्र या विषय की जानकारी कराई जाने वाली है उसका सक्षिप्त विवरण इसके अन्तर्गत आएगा।

५ अध्ययन की विधि। किये जाने वाले कार्यो तथा समवायित ज्ञान खण्ड की जानकारी कराने के लिए अपनाई जाने वाली विधि का विवरण इसमे शामिल होगा।

६ दिन-भर के कार्य का मूल्याकन। इसमे की गई क्रियाओ तथा कार्यो की गति, गुण तथा दोप आदि पर विचार किया जायगा। भविष्य के लिए सुझाव भी इसमे शामिल रहेगे।

इस प्रकार उपरोक्त छ खण्डो मे दैनिक कार्य का लेखा शिक्षक को ामित रूप से भरना उपयोगी सिद्ध होगा।

समय-विभाग-चक्र

किसी भी शाला का समय-विभाग-चक्र वहाँ के शिक्षको, वालको तथा य कार्यकर्ताओ के लिए एक घडी का काम देता है, क्योंकि इससे यह पता चलता है कि कौनसी कक्षा मे कौनसा कार्य किस स्थान या कक्ष मे किया जायगा। वैसे तो एक ही समय-विभाग-चक्र मे शिक्षक, विपय, ाय, कक्ष आदि सभी वातो का उल्लेख किया जा सकता है, पर शिक्षक ा कक्षावार समय-विभाग-चक्र वनाना उपयोगी होता है।

शाला का कार्य अच्छी तरह चलाने के लिए समय-विभाग-चक्र का होना आवश्यक है। यदि समय-विभाग-चक्र उचित है तो बालको को थकान नही होगी तथा वे रुचि के साथ ज्ञान ग्रहण करेंगे। गाँवो की शालाओं मे प्रायः एक-दो या तीन शिक्षक ही होते हैं। पर जहाँ पूरे-पूरे शिक्षक भी होते हैं वहाँ भी समय-विभाग-चक्र बनाने मे कुछ-न-कुछ अड़चनें अवश्य आ जाती हैं। गाँवों की एक या दो शिक्षको की शाला मे जहाँ चार या पाँच कक्षाएं होती है समय-विभाग-चक्र बनाना वास्तव मे बड़ा कठिन होता है। गाँव की शालाओ मे प्रत्येक कक्षा मे बहुधा इतने कम बालक रहते हैं कि प्रत्येक कक्षा के लिए पृथक् शिक्षक देना उचित नही रहता। अत एक ही शिक्षक को दो या कभी-कभी तीन कक्षाएँ एक साथ देखनी पड़ती हैं। वास्तव मे शिक्षक की कठिनाइयाँ उसके एक से अधिक कक्षाएँ साथ-साथ पढाने से बढ़ती हैं। एक से अधिक कक्षाओ को एक साथ पढाने के लिए समय-विभाग-चक्र बनाते हुए निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिएँ—

१. केन्द्र-शालाओ का निर्माण करके आस-पास की किसी अच्छी शाला को केन्द्र-शाला बनाकर छोटी कक्षाएं विभिन्न गाँवो मे ही लगाई जायँ तथा उच्च कक्षाएं केन्द्र-शालाओ मे ही लगाई जायँ। इससे छोटे बालको की एक या दो कक्षाएँ गाँव मे ही लगेंगी तथा उच्च कक्षाओ के बालक केन्द्र-शाला मे जाकर एक साथ अध्ययन कर सकेंगे। उच्च-कक्षाओ के बालक कुछ बडे भी होते हैं इससे उन्हे आने-जाने मे भी कोई विशेप कठिनाई न होगी।

२ दो पाली की शाला लगाकर भी कम शिक्षक दो बार मे भिन्न-भिन्न कक्षाएँ पढा सकते हैं। शाला की कुछ कक्षाएँ सुबह तीन घण्टे लगाई जायँ तथा दोपहर के बाद अन्य कक्षाएँ तीन घण्टे के लिए लगाई जायँ। इससे कक्षा पर शिक्षक अधिक ध्यान दे सकेगा।

३ वालको को व्यक्तिगत स्वतन्त्र कार्य भी वीच-वीच मे दिया जा सकता है। जव शिक्षक किसी एक कक्षा की ओर व्यक्तिगत ध्यान दे रहा हो उस समय अन्य कक्षाओ के वालको को व्यक्तिगत स्वतन्त्र कार्य दिया जा सकता है। वाद मे स्वतन्त्र कार्य करने वाली अन्य कक्षा की ओर शिक्षक व्यक्तिगत ध्यान देकर पहले वाली कक्षा को व्यक्तिगत स्वतन्त्र कार्य दे सकता है।

४ पहली कक्षा को अलग से पढाया जाय, क्योकि इस कक्षा के वालक नये रहते हैं तथा शाला-कार्य से अभ्यस्त नही रहते, पर अन्य कक्षाओं को मिलाकर एक साथ पढाया जा सकता है।

५ कुछ विपय जैसे सामान्य विज्ञान, शारीरिक शिक्षा, सगीत, प्रतिलिपि, हिज्जे याद कराना आदि विभिन्न कक्षाओ को एक साथ पढाए जा सकते हैं।

६. मोनोटोरियल विधि का उपयोग करके कक्षा के कुशाग्र वुद्धि वाले वडे वालक के जिम्मे शिक्षण के कुछ कार्य सौंपे जा सकते है।

आधुनिक मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि वालको मे व्यक्तिगत भेद रहते हैं तथा प्रत्येक वालक अपने अन्य साथी से भिन्न होता है।

वर्तमान प्रगतिशील शालाओं का दृष्टिकोण

प्रत्येक वालक की काम करने की स्वयं अपनी विशिष्ट विधि होती है तथा वह अपनी ही गति से आगे वढता है और विकसित होता है। फलस्वरूप उसे उसकी रुचि के अनुसार ही कार्य करने देना चाहिए, वह जव चाहे पढे, जव चाहे कार्य करे, जव चाहे खेले, आदि। फलस्वरूप आज तक चले आए समय-विभाग-चक्र के अनुसार घण्टो के अनुसार उसे किसी विशेप विपय के अध्ययन के लिए वाँधकर नही रखा जाना चाहिए और न किसी विपय मे अधिक रुचि होने पर घण्टा वजते ही उसे उस विपय के अध्ययन करने से रोकना चाहिए।

इस विचार-धारा के कारण डाल्टन विधि मे वालक को पढाई की

मासिक, पाक्षिक तथा साप्ताहिक इकाई वतला दी जाती है तथा उसे अपनी रुचि के अनुसार विषयो को पढने, सोने, खेलने आदि की स्वतन्त्रता रहती है। वन्धन केवल इतना ही रहता है कि माह या पक्ष के लिए निर्धारित इकाई माह या पक्ष मे अवश्य पूर्ण होनी चाहिए।

अमेरिका के जॉन ड्युई ने शिक्षा के स्वतंत्रता-आन्दोलन मे एक और कड़ी जोड़ी है। उनका कथन है कि वालक का विकास एक लगातार चलने वाली स्वतंत्र क्रिया है, अत. वालक को लगातार स्वतंत्र क्रिया करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। ये स्वतत्र क्रियाएँ वालक की रुचि तथा आन्तरिक स्वाभाविक आवश्यकताओ से उद्भूत होनी चाहिएँ। ड्युई के इन विचारो के कारण अनेक आधुनिक प्रगतिशील शालाओं मे समय-विभाग-चक्र मे वालक की रुचियो के अनुकूल अनेक प्रकार की क्रियाओ, जैसे विचार-विमर्श, वादविवाद, उद्योग के कार्य, विभिन्न प्रकार की योजनाएँ, रसोई-घर का काम, दूकान का काम, उद्योग-शाला या प्रयोग-शाला के काम आदि का समावेश किया जाने लगा है। इन क्रियाओ के लिए समय-विभाग-चक्र मे निश्चित किये गए समय का भी कड़ाई से पालन नही किया जाता, या वालको को समय-परिवर्तन की कुछ छूट अवश्य रहती है। इन प्रगतिशील आधुनिक शालाओ के समय-विभाग-चक्र मे कुछ स्वतन्त्र या छूट के घण्टो का समावेश भी किया जाता है। इन स्वतन्त्र या छूट के घण्टो मे वालक अपनी रुचि के अनुसार स्वतन्त्र क्रियाओ मे सलग्न रहते हैं। इस प्रकार इन शालाओ का दैनिक कार्यक्रम पाठो या विषयो के अनुसार न वनाकर क्रियाओ के आधार पर वनाया जाता है।

आधुनिक प्रगतिशील शालाओ के समान हमारी वुनियादी शालाओं मे भी प्राचीन या अन्य सामान्य शालाओ के अनुसार विषयवार घण्टो के अनुसार पढ़ाई का कार्य नहीं चल सकता। अत. समय-विभाग-चक्र वनाने मे वुनियादी शालाओं मे अव पुरानी परम्परा का विधिवत् पालन सम्भव नही है। पुरानी परम्परा-प्रणाली मे घण्टी वजते

वुनियादी शाला का समय-विभाग-चक्र

ही कक्षा का विषय-परिवर्तन मशीन की तरह किया जाता है। बुनियादी शालाओ मे चूंकि सभी ज्ञान मूलोद्योग तथा जीवन की ठोस क्रियाओ और परिस्थितियो के आधार से दिया जाता है, अत इनमे आधुनिक प्रगतिशील शालाओ के समान क्रियाओ के आधार पर ही समय-विभाग-चक्र बनाया जाना चाहिए। पर यह सोचना भी बडी भूल होगी कि बिना समय-विभाग-चक्र के बुनियादी शालाओ मे इसलिए कार्य चल सकता है कि यहाँ विषयो का घण्टोवार शिक्षण तो कराना ही नही है तथा शिक्षक जब चाहे जो विषय पढा सकता है। बिना समय-विभाग-चक्र के बुनियादी शाला का कार्य सुचारु रूप से चल ही नही सकता। अत बुनियादी शालाओ के लिए भी समय-विभाग-चक्र का होना आवश्यक है। हाँ, यह दूसरी बात है कि बुनियादी शालाओ मे समय-विभाग-चक्र मूलोद्योग तथा जीवन की ठोस क्रियाओ तथा परिस्थितियो के आधार पर बनाया जायगा।

बुनियादी शालाओ मे समय तथा घण्टो का बन्धन नही रह सकता, क्योकि आवश्यकतानुसार शिक्षक कभी-कभी लगातार मूलोद्योग की क्रियाओ का अभ्यास या कभी-कभी लगातार समवायित विषयो का ज्ञान देता रह सकता है। अत बुनियादी शालाओ मे शिक्षक समय-विभाजन में स्वतन्त्र तथा परिस्थितियो पर निर्भर रहता है। फिर भी बुनियादी शालाओ मे पूर्व योजना के अनुसार कार्य चलता है, अत कार्य व्यवस्था से ही चलता है।

बुनियादी शालाओ मे एक कुटुम्ब के समान प्रात काल से शाम को सोने के पूर्व तक कार्य चलता रहता है। इतने समय मे सोने, उठने, बैठने, नहाने, भोजन पकाने तथा खाने, सफाई करने आदि के सभी जीवन-सम्बन्धी कार्य शैक्षणिक प्रक्रिया मे शामिल होते हैं। अतः बुनियादी शाला का आदर्श समय-विभाग-चक्र निम्न प्रकार का रह सकता है—

६ बजे सुबह	सोकर उठना।
६ से ७ बजे सुबह तक	शौचादि की क्रियाओ से निवृत्ति
७ से ७ १५ तक	प्रार्थना
७ १५ से ८ तक	सफाई तथा अन्य सामाजिक कार्य

८ से १० तक	स्नान, भोजन, वर्तन सफाई आदि
१० से ११ ३० तक	मूलोद्योग का अभ्यास
११ ३० से ११.४५ तक	अवकाश
११.४५ से १ तक	समवायित ज्ञान
१ ० से १.४० तक	दीर्घ अवकाश
१.४० से ३.० तक	शिल्प कार्य तथा समवायित कार्य
३ ० से ३.१० तक	अल्पावकाश
३ १० से ४ ३० तक	शैक्षणिक खेल
४.३० से ६.३० तक	हाथ-मुँह धोना तथा अखबार आदि पढकर शाम की प्रार्थना की तैयारी, भोजन आदि की व्यवस्था।
६.३० से ६.४५ तक	प्रार्थना
६ ४५ से ७.३० तक	भोजन तथा वर्तन सफाई
७ ३० से ९.३० तक	स्वाध्याय
९.३० शाम से ६ वजे सुवह तक	शयन

उपरोक्त समय-विभाग-चक्र में मूलोद्योग के लिए सुवह दस से साढे ग्यारह वजे तक का समय रखा गया है। सामान्यत. लगातार देर तक मूलोद्योग की क्रियाएँ न की जानी चाहिएँ। इससे वालक थक जाते हैं। प्रयोग करके देखा गया है कि छोटे वालक एक वार मे लगातार २५ या ३० मिनट तक ही मूलोद्योग की क्रिया अच्छी तरह कर पाते हैं। यदि उन्हें इससे और अधिक देर तक मूलोद्योग की क्रिया करवाई भी जाय तो वे उसमें गलती वहुत करते हैं तथा उनकी गति भी कम हो जाती है। अत उपयोगी तो यह होगा कि दस वजे से साढे ग्यारह वजे तक के समय मे केवल क्रिया-ही-क्रिया न कराई जाय; सामान की व्यवस्था करना, क्रिया करना, कक्षा सफाई करना, आवश्यक तथा तैयार किया गया सामान व्यवस्था से रखना, की गई क्रिया का आवश्यकतानुसार शास्त्रीय ज्ञान देना आदि कार्य भी इसी समय के अन्तर्गत कराए जायँ। मूलोद्योग के इस समय को दो या तीन

घण्टों मे भी बाँट सकते है। ये घण्टे ३० या ४० मिनट मे अधिक के न होने चाहिएं तथा प्रत्येक घण्टे मे शिल्प या मूलोद्योग की विभिन्न क्रियाएँ ही प्रारम्भ की जानी चाहिएँ। साथ-ही-साथ प्रत्येक कार्य से उचित सह-सम्बन्ध भी स्थापित किया जाना चाहिए।

समय-विभाग-चक्र बनाते समय अविपाठक को निम्न बातो का ध्यान रखना चाहिए—

१ प्रत्येक कक्षा को आवश्यकतानुसार बराबर समय मिले।

२ प्रत्येक कक्षा पूरे समय कार्य करती रहे।

३ कठिन विषयो को अधिक और सरल विषयो को कम आवश्यकतानुसार समय मिले। गणित, भाषा आदि कठिन विषयो के अभ्यास आदि के लिए अधिक समय मिलना चाहिए।

४ कठिन विषय लगातार न आएँ, क्योकि यदि गणित, भाषा आदि एक के बाद एक आ गए तो बालको को थकान जल्दी आएगी तथा उनका ध्यान विषय की ओर अधिक समय तक न रहेगा।

५ बुनियादी शालाओ मे क्रियाओ तथा जीवन की परिस्थितियो और कार्यों के आधार से ही समय-विभाग-चक्र बनाया जाय। पर यह आवश्यक नही है कि शाला-कार्य मूलोद्योग या किसी अन्य क्रिया से ही प्रारम्भ किया जाय।

६. समवाय करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गणित भाषा आदि कठिन विषयो का ज्ञान दिन के ऐसे समय मे दिया जाय जबकि बालक की मानसिक दशा सबसे अच्छी हो, अर्थात् इन विषयो का समवायित ज्ञान दोपहर के पहले ही दिया जाना ठीक रहता है।

विद्वानो ने खोज करके पता लगाया है कि बालक दीर्घ अवकाश के पहले, दूसरे तथा तीसरे घण्टो मे सबसे अधिक कार्य कर सकते हैं। दीर्घ अवकाश के बाद दूसरा तथा तीसरा घण्टा भी ठीक रहता है, पर शाला प्रारम्भ होने के बाद के

दूसरे तथा तीसरे घण्टे सबसे अच्छे होते हैं।

इसी प्रकार सप्ताह के दिनों मे मंगल तथा बुध कार्य की दृष्टि से सबसे अच्छे तथा सोमवार तथा शनिवार सबसे निकृष्ट होते है।

७. समय-विभाग-चक्र ऐसा होना चाहिए कि शाला के सभी शिक्षकों पर कार्य-भार प्राय: एक-सा पडे।

८. समय-विभाग-चक्र बनाते समय शाला के शिक्षको की कार्य-क्षमता का ध्यान भी रखा जाना आवश्यक है।

९. समय-विभाग-चक्र बनाते समय शाला का स्थान, उपलब्ध शिक्षण-सामग्री आदि का ध्यान भी रखना चाहिए। उद्योग की प्रयोगशाला या विज्ञान के लिए प्रायोगिक कार्य के स्थान तथा सामग्री के अनुकूल ही एक या अधिक कक्षाओ को एक ही घण्टे मे कार्य देना चाहिए।

१० सामूहिक कार्य के लिए मिश्रित कक्षाएँ लगाते समय पाठ्य-क्रम की आवश्यकताओ की पूर्ति का ध्यान भी रखना ज़रूरी है। इसके लिए समय-विभाग-चक्र मे केवल शिक्षको के नाम, विषय आदि लिखने से ही काम न चलेगा, वरन् समय-विभाग-चक्र मे यह भी होना चाहिए कि कब कक्षा दूसरी कक्षाओ से मिलाई जायगी या कब वह स्वत: कार्य करेगी।

११. हमारा देश गरम देश है। ग्रीष्म ऋतु मे यहाँ अधिक गरमी पड़ती है। बालक इस ऋतु मे कठिन परिश्रम नही कर सकते। वर्षा-ऋतु मे भी गरमी तथा वर्षा के कारण पढ़ाई ठीक नही चल पाती। केवल ठण्ड के चार माह ही हमारे अति उपयोगी रह जाते हैं। अत इन ऋतुओं का ध्यान रखते हुए समय-विभाग-चक्र बनाना चाहिए।

१२. पढाई तथा मूलोद्योग की क्रियाओ के घण्टों की लम्बाई कक्षा के बालकों की आयु तथा मानसिक और शारीरिक विकास का ध्यान रखकर निश्चित करनी चाहिए।

मनोविज्ञान-शास्त्रियो ने खोज करके पता लगाया है कि ६ से ९ वर्ष के वालक १० से १५ मिनट, ९ से १२ वर्ष के वालक २० से २५ मिनट, १२ से १४ वर्ष के वालक ३० मिनट, तथा १४ से १८ या २० वर्ष के वालक ४० मिनट तक किसी एक विषय की ओर एकाग्र-चित्त रह सकते है। अत. इस दृष्टि से विचार करके भी समय-विभाग-चक्र वनाया जाना चाहिए।

अध्याय ६

सामूहिक कार्य का प्रबन्ध

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज मे रहकर ही सुख और तृप्ति पा सकता है। उसकी अनेक मूल प्रवृत्तियो की तृप्ति अकेले ही नही हो सकती। सामूहिकता के लिए समुदाय या समाज आवश्यक है। मनुष्य की सहानुभूति, निर्देश, खेल एव अनुकरण की सामान्य प्रवृत्तियाँ विना समूह या समाज के सम्भव नही हैं। अकेला व्यक्ति किससे सहानुभूति दिखलाएगा, किसका निर्देश ग्रहण करेगा, किसका अनुकरण करेगा तथा किसके साथ खेलेगा! इससे हमे पता चलता है कि मनुष्य समाज मे रहकर ही स्वाभाविक रूप से अपना जीवन-यापन कर सकता है। इसीलिए बुनियादी शालाओ मे अनेक प्रकार के सामूहिक कार्य कराए जाते है तथा इन्हें अधिक महत्त्व दिया जाता है। बुनियादी शालाओ में सामाजिक कार्य करने, सांस्कृतिक कार्यक्रमो का आयोजन करने, उद्योग की क्रियाएँ करने आदि सभी कार्यों मे आपसी सहयोग की आवश्यकता होती है। अनेक प्रकार के उत्सव, नाटक, महापुरुषो के पुण्य और जन्म-दिवस मनाने आदि के अवसरो पर बुनियादी शाला के वालक अपने आपसी पारस्परिक सम्वन्धो को समझकर सहयोग से कार्य करते हैं। बुनियादी शालाओं मे भोजन, सफाई, खेल आदि की व्यवस्था भी वालक ही आपसी सहयोग से करते हैं। खेल, उद्योग, अन्त्याक्षरी और विभिन्न समितियों के कार्यक्रम वालकों मे प्रतियोगिता तथा स्पर्धा की भावनाएँ जागृत करते है तथा उनमे मनोवैज्ञानिक ढग से सामाजिक भावना का विकास करते हैं।

वास्तव मे यदि ये सभी सामूहिक कार्य पूर्व-योजना से व्यवस्थित ढग

से चलाए जायँ तो ये सामूहिक कार्य वालक-वालिकाओ के नैतिक तथा नागरिक जीवन के प्रशिक्षण का अच्छा आधार वन सकते हैं। शालेय समाज मे कार्य करते हुए तथा जीवन व्यतीत करते हुए वालक-वालिकाओ को इस वात की जानकारी हो जाती है कि अधिकार के साथ कर्तव्य जुडा हुआ है, स्वतत्रता के साथ कुछ वन्धन भी आवश्यक हैं, शालेय समाज का सदस्य होने के कारण उनकी सम्पूर्ण शालेय समाज को उन्नत करने की जिम्मेदारी है, नेतृत्व करने के लिए कुछ त्याग आवश्यक है, तथा किसी नेता के पीछे-पीछे चलने के लिए नेतृत्व के प्रति आदर होना आवश्यक है। वुनियादी शालाओ मे विभिन्न प्रकार के सामूहिक कार्यों मे भाग लेकर वालक-वालिकाएँ उत्तरदायित्व वहन करना सीखते हैं तथा उनमे अनेक सद्गुणो का विकास होता है।

वुनियादी शालाओ मे सामूहिक कार्यों की व्यवस्था के लिए कक्षा-वर्गीकरण, शाला-सभा, प्रार्थना-सभा, पर्यटन, रचनात्मक तथा सास्कृतिक कार्यक्रमो का आयोजन किया जाता है। इन पर हम अलग-अलग विस्तार से विचार करेंगे।

कोई भी दो वालक एक समान नही होते। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो व्यक्तिगत शिक्षण ही सवसे अच्छा रहेगा। इसी कारण शिक्षण को अधिक-से-अधिक व्यक्तिगत वनाने के लिए डाल्टन योजना आदि कुछ विधियो के अनुसार व्यक्तिगत शिक्षण की व्यवस्था भी अनेक आधुनिक प्रगतिशील शालाओ मे की गई है। इन व्यक्तिगत शिक्षण-विधियो मे एक सामान्य वर्गीकरण आयु के आधार पर मान लिया जाता है तथा प्राय एक-सी आयु के वालको के लिए व्यक्तिगत शिक्षण की व्यवस्था की जाती है।

कक्षा-वर्गीकरण

परन्तु व्यक्तिगत शिक्षण सामान्यत मान्य नही किया जा सकता। इसके मान्य न किये जाने के निम्न कारण हैं—

१ व्यक्तिगत शिक्षण बहुत महँगा पडता है।

२. व्यक्तिगत शिक्षण के लिए बहुत ही योग्य तथा विशेष शिक्षण-प्राप्त शिक्षकों की आवश्यकता पड़ती है।
३. सभी के व्यक्तिगत शिक्षण की व्यवस्था के लिए बहुत अधिक सामान की आवश्यकता पड़ेगी।
४. व्यक्तिगत शिक्षण से समूह में काम करने से विकसित होने वाले गुणों का विकास नहीं हो पाता।

उपरोक्त कारणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समूह में शिक्षण करना उपयोगी, सस्ता तथा लाभप्रद रहता है। इसी दृष्टि से शालाओं में कक्षा-वर्गीकरण किया जाता है। वैसे तो कक्षा-वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जाता है, पर इनके प्रमुखत दो परस्पर-विरोधी रूप ही अधिक प्रचलित हैं—

१. आयु के आधार पर, तथा
२. योग्यता के आधार पर।

कक्षा-वर्गीकरण के इन दोनों प्रकारों के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अनेक गुण-दोषों का विवेचन किया है। आयु के आधार पर कक्षा वर्गीकरण को अच्छा मानने वाले प्रगतिशील शिक्षा-शास्त्री कहते हैं कि इससे सामाजिक गुणों के विकास के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण मिलता है तथा बालक के व्यक्तित्व का विकास भी समुचित होता है। आयु के आधार पर कक्षा-वर्गीकरण को मान्यता देने वालों का कथन है कि बालकों की व्यक्तिगत योग्यता में अन्तर के अनुसार उन्हें कक्षा में विभिन्न कार्य सौंपे जा सकते हैं। इस प्रकार कक्षा में योग्यता के आधार पर और छोटे समूह करके बालकों की रुचियों का समुचित विकास किया जा सकता है। ये शिक्षा-शास्त्री योग्यता के आधार पर कक्षा-वर्गीकरण इसलिए नहीं चाहते क्योंकि वह लोकतान्त्रिक नहीं है तथा वह कम योग्यता के बालकों में हीनता तथा उच्च योग्यता के बालकों में दूसरों से उच्च रहने की भावना का विकास करता है। विद्वानों ने चौथी, पाँचवीं तथा छठी कक्षाओं के बालकों का पर्यवेक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला है कि योग्यता के आधार

पर कक्षा-वर्गीकरण करने से वालको मे एक बुद्धिवादी जाति-प्रणाली का निर्माण होता है तथा इसका प्रभाव वालको के शाला के बाह्य जीवन पर भी पडता है।

इसके विपरीत योग्यता के आधार पर कक्षा-वर्गीकरण को मान्यता देने वाले शिक्षा-शास्त्री कहते है कि (१) वालको मे जीवन मे अपने हर कार्य तथा समस्या को हल करने की क्षमता का विकास होना चाहिए। आयु के आधार पर कक्षा-वर्गीकरण मे कई एक-सी आयु के वालक जो कमज़ोर होते है अपना बहुत-सा कठिन काम अच्छी योग्यता वालो पर छोड देते हैं तथा समूह मे काम करते समय इस वात का पता सरलता से नही लगता। फलस्वरूप वे कठिन कार्यो से वचते रहते हैं तथा उनका समुचित विकास नही हो पाता। (२) साथ-ही-साथ रुचियाँ भी कक्षा-वर्गीकरण का अच्छा आधार नही है, क्योकि वालको की रुचियो का विकास अच्छी तरह नही हो पाता तथा शिक्षा का कार्य तो उनकी रुचियो का विकास करना ही है। (३) रुचि तथा योग्यता का सम्वन्ध अवश्य है, पर इनका सम्वन्ध वहुत घनिष्ठ नही है। (४) अधिक-से-अधिक सामाजिक गुणो का विकास करने के लिए एक-सी योग्यता के बालको को एक समूह या कक्षा में रखना उपयोगी रहता है, क्योकि ऐसा समूह जिसमे वालक विभिन्न योग्यताएँ रखते हैं अच्छा सामाजिक समूह नही वन पाता। (५) उच्चता तथा हीनता की भावना ऐसे समूह के वालको मे अधिक आती है जो विभिन्न योग्यता के वालको से वना हो।

वेलिन ने १९४१ तथा १९४२ मे प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला था कि ६७ प्रतिशत शालाएँ योग्यता के आधार पर कक्षा-वर्गीकरण करना ठीक समझती है तथा योग्यता के आधार पर कक्षा-वर्गीकरण वहुधा कौशल प्राप्त कराने वाले विषयो, जैसे मूलोद्योग, शारीरिक शिक्षण, शिल्प-कार्य आदि के लिए उपयुक्त रहता है, पर अन्य विषयो के लिए उतना उपयुक्त नही होता। पर योग्यता के आधार पर कक्षा-वर्गीकरण के सम्वन्ध मे किये गए प्रयोगो के परिणाम मिश्रित ही हैं। कुछ ने इसे उप-

युक्त तथा कुछ ने इसे अनुपयुक्त वतलाया है।

कक्षा-वर्गीकरण से निम्न लाभ हैं—

१. एक ही कक्षा में समान योग्यता या क्षमता के वालक रहने से शिक्षक का कार्य सरल हो जाता है; शिक्षक कक्षा के वालकों की प्रगति की ओर आवश्यक ध्यान दे सकता है।

२. वर्गीकरण के सिद्धान्त के कारण कई वालक एक साथ शिक्षा पाते हैं, खेलते, कूदते तथा अन्य शैक्षणिक कार्यो मे भाग लेते हैं। इससे उनमें सामाजिकता तथा सहयोग की भावना का विकास होता है।

३. कक्षा-वर्गीकरण का सिद्धान्त शिक्षा को महँगी नही होने देता। अधिकतर अभिभावक अपने प्रत्येक वालक या वालिका के लिए अलग से शिक्षक नियुक्त नही कर सकते। यदि कर भी सकें तो आपसी सहयोग, सहकारिता आदि सामाजिक गुणो के विकास की दृष्टि से कक्षा-वर्गीकरण लाभप्रद होता है।

४. कक्षा-वर्गीकरण से कम सहायक सामग्री की व्यवस्था करके अधिक वालको का शिक्षण किया जा सकता है।

५. समय की वचत होती है, क्योकि वालक एक ही साथ शिक्षित किये जा सकते है।

कक्षा-वर्गीकरण के दोष निम्न है—

१. प्रत्येक वालक की रुचि, स्वभाव तथा व्यक्तित्व भिन्न होता है। कक्षा मे समूह मे रहने से उसकी व्यक्तिगत रुचियो तथा व्यक्तित्व के विकास की ओर एक शिक्षक समुचित ध्यान नही दे सकता। कुछ वालक भाषा मे, कुछ गणित या विज्ञान तथा कुछ अन्य विषयो मे रुचि रखते हैं। ऐसे सभी वालको के एक ही कक्षा मे एक साथ रहने के कारण उनका उचित विकास नही हो सकता।

२. प्रत्येक वालक की सभी विभिन्नताओ का ठीक-ठीक विश्लेषण सम्भव नही है। अतः कक्षा-वर्गीकरण में कितनी भी सावधानी

रखी जाय एक-सी योग्यता तथा रुचियो वाले वालकों का समूह वनाना सम्भव नही है।

३ विभिन्न वालको के मानसिक, शारीरिक या सवेगात्मक विकास का क्रम उनकी परिस्थितियों, वातावरण, भोजन आदि के कारण भिन्न-भिन्न होता है। अत उनके व्यक्तिगत विकास मे कक्षा-वर्गीकरण रुकावटें डालता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कक्षा-वर्गीकरण से कुछ लाभ तथा कुछ हानियाँ हैं। फिर भी यदि सावधानी रखी जाय तथा समान योग्यता और शारीरिक व मानसिक विकास वाले वालक एक ही कक्षा मे सावधानी से विभाजित किये जायें तो कक्षा-वर्गीकरण से काम हो सकता है। यह तो सही है कि वालको की सभी विभिन्नताओ का विश्लेपण सम्भव नहीं है, पर जिन विभिन्नताओ का विश्लेपण सम्भव है उनके आवार पर वर्ग वनाना लाभप्रद होगा। कक्षा-वर्गीकरण के अनेक दोपो को व्यक्तिगत रुचियो के अवसर प्रदान करके दूर किया जा सकता है। विज्ञान मे रुचि रखने वाले वालक विज्ञान-भवन, सामाजिक कार्य मे रुचि रखने वाले वालक स्काउटिंग या सामाजिक अध्ययन समिति, भापा मे रुचि रखने वाले वालक वाद-विवाद प्रतियोगिताओ, कवि-सम्मेलनो, शाला गजट, पुस्तकालय, नाटक आदि समितियो से विशेप लाभ प्राप्त कर अपना विकास कर सकते है।

इसके साथ-साथ कक्षा-वर्गीकरण की कुछ अन्य विधियाँ नीचे दी जा रही है। पाश्चात्य देशो की अनेक शालाओ मे इन्हे अपनाया गया है, अत हम भी इनमे से कुछ का उपयोग कर सकते है।

कक्षा-वर्गीकरण की विधि शाला के विकास पर निर्भर करती है। अनेक छोटी शालाओ मे कक्षा-वर्गीकरण के लिए आवश्यक वालक ही नही रहते। ऐसी शालाओ मे एक ही कक्षा मे कुछ छोटे-छोटे समूह वनाकर उनकी योग्यता के अनुसार कार्य वाँट देते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था से वालकों को योग्यता के अनुसार कार्य मिल जाता है।

वडी शालाओ मे जहाँ किसी कक्षा के दो वर्ग होते हैं वहाँ एक वर्ग

में अच्छी योग्यता वाले बालक तथा दूसरा वर्ग छोटा बनाकर उसमे कमज़ोर बालक रखने चाहिएँ क्योंकि कमज़ोर बालको के लिए व्यक्तिगत ध्यान देना आवश्यक रहता है जो कम सख्या वाले वर्ग मे ही सम्भव है। यदि शाला में पास-पास की किन्ही दो कक्षाओं के पाँच वर्ग हो तो दोनो कक्षाओ के सामान्य औसत तथा कमजोर बालक अलग-अलग वर्ग में रखने चाहिएँ तथा दोनो कक्षाओ के उच्च योग्यता के बालक एक ही वर्ग मे रखे जा सकते हैं। इनसे एक ही शिक्षक इन दोनो वर्गो के दो कमज़ोर वर्गो को देखने की निस्बत अच्छी तरह देख तथा पढा सकता है।

बुद्धि के अनुसार कक्षा-वर्गीकरण करते समय बालक की सामान्य तथा विशेप योग्यता दोनो का ध्यान रखना चाहिए।

बालको को आयु के अनुनार वर्गीकृत करने मे भी अडचनें आती हैं, क्योंकि बालको के मानसिक, सामाजिक तथा शारीरिक विकास में अन्तर रहता है। बालक तथा बालिकाओ मे तो यह अन्तर और भी अधिक हो जाता है।

आजकल शालाओ मे 'शाला-सभा' व 'बाल-सभा' का बडा चलन है। बालको को लोकतन्त्रीय प्रणाली की शिक्षा देने मे ये सभाएँ बडी उपयोगी सिद्ध होती हैं। ये सभाएं बालको मे उत्तर-दायित्व वहन करने की कामना भी उत्पन्न करती हैं।

शाला या बाल-सभा

'बाल-सभा' या 'शाला-सभा' मे बालको द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि रहते हैं। ये प्रतिनिधि शाला के कार्यक्रमो के आयोजनो की रूपरेखा बनाने, असामाजिक कार्य करने वाले बालको की गतिविधियो पर विचार करके उन्हें रोकने के उपाय करने तथा शाला की प्रगति के लिए कार्यरत रहते हैं।

शाला-सभा की बैठक प्रति सप्ताह होनी चाहिए। इस सभा में प्रतिनिधियों द्वारा कक्षा तथा शाला की प्रगति पर विचार-विमर्श होता है। इस सभा की बैठकें कभी-कभी समीपवर्ती गाँव मे भी कराई जानी चाहिएँ। गाँव मे शाला-सभा की बैठक के समय गाँव वालो को दर्शक तथा सह-

योगियो के रूप मे भाग लेना तथा बालको का उत्साह-वर्धन करना चाहिए। बाल-सभा के चुने हुए प्रतिनिधियो की बैठकों के साथ-ही-साथ कभी-कभी सम्पूर्ण कक्षा तथा शाला के बालकों की बैठकें भी होनी चाहिएँ।

इन बैठको का तथा सभा का सम्पूर्ण कार्य बालकों द्वारा ही चलाया जाना चाहिए। शिक्षक को दर्शक तथा अवसरानुकूल निर्देशन और पथ-प्रदर्शन करने वाले के रूप मे ही रहना चाहिए।

प्रत्येक बुनियादी शाला का कार्य सामूहिक प्रार्थना से ही प्रारम्भ किया जाता है। इस प्रार्थना पर कई शालाओ मे समुचित ध्यान नहीं दिया जाता।

प्रार्थना-सभा

यदि इस पर ठीक-ठीक ध्यान दिया जाय तो बालक एक साथ अच्छी तरह प्रार्थना भी कर सकते हैं तथा प्रार्थना के बाद पाँच मिनट शिक्षक बालको को स्वास्थ्य, आचरण आदि बातो पर कुछ समझा भी सकता है। कभी-कभी शिक्षक बालको की कुछ कठिनाइयो को यही हल कर सकता है।

प्रार्थना-सभा-स्थल अच्छा, साफ-सुथरा तथा लम्बा-चौडा होना चाहिए। प्रार्थना शान्तिपूर्वक धैर्य के साथ की जानी चाहिए। प्रार्थना नियमित रूप से निश्चित समय पर ही की जानी चाहिए।

कहावत है कि जो व्यक्ति जगह-जगह का पानी पीता है, अर्थात् खूब घूमा-फिरा होता है, वह कभी ठगा नही जाता। यह कहावत इसलिए बनी है कि पर्यटन से अनुभवो की वृद्धि होती है।

पर्यटन

पर्यटन मे अनेक प्रकार के लोगो से भेंट होती है, उनके विभिन्न विचारो से परिचय मिलता है, अनेक सकटो तथा कठिनाइयों का सामना करना पडता है, अनेक दृश्यो तथा स्थानो की जानकारी होती है। इन सबसे व्यक्ति के विचारो, धारणाओ, काम करने की आदतो, रहन-सहन, सभी मे अनुकूल परिवर्तन होता है। इसीलिए बेकन नामक एक विद्वान् ने कहा है कि "पढने-लिखने से मनुष्य आधा तथा पर्यटन से पूर्ण बनता है।"

पर्यटन का महत्त्व शैक्षणिक दृष्टि से बहुत अधिक है, क्योकि शिक्षा

भी वालक के विचारो, आदतों, भावनाओ आदि का विकास करके उनमे अनुकूल परिवर्तन लाती है। वालको को तो घूमने-फिरने तथा पर्यटन करने मे और भी अधिक आनन्द आता है। अत. उनके समुचित विकास के लिए उनकी इस क्रियाशीलता से अधिक-से-अधिक लाभ उठाना चाहिए।

पर्यटन से वालको को निम्न लाभ होते हैं—

१ वालक के दृष्टिकोण मे विस्तार होता है।

२ वालक की रुचियो का विकास होता है।

३. वालक को कठिनाइयाँ तथा सकटो का सामना करने की आदत पडती है।

४. विविध विचार वालो से मिलने तथा उनके साथ आवश्यकतानुसार रहने से उसमे सहनशीलता तथा दूसरो के विचारो का उचित आदर करने की आदत का विकास होता है।

५ वालक आमोद-प्रमोद के साथ-साथ शिक्षा ग्रहण करते हैं।

६ अनेक विषयो का सूक्ष्म ज्ञान हो जाता है।

पर पर्यटन से ये लाभ तभी हो सकते हैं जबकि पर्यटन पूर्व-योजना वनाकर उद्देश्य सहित किया जाय।

बुनियादी शिक्षा जीवन की शिक्षा है, अत इसमे प्रत्यक्ष जीवन जीने का वडा महत्त्व है। वालक पर्यटन द्वारा न केवल प्रत्यक्ष जीवन के दर्शन करता है, वरन् प्रत्यक्ष जीवन-यापन भी करता है।

बुनियादी शाला और पर्यटन

फलस्वरूप उसके अनुभव ठोस होते हैं तथा सत्य पर आधारित रहते हैं। ये अनुभव उन्हे शाला की चहारदीवारी के भीतर नहीं मिल सकते। सामान्य विज्ञान, सामाजिक अध्ययन आदि विषयों सम्बन्धी विभिन्न वातो का जितना अच्छा ज्ञान पर्यटन या भ्रमण से प्राप्त होता है उतना शाला के भीतर शिक्षण करने से नही हो सकता। दिन-रात का ज्ञान, दिशाओ का ज्ञान, मिट्टी, पत्थर, चट्टान, ऋतुओ का वनस्पति, पशु-पक्षी आदि पर प्रभाव, नदी, पहाड़, कीडे-मकोडे, पेड-पौधे, जलचर, नभचर, आदि की जान-

कारी पर्यटन द्वारा बहुत अच्छी तरह से कराई जा सकती है।

बुनियादी शालाओ मे क्रिया के आधार तथा माध्यम से ही सभी ज्ञान दिया जाता है। पर्यटन इसके लिए बहुत ही अच्छा तरीका है। बालक नदी, तालाब, पहाड, वन आदि की सैर करके अनेक बातो की ठोस जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

बुनियादी शालाओ मे छोटी-छोटी यात्राओ से लेकर लम्बी-लम्बी यात्राओ तथा पर्यटन की व्यवस्था की जा सकती है। बालक दो-चार घण्टे के लिए आसपास के दर्शनीय स्थानो को देखने जा सकते है। कभी-कभी वे केवल प्रकृति-निरीक्षण के लिए छोटी-सी सैर कर सकते हैं। ठण्ड मे दीवाली या अन्य छुट्टियो मे वे लम्बे समय के ऐतिहासिक, भौगोलिक, औद्योगिक पर्यटन के लिए जिले, राज्य या राज्य से बाहर जा सकते हैं।

पर्यटन के आयोजन के सम्बन्ध मे निम्न बातें ध्यान मे रखने योग्य है—

१ पर्यटन उद्देश्यपूर्ण तथा पूर्व-योजना के अनुसार किया जाना चाहिए।

२ पर्यटन मे कम-से-कम व्यय होना चाहिए, क्योकि यदि व्यय अधिक होगा तो इसके लिए कम बालक तैयार होगे।

३ छोटे बालको को गाँव या शहर के आस-पास ही भ्रमण या पर्यटन कराया जाना चाहिए।

४ ठण्ड के दिनो मे पर्यटन अधिक कराया जाना चाहिए। गरमी मे शाम या सुबह के समय अल्पकालीन पर्यटन या सैर अच्छी रहती है।

५ पर्यटन कक्षावार ले जाना चाहिए। पर वर्ष मे दो-एक बार, सम्पूर्ण शाला को भी पर्यटन या सैर के लिए ले जाना चाहिए।

६ पर्यटन एक सप्ताह से अधिक दिनो का नही होना चाहिए, क्योकि ऐसा होने से व्यय अधिक होता है तथा व्यवस्था मे भी

कठिनाई होती है ।

७. पर्यटन मे देखने योग्य बातो की ओर बालकों का ध्यान पहले से ही आकर्षित कर देना चाहिए ।

८ पर्यटन में बाहरी नौकरो या कुलियो आदि पर कम-से-कम निर्भर रहना चाहिए । सबसे अच्छी बात तो यह होगी कि बालक अपना काम स्वयं करें ।

९. लम्बे पर्यटन पर बालको को ले जाने से पूर्व बालको के अभिभावको से अनुमति अवश्य ले लेनी चाहिए ।

बुनियादी शाला अपने समाज की प्रमुख आवश्यकताओ की पूर्ति तो करती ही है, साथ ही वह समाज की कायापलट करके उसे नव-निर्माण की ओर ले जाती है । अतः वह अपने पड़ोस की उन्नति की प्रयोगशाला के रूप मे रहती है । समाज की इस उन्नति के कार्य मे शिक्षक, बालक तथा गाँव वाले मुख्य रूप से हाथ बटाते है ।

रचनात्मक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम

बुनियादी शाला से बालकों की कलात्मक प्रवृत्तियों के विकास की अपेक्षा भी की जाती है । बुनियादी शाला देश की संस्कृति का केन्द्र भी रहती है । वह शिक्षा की ऐसी बुनियाद डालना चाहती है जिससे बालक का सभी प्रकार का विकास हो सके । बुनियादी शाला समानता, एकता, न्याय, भाईचारे पर आधारित एक वर्गहीन तथा शोषणहीन समाज की रचना करने का लक्ष्य रखती है । इस हेतु बुनियादी शालाओ मे अनेक रचनात्मक तथा सांस्कृतिक आयोजन किये जाते हैं । ये रचनात्मक तथा सास्कृतिक आयोजन बालक का सर्वांगीण विकास करने मे सहायक होते हैं और समाज तथा संस्कृति का पुनर्निर्माण भी करते हैं । ये कार्यक्रम जितनी अधिक सख्या मे बुनियादी शालाओ मे किये जायँगे उतनी ही अधिक मात्रा मे ये बालको को सामाजिक तथा सास्कृतिक जीवन का आभास करा सकेंगे । इन कार्यक्रमो से बालक-बालिकाओ मे नई स्फूर्ति तथा नव-चेतना आती है । बालको मे समाज तथा राष्ट्र के प्रति सच्ची आस्था

उत्पन्न करने मे भी ये रचनात्मक तथा सास्कृतिक कार्यक्रम बडे सहायक होते है।

बुनियादी शाला मे होने वाले रचनात्मक तथा सास्कृतिक कार्यक्रमो को हम दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं—

१ बुनियादी शाला के आभ्यतरिक कार्यक्रम। इन आभ्यतरिक कार्यक्रमो मे निम्न आयोजन समिलित होते हैं—शाला-सभा, प्रार्थना, भजन, प्रवचन, कक्षा तथा शाला-पत्रिका-सम्पादन, सामूहिक भोजन, विभिन्न परिपदें जैसे, साहित्य-परिपद्, सगीत-परिपद्, उद्योग-परिषद्, सामाजिक अध्ययन-परिपद्, विज्ञान-परिपद् आदि, रेडक्रास, स्काउटिंग, गर्लगाइड, शाला की जनतान्त्रिक व्यवस्था आदि।

२ बुनियादी शाला के वाह्य कार्यक्रम। इसके अन्तर्गत श्रमदान, पर्यटन, ग्राम, सफाई, सम्पूर्ण गाँव के साथ राष्ट्रीय पर्व मनाना जैसे, १५ अगस्त, २६ जनवरी, गाँधी जयती, टैगोर जयती, सर्वोदय पक्ष या सप्ताह आदि, विभिन्न प्रकार के धार्मिक तथा प्राकृतिक उत्सव जैसे जन्माष्टमी, बुद्ध जयती, महावीर जयती, शिवरात्रि, वृक्षारोपण, वसन्तोत्सव आदि मनाना, दशहरा, रक्षा-बन्धन, दीपावली, होली आदि सामाजिक पर्व मनाना, कक्षा तथा शाला-प्रदर्शनी का आयोजन करना, गाँव के मेले मे भाग लेना, ग्राम पुस्तकालय की व्यवस्था करना, सरक्षक दिवस मनाना, शराबवन्दी, रोग-निरोधक आन्दोलनो मे भाग लेना तथा उपयुक्त नाटको आदि का आयोजन करना।

इस तरह विभिन्न प्रकार के रचनात्मक तथा सास्कृतिक कार्यक्रमो का आयोजन बुनियादी शालाओ मे होना चाहिए। ये आयोजन बालको मे उन्नति की अवस्था उत्पन्न करते है तथा वर्तमान के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध जोडकर उनका भविष्य उज्ज्वल बनाते हैं। उच्च शालाएँ तो केवल साक्षरता को ही अपना लक्ष्य मान बैठी हैं, अत उनमे केवल कुछ पुस्तको

का ज्ञान-मात्र ही कराए जाने पर बल दिया जाता है। पर बुनियादी शालाएँ तो बालक का सर्वांगीण विकास करके उसे समाज तथा संस्कृति की उन्नति मे सहायक बनाने का लक्ष्य रखती हैं। अतः बुनियादी शालाओं मे इन रचनात्मक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमो का विशेष स्थान ठीक ही है।

रचनात्मक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमो का आयोजन करते समय निम्न बातें ध्यान मे रखने योग्य हैं—

१. इनके अन्तर्गत ऐसे आयोजन ही कराए जाने चाहिएँ जिनकी सामाजिक तथा शैक्षणिक उपयोगिता हो।
२. इन आयोजनो की पूर्व-योजना बनानी चाहिए।
३. इन कार्यक्रमो का आयोजन रूढिगत रूप मे ही नही करना चाहिए इन्हें परिवर्तित तथा संशोधित रूप मे करना अच्छा होगा।
४. इन कार्यक्रमो का आयोजन प्रदर्शन के लिए ही नहीं होना चाहिए।
५. इन कार्यक्रमो के सभी कार्य शाला के बालक-बालिकाओं को ही करने चाहिएँ। हाँ, आवश्यकतानुसार गाँव वालो तथा शाला-शिक्षको से सहायता ली जा सकती है।
६. इन कार्यक्रमो के आयोजन मे गाँव वालो का सहयोग प्राप्त करने के लिए भी सचेष्ट रहना चाहिए।
७. अधिक-से-अधिक संख्या मे इन कार्यक्रमो का मनाना उपयोगी रहता है।
८ इन कार्यक्रमो पर कम-से-कम व्यय करने का प्रयत्न करना चाहिए।
९ कार्यक्रम का आयोजन होने के पूर्व ही इनके उद्देश्यो तथा गुणो से बालक को अवगत करा देना चाहिए, क्योंकि महत्त्व समझने पर ही बालक इनमे भाग लेंगे।
१०. कार्यक्रमों के आयोजनो मे दलबन्दी न होने पाए, इसका ध्यान रखना चाहिए।
११. इन कार्यक्रमो मे शाला के अधिक-से-अधिक बालक भाग ले, इसकी व्यवस्था करनी चाहिए।

अध्याय ७

प्रयोग-शाला, उद्योग-कक्ष, संग्रहालय, वाचनालय

प्रयोग-शाला

वैसे तो प्रत्येक बुनियादी शाला ही एक प्रयोग-शाला के रूप मे कार्य करती है, क्योंकि महात्मा गाँधी द्वारा प्रारम्भ की गई बुनियादी शिक्षा को और भी परिष्कृत तथा आम शिक्षा के रूप मे चलाने योग्य बनाने की दिशा मे अनेक प्रयोगो की आवश्यकता है। मूलोद्योग का वास्तविक स्वरूप तथा स्थानीय आवश्यकताओ की दृष्टि से उसकी अनुकूलता निश्चित करने, समवाय और उसके उचित उपयोग तथा स्वाभाविक ढग को स्थिर करने, स्वावलम्बन-पक्ष की जाँच करने, सामाजिक तथा सास्कृतिक विकास की दिशा मे दिये जाने वाले बुनियादी शिक्षा के योगदान आदि का पता चलाने के लिए बुनियादी शालाओ मे अभी भी प्रयोग करने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से प्रत्येक बुनियादी शाला एक प्रयोग-शाला ही रहेगी। इन सब तथा अन्य बातो के सम्बन्ध मे शोध-कार्य करने के लिए बुनियादी शालाओ मे एक नही कई प्रयोग-शालाओ या कक्षो की आवश्यकता है। वास्तव मे शोध-कार्य के बिना बुनियादी शालाओ का वास्तविक रूप नही निखर सकता।

इसके साथ-साथ विज्ञान, कला आदि विषयो के उपयुक्त शिक्षण के लिए भी प्रयोग-कक्ष होना आवश्यक है। इन प्रयोग-कक्षो मे बालक व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से प्रयोग करके अपने ही अवलोकनो के आधार पर स्वय तथ्यो की जाँच करना सीखेगे। विज्ञान की प्रयोग-शाला मे हवा, पानी, रग, बिजली सम्बन्धी अनेक छोटे-छोटे प्रयोग करके बालक स्वय

उन्हीं तथ्यों तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं जिन तक कि कभी वैज्ञानिक पहुँचे थे। इस प्रकार बालक स्वयं खोज करके ज्ञान प्राप्त करते हैं। इससे उन्हें जीवन में स्वयं खोज करके तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने की आदत पड़ती है।

इसलिए यह आवश्यक है कि बुनियादी शालाओं में प्रयोग-शाला या प्रयोग-कक्ष अवश्य रहें। इन प्रयोग-शालाओं मे अधिक महंगा सामान रखने की आवश्यकता नहीं है, पर साधारण स्थानीय मिलने वाला सामान, कुछ डिब्बे, कांच की नलियाँ, जग, बोतलें, साधारण तुला, विभिन्न प्रकार के थर्मामीटर, रबर की नलियाँ, गिलास, तिपाई, स्पिरिट लैम्प आदि अवश्य होने चाहिएँ। इनसे बालक स्वयं वर्षा-मापक यंत्र, दिशा-सूचक यंत्र, बेरोमीटर आदि बना सकेंगे। यदि विज्ञान-शिक्षण की और भी अच्छी सुविधाएँ हुई तो बिजली की घंटी, टेलीफोन आदि भी बालक स्वयं बना लेंगे। इस प्रयोग-शाला में विज्ञान-क्लब के सदस्य और भी अनेक प्रकार की वस्तुओं का निर्माण सरलता से करके न केवल अपने ज्ञान को बढ़ाएँगे, वरन् अपने अवकाश के समय का सदुपयोग करना भी सीखेंगे।

बुनियादी शाला मे समाज में प्रचलित उद्योग के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। यही उद्योग उस शाला के बालक-बालिकाओं की शिक्षा का मूल आधार रहता है। अतः यह आवश्यक है कि मूलोद्योग का कमरा उपयुक्त लम्बाई-चौड़ाई का हो। उद्योग के शिक्षण, अभ्यास, अनुसंधान सम्बन्धी प्रयोग आदि की पूर्ण सुविधाएँ उद्योग-कक्ष में रहनी आवश्यक हैं। बुनियादी शाला में मूलोद्योग के आधार पर समवायित करके अन्य विषयों का ज्ञान दिया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि उद्योग-शिक्षण तथा उसके अभ्यास आदि का कार्य सुचारु रूप से चले। यह कार्य जितने सुचारु तथा अच्छे ढंग से चलेगा उतनी ही अधिक सम्भावनाएं अन्य विषयों के समवायित ज्ञान देने के अधिक अवसर उपलब्ध होने की रहेगी। अतः यह आवश्यक है कि बुनियादी शाला में उद्योग के कमरे की उपयुक्त तथा

उद्योग-कक्ष

अच्छी व्यवस्था हो, वह खासा लम्बा-चौडा हो, उसमे सूर्य का प्रकाश, शुद्ध हवा आदि के आने की उचित व्यवस्था हो तथा वह कुछ ऊँचाई पर हो, जिससे वरसात आदि मे उसमे सील न आए। उद्योग-कक्ष मे उद्योग का सामान टाँगने तथा रखने की भी अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। वहुवा देखा जाता है कि तकली, सलाई आदि मे जग, तथा पटरी, वाँस छुरी, वाँस की सलाई, चटाई, ढोलो आदि मे घुन लग जाता है। कपास भी खराव हो जाता है। इससे उद्योग का सामान तो खराब होता ही है, साथ-ही-साथ उद्योग-कार्य मे भी वाधा उपस्थित होती है। अत उद्योग के सामान की सुरक्षा की उचित व्यवस्था भी होनी आवश्यक है।

वैसे तो प्रत्येक शाला मे शिक्षा के लिए उपयोगी वस्तुओ का सग्रह किया जाता है, पर वुनियादी शाला मे इसकी वहुत अधिक आवश्यकता है।

संग्रहालय

वुनियादी शाला मे उद्योग-शाला रहती है। शाला के वालक सामाजिक तथा प्राकृतिक केन्द्रों का पर्यटन करते है। अत वुनियादी शाला के उद्योग-कक्ष मे निर्मित होने वाली तथा सामाजिक तथा प्राकृतिक केन्द्रो से एकत्रित की जाने वाली वस्तुओ के सुरक्षित सग्रह की आवश्यकता होती है।

ये सग्रह की गई वस्तुएँ वालको तथा उनके अभिभावको का उत्साह-वर्धन तो करती ही हैं, साथ-ही-साथ शिक्षण-कार्य मे भी सहायक होती हैं।

वुनियादी शाला के सग्रहालय मे विभिन्न देशो की टिकटें, सिक्के आदि, महापुरुषो के चित्र, विभिन्न समयो की मूर्तियाँ, विभिन्न प्रकार की मिट्टी, पत्थर, विभिन्न देशो के लोगो के रहन-सहन सम्वन्धी चित्र, वालको द्वारा वनाए गए तौलिए, आसन, निवाड, वेत या वाँस की वनी वस्तुएँ सग्रह करके सुरक्षित रखनी चाहिएँ।

वालको की सुन्दर तथा सुडौल हस्तलिपि भी सग्रहालय मे रखी जा सकती है। इससे अन्य वालको को अनुकरण करके अपनी लिपि सुधारने की प्रेरणा मिलेगी।

सम्पूर्ण शाला का सामूहिक सग्रहालय तो बुनियादी शालाओ मे होना ही चाहिए। उसके साथ ही प्रत्येक कक्षा, विषय आदि की दृष्टि से भी संग्रहालय व्यवस्थित किया जाना चाहिए। सग्रहालय की वस्तुएँ शाला-प्रदर्शनी के अवसरो पर प्रदर्शित भी की जा सकती हैं।

पुस्तकें बालक तथा शिक्षक सभी की मानसिक तृप्ति की साधन हैं। वाचनालय का महत्त्व तो इस युग मे बहुत अधिक बढ गया है, क्योंकि
वैज्ञानिक तथा यात्रिक प्रगति आदि के कारण
वाचनालय या पुस्तकालय व्यक्ति के अवकाश के समय की वृद्धि होती जा
रही है। यदि इस अवकाश के समय का सदुपयोग
करना बालक को न सिखाया गया तो वह इसका दुरुपयोग भी कर सकता है। वाचनालय अवकाश के समय के सदुपयोग का एक उत्तम तथा महत्त्व-पूर्ण साधन है।

आज हमारी शिक्षण-पद्धतियो मे प्राय. प्रतिदिन सुधार तथा परि-वर्तन होते जा रहे हैं। अब तो सभी शिक्षा-शास्त्री इस बात से सहमत है कि बालक द्वारा किसी बात का सच्चा ज्ञान उसकी अपनी क्रिया के माध्यम से ही अर्जित किया जा सकता है। साथ ही, ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो का विकास भी बहुत तेजी से हो रहा है। अत यह आवश्यक है कि बालको को उनकी रुचि के अनुसार विस्तृत ज्ञान देने के लिए शाला मे उत्तम वाचनालय की व्यवस्था हो। पर हमे इस बात का ध्यान भी रखना चाहिए कि शाला मे केवल वाचनालय या पुस्तकालय होना ही आवश्यक नही है। इसकी अच्छी व्यवस्था तथा अच्छी बालोपयोगी पुस्तको का चुनाव भी आवश्यक हैं।

बुनियादी शाला हमारी सस्कृति तथा समाज का केन्द्र होती है तथा पुस्तकें हमारी सस्कृति तथा सामाजिक परम्पराओ को सुरक्षित रखने वाली होती हैं। अत. बुनियादी शाला मे पुस्तको का सग्रह होना आवश्यक है। कुछ लोगों का विचार है कि बुनियादी शाला मे पुस्तको मे कम-से-कम सम्बन्ध रखा जाना चाहिए, पर यह धारणा ठीक तथा उचित नही है।

यह आवश्यक है कि बुनियादी शाला मे पुरानी, कठिन, बालको को समझ मे न आने वाली पुस्तकें अनावश्यक ही हैं, पर हमारे समाज, सस्कृति आदि की परम्पराओ तथा पूर्वजो द्वारा अर्जित ज्ञान को सुरक्षित रखने तथा बालको तक पहुँचाने वाली पुस्तको की आवश्यकता हमारी बुनियादी शालाओ को अधिक है। इनके अभाव मे हम अपनी भावी सन्तान का सर्वांगीण विकास न कर सकेंगे।

वाचनालय या पुस्तकालय के प्रबन्ध के सम्बन्ध मे निम्न बाते ध्यान मे रखने योग्य हैं—

१. वाचनालय में उत्तम बालोपयोगी पुस्तको के साथ-साथ समाचार-पत्र, उपयोगी पत्रिकाएँ आदि भी मँगाई जानी चाहिएँ। इन्हें नियमित रूप से प्रतिदिन उपयुक्त स्थान में रखा भी जाना चाहिए।

२ पुस्तकें बालको के स्तर की होनी चाहिएँ। वे छोटे तथा बडे सभी बालको के योग्य होनी चाहिएँ।

३. वाचनालय की व्यवस्था किसी अध्ययनशील शिक्षक के हाथ में होनी चाहिए।

४ वाचनालय का लाभ सभी बालको तक पहुँचने के लिए आवश्यक है कि वाचनालय के खुलने तथा पुस्तको के लेन-देन आदि की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए।

५ बालको द्वारा पढी जाने वाली पुस्तको का लेखा आदि भी रखा जाना चाहिए।

६ वाचनालय की पुस्तको की कक्षानुसार सूची ऐसे स्थानो पर लगानी चाहिए जहाँ से बालक अपनी रुचि के अनुसार पुस्तक का नाम, नम्बर आदि ढूंढ सकें।

७ वाचनालय मे आने वाली नवीन पुस्तको की सूची भी समय-समय पर सूचना-पट पर लगाते रहना चाहिए। यदि सुविधा हो तो आने वाली नई पुस्तको को कांच की अलमारी या खुले मे रखकर प्रदर्शित करना उपयोगी रहेगा।

८. बालको को वाचनालय से पुस्तकें लेकर पढने का प्रोत्साहन देने के लिए उनके प्रमाण-पत्रो मे उन द्वारा पढ़ी गई पुस्तको का विवरण उपयोगी सिद्ध होगा।

९. बुनियादी शाला के वाचनालय में विभिन्न उद्योगों सम्बन्धी पुस्तकें भी होनी चाहिएँ।

१०. बुनियादी शाला के वाचनालय का उपयोग केवल शाला के बालको तथा शिक्षको तक ही सीमित नही रहना चाहिए, ग्राम-वासियो को भी शाला-वाचनालय के उपयोग की सुविधाएं देने से शाला और जनता का सम्बन्ध तथा सम्पर्क अच्छा बना रहेगा और बिना किसी अतिरिक्त खर्च के गाँव वाले भी लाभान्वित हो सकेंगे।

अध्याय ८

शाला तथा विद्यार्थी अभिलेख

प्रत्येक शाला के लिए प्रारम्भ से अपने सम्बन्ध के अभिलेख रखना आवश्यक है। इससे न केवल उसके प्रारम्भ, विकास तथा परिस्थितियो का पता चलता है, वरन् शाला-अभिलेख उसके आदर्शो, उपलब्धियो उपयोगिताओ, उद्देश्यो आदि से भी परिचित कराते है। बुनियादी शाला समाज का एक अग होती है, अत यह आवश्यक है कि समाज को शाला के उद्देश्यो, आदर्शों, उपलब्धियो, उपयोगिताओ आदि से समय-समय पर अवगत कराया जाय। वैसे समाज के सदस्य बुनियादी शाला के विभिन्न सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य उत्सवो तथा कार्यक्रमो मे भाग लेकर समय-समय पर शाला की गतिविधियो मे परिचित होते रहते हैं, फिर भी अनेक ऐसी बातें है जिनका रिकार्ड रखना आवश्यक है, जिससे उपयुक्त आँकडे जानने तथा अन्य सम्बन्धित लोगो को शाला-सम्बन्धी सम्पूर्ण जानकारी देने मे आसानी हो। बुनियादी शाला को सरकार से अनुदान के रूप मे सहायता मिलती है, अत शाला के अधिकारियो का यह कर्तव्य है कि उसे वे ठीक-ठीक व्यय करके उसका हिसाब रखें। बुनियादी शाला के बालकों के सम्बन्ध मे भी उनके व्यक्तिगत विकास, उनकी प्रगति तथा उपलब्धियो का विस्तृत लेखा रखना शाला के लिए आवश्यक है। अभिभावको को शाला के विभिन्न खर्चों, टेक्सो, चन्दो आदि का ब्यौरा देना भी आवश्यक रहता है।

शाला-अभिलेख या रजिस्टर

इस प्रकार हम देखते है कि बुनियादी शालाओ को अनेक व्यक्तियो

तथा सस्थाओ को शाला-सम्वन्धी विभिन्न वातो की जानकारी कराने के लिए विभिन्न प्रकार के लेखे रखने पडते हैं। इन अभिलेखों से न केवल शाला के उद्देश्यो तथा विकास आदि का पता चलता है वरन् इनसे शाला के विकास तथा कार्य के सुधार मे भी सहायता मिलती है। इन्ही अभिलेखों के आधार पर शाला के अधिकारी वालको की प्रगति का व्यौरा तैयार करते हैं। ये अभिलेख अनेक सरकारी प्रतिवेदनो के भरने मे भी सहायक होते हैं।

पर शाला-अभिलेखो को यदि हम वास्तविक, सच्चा तथा उपयोगी वनाना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि वे विस्तृत तथा पूर्ण भरे जायें। साथ-ही-साथ हमे इस वात का भी ध्यान रखना चाहिए कि वे कम-से-कम समय तथा विना किसी कठिनाई के भरे जायं। शाला के अन्य कार्य कम करके शाला-अभिलेखो का भरना उपयुक्त नही है। शाला-अभिलेखों की विश्वसनीयता भी वहुत आवश्यक है। शाला-अभिलेख भरने के वाद उसकी नियमित जाँच अवश्य की जानी चाहिए। शाला-अभिलेखो की सुरक्षा भी उतनी ही आवश्यक है जितना कि उनका भरा जाना।

वुनियादी शाला-अभिलेखों के प्रकार

वुनियादी शाला का कार्य व्यवस्थित रीति से चलाने के लिए अधिपाठक के लिए अनेक अभिलेख भरना या शिक्षकों से भरवाकर रखना आवश्यक रहता है। इनकी व्यवस्था तथा सुरक्षा का उत्तरदायित्व भी अधिपाठक पर ही रहता है।

शाला अभिलेख साधारणत. वुनियादी शाला की निम्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने योग्य होने चाहिएँ—

१. वालको के कक्षा-वर्गीकरण, पथ-प्रदर्शन आदि करने मे सहायक अभिलेख। इनके अन्तर्गत वालको का हाज़िरी रजिस्टर, दाखिल-खारिज, अर्थात् वालक के शाला मे दर्ज होने तथा शाला से वाहिर निकलने या नाम कटने का लेखा रखने वाले रजिस्टर, नोटिस-सम्वन्धी फाइल, छात्रवृत्ति, दण्ड, ट्रान्सफर आदि रजिस्टर रहते हैं।

२ कक्षा-शिक्षण तथा शाला-प्रबन्ध मे सहायक अभिलेख। इसमें प्रमुखत शिक्षको से सम्बन्धित अभिलेख ही आते है, जैसे शिक्षकों की हाज़िरी, नियुक्ति, उनके लिए घोषणाएँ, उनके वेतन सम्बन्धी अभिलेख, शिक्षको द्वारा शिक्षा के लिए वार्षिक, मासिक व साप्ताहिक योजना के अभिलेख, दैनिक पाठ-सकेत, मूलोद्योग के कार्य के व्यक्तिगत लेख आदि की फाइलें आदि।

३. शाला से सम्बन्धित सार्वजनिक तथा सरकारी सस्थाओ को प्रतिवेदन भेजने मे सहायक अभिलेख। इसके अन्तर्गत उच्च दफ्तरो से आने वाले आदेशो तथा डाक आदि, शाला-आय-व्यय, परीक्षाफल, अपव्यय निवारण, स्टाक, छुट्टियाँ, पुस्तकालय, शाला कर्मचारियो की नियुक्ति, अवकाश-ग्रहण, आदि के रजिस्टर आते हैं।

४ बुनियादी शिक्षा-सम्बन्धी शोध-कार्य मे सहायक अभिलेख। बुनियादी शालाओ मे (१) बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तो सम्बन्धी, (२) मनोविज्ञान का बुनियादी शिक्षा मे प्रयोग सम्बन्धी, (३) मूलोद्योग तथा अन्य शिल्पो सम्बन्धी, (४) उद्योग तथा जीवन की ठोस परिस्थितियो तथा कार्यो के आधार पर विभिन्न विषयों के शिक्षण सम्बन्धी, और (५) समाज-निर्माण सम्बन्धी बातो के विषय मे शोध-कार्य किया जा सकता है। इस शोध-कार्य से सम्बन्धित फाइलो और प्रतिवेदनो को व्यवस्थित रखना आवश्यक है।

५, बालको के सामूहिक तथा अन्य रचनात्मक और सास्कृतिक कार्यो मे सहायक अभिलेख। इसके अन्तर्गत शाला या बाल-सभा, प्रार्थना, पर्यटन, उत्सव, दिवस, जयतियाँ, ग्राम-सेवा, श्रमदान आदि कार्यो सम्बन्धी फाइलें तथा रजिस्टर आते है।

शाला-अभिलेखो की व्यवस्था के सम्बन्ध मे निम्न बाते ध्यान मे रखने योग्य है—

१ प्रत्येक रजिस्टर या अभिलेख के बाहरी पृष्ठ पर (क) शाला

का नाम (ख) रजिस्टर का क्रमाक नम्वर (ग) रजिस्टर का नाम (घ) सफो के नम्वर (ड़) रजिस्टर खोलने का दिनाक लिखना चाहिए ।

२ वुनियादी शाला के सभी रजिस्टरो तथा अभिलेखों की सूची तैयार करके कार्यालय में रखनी चाहिए ।

३ अभिलेख सफाई तथा सचाई से भरे जाने चाहिएँ ।

४. रजिस्टर तथा अभिलेखो को नियमित रूप से भरना चाहिए ।

५ अभिलेखो तथा रजिस्टरों मे यदि कोई वात काटकर दूसरी लिखनी है तो काटकर अपने हस्ताक्षर तथा दिनाक देना आवश्यक है । गलत शब्द या अक के ऊपर ही सही वात नही लिखनी चाहिए ।

६ रजिस्टरों में यथास्थान लाल स्याही का उपयोग किया जाना ठीक रहता है ।

७. प्रत्येक वर्ष किसी मद या विपय के लिए नया रजिस्टर खोलना ठीक नही है । एक रजिस्टर भरने के उपरान्त ही नया रजिस्टर खोलना चाहिए ।

८ रजिस्टरो के सभी खानों की यथोचित खानापूर्ति करनी चाहिए ।

९ रजिस्टरो मे हमेशा स्याही से ही लिखना या खानापूर्ति करनी चाहिए ।

१० यदि छपे हुए रजिस्टर न मिलें तो पुराने रजिस्टरो के आधार पर नये रजिस्टर स्वयं वना लेने चाहिएं ।

११ शाला के प्रत्येक कार्य के लिए अलग-अलग फाइलें वनानी चाहिएँ । इन फाइलो में कागज क्रमवार रखने चाहिएँ ।

विद्यार्थी-अभिलेख मे वालक से सम्वन्धित शैक्षणिक तथा खेलकूद सम्वन्धी योग्यता, रुचि, उद्योग आदि की प्रगति तथा उसके विकास के लिए सुझाव आदि रहना चाहिए । इस अभिलेख-पत्र का मुख्य उद्देश्य वालक की विशेषताओं का अध्य-

विद्यार्थी अभिलेख

यनकरके उसे उचित मार्ग-प्रदर्शन करना है। परीक्षा आदि के समय इस अभिलेख-पत्र से वालक के मूल्याकन करने मे वड़ी सहायता मिलती है। सन् १९५२ में माध्यमिक शिक्षा आयोग, जिसे मुदालियर कमीशन भी कहते हैं, ने माध्यमिक शिक्षा के सम्वन्ध मे सुझाव देते हुए कहा था कि "उचित रूप से तैयार किये हुए शाला-अभिलेख मे वालक की शिक्षा मे आने वाली सीढियो पर विभिन्न वौद्धिक क्रियाओ से जो उपलब्धियाँ हो उनका क्रमवार साफ-साफ तथा सिलसिलेवार पूर्ण लेखा रहेगा।"

इस प्रकार हम देखते है कि विद्यार्थी-अभिलेख मे वालक से सम्वन्धित प्राय सभी वातो का उल्लेख रहेगा। वास्तव मे यदि विद्यार्थी-अभिलेख सावधानी से भरे जायँ तथा उनका समुचित उपयोग किया जाय तो वालकों का उचित मार्ग-प्रदर्शन हो सकता है। इतना ही नही, ये विद्यार्थी-अभिलेख पिछडे वालको के सुधार, शिक्षक-वालक घनिष्ठ सम्वन्ध तथा सम्पर्क, वालको के लिए व्यवसाय-निर्देश तथा नई शालाओ मे जाने पर वालक का पूर्व इतिहास जानने आदि सभी दृष्टियो से वडे उपयोगी सिद्ध होंगे।

विद्यार्थी-अभिलेख तैयार करने के पूर्व यह आवश्यक है कि शिक्षक वालक के कुटुम्ब, वातावरण, परिस्थितियो आदि का सूक्ष्म तथा व्यवस्थित अवलोकन करें। वालक के मित्र, उसका घूमना, उठना, वैठना, रुचि आदि सभी की जानकारी शिक्षक को होनी आवश्यक है। शिक्षको को अभिलेख लिखते समय निष्पक्ष होना चाहिए, क्योकि विना सचाई के अभिलेख की उपयोगिता नही रह सकती। अभिलेख मे जहाँ-कही नम्वर देने का प्रश्न आए वहाँ आवश्यकतानुसार 'क', 'ख', 'ग', 'घ', आदि का उपयोग सर्वोत्तम, उच्च-मध्यम, मध्यम, निम्न तथा निकृष्ट के लिए किया जाना उपयोगी रहेगा। विद्यार्थी-अभिलेख के भरने मे कक्षा-शिक्षक वहुत अधिक सहायक होगा, क्योकि वही कक्षा के वालको के अधिक सम्पर्क मे आता है।

विद्यार्थी-अभिलेख कैसे भरे

विद्यार्थी-अभिलेख-पत्रक

१. सामान्य परिचय—

(क) नाम।

(ख) पिता का नाम।

(ग) जाति।

(घ) पिता का व्यवसाय।

(ङ) आर्थिक स्थिति—(क) उच्च (ख) मध्यम (ग) निम्न।

(च) कुटुम्ब के बच्चो मे वालक का स्थान—पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ आदि।

(छ) आस-पास के पड़ोस का वातावरण—(क) अनुकूल (ख) सामान्य (ग) प्रतिकूल।

(ज) कौटुम्बिक अनुशासन—(क) विशेष कठोर (ख) कठोर (ग) साधारण (घ) सामान्य प्यार (ङ) विशेप प्यार-दुलार।

२. वालक की मानसिक स्थिति—

(क) वालक का स्वभाव—उग्र, शान्त, सामान्य।

(ख) वालक की रुचियाँ।

(ग) वालक के अन्य वालको से सम्वन्ध।

(घ) वालक के समाज के लोगो से सम्वन्ध।

(ङ) वालक की वुद्धि।

३. वालक की शारीरिक स्थिति—

(क) वालक की अवस्था—वर्ष, माह, दिन।

(ख) वजन—जुलाई, सितम्वर, दिसम्वर, मार्च।

(ग) ऊँचाई—···फुट···इंच।

(घ) छाती—संकुचित·· इंच, फुलाने पर···इंच।

(ङ) सामान्य स्वास्थ्य।

(च) खेलो मे रुचि तथा उपलव्धि।

(छ) स्वास्थ्य-सुधार के सम्वन्ध में सामान्य सुझाव।

४. बालक की शैक्षणिक प्रगति—

	विषय	पूर्णांक	प्राप्तांक			परीक्षा फल			शाला में उपस्थिति			विशेष
			तिमाही	छमाही	वार्षिक	तिमाही	छमाही	वार्षिक	तिमाही	छमाही	वार्षिक	
१.	भाषा											
२	अंग्रेजी											
३.	गणित											
४	सामान्य विज्ञान											
५	सामाजिक अध्ययन											
६	मूलोद्योग											
७	संगीत											
८	शारीरिक शिक्षा											

कक्षा-शिक्षक के सुझाव·

बालक के हस्ताक्षर··

अभिभावक के हस्ताक्षर···

५. सामूहिक, रचनात्मक तथा सांस्कृतिक कार्य—

माह	कार्य जिनमे रुचि दिखलाई	कक्षा-शिक्षक के सुझाव	विशेष
जुलाई से सितम्बर			
अक्टूबर से दिसम्बर			
जनवरी से मार्च			

कक्षा-शिक्षक द्वारा बालक के विकास तथा उन्नति के लिए सुझाव···

अधिपाठक का मत···

बालक के हस्ताक्षर···

अभिभावक के हस्ताक्षर···

अध्याय ६

शिक्षक तथा प्रधानाध्यापक

शिक्षक

हमारे देश मे शिक्षक को बड़े आदर से देखा जाता है। यह उसमे कुछ विशेष प्रकार की योग्यताएं होने के कारण ही है। इन योग्यताओ मे से निम्न योग्यताएँ मुख्य हैं—

१ शिक्षण-कार्य की ओर रुचि। बहुधा शिक्षक वही बनता है जिसे इस कार्य की ओर रुचि रहती है। शिक्षक राष्ट्र-निर्माता है, पर यदि वह केवल पैसे कमाने या समय काटने के लिए ही शिक्षक बना है तो उसमे इस कार्य के प्रति आवश्यक उत्साह तथा प्रेम नही हो सकता। हमारे बीच मे कई शिक्षक इसी प्रकार के मिलेंगे, पर अच्छा शिक्षक वही हो सकता है जिसमे शिक्षण-कार्य की ओर रुचि हो। उसकी अपने कार्य मे रुचि बालको मे भी उत्साह भरने मे सहायक होती है। अत प्रत्येक शिक्षक मे अपने कार्य की ओर रुचि रहना आवश्यक है।

२. शिक्षा के उद्देश्यो का ज्ञान। शिक्षक को शिक्षा के उद्देश्यो का ज्ञान भलीभाँति होना चाहिए। शिक्षा के उद्देश्य समयानुकूल बदलते रहे है जिनमे से निम्न उद्देश्य मुख्य हैं—

(क) बालक की मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, सभी प्रकार की उन्नति करना।

(ख) अच्छे आचरण तथा नैतिकता का विकास करना।

(ग) ज्ञान का प्रसार करना।

(घ) जनतंत्र के नियमो के अनुसार अपने जीवन को चलाना तथा बालको के जीवन को भी उसी ओर ले जाना ।

शिक्षक को इन उद्देश्यो का केवल ज्ञान ही नही होना चाहिए, वरन् उसे हमेशा इन उद्देश्यों को शाला मे कार्य-रूप मे परिणत भी करते रहना चाहिए । इसके साथ-साथ शिक्षक को भविष्य का भी ध्यान रखना चाहिए । उसे बालको को उसी तरह ढालना चाहिए जिस तरह के मनुष्य देश चाहता है । उसे बालको को देश, जाति, सामाजिक परिस्थिति आदि के अनुरूप ही बनाना चाहिए । प्राचीन गौरव उसके लिए उत्साह-प्रद हो सकता है, पर उसकी दृष्टि हमेशा भविष्य पर ही रहनी चाहिए ।

३ अच्छा स्वास्थ्य । अच्छा शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य शिक्षक के लिए बडी भारी ईश्वरीय देन है । बालक शिक्षक की आदतो, रहन-सहन आदि का अनुकरण करते हैं । उन पर सबसे अधिक प्रभाव शिक्षक का ही पड़ता है । यदि शिक्षक चिडचिडे स्वभाव का है तो बालक भी कुछ चिडचिड़े स्वभाव के हो जायँगे । माता-पिता या अन्य निकट कुटुम्बियो के बाद शिक्षक ही एक ऐसा व्यक्ति है जिसका सबसे अधिक असर बालको पर पड़ता है । अत. शिक्षक का मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होना बड़ा आवश्यक है ।

४. नैतिकता व आचरण । बालक की नैतिकता की वृद्धि और आचरण का सुधार शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य है, अत. शिक्षक को बालको के सामने आदर्श आचरण के उदाहरण रखते रहना चाहिए । यह तभी सम्भव है जबकि स्वय शिक्षक का नैतिक स्तर तथा आचरण उच्च कोटि का हो । शिक्षक के रहन-सहन तथा कार्य करने के तरीके का बालक पर उसकी मौखिक शिक्षा से अधिक असर पड़ता है ।

५. अच्छा स्वभाव और व्यक्तित्व। प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना व्यक्तित्व होता है। कुछ लोग आसानी से दूसरो को अपनी ओर खीच लेते हैं, पर कुछ लोग शीघ्र ही लोगो के मन मे घृणा उत्पन्न कर देते हैं। शिक्षक वही योग्य और अच्छा हो सकता है जो वालको को अपनी ओर खीचकर उनमे विश्वास की लहर दौडा सके। विश्वास वालको को उसकी ओर खीचेगा और उनके जीवन मे आनन्द भर देगा। इसलिए शिक्षक को अपने अच्छे स्वभाव और व्यक्तित्व के वल से वालको मे विश्वास भरने की कोशिश करनी चाहिए। व्यक्तित्व और स्वभाव मे सुधार आसानी से हो सकता है, इसलिए यदि किसी शिक्षक मे इनकी कमी भी हो तो कोशिश करने से वह ये गुण पा सकता है।

प्रत्येक शिक्षक को निम्न गुणो से युक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए—(क) सहानुभूति, (ख) आशा, (ग) उत्साह, (घ) ज्ञान-वृद्धि की लालसा, (ङ) कार्य करने की लगन, (च) पथ-प्रदर्शक या अगुआ वनने की भावना।

ऊपर लिखी हुई सभी योग्यताएँ प्रत्येक शिक्षक मे होनी आवश्यक हैं। फिर भी ससार मे ऐसा सम्भव नही है। इसलिए जो शिक्षक इन योग्यताओ मे से जितनी अधिक योग्यताएँ प्राप्त करेगा वह उतना ही अच्छा शिक्षक वन सकेगा। इसके साथ-साथ शिक्षक मे नीचे लिखी वाते होनी आवश्यक हैं—

१. वृद्धि का सामर्थ्य। प्रत्येक शिक्षक मे हमेशा उन्नति तथा अपनी हर प्रकार की वृद्धि करते रहने की भावना होनी चाहिए। शिक्षा सतत वृद्धि करने का प्रयत्न है। इसलिए जव तक शिक्षक हमेशा आगे वढने तथा उन्नति करने का प्रयत्न न करता रहेगा वह वालको को वृद्धि तथा उन्नति की ओर नही ले जा सकता। विना हमेशा ज्ञान प्राप्त किये तथा उसकी इच्छा के, शिक्षक वालको को ज्ञानवान नही वना सकता। यह गाँव मे रहने वाले शिक्षको

के लिए और भी अधिक आवश्यक है, क्योंकि गाँवो मे उन्हे अपना ज्ञान बढाने के बहुत कम साधन उपलब्ध रहते हैं। गाँवो मे ऐसे साधनो की अधिकता रहती है जो शिक्षक को अशिक्षित बनाने मे सहायक होते हैं। अत गाँवों मे रहने तथा कार्य करने वाले शिक्षकों को अपना ज्ञान बढाने तथा देश, जाति आदि के विचारो को कार्य-रूप मे परिणत करने के लिए हमेशा सजग रहना चाहिए। इसके लिए उसे दो बातो पर अधिक ध्यान रखना चाहिए—

(क) शिक्षा के क्षेत्र मे होने वाले सुधारो पर दृष्टि।

(ख) संसार, देश, प्रान्त, गाँव आदि मे होने वाली घटनाओ पर दृष्टि तथा उनके प्रति सजगता।

२. बालको के प्रति सद्भावना। प्राचीन तथा नवीन शिक्षा-पद्धतियो मे केवल पढ़ाने की विधियो का ही भेद नही है। दोनों मे विषय-प्रवेश तथा भावनाओ का भी भेद है। नवीन पद्धतियो मे पढ़ाए जाने वाले विषय की प्रधानता न रहकर शिक्षा प्राप्त करने वाले बालक की प्रधानता रहती है। आज की शिक्षा मे बालक का विशेष महत्त्व है। यदि बालक की मानसिक, शारीरिक, आर्थिक परिस्थितियो का ध्यान रखकर उसे शिक्षित करने का प्रयत्न किया जाय तो बालक बहुत उन्नति कर सकता है। ये बातें समझने के लिए शिक्षक को बालक के प्रति सद्भावना रखनी चाहिए। शिक्षक जब तक बालको के प्रति दयालु तथा सहानुभूतिपूर्ण न रहेगा तब तक वह बालको की सब प्रकार की उन्नति नही कर सकता। शाला के जितने प्रोग्राम, कार्य, पढाई आदि की व्यवस्था है उन सभी मे शिक्षक को बालक का विशेष ध्यान रखना चाहिए। यदि शिक्षक इस बात का ध्यान रखेगा तो वह पुराने ज़माने के समान बालक को न पढाकर विषय को ही पढाएगा।

वालको के प्रति सद्भावना और सहानुभूति रखने से ही काम नही चल सकता। शिक्षक को वालक के मानसिक एव शारीरिक विकास की भी पूरी जानकारी होनी चाहिए। शिक्षक को वालक की आवश्यकताओ, रुचियो और योग्यता का भी पूर्ण ज्ञान रहना चाहिए। इन वातो का ज्ञान शिक्षक के वडे काम की चीज़ है। इनसे वह वालक को अच्छी तरह समझा सकता है तथा ठीक रीति से ज्ञान देकर उस पर अपना प्रभाव डाल सकता है।

गाँवो की प्राइमरी कक्षाओ में कुछ वालक ५-६ साल, कुछ ७ तथा कुछ ८ साल की उम्र से शाला मे आना प्रारम्भ करते है। इसलिए शिक्षको को इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि कव किस वालक को लिखना या पढना सिखलाया जाय। पहले तो वालको से कंकड, पत्थर, मिट्टी, डालियो आदि से हस्त-कार्य कराना चाहिए। धीरे-धीरे उन्हे लिखने-पढने का काम करवा सकते हैं। इससे वालको की पढने-लिखने की ओर ध्यान देने की आदत पडेगी।

३ हस्त-कार्य मे निपुणता। आजकल की नवीन शिक्षा-पद्धति मे हस्त-कार्य का विशेप महत्त्व है। आज के शिक्षा-शास्त्री वालक के दिमाग और हाथ दोनो का विकास चाहते हैं। इसलिए प्रत्येक शिक्षक को हस्त-कार्य की ओर विशेप ध्यान देना चाहिए। इसी उद्देश्य से सशोधित पाठ्य-क्रम मे हस्त-कार्य को विशेप महत्त्व दिया गया है।

४ ग्राम-सस्कृति के प्रति आदर तथा आस्था। वहुत से शिक्षक गाँव मे पहुँचकर गाँव की हर वात को हेय समझते हैं। वे गाँव की सस्कृति को निम्न कोटि का मानते हैं। वे गाँव मे जाकर शहर की वडाई तथा गाँव की वुराई करते हैं। इससे वे गाँव-वालो से अलग रहते हैं तथा गाँव वाले भी उनसे दूर भागते है।

ऐसा करना देश के लिए बड़ा हानिकारक है। हमारा देश गाँवो का देश कहलाता है, इसलिए यदि हम गाँवो को हेय समझेंगे तो इसका मतलब हुआ कि हम अपने देश को भी नीचा समझेंगे। इससे हमारे मन मे देश के प्रति उच्च भावना न रहेगी। प्रत्येक शिक्षक को गाँव तथा गाँव की हर चीज़ के प्रति आदर तथा आस्था रखनी चाहिए। ऐसा होने पर ही वह गाँव वालो के बीच रहकर उनके विश्वास का पात्र हो सकता है।

५. विस्तृत सामान्य ज्ञान। गाँव मे शिक्षक ही एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति होता है, इसलिए उसे शिक्षा तथा उससे सम्बन्धित सभी बातो का ज्ञान रखना चाहिए। इस ज्ञान के बल पर ही वह गाँव वालो को सही और नेक सलाह दे सकेगा तथा बालकों के ज्ञान की वृद्धि मे सहायक हो सकेगा।

६ अन्य बातें। इसके सिवाय शिक्षक के लिए बालको को निम्न बातो की ओर प्रेरित करते रहना उचित है—

(क) आपस मे बातचीत तथा विचार-परामर्श करने का अभ्यास देना। इसमे शिक्षक स्वय अगुआ बन सकता है।

(ख) बालको को स्वय अध्ययन करने का अभ्यास कराना।

(ग) बालको की व्यक्तिगत कठिनाइयो को हल करते रहना।

किसी भी बुनियादी शाला की ठीक-ठीक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि बुनियादी शाला के शिक्षक, बालक, प्रधानाध्यापक, निरीक्षक, स्थानीय समाज के सदस्य, सभी एक समूह बनकर कार्य करें। बुनियादी शाला के प्रधानाध्यापक का कार्य तथा जिम्मेदारी अन्य शालाओं के प्रधानाध्यापको की अपेक्षा अधिक कठिन तथा उत्तरदायित्वपूर्ण है। यहाँ वह ऐसा नेता है जिसे शाला के शिक्षको, समाज के व्यक्तियो, बालको, अपने अन्य अधिकारियो, सभी का सहयोग प्राप्त करते हुए कार्य करना पड़ता है। इस जनतन्त्र-युग मे वह केवल हुक्म देकर शोषणविहीन, वर्गविहीन

प्रधानाध्यापक

समाज की रचना नही कर सकता। उसके लिए तो अपने सभी साथियो का सहयोग प्राप्त करके उनकी योग्यता, शक्ति तथा क्षमता के अनुसार कार्य लेकर उन्हे समाजोन्नति मे सहायक बनाने का प्रयत्न करना आवश्यक है। उसे न केवल अपने स्थान तथा शाला से सम्बन्धित व्यक्तियो को समझने की आवश्यकता है, वरन् बुनियादी शाला क्या करना चाहती है तथा उसके क्या आदर्श और उद्देश्य हैं इसकी भी पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है। शिक्षक के सम्बन्ध मे जिन गुणो का विवेचन किया गया है उन सभी गुणो, जैसे शिक्षा-कार्य की ओर रुचि, शिक्षा के उद्देश्यो का ज्ञान, अच्छा स्वास्थ्य, नैतिकता या अच्छा आचरण, अच्छा स्वभाव, बुद्धि का सामर्थ्य, बालकों के प्रति सद्भावना, हस्त-कार्य मे निपुणता, ग्राम-सस्कृति के प्रति आदर, विस्तृत सामान्य ज्ञान आदि के साथ-साथ प्रधानाध्यापक मे निम्न गुणो का होना भी आवश्यक है—

१ सहयोग प्राप्त करने की क्षमता। प्रधानाध्यापक में इस गुण का होना अति आवश्यक है। बुनियादी शालाओ मे रचनात्मक तथा सामाजिक कार्यक्रमो के माध्यम से ही बहुत सा ज्ञान दिया जाता है। ये कार्यक्रम बिना बालक, शिक्षक तथा जनता आदि के सहयोग के अच्छी तरह सम्पन्न नही हो सकते। अन्य लोगो का सहयोग प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रधानाध्यापक दूसरो की भावनाओ तथा विचारो का उचित आदर करे तथा अपना अधिकार ही हमेशा न बतलाए। शोषणविहीन, वर्गहीन, भाईचारे की भावना से युक्त समाज बिना आपसी सहयोग के नही बन सकता। अत बुनियादी शाला के प्रधानाध्यापक मे आपसी सहयोग प्राप्त करने की क्षमता होना बडा आवश्यक है।

२ जनतान्त्रिकता। प्रधानाध्यापक दूसरो का सहयोग तभी प्राप्त कर सकेगा जब कि वह अपने विचारो, कर्मों, भावनाओ आदि में जनतांत्रिक होगा। उसे हमेशा अपने विचारो की अपेक्षा बहुमत का अधिक आदर करना चाहिए। इस प्रकार कार्य करके ही वह

शाला की अधिक-से-अधिक उन्नति कर सकता है।

३. न्यायप्रियता। जनतान्त्रिक प्रणाली को मानते हुए भी प्रधानाध्यापक के सामने सम्पूर्ण शाला के लिए जिम्मेदार होने के नाते शाला-सम्वन्धी अनेक ऐसे निर्णय करने के अवसर आते हैं जव उसे अपनी वुद्धि तथा विचार-शक्ति पर ही निर्भर रहना पडता है। उसे ऐसे अवसरो पर निजी स्वार्थ, मित्रता, व्यक्तिगत सम्वन्ध आदि का ध्यान न रखकर न्याय का साथ देना चाहिए। निजी स्वार्थो, मित्रता, रिश्ते आदि के ऊपर उठकर ही वह अपनी न्यायप्रियता का परिचय दे सकता है।

४. त्याग और सेवा। वुनियादी शाला का जीवन त्याग और सेवा पर आधारित करने मे शाला के प्रधान की सेवा तथा न्याय की भावना वडा योग दे सकती है। राष्ट्र को स्वार्थ तथा निष्क्रियता से ऊपर उठाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रधानाध्यापक स्वयं त्याग और सेवा को अपनाकर राष्ट्र के भावी नागरिको को इस ओर प्रवृत्त करने मे पूर्ण सहयोग दे। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रधानाध्यापक की रुचि रचनात्मक तथा सामाजिक कार्यो की ओर रहे तथा वह नियमित रूप से इन कार्यों को निस्वार्थ भाव से करे।

प्रधानाध्यापक के कार्य

किसी भी शाला का कार्य उसके प्रधानाध्यापक पर ही निर्भर रहता है। उसके व्यक्तित्व की छाप शाला के सभी कार्यो पर रहती है। वर्तमान काल के जनतत्रवादी युग मे तो प्रधानाध्यापको का उत्तरदायित्व और भी वढ गया है। अव वे केवल शाला के अधिकारियो तथा कार्यालय के काम के लिए ही जिम्मेदार नहीं हैं। उनकी जिम्मेदारी का दायरा अव समाज, गाँव तथा देशव्यापी हो गया है।

प्रधानाध्यापको के कार्यो को हम निम्न भागो मे विभाजित कर सकते हैं—

१ शिक्षण। इसके अन्तर्गत कक्षाओ का अध्यापन, अध्यापन के लिए विषय तथा कक्षाओ का चुनाव, शाला की प्रत्येक कक्षा से अपना सम्पर्क स्थापित करने की विधि आदि सम्मिलित है।

प्रत्येक प्रधानाध्यापक को कुछ-न-कुछ शिक्षण-कार्य करते ही रहना चाहिए। इससे बालको से उसका सम्बन्ध तथा सम्पर्क बना रहता है। प्राय प्रधानाध्यापक सबसे योग्य व्यक्ति होता है, अत उसे सबसे ऊँची तथा नीचे की कक्षाओ के शिक्षण के लिए कुछ-न-कुछ समय अवश्य देना चाहिए। हाँ, यह बात अवश्य है कि शाला के अन्य कार्यो मे हमेशा लगे रहने के कारण वह अपना अधिक समय शिक्षण मे नही लगा सकता।

२ निरीक्षण। इसके अन्तर्गत शाला के शिक्षण-कार्य का निरीक्षण, शाला-कार्यालय का निरीक्षण, शाला के औद्योगिक, रचनात्मक तथा अन्य सामूहिक कार्यों का निरीक्षण आता है। प्रधानाध्यापक को अपने मातहत शिक्षको के शिक्षण-कार्य का निरीक्षण समय-समय पर नियमित रूप से करना चाहिए। वैसे तो बुनियादी शालाओ मे विशेष योग्यता-प्राप्त तथा ट्रेण्ड शिक्षक ही रखे जाते है, पर कभी-कभी अनट्रेण्ड शिक्षक भी शाला मे रहते है। इन अनट्रेण्ड शिक्षको को शिक्षण-विधियो से परिचित कराके उनका उचित मार्ग-दर्शन करना उसका कार्य है। पर निरीक्षण का कार्य केवल शिक्षको के दोष देखना ही नही है। उसका वास्तविक कार्य तो दोषो को देखकर उन्हे दूर करने के सुझाव देना है। साथ-ही-साथ शिक्षको की गुप्त शक्तियो या क्षमताओ को शाला के विकास के लिए प्रस्फुटित करना भी उसका उत्तरदायित्व है।

शाला के कार्यालय का कार्य करना, सह-पाठ्य-क्रमगामी क्रियाओ की उचित व्यवस्था कराना, समय-विभाग-चक्र बनाना, शाला के शिक्षको का कार्य-विभाजन करना, अनुशासन स्थापित

करना, शाला मे जनतान्त्रिक प्रणाली के अधिक-से-अधिक उपयोग की सम्भावनाओ को कार्यान्वित करना आदि सभी प्रधानाध्यापक के कार्य हैं ।

३ जन-सम्पर्क । वर्तमान शाला, विशेषकर बुनियादी शाला, समाज का छोटा रूप ही है । इसका निर्माण समाज, संस्कृति तथा सभ्यता की रक्षा के लिए ही होता है । अत. यह आवश्यक है कि शाला का प्रमुख अधिकारी प्रधानाध्यापक समाज के लोगो से अधिक-से-अधिक सम्पर्क स्थापित करके शाला को समाजोन्नति के योग्य बनाए । आज समाज-व्यवस्था, परम्परा आदि मे इतनी शीघ्रता से परिवर्तन हो रहे हैं कि बिना जन-सम्पर्क के प्रधानाध्यापक अपनी शाला को समाज के साथ-साथ परिवर्तित तथा विकसित नहीं कर सकता ।

जन-सम्पर्क स्थापित करने के लिए प्रधानाध्यापक को शाला के खेल-कूद, प्रदर्शनी, उत्सव, त्यौहार आदि के आयोजनो के अवसरो पर जनता को आमन्त्रित करना चाहिए । समाज मे होने वाले कार्यक्रमो मे उसे जाना चाहिए । अभिभावको की सभा का आयोजन भी वह समय-समय पर कर सकता है । जन-सम्पर्क के अन्य उपायो पर अगले अध्याय में विस्तार से चर्चा की गई है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रधानाध्यापक का उत्तरदायित्व बहुत अधिक तथा गहन है । इस उत्तरदायित्व के समुचित निर्वाह के लिए यह आवश्यक है कि उसका व्यक्तित्व आकर्षक तथा प्रभावशाली हो, उनमे व्यवस्था करने की अनुपम क्षमता हो, उसकी बोल-चाल कार्य करने की प्रेरणा देने वाली हो, उसका जीवन भी आदर्श हो । उसका व्यवहार शिक्षको, बालको तथा समाज के लोगो से बहुत अच्छा होना चाहिए । इन गुणो के होने पर ही वह शाला का सच्चा विकास करता हुआ उसे समाजोपयोगी बना सकेगा ।

अध्याय १०

शिक्षक-अभिभावक सहयोग, शाला-समिति

किसी भी शाला, विशेपत. बुनियादी शाला, की उपयोगिता उसके समाज से सम्पर्क तथा सहयोग पर निर्भर रहती है । प्राचीन काल में शालाएँ अलग से स्थापित नही थी। उस काल मे तो कुटुम्ब तथा समाज ही बालक की शिक्षा के प्रमुख साधन थे । उस समय लडके अपने पिता तथा लडकियाँ अपनी माँ-बहन का अनुकरण करके जीवनोपयोगी बातें सीखते थे। पर सभ्यता तथा सस्कृति के विकास के कारण शालाएँ खोलना आवश्यक हो गया । इस प्रकार कुटुम्ब और समाज द्वारा जो शैक्षणिक कार्य किये जाते थे वे अब शालाओ द्वारा किये जाने लगे तथा कुटुम्ब, समाज और शाला का अच्छा सम्बन्ध रहा । कालान्तर में अनेक कारणो से शाला और समाज तथा कुटुम्ब के कार्यो मे बडा अन्तर आ गया । अनेक लोगो को, विशेपत सामान्य जनता को, यह धारणा हो गई कि शाला का कार्य शिक्षा से सम्बन्धित है तथा कुटुम्ब और समाज को इससे कोई वास्ता नही है। पर आजकल शाला का कार्य केवल ज्ञान देना ही नही है । शाला, विशेपत बुनियादी शाला, बालक के नैतिक, सामाजिक तथा अन्य विकास की ओर भी ध्यान देती है । बालक के उचित विकास के लिए यह आवश्यक है कि शाला, समाज तथा कुटुम्ब का सम्पर्क घनिष्ठ तथा अच्छा हो। इससे शिक्षक तथा अभिभावक बालक के सम्बन्ध मे अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। पर यदि यह जानकारी प्राप्त करके शिक्षको तथा अभिभावको

शिक्षक-अभिभावक सहयोग की आवश्यकता तथा महत्त्व

ने अलग-अलग अपने तक ही सीमित रखी तो इससे अधिक लाभ होने की सम्भावना नहीं है। इन जानकारी का आदान-प्रदान आवश्यक है। इसके अभाव मे शाला मे किये गए कार्यो पर घर के वातावरण तथा कार्यो से पानी फिर सकता है तथा घर मे किये गए उन्नति के कार्यो पर शाला की परिस्थितियां विपरीत प्रभाव डाल सकती हैं। अत. दोनों क्षेत्रो के अनुभव तथा गतिविधियाँ एक-दूसरे की सहायक तथा पूरक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षको तथा अभिभावको के सम्बन्ध घनिष्ठ हों तथा दोनो को एक-दूसरे के क्षेत्र में किये जाने वाले कार्यो का समुचित ज्ञान हो।

शिक्षको तथा अभिभावको के घनिष्ठ सम्बन्ध बालको को अच्छी तरह समझने में सहायक भी होते हैं। इतना ही नही, चूंकि दोनों बालक के उत्थान तथा समुचित विकास के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, दोनो के घनिष्ठ सम्बन्ध शाला के बाहर के वातावरण मे समन्वय स्थापित करने मे भी सहायक हो सकते हैं। इससे शाला और समाज का सम्पर्क भी दृढ होता है तथा समाज शाला का समर्थक तथा शाला समाज का प्रतीक बन जाती है।

दोनो के सहयोग से एक-दूसरे के प्रति विश्वास की भावना आ जाती है। दोनो आपस मे मिलकर बालको के विकास तथा निर्माण के सम्बन्ध मे विचार करके योजना बना सकते हैं।

शिक्षको तथा अभिभावको के घनिष्ठ सम्बन्धो का बालक पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। वे शिक्षको के और भी अधिक आज्ञाकारी बनते हैं तथा उन्हे आदर से देखने लगते हैं।

इस प्रकार शिक्षको तथा अभिभावको के अच्छे सम्बन्ध बालको तथा शाला दोनो के लिए हितकर होते हैं। इनसे शाला के अनुशासन को दृढ करने मे भी सहायता मिलती है।

शिक्षक-अभिभावक सहयोग के अभाव के निम्न कारण होते हैं—

१. अभिभावको की अशिक्षा। बालको के मां-बाप अशिक्षित होने से शिक्षण को समझते भी नही हैं तथा न उसमे वे कोई रुचि रखते हैं। वे केवल अपने बालको को शिक्षित देखना चाहते हैं, पर

इस दिशा मे कोई कार्य नही करते।

२. अभिभावको का व्यस्त जीवन। अधिकाश अभिभावक अपने दैनिक जीवन तथा गृहस्थी-सम्बन्धी कार्य या नौकरी आदि मे इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हे इतना समय ही नही मिल पाता कि अपने बच्चो की शिक्षा-दीक्षा के सम्बन्ध मे शाला मे जाकर पता लगा ले या घर पर उनके शिक्षा-कार्य की ओर कुछ ध्यान दे सकें।

३. शाला मे अभिभावक-सम्मेलनो का अभाव। अनेक शालाएं अभिभावको को शाला मे बुलाने या उनके सम्मेलन करने की ओर उदासीन रहती हैं। वे तो साल मे केवल एक बार, वह भी बडी कठिनाई से, अभिभावक-दिवस का आयोजन कर पाती हैं। इससे अभिभावक-गण शिक्षको के पास कम-से-कम आ पाते हैं। इससे बालको के सम्बन्ध मे आपसी विचार-विमर्श भी बहुत कम हो पाता है।

४. अभिभावको की शिक्षा मे अरुचि। अशिक्षित अभिभावक अज्ञानतावश तो अपने बच्चो की शिक्षा के प्रति उदासीन रहते ही हैं, पर अनेक शिक्षित अभिभावक भी अपने बच्चो की शिक्षा की ओर ध्यान नही देते। वे शिक्षा की जिम्मेदारी शाला पर ही छोड़ देते हैं।

५. शिक्षकों की उपेक्षा-वृत्ति। अभिभावकों के समान अनेक शिक्षक भी बालको के माँ-बाप से मिलना उपयोगी नही समझते। अत. वे बालको के माँ-बाप या कुटुम्बियो से मिलने के प्रयत्न ही नही करते। शिक्षको की इस उदासीनता के कारणों मे उनका वेतन कम होना, समाज मे उनका सम्मान कम होना तथा जीविका-उपार्जन तथा गृहस्थी-कार्य मे ही अधिक व्यस्त रहना प्रमुख हैं।

६ वर्तमान शिक्षा का दोषपूर्ण होना। वर्तमान काल की शिक्षा पाकर भी अनेक व्यक्ति बेकार रहते हैं। इसे देखकर न तो बालक शिक्षा के प्रति उत्साह दिखलाते है और न उनके माँ-बाप।

बालक के कुछ पिछड़ जाने या कमज़ोर रहने से भी कोई विशेष हानि न ही होती, अत. अभिभावको में शिक्षा के प्रति उदासीनता स्वाभाविक ही है।

७. शिक्षको मे योग्यता तथा अनुभव की कमी। आजकल की शालाओ मे अनेक शिक्षक ऐसे होते है जो न समाज की समस्याओ को समझते हैं और न उनके हल करने मे कोई विशेष योगदान दे सकते हैं। अत. समाज के व्यक्ति भी उनके पास अपनी समस्याएँ सुलझाने के लिए जाना उपयोगी नहीं समझते।

शिक्षक-अभिभावक-सम्पर्क की वृद्धि के निम्न साधन हैं—

१. अभिभावक-सम्मेलन। शाला के विद्यार्थियो के अभिभावको का वर्ष मे दो-तीन बार सम्मेलन अवश्य करना चाहिए। इन सम्मेलनो मे शाला के बालको द्वारा निर्मित वस्तुओ का प्रदर्शन किया जाना उपयोगी रहेगा। प्रदर्शनी के साथ-साथ अभिभावको को शाला के अन्य रचनात्मक, सामाजिक तथा सास्कृतिक कार्यक्रमो से भी परिचित कराना चाहिए।

इसके लिए सम्मेलनो मे विभिन्न रचनात्मक, सामाजिक तथा सास्कृतिक कार्यक्रम, जैसे उत्सव, नाटक, श्रमदान, विभिन्न प्रतियोगिताएँ आदि आयोजित किया जाना ठीक रहेगा। इससे अभिभावको को बालको के व्यवहार, अध्ययन, ऐच्छिक कार्यो का तो पता चलेगा ही, साथ-ही-साथ वे शाला की गतिविधियो से भी परिचित हो सकेंगे।

२ सरक्षक-समिति। विद्यार्थियो के अभिभावको मे से कुछ उत्साही तथा बुद्धिमान कार्यकर्ताओ को चुनकर एक सरक्षक-समिति का निर्माण किया जा सकता है। यह सरक्षक-समिति शाला के विकास के कार्यो में बड़ी सहायता प्रदान कर सकती है। शाला-पुस्तकालय मे पुस्तकों की कमी का दूर करना, शाला के विभिन्न आयोजनो के लिए उपयोगी आवश्यक सामान जुटाना,

अनुशासन रखने में योग देना, शाला मे उपस्थिति ठीक रखने मे सहायता देना आदि अनेक कार्यो मे यह सरक्षक-समिति बड़ी सहायक हो सकती है। इस समिति द्वारा शिक्षक समाज मे उपलब्ध साधनो का सरलता से तथा अच्छी तरह उपयोग कर सकते हैं।

३. विद्यार्थी-अभिलेख। बुनियादी शाला मे विद्यार्थी-अभिलेख भरे जाने चाहिएँ। इन विद्यार्थी-अभिलेखो मे बालको के सम्बन्ध मे विभिन्न प्रकार की जानकारी रहती है। विद्यार्थी-अभिलेख बालको की गतिविधियो से अभिभावको को अवगत कराने मे सहायक होते हैं।

४ शिक्षको का अभिभावको से व्यक्तिगत सम्पर्क। बुनियादी शाला के शिक्षको को समाज के सदस्यो, विशेषकर शाला के बालको के अभिभावको, से व्यक्तिगत सम्पर्क बनाए रखना चाहिए। इनसे उन्हे बालको के सम्बन्ध की, परिवार तथा समाज की गतिविधियो की जानकारी होती रहती है तथा अभिभावको को भी शाला-सम्बन्धी गतिविधियो का पता चलता रहता है। जानकारी तथा विचारो के इस प्रकार के आदान-प्रदान से न केवल बालक-सम्बन्धी विस्तृत जानकारी एक-दूसरे को होती है, वरन् बालक के उचित विकास के लिए आवश्यक निर्णय भी लिये जा सकते हैं। इससे बालक पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

५ रचनात्मक, सामाजिक तथा सास्कृतिक कार्यक्रमो के अवसरो पर अभिभावको को आमन्त्रित करना। बुनियादी शाला मे अनेक प्रकार के आयोजन समय-समय पर हुआ करते हैं। इन आयोजनो मे बालको के साथ-साथ उनके अभिभावको को भी बुलाना चाहिए। इससे अभिभावको को शाला की गतिविधियो से परिचय प्राप्त तो होता ही है, साथ-ही-साथ बालको के सम्बन्ध मे बातचीत करने के अवसर भी बिना किसी प्रयास के प्राप्त हो जाते हैं।

६. वालकों की भरती के समय अभिभावकों को बुलाना। वालक-वालिकाओं की भरती के समय उनके अभिभावकों को बुलाना वडा उपयोगी होता है। इस समय उनके साथ उदारता तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने से वे प्रसन्न रहते हैं; शाला के विकास में अपना पूर्ण सहयोग देने के लिए तत्पर रहते हैं। इससे उनसे परिचय भी होता है तथा वे अपने उत्तरदायित्व को समझने लगते हैं।

बुनियादी शालाओं की व्यवस्था तथा कार्य-प्रणाली कुछ ऐसी होती है कि शिक्षकों तथा अभिभावकों का अधिक-से-अधिक सहयोग तथा सम्पर्क प्राप्त हो जाता है। बुनियादी शाला की सफाई, सामाजिक, रचनात्मक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम, मूलोद्योग की गतिविधियाँ, सभी गाँव के कोने-कोने तक पहुँच जाती हैं। शाला के समाचार-पत्र, खेल-कूद के सामान, पुस्तकालय की पुस्तकें, इन सब के ग्राम-समाज के उपयोग में लाने की व्यवस्था बुनियादी शाला करती है। बुनियादी शाला के प्रबन्ध तथा संगठन में भी अभिभावकों का हाथ रहता है। इससे अभिभावकों की रुचि बुनियादी शालाओं के कार्यों में रहती है। बुनियादी शालाओं में प्रतिमाह, पक्ष या तिमाही में वालकों सम्बन्धी विवरण अभिभावकों के पास भेजा जाता है। इससे अभिभावकों को वालकों के विकास तथा उनकी गतिविधियों का पता चलता रहता है।

बुनियादी शाला तथा शिक्षक-अभिभावक सम्पर्क

बुनियादी शालाओं में अभिभावक-परिषद् की बैठकें भी समय-समय पर होती रहती हैं। इन परिषदों में शाला तथा स्थानीय स्थिति के अनुसार मूलोद्योग की नई योजनाएँ और कार्यक्रमों आदि के सम्बन्ध में विचार-विनिमय होता है।

शिक्षक-अभिभावक-सम्बन्ध तथा सम्पर्क घनिष्ठ करके वालकों का अधिक-से-अधिक हित तभी किया जा सकता है, जब कि शिक्षक तथा अभिभावक दोनों अपने कर्तव्यों का उचित रीति से पालन करें तथा दोनों

की रुचि शाला और समाज के कार्यो मे रहे । इसके लिए शिक्षकों तथा अभिभावको दोनो के लिए सचेष्ट रहना आवश्यक है ।

किसी भी शाला, विशेषत बुनियादी शाला, मे शाला के शिक्षको तथा अभिभावको मे घनिष्ठ सम्बन्ध तथा सहयोग आवश्यक है । बिना इस सहयोग के शाला की पर्याप्त उन्नति नही हो सकती ।

शाला के विकास के लिए नगर या गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्तियो तथा अभिभावकों के सहयोग से शाला-समिति का निर्माण किया जाता है । शाला-समिति के सदस्यो की सख्या गाँव या शहर की जन-सख्या पर निर्भर रहती है । शाला-समिति को अधिकृत रूप देने के लिए शाला इसके सदस्यो की नामावली को अपने अधिकारियो से अनुमोदित करा लेती है । इस समिति मे शाला की व्यवस्थापक सस्था, अभिभावको से चुने हुए, तथा शिक्षा-विभाग के सदस्य रहते है । इस समिति का मन्त्री शाला का अधि-पाठक होता है । शाला-समिति मे स्थानीय व्यक्ति ही सदस्य होते हैं ।

शाला-समिति

शाला-समिति की बैठक माह मे एक वार अवश्य होनी चाहिए । आवश्यकता पडने पर एक से अधिक वार भी बैठके हो सकती हैं ।

शाला-समिति के सदस्य व्यक्तिगत रूप से समय-समय पर शाला की कार्य-प्रणाली तथा गतिविधियो का निरीक्षण करके निरीक्षण-फल अंकित कर सकते हैं ।

शाला-समिति के सदस्यो की सामूहिक बैठक या व्यक्तिगत निरीक्षण का व्यौरा शाला के व्यवस्थापको के पास भेजा जाता है ।

शाला-समिति का कार्य-क्षेत्र निम्न होता है—

१ शाला-समिति शाला के लिए आवश्यक शैक्षणिक सुविधा तथा विकास के साधन जुटाने मे सहायक होती है ।

२ शाला मे जयती, दिवस या अन्य आयोजनो के अवसरो के समय खर्च तथा अन्य व्यवस्था करने मे सहायक होती है ।

३. शाला की हाज़िरी सुधारने तथा वर्ग-संख्या बढाने मे शाला-समिति

विशेष रूप से सहायक होती है, क्योकि इस समिति के सदस्य गाँव या नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति ही होते हैं। इसके प्रभाव से दर्ज-संख्या भी बढती है तथा हाजिरी भी सुधरती है।

४ शाला-समिति के सदस्य शाला की गतिविधियो तथा कार्य पर एक प्रकार का नियन्त्रण-सा रखते हैं। इससे शाला के विकास मे सहायता मिलती हैं।

५ शाला-समिति के सदस्य समय-समय पर शाला के शिक्षको तथा अभिभावक को स्थानीय आवश्यकताओं से अवगत कराते रहते हैं।

६. शाला-समिति शाला के व्यवस्थापको को भी समय-समय पर शाला की प्रगति तथा गतिविधियो से परिचित कराती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शाला-समिति यदि सुचारु रूप से कार्य करे तथा इसमे योग्य, प्रभावशाली, शिक्षा के प्रति रुचि रखने वाले व्यक्ति रहे तो शाला की प्रगति मे वह बडी सहायक हो सकती है।

शाला-समिति मे स्थानीय, प्रतिष्ठित व्यक्तियो के रहने से वस्तु-स्थिति की ठीक-ठीक जानकारी रखने तथा स्थानीय समस्याओ के निराकरण मे बडी सहायता मिलती है।

अध्याय ११

परीक्षा

मानव-जीवन मे परीक्षा तो प्राय प्रत्येक क्षण होती रहती है। जीवन का प्रत्येक कर्म अच्छी तरह करते जाना जीवन की परीक्षा मे उत्तीर्ण होना है। परीक्षा के अभाव मे हमारे पास अपने

आवश्यकता तथा महत्त्व

परिश्रम तथा सीखे हुए ज्ञान का मापदण्ड नही रहता। आजकल अनेक शिक्षा-शास्त्री वर्तमान परीक्षा-प्रणाली के दोषो के कारण इसे मूल्याकन भी कहने लगे है। परीक्षा को साध्य मानने के कारण ही उसमे अनेक दोष आ गए हैं। वास्तव में परीक्षा तो शिक्षा के उद्देश्यो की पूर्ति का साधन मात्र है। हमारे किये गए कार्यों के मूल्याकन के बिना हमारी प्रगति का ठीक-ठीक पता नहीं लग सकता। अपनी प्रगति के बोध तथा सन्तोष दोनो के लिए परीक्षा या मूल्याकन अत्यन्त आवश्यक है। अत हमारी बुनियादी तथा अन्य सभी प्राथमिक, माध्यमिक शालाओ मे ऐसी परीक्षा या मूल्याकन-विधि की आवश्यकता है जिसमे वर्तमान परीक्षा-प्रणाली के दोष न हो।

परीक्षा-प्रणाली बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है, किसी-न-किसी रूप मे यह प्रचलित रही है। चीन मे तो तीन या चार हज़ार वर्ष पूर्व भी बहुत ही विस्तृत परीक्षा-विधि अपनाई जाती थी। हमारे भारत मे भी विद्वानो के लिए शास्त्रार्थ तथा व्याख्या मे सफलता पाना आवश्यक था। रोम, यूनान तथा अन्य यूरोपीय देशो मे भी किसी-न-किसी रूप मे परीक्षा विद्यमान रही है। यूरोप में मध्यकाल मे विश्वविद्यालयो मे एम० ए० या डाक्टरी डिग्री (पी-एच. डी) प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था

कि व्यक्ति अपने लेख के विचारो का मौखिक प्रतिपादन विद्वानो तथा जनता के समक्ष सफलतापूर्वक करे। इस प्रकार प्राचीन काल मे मौखिक परीक्षा का ही चलन था, लिखित परीक्षाएँ तो बाद मे प्रचलित हुई। हमारे देश मे वर्तमान काल मे प्रचलित लिखित परीक्षाएँ तो अंग्रेजी शिक्षा की देन है।

बहुधा परीक्षा वर्ष के अन्त मे बालक की योग्यता तथा क्षमता आदि की जाँच करने के लिए ही ली जाती थी तथा आज भी अनेक शिक्षक इसका उपयोग इसी ध्येय से वर्गोन्नति के लिए करते है। पर परीक्षा के सम्बन्ध मे यह दृष्टिकोण बड़ा सीमित तथा संकुचित है। इसके विपरीत वर्तमान प्रगतिशील शिक्षा-शास्त्री परीक्षा को शैक्षणिक प्रक्रिया की जाँच तथा प्रगति का अन्दाजा लगाने के लिए आवश्यक मानते है तथा उनका कथन है कि बिना परीक्षा के प्रभावकारी शिक्षण सम्भव ही नही है। परीक्षा के निम्न उद्देश्य प्रमुख है—

परीक्षा के उद्देश्य

१. बहुधा प्रस्तावना, पुनरावलोकन या पढ़ाये गए अंश की बालको की जानकारी जानने के लिए पूछे गए प्रश्न दैनिक परीक्षा के रूप मे ही होते हैं। इनके बिना प्रभावकारी शिक्षण तो बडा कठिन तथा असम्भव-सा है। इस प्रकार दैनिक परीक्षा का प्रमुख उद्देश्य दैनिक शिक्षण को प्रभावपूर्ण तथा उपयोगी बनाना है।
२ परीक्षा बालको द्वारा अपनाई जाने वाली अध्ययन-विधियो को प्रभावित करती है, क्योकि शिक्षक द्वारा अपनाई जाने वाली परीक्षा-विधि के अनुसार ही बालक अध्ययन करते है। यदि शिक्षक मौखिक परीक्षा लेगा या नई परीक्षा-विधि अपनाएगा, तो बालक की अध्ययन-विधि निबन्ध-परीक्षा के समय की अध्ययन-विधि से भिन्न होगी।
३ परीक्षा बालको के लिए विचार-प्रदर्शन के अवसर प्रदान करती है। किसी भी पूर्णत. सीखने की प्रक्रिया मे प्रतिक्रिया का बड़ा

महत्त्व होता है। विना परीक्षा के वालको का सीखना केवल ग्रहण करने की क्रिया ही रहेगा। यदि हम चाहते है कि वालको ने जो कुछ सीखा है उसका समुचित उपयोग करें तो हमे परीक्षा के माध्यम से उन्हे सीखे ज्ञान का उपयोग अवश्य कराना चाहिए। वास्तव मे ज्ञान उपयोगी तथा पूर्ण तव तक नही हो सकता जव तक कि उसे उपयुक्त रूप से प्रदर्शित करने के अवसर न दिये जायँ। इस प्रकार परीक्षा वालक के सीखे ज्ञान को उचित रूप से प्रदर्शित करने के उचित तथा अच्छे माध्यम और साधन का कार्य करती है।

४ शिक्षण के समय सीखने की प्रक्रिया के दोषो का पता लगाने का कार्य भी परीक्षा करती है। न तो कोई शिक्षक पूर्ण होता है और न कोई वालक। अत गलतियाँ स्वाभाविक है। परीक्षा शिक्षा की गलतियो का पता लगाने मे सहायक होती है तथा सुधार की प्रेरणा देती है।

५ परीक्षा वालको को और अधिक अध्ययन करने के लिए प्रेरणा देने का कार्य भी करती है। प्रयोगो द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि वालको की परीक्षा वार-वार लेने से वे अधिक पढते है।

६ परीक्षाएँ वालको के प्रगति-पत्रक तथा अभिलेख भरने के आधार का निर्माण करती हैं। इसमे वालको के अभिभावको को वालक की प्रगति तथा विकास का पता चल जाता है।

७ सीखने की प्रक्रिया के सम्वन्ध मे जो प्रयोग किये गए है उनसे पता चला है कि सीखी हुई वहुत-सी वातो को व्यक्ति तथा वालक कुछ समय के वाद भूल जाते हैं। अत समय-समय पर सीखी वातो का पुनरावलोकन अवश्य होते रहना चाहिए। विभिन्न प्रकार की परीक्षाओ द्वारा यह कार्य अच्छी तरह हो जाता है।

८ वर्तमान प्रगतिशील शिक्षा-मनोविज्ञान ने भी किसी विषय को

पूर्ण रूप मे देखने को उसके अच्छी तरह समझने तथा अधिक याद रखने के लिए आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण माना है । वार्षिक परीक्षा बालको को किसी भी विषय का ज्ञान-खण्ड पूर्ण रूप मे देखने की ओर प्रेरित करती है । वार्षिक परीक्षा उन्हे विषय के विभिन्न ज्ञान-खण्डो के आपसी सम्बन्ध समझने के लिए भी प्रेरित करती है । अत दैनिक, पाक्षिक, त्रैमासिक, अर्ध-वार्षिक परीक्षा के साथ-साथ वार्षिक परीक्षा अति आवश्यक तथा महत्त्व-पूर्ण है । इसके साथ-साथ बालको की याद रखने की क्षमता मे भी विभिन्नता होती है । कोई बालक थोड़े समय तक कम जान-कारी रख पाते हैं तथा कोई बहुत अधिक समय तक अधिक जानकारी । अत. वार्षिक परीक्षा के आधार पर बालक का जो मूल्याकन किया जायगा वह अधिक प्रामाणिक होगा, क्योकि वार्षिक परीक्षा मे उन्ही बालको को अधिक सफलता प्राप्त होगी जो अधिक सामग्री को अधिक समय तक याद रख सकते हैं । इससे बालक के पूर्ण ज्ञान-खण्ड को समझने तथा याद रखने की क्षमता का अच्छी तरह सही-सही पता चल सकेगा । अत. वार्षिक परीक्षा इस दृष्टि से भी उपयोगी है ।

९ परीक्षा से यह भी पता चल जाता है कि बालक ने किसी पाठ्य-क्रम को सन्तोषजनक विधि से पूर्ण किया है या नही ।

१० परीक्षा बालक-बालिकाओं को पास होने पर उच्च कक्षा मे चढाने मे भी सहायक होती है ।

११. परीक्षा विद्यार्थियो के किसी विशेष कार्य या क्षेत्र के लिए चुनाव करने मे सहायक होती है ।

परीक्षा के प्रकार

परीक्षाओ का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जा सकता है । पर इनका निम्न प्रकार का वर्गीकरण सरल तथा उपयुक्त रहेगा—
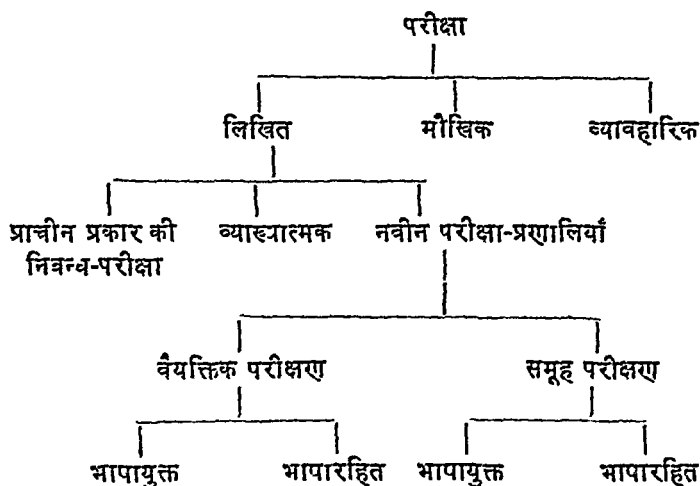
नवीन परीक्षा-प्रणालियो के अन्तर्गत उपलब्धि-परीक्षा, लक्षणसूचक परीक्षा, प्रगति का पूर्वाभास कराने वाली परीक्षाएँ (Prognostic Tests), धारणा-शक्ति-परीक्षा आदि आती हैं। इन विभिन्न प्रकार की नवीन परीक्षा-प्रणालियो से बालक की सही जाँच हो सकती है। इन परीक्षा-प्रणालियो मे बालक की विभिन्न शक्तियो की अलग-अलग जांच की जाती है। इनके द्वारा बालक के विभिन्न विकासो का मूल्यांकन या जांच भी की जाती है। इन परीक्षाओ को बुद्धिमापक परीक्षाएँ कहते हैं। इन बुद्धिमापक परीक्षाओ के अतिरिक्त शिक्षा-शास्त्रियो ने शारीरिक परीक्षा, व्यावसायिक निर्देशन-परीक्षा आदि की नई प्रणालियाँ भी तैयार की हैं। इनसे बालको के शारीरिक तथा किसी व्यवसाय के लिए आवश्यक योग्यता की जांच की जाती है। नवीन परीक्षा-प्रणालियां लिखित, मौखिक तथा व्यावहारिक तीनों प्रकार की हो सकती हैं। ये इन तीनों प्रकार की परीक्षाओ के विभिन्न रूप ही हैं।

मौखिक परीक्षा व्यक्तिगत होती है। यह लिखित परीक्षा से अधिक प्रभावशाली होती है। इसमे परीक्षा परीक्षार्थी के सम्मुख होती है, अत

यह सरलता से पता चल जाता है कि परीक्षार्थी को कितना ज्ञान है। पर मौखिक परीक्षा के व्यक्तिगत होने के कारण इसमे अधिक समय तथा परिश्रम व्यय होता है।

व्यावहारिक परीक्षा मे विद्यार्थी ने जो कौशल कार्य सीखा है उसीको या उसमे से कुछ को कराया जाता है, जैसे मूलोद्योग मे पूनी बनाना, कपास साफ करना, सूत कातना, लकड़ी का कोई सामान बनाना आदि।

परीक्षाओ का वर्गीकरण एक और दृष्टि से भी किया जा सकता है, जैसे (१) आन्तरिक परीक्षा तथा (२) बाह्य परीक्षा। आन्तरिक परीक्षा शाला या कक्षा मे शिक्षको द्वारा ली जाती है। बाह्य परीक्षा मे परीक्षक परीक्षार्थियो से किसी प्रकार से सम्बन्धित नही होते तथा ऐसे ही परीक्षक प्रश्न-पत्र तैयार करते हैं तथा उत्तर-पुस्तिकाओं या उत्तरो की जाँच करके उनका मूल्यांकन करते हैं। बाह्य या पब्लिक परीक्षाओ का महत्त्व अधिक रहता है तथा ये आन्तरिक परीक्षा-प्रणाली को भी अत्यधिक प्रभावित करती है।

परीक्षाओ का विभाजन दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक, वार्षिक आदि भी होता है। प्रस्तावना, पुनरावलोकन आदि के रूप मे पूछे गए प्रश्न दैनिक परीक्षा के ही रूप हैं। अनेक शालाओ मे साप्ताहिक परीक्षा प्रति शनिवार को होती है। इन शालाओ मे हर शनिवार को पढाए जाने वाले विषयो को क्रमवार विषय-परीक्षा के लिए पहले से निश्चित कर दिया जाता है। पर इस परीक्षा का सबसे बडा दोष यह है कि बालक सप्ताह मे होने वाले विषय का ही अध्ययन करते हैं तथा अन्य विषयो की ओर ध्यान नही देते।

प्राय: प्रत्येक शाला मे त्रैमासिक या अर्धवार्षिक परीक्षा सभी विषयो मे होती हैं। इन परीक्षाओ से बालको के पिछले तीन या छ माहो में की गई प्रगति का पता चल जाता है। शिक्षको तथा अभिभावको को भी इस बात का ज्ञान हो जाता है कि उनके प्रयत्न तथा परिश्रम का क्या फल हुआ। इन परीक्षाओ मे एक लाभ यह है कि त्रैमासिक या छमाही परीक्षा

मे पास होने वाला वालक यदि वीमारी या किसी कारण से वार्षिक परीक्षा मे किसी विषय मे परीक्षा न दे सके या कुछ नम्बरो से फेल हो जाय तो उसे इन त्रैमासिक तथा छमाही परीक्षाओ के परीक्षा-फल के आधार पर उत्तीर्ण किया जा सकता है।

वार्षिक परीक्षा का महत्त्व इन सव परीक्षाओ की अपेक्षा सबसे अधिक होता है। इस परीक्षा मे पास होने वाला वालक आगे की ऊँची कक्षा मे चढाया जाता है तथा फेल होने वाला उसी कक्षा मे साल-भर और पढ़ता है।

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली के दोष

१. वर्तमान परीक्षा-प्रणाली पाठ रटने पर अधिक ज़ोर देती है। वालक विना समझे विषय को रट लेते हैं तथा परीक्षा-कापी मे उगल देते हैं।
२ किसी वालक के एक ही उत्तर को यदि भिन्न-भिन्न परीक्षको से जँचवाया जाय तो उनके नम्बरो मे अन्तर तथा भिन्नता रहती है।
३ वर्तमान परीक्षा सामूहिक रूप से होती है, अत व्यक्तिगत विकास की जाँच के लिए इसमे कोई स्थान नही रहता।
४ वर्तमान परीक्षा पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित रहती है।
५ सयोग तथा योगायोग की प्रधानता रहने के कारण अनायास किसी वालक द्वारा पढे गए अश मे से अधिक तथा अन्य के पढे हुए अश मे से कम प्रश्न पूछे जाने की सम्भावना रहती है। इससे वालक के ज्ञान की सही जाँच नही हो पाती।
६ वर्तमान परीक्षाओ का शाला-कार्य पर वुरा प्रभाव पडता है। इससे सामूहिक, रचनात्मक तथा सास्कृतिक कार्यक्रमो की उपेक्षा होती है।
७ इन परीक्षाओ से उच्च गुणो तथा भावनाओ की जाँच तथा मूल्याकन अच्छी तरह नही किया जा सकता।

८. इन परीक्षाओ का प्रभाव बालको की मानसिक, नैतिक तथा शारीरिक स्थितियो पर बुरा पडता है ।
९ इन परीक्षाओ का जीवन की आवश्यकताओ से सामञ्जस्य नही रहता ।
१०. ये बालको को भाग्यवादी बनाती हैं ।
११ इनसे उपयुक्त विचार-शक्ति का विकास नही हो पाता ।

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली के दोषो को दूर करने के उपाय

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली के दोषो को दूर करने के लिए निम्न उपाय उपयोगी सिद्ध होंगे—

१. परीक्षा मे ऐसे प्रश्न कम-से-कम हो जो बालक की केवल रटने की शक्ति का ज्ञान कराएँ ।
२. नवीन परीक्षा या बुद्धिमापक परीक्षाओ का उपयोग भी आवश्यकतानुसार किया जाय ।
३. नवीन बुद्धिमापक परीक्षाओ के आधार पर 'हाँ नही', 'गलत काटो', 'खाली स्थान भरो', 'बहु-विधि वैकल्पिक' (Multiple Choice), 'सम्बन्ध जोडो' वाले प्रश्न (Matching Questions) आदि भी पूछे जाने चाहिएँ ।
४. परीक्षाओ मे लिखित, मौखिक तथा व्यावहारिक ज्ञान की जाँच के लिए स्थान दिया जाय ।
५. केवल लिखित परीक्षा के आधार पर ही किसी बालक को फेल न किया जाय । उसके साल-भर के कार्य, रुचि आदि का ध्यान रखकर उसे पास या फेल किया जाय ।
६ परीक्षा के प्रश्न पढाये गए अंश के केवल किसी एक भाग से न हो । जहाँ तक हो सभी पाठो से कुछ-न-कुछ पूछा जाय ।
७ परीक्षा पर कम महत्त्व दिया जाय । इससे बालक परीक्षा को भार-स्वरूप न समझेगा ।
८ परीक्षाएँ बालक के विकास मे सहायक होने योग्य बनाई जायँ ।

६ वार्षिक परीक्षाओ द्वारा वालक का मूल्याकन करते समय वालक के साल-भर के कार्य पर दिये गए नम्बर भी जोडने चाहिए। इसके लिए कुल के २० प्रतिशत नम्बर रखे जा सकते हैं।

डॉ० जाकिर हुसैन कमेटी ने वुनियादी शालाओ की परीक्षा के सम्बन्ध मे वुनियादी शिक्षा-विशेषज्ञो की एक समिति द्वारा कुछ चुनी हुई शालाओ के वालको की प्रगति के आधार पर एक माप-दण्ड वनाकर वुनियादी शालाओ के वालको की जाँच का सुझाव दिया है। साथ-ही-साथ जाकिर हुसैन कमेटी ने वालक के साल-भर के शाला-कार्य के लेखे को भी परीक्षा का आधार मानने का सुझाव दिया है।

बुनियादी शिक्षा और परीक्षा

उपरोक्त सुझावो के अनुसार परीक्षा लेने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक वालक की दैनिक तथा मासिक प्रगति का अच्छी तरह सावधानी-पूर्वक लेखा रखें। वालक के प्रगति के लेखे मे वालक की मूलोद्योग कार्य मे प्रगति, जैसे सूत कातने की प्रतिमाह गति, सूत का अक, वर्ष के आरम्भ से अन्त तक कैसा रहा, समाज-सेवा तथा सास्कृतिक कार्यो मे उसका सहयोग, शाला मे उपस्थिति के दिन आदि का पूर्ण विवरण होना चाहिए। कभी-कभी किसी-किसी वालक का मन मूलोद्योग की क्रियाओ मे नही लगता। ऐसे वालक की व्यावसायिक निर्देशन-परीक्षा लेकर वालक के योग्य व्यवसाय या उद्योग का पता लगाकर उसका मार्ग-प्रदर्शन करना चाहिए।

इस तरह हम देखते हैं कि वुनियादी शाला मे केवल पुस्तकीय ज्ञान पर वल नही दिया जाता। वुनियादी शाला मे तो वालक अपने अर्जित ज्ञान का जो प्रयोग कर सकने की कामना रखता है, उस पर अधिक वल दिया जाता है। पर इसकी जानकारी परीक्षा के दो या तीन घण्टो मे ही होना सम्भव नही है। अत. वुनियादी शालाएँ वालक के प्रतिदिन के विकास की यथार्थ जानकारी सुवह से शाम तक वालको के निकट सम्पर्क मे रहकर करती हैं। शिक्षको द्वारा वालक के निकट सम्पर्क से प्राप्त जानकारी ही वालको की सच्ची परीक्षा है।

खण्ड २

बुनियादी शिक्षा में
विभिन्न विषयों का शिक्षण

अध्याय १

मूलोद्योग शिक्षण-विधि

शिक्षा एक विशेष प्रकार की क्रिया ही है। बालक लिखता है, शिक्षक उसके लिखने को देखकर आवश्यकतानुसार सुधार का सुझाव देता है। बालक पढता है, आवश्यकतानुसार शिक्षक उसमे सुधार कराता है। यही बात अन्य सभी बातो के लिए लागू होती है। बालक क्रिया करता है तथा शिक्षक, कुटुम्बी, पडोसी, पुस्तक, अखबार आदि उसे सही रास्ता बतलाते हैं। बालक क्रियाशील रहता है। बालक की इस क्रियाशीलता का उचित उपयोग करके ही उसका समुचित विकास किया जा सकता है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को समाज के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र मे उचित स्थान के योग्य बनाना है। इसीलिए वर्तमान शिक्षा मे सामाजिक शिक्षा का स्थान महत्त्वपूर्ण हो गया है। सामाजिक शिक्षा मे समाज-सेवा, सहयोग और सहकारिता के सिद्धान्तो ने बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान पा लिया है। समाज-सेवा, सहकारिता आदि के सिद्धान्त क्रिया द्वारा ही अधिकतर सफलता से सीखे जा सकते है। इनका क्रियात्मक रूप ही बालको की वास्तविक सच्ची शिक्षा होगी। केवल किताबी ज्ञान के आधार पर ही हम यह नही कह सकते कि बालको में सहकारिता तथा समाज-सेवा की भावना भर गई है। ये तो इस प्रकार के जीवन बिताने के अवसर देकर ही सिखाए जा सकते हैं। इस प्रकार क्रिया द्वारा शिक्षा बडी उपयोगी होती है। क्रिया या कार्य द्वारा शिक्षा का सिद्धान्त तो बड़ा पुराना है तथा प्राचीन काल से ही अनेक पूर्वी तथा पाश्चात्य शिक्षा-शास्त्री बालक की क्रियाशीलता का समुचित उपयोग करने के लिए कहते आए हैं। प्रकृति-

पर्यवेक्षण, मान्टेसरी, गेरी, डाल्टन, किंडर गार्टन, खेल, योजना, समस्या आदि अनेक विधियाँ क्रिया या कार्य के द्वारा शिक्षा पर बल देती हैं। हमारी बुनियादी शिक्षा में भी उद्योग तथा जीवन के ठोस कार्यों के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। अन्य पाश्चात्य शिक्षण-विधियो से बुनियादी शिक्षा केवल इस रूप मे भिन्न है कि इसमे केवल उद्योग तथा जीवन को ठोस परिस्थितियो से सम्बन्धित कार्य या क्रियाएं ही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं तथा अन्य शिक्षण-विधियो मे सभी प्रकार के कार्य। बुनियादी शिक्षा मे उद्योग भी उत्पादक होना आवश्यक है। हमारी बुनियादी शिक्षा मे लाभकारी उत्पादक उद्योग तथा जीवन के ठोस कार्य वालक की शिक्षा का माध्यम होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि उद्योग तथा जीवन के ठोस कार्यो का बुनियादी शिक्षा मे वड़ा महत्त्व है।

उद्योग-शिक्षण का महत्त्व

वालको का सोचना-विचारना ठोस वस्तुओ के माध्यम या आधार के रूप मे ही होता है। वालक जव स्वयं अपने मन मे स्थित वस्तु के आकार या मूर्ति के अनुसार किसी वस्तु को बनाता है तभी उसके उस वस्तु या मूर्ति-सम्बन्धी विचार स्पष्ट होते हैं। उद्योग द्वारा वालक का अपने भावो तथा विचारो का प्रदर्शन उसकी रचनात्मक तथा प्रयोग करने की शक्ति का विकास करता है तथा उसकी तत्सम्बन्धी प्रवृत्तियो को तुष्टि के अवसर प्रदान करता है। इसलिए उद्योग या कार्य मे रुचि रखना वालको के लिए वड़ा स्वाभाविक है। जिस प्रकार वालको के लिए वौद्धिक, नाट्य-सम्बन्धी तथा सामाजिक जीवन-सम्बन्धी अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार उनके लिए हाथ-सम्बन्धी अभिव्यक्ति भी आवश्यक है। अत शिक्षा मे उद्योग का वड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। वालको का शिक्षा-पाठ्यक्रम अनुभव की पूर्णता के रूप मे ही होना चाहिए। यह उद्योग तथा अन्य विषयो के केन्द्रीकरण तथा समवाय से ही सम्भव है। अत यदि हम किसी भी शिक्षा के पाठ्यक्रम से अधिक-से-अधिक लाभान्वित होना चाहते हैं, तो अन्य विषयो का अधिक-से-अधिक

सम्बन्ध या समवाय उद्योग से करना चाहिए, क्योंकि क्लिष्ट तथा आदर्श विचारो को यथार्थ तथा सप्राण बनाने की सबसे अच्छी विधि हाथ की सहायता से उनका आकार तथा रूप बदलना ही है।

बालक कार्य द्वारा ही सब-कुछ सीखना चाहता है। बालक कार्य पहले करते है तथा सोचते बाद मे है। प्रौढ सोचते पहले हैं तथा कार्य बाद मे करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बालको के लिए कार्य या उद्योग की शिक्षा आवश्यक है। ज्यो-ज्यो हम नये कार्य करते हैं, उनसे हमारे मस्तिष्क मे नये केन्द्र सजग होते हैं तथा स्नायुओ के बीच नये मार्ग खुलते जाते हैं। साथ-ही-साथ मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न केन्द्रो मे अधिक दृढ तथा स्पष्ट सम्बन्ध भी हो जाता है। अत मस्तिष्क के उचित विकास के लिए भी उद्योग-शिक्षण आवश्यक है।

उद्योग का मनोवैज्ञानिक महत्त्व

हमारे मस्तिष्क का विकास गतिवाही तथा ज्ञानवाही केन्द्रो के आपसी सम्बन्ध पर निर्भर रहता है। शारीरिक कार्य इन केन्द्रो को उन्नत बनाता है। इसलिए यदि उद्योग या कार्य की शिक्षा दी जाय तो मस्तिष्क तीक्ष्ण और सन्तुलित होता है। कुछ मनोविज्ञान-शास्त्रियो (स्पेन्सर आदि) का कथन है कि बालको की क्रियाशीलता उनकी अधिक तथा अतिरिक्त शक्ति (Energy) बतलाती है। इस अतिरिक्त शक्ति का उचित उपयोग उद्योग-शिक्षण द्वारा किया जा सकता है।

कार्य या उद्योग द्वारा शिक्षण मे बालक की मूल प्रवृत्तियो का उचित विकास होता है। बुनियादी शाला मे बालक सूत कातते-कातते दूसरे से अधिक तथा अच्छा कातने मे, आगे बढने की कोशिश करने मे, अपनी 'प्रतियोगिता-प्रवृत्ति' तथा 'आत्म-प्रदर्शन' की भावनाओ को सन्तुष्ट करता है। तकली, कपास, धागा, रुई, कपडे आदि के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त करने मे बालक 'जिज्ञासा-प्रवृत्ति' को सन्तुष्ट करता है। अपने द्वारा बनाई गई वस्तुओ को वह इकट्ठा करके रखता है, इस तरह 'सचय-प्रवृत्ति' को सन्तुष्ट करता है। वस्तुओ का निर्माण करने मे तो 'रचनात्मक प्रवृत्ति' तुष्ट

होती ही है। इस प्रकार हम देखते है कि बुनियादी शालाओं मे मूलोद्योग द्वारा शिक्षण पूर्ण मनोवैज्ञानिक है।

कुछ वैज्ञानिक, जैसे कार्लग्रूस आदि, का कहना है कि खेल बालको को भविष्य-जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तैयार करता है। अतः खेल या कार्य तथा उद्योग द्वारा शिक्षा बालको को भावी जीवन के लिए तैयार करती है। बुनियादी शिक्षा उद्योग द्वारा भावी जीवन की तैयारी का स्वाभाविक तरीका है।

उद्योग या कार्य या खेल द्वारा शिक्षा सामूहिक मनोविज्ञान की दृष्टि से भी उपयुक्त रहती है। उद्योग या खेल मे क्रिया करते समय बालक सबके साथ मिलकर कार्य करता है। इसमे एक-दूसरे का अनुकरण तथा दूसरो के प्रति सहानुभूति-प्रदर्शन भी होता है।

बालक की प्रवृत्तियों तथा दृष्टिकोण के वांछित परिवर्तन को देखकर ही शिक्षक प्रसन्न होता है। यही शिक्षा का उद्देश्य भी होता है। उद्योग या कार्य के प्रति बालक की निष्ठा तो बहुत महत्त्वपूर्ण है ही, पर उसका कार्य के प्रति दृष्टिकोण तथा प्रवृत्ति भी महत्त्वपूर्ण है। बालक के कार्य के प्रति दृष्टिकोण से हमे उसके व्यक्तित्व के विकास-सम्बन्धी अनेक बातो का पता सहज ही चल जाता है। अत. उद्योग-शिक्षण तथा उद्योग के माध्यम से शिक्षण द्वारा कार्य, कार्य के साधन, कार्यकर्त्ता तथा आवश्यक कार्य-काल के प्रति वांछित दृष्टिकोण का विकास करना उद्योग-शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। वास्तव मे उद्योग इन सबके प्रति उचित तथा वांछित दृष्टिकोण के विकास मे सहायक होता है।

व्यक्ति जाति की सभ्यता तथा संस्कृति का प्रतीक है। उसे सभ्यता तथा संस्कृति उत्तराधिकार के रूप मे मिलती है। इस सभ्यता तथा संस्कृति की उन्नति करना आवश्यक है तथा इसके लिए हमारी शिक्षा-पद्धति व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक होनी चाहिए। इसके लिए प्रत्यक्ष क्रिया, निरी-क्षण, परीक्षण और प्रयोग ही उत्तम आधार माने

सांस्कृतिक तथा सामाजिक महत्त्व

गए हैं। व्यक्ति को उत्तम तथा प्रभावशाली सामाजिक प्राणी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि शालाओ मे उसे सामाजिक प्राणी की भाँति शिक्षा दी जाय। उसे जनतत्र मे स्वायत्त शासन के नियमो का अच्छा ज्ञान एव अभ्यास होना चाहिए। इसके लिए शाला मे प्रत्यक्ष क्रिया द्वारा मत्रिमण्डल का निर्माण कराया जाय तथा स्वायत्त शासन-सम्बन्धी अन्य सभी सस्थाओ का प्रत्यक्ष ज्ञान दिया जाय। इस व्यक्ति की लोकतत्रीय शासन मे उचित शिक्षा के लिए कार्य या क्रिया द्वारा शिक्षण आवश्यक है। ये क्रियाएँ एक व्यवस्थित समाज की वास्तविक समस्याओ मे सम्बन्धित होनी चाहिएँ, तभी ये बालको मे सहयोग, अनुशासन, व्यवस्था, योजना आदि की भावनाएँ भर सकेंगी। हमारी बुनियादी शालाएं सामाजिक कार्यो पर बल देती हैं तथा समाज के अनुरूप होकर उसके पुनर्निर्माण का प्रयत्न करती हैं। बुनियादी शालाओ में बालक अपने समाज की समस्याओ के हल सोचते हैं। इस तरह वे बाहर के भावी जीवन की समस्याओ के समाधान ढूंढने का प्रशिक्षण आप-ही-आप पा लेते हैं। यहाँ के उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन द्वारा उन्हे उत्तरदायित्व वहन करने का प्रशिक्षण भी मिलता है। यहाँ खेल-कूद, नृत्य-सगीत और अन्य सामाजिक, धार्मिक तथा सास्कृतिक कार्य-क्रम स्वाभाविक रूप से चलते हैं। अत शाला के बालको मे सहयोग से कार्य करने तथा व्यक्तिगत और सामाजिक सफाई की आदतो तथा विचारो के विकास के अवसर भी मिलते हैं। इस प्रकार समाज-सेवा की भावना भर-कर बुनियादी शालाएं कार्य या उद्योग के द्वारा शिक्षा देकर उचित सामाजिक तथा सास्कृतिक विकास मे सहायक होती हैं।

प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री मारिसन ने अपनी पुस्तक 'बेसिक प्रिंसिपल्स इन एजूकेशन' मे लिखा है कि "मनुष्य के पास एक उचित प्रकार का मस्तिष्क है, किन्तु वह मस्तिष्क इसलिए है कि ईश्वर ने वाणी तथा हाथ जैसी शान-दार वस्तुएँ भी दी हैं।" वास्तव मे मस्तिष्क के विकास मे हाथ का बड़ा महत्त्व है। हमारी सभ्यता तथा सस्कृति के विकास मे मस्तिष्क का स्वप्न हाथो ने ही साकार किया है।

उद्योग की या उद्योग द्वारा शिक्षा वालक, शाला तथा समाज को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्वी वनाने मे भी सहायक होती है। यह दूसरी वात है कि यह स्वावलम्वन कुछ अगो मे ही हो।

आर्थिक महत्त्व अत· भारत-जैसे गरीव तथा विकसित होने वाले देश के लिए उद्योग-शिक्षण वडा उपयोगी तथा आवश्यक है। वास्तव मे यदि कर्म लगन, कुशलता तथा वैज्ञानिक ढग से किया जाय तो कार्य तथा उद्योग मे वालको की कुशलता भी वढेगी तथा आर्थिक दृष्टि से शाला को भी लाभ होगा। क्रिया तथा उद्योग पर आधारित गाधीजी की वुनियादी शिक्षा का आर्थिक आधार शिक्षा के स्वावलम्वी स्वरूप से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। क्रिया तथा उद्योग की शिक्षा द्वारा कौशल प्राप्त करके वालक भावी जीवन के लिए भी उदर-पूर्ति कर सकने योग्य वन सकते हैं।

उद्योग की शिक्षा ग्रामोद्योग का पुनर्निर्माण भी करती है। इससे वालको की कार्य-कुशलता भी वढती है। इस तरह उद्योग की तथा उद्योग द्वारा शिक्षा राष्ट्र के निर्माण मे वहुत ही महत्त्वपूर्ण योग देती है।

उद्योग की शिक्षा श्रम के प्रति आदर उत्पन्न करके ग्राम-सुधार मे भी सहायक होती है। फलस्वरूप गाँव की उन्नति सरलता से की जा सकती है।

उद्योग की शिक्षा आलस्य को दूर करती है और वालको मे अधिक देर तक कार्य करने की क्षमता उत्पन्न करती है। इससे वे आवश्यकता पडने पर अधिक कार्य कर सकते है। अधिक कार्य करने की आदत से वे उत्पादन भी अधिक कर सकते हैं। इस प्रकार उद्योग की तथा उद्योग द्वारा शिक्षा आर्थिक दृष्टि से भी वालको को स्वावलम्वी वनाने का प्रशिक्षण देती है।

उद्योग मे वालको को अनेक कार्य या क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। इनसे उनकी शारीरिक शक्ति तथा क्षमता का विकास होता है। उद्योग के कार्य करते समय वालक समन्वित, वचत वाली या मितव्ययिता की तथा लय-

अन्य महत्त्व शारीरिक क्षमता का विकास

युक्त क्रियाएँ करते हैं। यह साधारण शारीरिक शिक्षण की एक विधि ही है। पर शिक्षक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालक उद्योग-कार्य करते-करते आवश्यकता से अधिक न थकें। बहुधा लकडी का कार्य तथा बुनाई करते-करते आँखें थक जाती हैं, अत इसका ध्यान रखना चाहिए।

मानसिक योग्यताओ का विकास

उद्योग का कार्य करने के लिए पूर्व-विचार तथा पूर्व-नियोजन आवश्यक रहते हैं। उद्योग करते समय उसे हमेशा अच्छे-बुरे तथा उपयोगी-अनुपयोगी की पहचान करनी पडती है। वस्तु का चुनाव, रग करना, बनाना, आकार देना, विधि आदि सभी बातो मे उसे उपयोगी चुनाव करना आवश्यक रहता है। शिक्षक का कार्य तो बालक की रुचि को कार्य मे रखने तथा बढाने का ही होता है। वह बालक को सरल क्रियाओ से कठिन क्रियाओ तथा कार्यों की ओर ले जाता है। हम यह जानते हैं कि कच्चे माल का उपयोग या औज़ार चलाना मात्र सिखाना ही उद्योग-शिक्षण नहीं है। यह पहले कभी उद्योग-शिक्षण का ध्येय रहा हो, पर वर्तमान काल मे तो उद्योग-शिक्षण अनेक प्रकार के नये ज्ञान का रास्ता बालक के सामने प्रस्तुत करता है। इसीलिए वर्तमान काल मे उद्योग या कार्य के माध्यम से अन्य विषयो के शिक्षण पर बल दिया जाता है। हमारी बुनियादी शिक्षा मे भी यही कल्पना की गई है।

अनेक प्रकार के कौशल का विकास

उद्योग की शिक्षा से बालक अनेक प्रकार के आधारभूत उपयोगी कौशल प्राप्त करता है। किसी कार्य या उद्योग को करते समय बालको को निम्न कार्य आवश्यक रूप से करने पडते हैं—

१ कच्चे माल को उपयोगी वस्तुओ मे परिणत करना, २ इन वस्तुओ को सजाना, ३ इन वस्तुओ से नई विधियाँ तथा नई प्रक्रियाओ का

ज्ञान प्राप्त करना। इनकी प्राप्ति के लिए बालकों को अनेक कौशल प्राप्त करने पड़ते हैं, जैसे मोड़ना, काटना, चिपकाना, रँगना, सीना, धोना, सजाना, पीटना, ठोकना आदि। इनके सहायक कौशल तो अनेक हो सकते हैं।

उद्योग-शिक्षण के उद्देश्य

गांधीजी ने कहा है कि "मैं शिक्षा का आरम्भ कार्य से करना चाहूँगा।" वास्तव मे बालक की शिक्षा का आरम्भ तभी होता है जब वह हाथ से कुछ करता है। उद्योग द्वारा शिक्षण शिक्षा की स्वाभाविक, मनोरंजक तथा आनन्द-दायिनी विधि है। हमारी बुनियादी शालाओं मे इसीलिए उद्योग के आधार से शिक्षा देने की कल्पना की गई है। उद्योग-शिक्षण के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं—

१. हाथ से काम करने के प्रति उचित दृष्टिकोण तथा रुचि का विकास करना।
२. शारीरिक श्रम के प्रति आदर की भावना का विकास करना।
३. समाज मे श्रमजीवी तथा बुद्धिजीवी का भेद-भाव मिटाना।
४. आत्म-निर्भरता, लगन, धैर्य तथा आत्म-विश्वास का विकास करना।
५. बालकों मे कलात्मक रुचि का विकास करना।
६. बालकों में सफाई तथा स्वच्छता से विधिवत् कार्य करने की आदतों का निर्माण करना।
७. बालकों मे गृह-उद्योगों तथा माता-पिता के उद्योगों से निकट सम्पर्क बनाए रखने की भावना का विकास करना।
८. बालकों मे बाह्य वातावरण तथा परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की क्षमता का विकास करना।
९. बालकों की शारीरिक तथा बौद्धिक शक्तियों का विकास करना।
१०. बालकों में दूसरों पर आश्रित न रहकर स्वावलम्बी बनने की क्षमता का विकास करना।

११ बालकों मे पुरुषार्थ तथा सदाचार का विकास करके उनके व्यक्तित्व का उचित निर्माण करना।

बुनियादी शिक्षा मे समाज मे प्रचलित उत्पादक मूलोद्योग तथा जीवन की ठोस क्रियाओ और कार्यो के आधार पर ही सभी ज्ञान दिया जाता है।

बुनियादी शिक्षा मे उद्योग

मानव की निम्न तीन आवश्यकताएँ प्रमुख होती हैं—(१) भोजन, (२) वस्त्र, तथा (३) आश्रय या घर। इन तीनो आवश्यकताओ मे भोजन की आवश्यकता बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योकि बिना वस्त्र तथा आश्रय के प्राणी जीवन-यापन कर सकता है, पर भोजन के बिना वह कुछ दिन तक ही जीवित रह सकेगा। बिना भोजन के वस्त्र तथा आश्रय उपयोगी सिद्ध नही हो सकते। भोजन की आवश्यकता कृषि से पूर्ण होती है। अत कृषि-उद्योग का स्थान बुनियादी शिक्षा मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। हमारा देश कृषि-प्रधान देश भी है। देश की लगभग ७५ प्रतिशत जनता कृषि-उद्योग ही करती है तथा गाँवो मे रहती है। इस दृष्टि से भी कृषि-उद्योग हमारे देश की बुनियादी शिक्षा मे बडा महत्त्वपूर्ण है।

हमारी भोजन की आवश्यकता की पूर्ति होने पर वस्त्र की आवश्यकता का ध्यान आता है। मानव-सभ्यता के विकास पर जब हम दृष्टि डालते है तो हमे पता चलता है कि प्रारम्भ मे मानव ने अपनी भूख मिटाने के ही प्रयत्न किये। कालान्तर मे उसने भोजन के लिए मारे गए जानवरो के चमडे तथा पेडो की छाल और पत्तो से अपना तन पानी, ठण्ड और गरमी से बचाने के लिए ढकना सीखा। भोजन और वस्त्रो की आवश्यकताओ की पूर्ति के बाद ही उसने आश्रय या घर की आवश्यकताओ की पूर्ति की व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। अत वस्त्र-उद्योग का स्थान दूसरा तथा आश्रय या घर की आवश्यकता-पूर्ति के उद्योग का स्थान तीसरा है। इस प्रकार मानव की मूलभूत आवश्यकताओ के आधार पर बुनियादी शिक्षा-योजना मे प्रारम्भ मे तीन उद्योग—(१) कृषि, (२) कताई-बुनाई तथा

(३) लकड़ी-लोहे आदि का काम—सम्मिलित किये गए थे। ये तीनो उद्योग उत्पादन-सरलता, सुबोधता, शैक्षणिक सम्भावनाओ आदि सभी की दृष्टि से उपयुक्त सिद्ध हुए हैं। पर बालको की क्षमता, सुबोधता, सुगमता, सरजाम जुटाने आदि की सुविधा के दृष्टिकोण से भी उद्योग का विचार करना आवश्यक है।

(क) कृषि—मानव-जीवन की सर्वप्रथम आवश्यकता, भोजन की पूर्ति के लिए कृषि-उद्योग बड़े महत्त्व का है। इस उद्योग के अन्तर्गत हल चलाना, खोदना, गुडाई, निराई, पानी सीचना, फसल की बुआई-कटाई आदि क्रियाएँ आती हैं। कृषि की क्रियाएँ करने के लिए बैल, हल, भूमि आदि की व्यवस्था करना भी आवश्यक है। यदि इन सब आवश्यक वस्तुओ की उचित व्यवस्था कर भी ली जाय, तो प्राथमिक शालाओं के बालक, जिनकी आयु ६ से १० वर्ष के बीच होती है, कृषि-उद्योग की केवल कुछ सरल क्रियाओ मे ही सहायक हो सकते हैं। वे अपने-आप स्वावलम्बी होकर इस उद्योग की सभी क्रियाओ को नही कर सकते, क्योंकि इनके लिए शक्ति तथा मानसिक विकास भी आवश्यक रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कृषि-उद्योग तो सीनियर बेसिक शालाओ की उच्च कक्षा के बालको के लिए ही उपयुक्त हो सकता है।

(ख) कताई-बुनाई—हमारी दूसरी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता को पूर्ण करने वाला वस्त्र-उद्योग (कताई-बुनाई) बालको की दृष्टि से कृषि या अन्य उद्योगो की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक तथा उपयोगी है, इसलिए गाधीजी ने भी कताई-बुनाई उद्योग पर अधिक बल दिया। इस उद्योग की व्यवस्था करने तथा साधन जुटाने मे भी अधिक व्यय तथा परिश्रम नही लगता। गाधीजी ने कातने के उद्योग की उपयोगिता तथा महत्त्व प्रदर्शित करते हुए कहा है कि "हमने जिन दस्तकारियो की शोध की है उनमे एक तकली की भी दस्तकारी है और वह युगो से चली आ रही है। प्राचीन काल मे हमारा तमाम कपडा तकली के ही सूत का बनता था। चरखा तो पीछे आया। फिर बढिया-से-बढिया अंक का सूत चरखे पर कत भी नही

सकता, इसलिए हमे पुन तकली की शरण लेनी पडी। तकली ने मनुष्य की अन्वेषणात्मक बुद्धि को उस ऊँचाई तक पहुँचा दिया, जिस ऊँचाई तक वह पहले कभी नही पहुँची थी। उसमे उँगलियो की कार्य-कुशलता का सर्वश्रेष्ठ उपयोग हुआ।..."

गाधीजी ने कई बार तथा विभिन्न अवसरो पर तकली तथा कताई के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त किये है। उनमे से कुछ निम्न है—

१ "तकली बच्चो का एक काफी अच्छा खिलौना है। चूंकि यह उत्पादक खिलौना है, इसलिए यह नही कहा जा सकता कि यह खिलौना नही है या खिलौने से किसी तरह कम है।"

२. "मैंने जो खासकर तकली का उदाहरण दिया है, वह इसलिए कि इसकी शक्ति और इसका अद्भुत पराक्रम मैंने देखा है, और एक कारण यह भी है कि वस्त्र-निर्माण की दस्तकारी ही एक ऐसी चीज है जो हर जगह सिखाई जा सकती है। तकली पर कुछ खर्च भी नही होता।"

३ "कताई मे मनुष्य की सारी शिक्षा समाई हुई है, जो किसी दूसरी दस्तकारी मे नही मिलेगी।"

४. "अगर हमे ग्राम-जीवन का पुनरुद्धार और पुर्ननिर्माण करना है तो हमे बच्चो की शिक्षा का श्रीगणेश तकली मे ही करना चाहिए।"

इस प्रकार हम देखते है कि महात्मा गाधी ने भी तकली मे कताई को सबसे अधिक उपयोगी तथा सुविधाजनक उद्योग माना है। यही कारण है कि बुनियादी शालाओ मे प्राय कताई-बुनाई उद्योग चुने जाते है। कुछ लोगो को इसमे बडा एतराज है। उनका कथन है कि देश तथा समाज की परिस्थितियो को देखते हुए केवल कताई-बुनाई को ही महत्त्व देना उपयोगी नही है। मैं उनके विचारो से सहमत हूँ, पर कताई-बुनाई उद्योग से प्रारम्भ करने मे ही सुविधा अधिक रहती है।

(ग) लोहे-लकडी का उद्योग—इसके अन्तर्गत लोहा, लकडी, बांस

आदि के उद्योग सम्बन्धी बाते ही आती हैं, पर हमे यह तो मानना ही पड़ेगा कि लकड़ी तथा लोहे के कार्य कठिन, असुविधाजनक तथा बहुत ही अधिक प्राविधानिक (Technical) होते है। छोटी आयु के बालक मे इतनी शक्ति तथा क्षमता नही होती कि वह इनसे सम्बन्धित ठोकने, पीटने, काटने, सीध मिलाने, सतह बराबर करने की क्रियाएँ सरलता से कर सके। साथ ही इन उद्योगो मे तेज़, पैने या बहुत भारी औज़ार भी उपयोग मे लाए जाते हैं। इनका अच्छा उपयोग भी बडी आयु तथा बुद्धि वाला बालक ही कर सकता है। इन पर व्यय भी बहुत अधिक करना पड़ता है। अत- हम यह कह सकते हैं कि ये उद्योग सामान्य शालाओ की दृष्टि से अधिक उपयोगी नही है। हाँ, कुछ शालाओ मे इन्हे विशेष रूप से चलाया जा सकता है।

इस प्रकार ज़ाकिर हुसैन समिति ने ये तीन उद्योग प्रमुख रूप से मान्य किये थे। अब तो प्रमुख उद्योगो के सम्बन्ध मे शोध-कार्य भी किया गया है तथा फलस्वरूप सुविधा, शैक्षणिक सम्भावनाओ आदि का विचार करके कुछ और उद्योगो को भी मान्यता दी गई है, जैसे (१) कागज या पट्ठे का काम, (२) तेल पेरने का उद्योग, (३) गुड बनाने का उद्योग, (४) गो-पालन, (५) मछली-पालन, (६) मधुमक्खी पालन, और (७) दरजीगिरी।

इन प्रमुख उद्योगो के सिवाय कुछ गौण उद्योगो के रूप मे भी बुनियादी शालाओ मे कुछ उद्योगो को चलाया जाता है, जैसे बागबानी आदि। वास्तव मे बुनियादी शालाओं तथा प्रशिक्षण-विद्यालयो मे कुछ गौण उद्योगो का होना बडा आवश्यक है। गौण उद्योग वास्तव मे मूलोद्योग के सच्चे सहायक, उसकी कार्यक्षमता बढाने वाले तथा उससे सम्बन्धित ही होने चाहिएँ। कताई-बुनाई के साथ-साथ ब्लीचिंग, रँगाई, छपाई तथा सिलाई आदि गौण उद्योगो के रूप मे प्रारम्भ किये जा सकते है। लकडी का मामूली प्रकार का कार्य भी गौण उद्योग के रूप मे प्रारम्भ किया जा सकता है। इससे आवश्यकतानुसार मूलोद्योग के औजारो का छोटा-मोटा

मरम्मत का काम किया जा सकेगा। इस प्रकार के गौण उद्योग के न होने से मूलोद्योग के कार्य मे बडी रुकावट आती है, क्योंकि मूलोद्योग के औज़ार बिना मरम्मत के पडे रहते हैं तथा कुछ समय बाद और भी खराब हो जाते हैं।

हमें उद्योगो के प्रश्न को एक और दृष्टिकोण से भी देखना है। आज हमारा भारत प्रमुखत कृषि-प्रधान ही है, पर धीरे-धीरे यहाँ औद्योगीकरण बढता जा रहा है। बिजली, सिंचाई, फौलाद-उत्पादन आदि की अनेक बडी-बडी योजनाएँ कार्यान्वित की गई है और की जा रही हैं। इनसे हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था, हमारे जीवन तथा आदतो मे बडे-बडे परिवर्तन होगे। गाँव-गाँव मे बिजली की पहुँच होने पर कृषि तथा कुटीर-उद्योगो की प्रक्रियाओ मे भी बडे परिवर्तन होगे, क्योंकि मशीनें तथा बिजली के उपयोग से उनके वर्तमान स्वरूप मे भी अनेक परिवर्तन हो जायंगे। डॉ० श्रीमाली ने कहा है, "जब देहातो मे बिजली पहुँच जायगी तो आजकल की अपेक्षा व्यवसायो मे अधिक विभिन्नता हो जायगी, इसलिए अधिक ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होगी। इसके फलस्वरूप बुनियादी स्कूलो मे शिल्प के काम का क्षेत्र विस्तृत हो जायगा। अत किसानो को कई विषयो का ज्ञान देना होगा, जैसे पशुपालन, मुर्गीपालन भूमि-सुधारण, रासायनिक खाद, बीमारियो और हानिकारक कीटो का नियन्त्रण, बाज़ार करना और हिसाब रखना। उनको मशीनो, नलो और बिजली के उपस्करो की मरम्मत करना भी आना चाहिए। जब ऐसी व्यावहारिक आवश्यकताएँ पैदा होगी तो बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम मे भी उसी के अनुसार परिवर्तन होगे।" वास्तव मे मशीन और बिजली जब गाँवो मे पहुँचेगी तब हमारी बुनियादी शालाओ के उद्योगो मे भी परिवर्तन आवश्यक होगा। चूँकि वह दिन अब दूर नही है, अत हमे अभी से इस पर विचार करना चाहिए। नये-नये मूल उद्योगो तथा गौण उद्योगो का चयन देश की उत्पादन और शिक्षा के सामजस्य के लिए आवश्यक है। जब हमारे अधिकाश देशवासियो द्वारा कृषि के लिए ट्रैक्टर, मोटर तथा

अन्य औजारों का उपयोग होने लगेगा तो हमारी बुनियादी शालाओं मे ऐसे कार्य-कक्ष खोलना तथा निर्माण करना आवश्यक हो जायगा जहाँ बालक कृषि के काम में लाई जाने वाली मशीनो तथा साधनो का उपयोग करना तथा उनकी साधारण मरम्मत करना सीखेगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि शीघ्र ही बुनियादी शिक्षा मे अनेक नये उद्योगों की व्यवस्था करना आवश्यक होगा।

कुछ विद्वानो का विचार है कि बुनियादी शालाओ मे चलाए जाने वाले उद्योगों का व्यावहारिक ज्ञान वर्तमान या देश मे निर्मित होने वाले औद्योगिक समाज मे उपयोगी न हो सकेगा। ऐसी विचारधारा वाले लोगो का कथन है कि बुनियादी शालाओ में कताई, बुनाई, कृषि, लकडी, लोहे या चमड़े के काम सीखे हुए बालक आधुनिक बडे उद्योगो के लिए किसी काम के सिद्ध न होंगे। आधुनिक बड़े उद्योगों मे अर्ध-कुशल, कुशल कारीगर, यन्त्र-चालक तथा साधारण और उच्च योग्यता वाले व्यवस्थापको की आवश्यकता होगी। बुनियादी शिक्षा वास्तव मे आधुनिक बड़े उद्योगो को व्यावसायिक शिक्षा-प्राप्त कारीगर या यन्त्र-चालक तो न दे सकेगी, क्योकि बुनियादी शिक्षा कोई व्यावसायिक शिक्षा तो नही है। यह तो ऐसी सामान्य शिक्षा है, जिसके द्वारा बालक किसी समाजोपयोगी तथा उत्पादक उद्योग के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करके अपनी भौतिक तथा सामाजिक परिस्थितियो को समझते हैं तथा उस उत्पादक काम के सामाजिक महत्त्व की जानकारी प्राप्त करते हैं। इसके द्वारा वे उपयोगी तथा प्रभावशाली नागरिक बनते हैं। बुनियादी शिक्षा तो उद्योग द्वारा शिक्षा देकर बालको मे औज़ारों तथा सामयिक जीवन के कार्यो की प्रक्रियाओ की उपयोगिता को समझने की क्षमता का विकास करती है तथा उनमे अपनी दैनिक जीवन की समस्याओ को बुद्धिमानी से हल करने की योग्यता लाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बुनियादी शिक्षा सीधे व्यवसायो के लिए कुशल कारीगरो या कार्यकर्ताओ का निर्माण नही करती; उसमे तो उद्योग के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था द्वारा बालको मे सहयोग, आत्म-निर्भरता, एकाग्रता,

जिम्मेदारी तथा सूझ-बूझ से काम करने, योजना बनाने तथा उसे पूर्ण करने, आदि की योग्यता आती है। इससे वे अपने कार्यों का मूल्यांकन करना भी सीखते हैं। इस प्रकार बालकों में ऐसी समाजोपयोगी आदतें तथा कौशलों का विकास होता है, जो आधुनिक औद्योगिक समाज के लिए सहायक सिद्ध होगा। अत कुछ विद्वानों की यह धारणा कि बुनियादी शिक्षा की उद्योग द्वारा शिक्षा आधुनिक औद्योगिक समाज के लिए उपयोगी व्यक्तियों का निर्माण न कर सकेगी, उचित नही जान पडती। हम कह सकते हैं कि बुनियादी शिक्षा से देश के औद्योगिक विकास में कोई बाधा न होगी।

मूलोद्योग का चुनाव

बुनियादी शिक्षा में मूलोद्योग के माध्यम से ज्ञान देना आवश्यक है। जीवन की ठोस क्रियाएँ तथा मूलोद्योग के कार्य ही ज्ञान के आधार माने गए हैं। बुनियादी शालाओं में उद्योग की क्रिया कराने मात्र से ही काम नहीं चल सकता। वहाँ तो उद्योग को शिक्षा का माध्यम होना चाहिए। अत. इसके चुनाव में बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है। मूलोद्योग के चुनाव में हमें बहुत सावधान रहना चाहिए। मूलोद्योग ऐसा चुनना चाहिए जिसमें निम्न गुण हों—

१ मूलोद्योग देश, काल, परिस्थिति तथा वातावरण के अनुकूल होना चाहिए।

२. मूलोद्योग में सम्पूर्ण समाज एवं उसके सदस्यों की आवश्यकताएँ पूर्ण करने की क्षमता होनी चाहिए।

३ मूलोद्योग के लिए कच्चा माल आसपास सुलभता से तथा सस्ता मिलना चाहिए। इतना ही नहीं, यह वर्ष-भर सरलता से उपलब्ध होना चाहिए।

४ मूलोद्योग से तैयार होने वाली वस्तुओं की खपत भी आसपास के स्थानों में ही होनी चाहिए।

५ मूलोद्योग के लिए उपयोग में लाए जाने वाले सामान, यन्त्र आदि इतने सरल होने चाहिएँ कि साधारण बुद्धि वाले बालक

भी उनका सरलता से प्रयोग कर सकें।

६ मूलोद्योग प्रारम्भ करने के लिए आरम्भिक व्यय अधिक न होना चाहिए।

७. मूलोद्योग ऐसा हो, जिसमे कम-से-कम परिश्रम की आवश्यकता पड़े, जिससे वालक जल्दी न थकें।

८ मूलोद्योग वालको की रुचि, योग्यता तथा शक्ति के अनुकूल होना चाहिए।

९. मूलोद्योग ऐसा हो जिसके आधार पर अधिक-से-अधिक विषयो का ज्ञान सुगमता से स्वाभाविक रूप से दिया जा सके।

१० मूलोद्योग में वालक के शारीरिक तथा मानसिक विकास की क्षमता होनी चाहिए।

११. मूलोद्योग मे वालक को उच्च श्रेणियो की ओर बढने के साथ-साथ नई खोजे तथा आविष्कार करने के अवसर प्रदान करने की क्षमता होनी चाहिए।

१२. मूलोद्योग मे नैतिक तथा आध्यात्मिक गुणो की वृद्धि करने की क्षमता होनी चाहिए।

१३. मूलोद्योग मे समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जीविका अर्जित करने के साधन उपलब्ध कराने की क्षमता होनी चाहिए।

मूलोद्योग पाठ्यक्रम

डॉ० जाकिर हुसैन समिति ने निम्न तीन उद्योगो को वालकों के शारीरिक तथा मानसिक विकास के लिए उपयोगी तथा आवश्यक समझा था—

१ खेती-बागवानी।

२. कताई-बुनाई।

३. लकड़ी और धातु का काम।

ये उद्योग ही शिक्षा के माध्यम तथा बुनियादी पाठ्यक्रम के अन्य विषयो का समवायित ज्ञान देने के लिए प्रमुख साधन होगे।

चुने गए मूलोद्योग से वालक मे इतनी कुशलता तथा शास्त्रीय ज्ञान

आना चाहिए कि आवश्यकता पड़ने पर वह अपने लिए उपयुक्त आहार, सादे वस्त्र तथा दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्थ-प्राप्ति करने या धन कमाने मे सफल हो सके। इसके लिए बुनियादी पाठ्य-क्रम मे उद्योग-सम्बन्धी निम्न बातो का समावेश किया गया है—

१ मूलोद्योग तथा अन्य गौण उद्योगो, घरेलू औजारो और साधनो के उचित उपयोग करने की क्षमता के विकास के लिए आवश्यक गणित तथा अन्य शास्त्रो के सिद्धान्तो का साधारण ज्ञान।

२ अन्न, कपास, भोजन पकाने तथा घर के अन्य कार्य करने, मूलो-द्योग की प्रक्रियाओ, स्वास्थ्य तथा सफाई रखने आदि बातो के सिद्धान्तो से सामान्य परिचय।

हमारा देश कृषि-प्रधान है। अत पाँचवी कक्षा तक सभी बालको को बागवानी के काम का ज्ञान अनिवार्य रूप से कराया जायगा। छठी, सातवी तथा आठवी कक्षाओं मे ही इसे मूलोद्योग के रूप मे माना जायगा, क्योकि बालक इस आयु मे ही इस उद्योग को उचित रूप से कर सकते हैं। आठवी कक्षा तक इस उद्योग को करने के बाद बालक मे इसी के द्वारा आजीविका कमा लेने की योग्यता आ जानी चाहिए। पाँचवी कक्षा तक इस उद्योग को करने पर बालको मे इतनी योग्यता आ जानी चाहिए कि सहकारी कार्य के द्वारा बालक शाला की कुछ आर्थिक जिम्मेदारी उठा सके। जिन शालाओ मे कृषि-उद्योग मूलोद्योग माना जाता है, वहाँ सतुलित खेती के लिए आर्द्र तथा सूखी भूमि के सिवाय बागवानी के लिए भी भूमि होनी चाहिए। कृषि-उद्योग के साथ-साथ बालको को अपने माँ-बाप के धन्धो मे सहायक होने के लिए उन उद्योगो की आवश्यक प्रक्रियाओ का ज्ञान भी दिया जाना चाहिए। समुचित कृषि के लिए स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार फसलें उगाने को पाठ्यक्रम मे सम्मिलित करने का सुझाव डॉ० जाकिर हुसैन समिति ने निम्न रूप मे दिया है—

कृषि

१. घर के लिए साग-भाजी, जैसे वैगन, भिंडी, टमाटर, कद्दू, हरी तरकारी और कुछ मसाले।
२ अधिक-से-अधिक स्थानीय फल।
३. अनाज—गेहूँ, चावल, मक्की, ज्वार आदि।
४. साधारणत. उपयोग मे आने वाली दाले।
५ तिलहन तथा तेलो के बीज।
६. गन्ना।
७ शाला के लिए आवश्यक कपास।
८ पशुओ के लिए घास।
९. शहतीर, ईंधन तथा बाड़ लगाने के लिए पेड़।
१०. शाला के लिए बगीचा।
११. स्थानीय जडी-बूटियाँ।

कताई-बुनाई

कताई-बुनाई उद्योग के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत कताई मे जहाँ कपास की खेती होती है वहाँ कपास चुनना, कपास-सफाई, कपास की ओटाई (सलाई पटरी तथा हाथ-ओटनी से) आदि आते हैं। जहाँ कपास नही मिलती, वहाँ रुई-सफाई, तुनाई, धुने हुए, तुने हुए पोल से पूनियाँ बनाना, तकली पर कातना, सूत खोलना, कपास की फिरकियाँ बनाना, तुनना, धनुष-धुनकी पर धुनना, तकली तथा चरखो के अगो का शास्त्रीय ज्ञान, धुनकी के अग तथा उनके काम, पोल की पहचान, कपास की देख-भाल करना, उनका लेखा रखना, कताई के साधन बनाना, बाँस-चरखा बनाना, साधारण चरखा ठीक करना, आदि हैं।

छठी, सातवी तथा आठवी कक्षाओ मे एक या दो सम्बन्धित उद्योगों का बालकों को अभ्यास कराया जाना चाहिए। सिलाई की मशीन की सहायता से सिलाई को दरजीगिरी तक बढाया जाना चाहिए। होशियार बालको को बेल-बूटो की कढाई, छपाई के लिए नमूनो आदि का ज्ञान भी दिया जा सकता है। मूलोद्योग के लिए ऊन की कताई-बुनाई वाले क्षेत्रों मे

सलाइयों पर बुनना सिखाया जाना चाहिए। चटाई तथा कालीन बनाना और रस्सी बनाना या नारियल का काम भी प्रारम्भ किया जा सकता है। सातवी तथा आठवी कक्षा के वालको की सहायता से छठी कक्षा मे बडे करघों पर बुनाई की विविध प्रक्रियाओ का ज्ञान दिया जायगा। मूलोद्योग का काम कुछ इस प्रकार चलना चाहिए कि छठी से आठवीं कक्षा तक के बालक वस्त्र-उत्पादन हेतु सहकारिता मे कार्य करें।

बुनाई के पाठ्यक्रम का वर्गवार बँटवारा नहीं किया गया है, क्योंकि प्रत्येक वालक या बालिका से अपनी योग्यता से बढने की अपेक्षा की जाती है। बुनाई के अभ्यास तथा सम्बन्धित शिक्षण के साथ-साथ छठी कक्षा के बालक सम्पूर्ण शाला के लिए उद्योग के सामान और कच्चे माल का भण्डार चलाने का अभ्यास भी करेंगे। सातवी तथा आठवी कक्षा के बालक अपने परिवार तथा गाँव के वस्त्र-स्वावलम्बन के काम मे हाथ बँटाएँगे। बुनाई की विभिन्न प्रक्रियाओ मे गति तथा क्षमता सूत के गुण-दोष पर निर्भर है, अत पाठ्यक्रम मे उसका नाप निश्चित नही किया गया है। कपास के कपडे बनाने तक की सभी प्रक्रियाओ तथा सातवी कक्षा के पाठ्यक्रम को आठवी कक्षा के आखिरी तीन महीनो मे दोहराया जाना भी उपयोगी प्रमाणित होगा।

लकडी तथा धातु के काम को मूलोद्योग के रूप मे माने जाने पर अन्य उद्योगो के समान इसमे भी स्वावलम्बन के सिद्धान्तो को माना जाना आवश्यक है। इस उद्योग के व्यावहारिक काम की योजना ऐसी बनाई जानी चाहिए कि बना हुआ सामान बनते ही शाला तथा स्थानीय बाजार मे खप सके। डॉ० जाकिर हुसैन समिति ने उस उद्योग मे निम्न बातो का समावेश किया है—

लकडी तथा धातु का काम

१ कताई-बुनाई की सभी क्रियाओ मे काम आने वाले साधन।

२. कृषि और बागवानी के साधन और औजार।

३ बढईगिरी का सरजाम।

४. सामान्य गृहस्थी के अपेक्षणीय साज और सामान के साधन, जैसे खूंटी, अलमारी, तख्ते, चारपाइयाँ और लकड़ी की कुरसियाँ, मेज, सदूक, बरतन रखने की अलमारी, शीशे या तस्वीरो के चौखट, दरवाजे, खड़ाऊँ आदि ।

५. शाला के लिए अपेक्षणीय साधन, जैसे कलमदान, रूलर, पैमाने, डैस्क, सदूक, पुस्तक, अलमारियाँ आदि ।

६. धातु की वस्तुएँ, जैसे बगीचे के साधन, चाकू, कैंची, तराशनी, खूंटी, पेच, कुण्डी, चूल, चटखनी, दीये, लालटेन, दीवारगीर आदि ।

गृह-विज्ञान उद्योग

बालिकाओ को घरेलू बातो की अच्छी जानकारी कराने के लिए गृह-विज्ञान को भी एक उद्योग के रूप मे रखा है । हमारे देश मे बालिकाओ को अन्य देशो की अपेक्षा प्राय जल्दी ही पारिवारिक जीवन मे उतरना पडता है । अत. यह आवश्यक है कि उनमे घरेलू काम-काज मे अच्छी कुशलता हो । वैसे तो शालाओ मे पढ़ते हुए भी बालिकाएँ अपने-अपने घरो मे घरेलू काम-काज मे सहायक होती रहती है, पर यदि उन्हे इन कार्यों-सम्बन्धी बातो का विस्तृत तथा वैज्ञानिक ज्ञान हो जाय तो यह और अधिक लाभकारी सिद्ध होगा । फिर वे बुद्धिमानी से घर का प्रत्येक कार्य करेगी । इस प्रकार इस विषय के शिक्षण से बालिकाओ के सफल पारिवारिक जीवन की नीव डाली जाती है ।

केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय ने बालिकाओ के लिए बुनियादी शालाओ मे गृह-विज्ञान का पाठ्यक्रम तैयार किया है । उसमे इस विषय के शिक्षण के निम्न उद्देश्य बतलाए है—

१. बालिकाओ को कम खर्च से कुशलतापूर्वक घरेलू कार्य करने, स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तो का ज्ञान देने, घर को एक उन्नतिशील ढग से चलाने, परिवार के सदस्यो के लिए प्रसन्न तथा लाभकारी वातावरण तैयार करने के योग्य बनाना ।

२. यदि आवश्यक हो तो बालिकाओ को शाक-भाजी का बगीचा

लगाकर अपने कुटुम्ब का खर्च कम करने या किसी घरेलू दस्तकारी द्वारा विना कारखाने या मिल आदि गये, घर की आय-वृद्धि करने योग्य बनाना।

उपरोक्त उद्देश्यो की पूर्ति के लिए गृह-विज्ञान विषय के पाठ्यक्रम मे निम्न वातो का समावेश किया गया है—

१. पाक-कला।

२ कपडे धोने की कला।

३ सिलाई।

४ स्वास्थ्य-विज्ञान तथा बच्चो की देखरेख सम्बन्धी वाते।

५ गृह-कृपि।

६ कुशल गृहिणी वनने की कला।

गृह-विज्ञान पाठ्यक्रम को दो भागो मे विभक्त किया गया है—(१) कक्षा १ से ३ तक के लिए तथा (२) कक्षा ४ से ८ तक के लिए।

वुनियादी शालाओ की नीची कक्षाओ मे गृह-विज्ञान एक मुख्य उद्योग या मूलोद्योग के रूप मे नही होता। इन कलाओ मे तो शिक्षक को केवल वालिकाओ की रुचि इस विपय-सम्वन्धी वातो की ओर वढाने का प्रयत्न करना चाहिए।

उद्योग-शिक्षण मे अनेक क्रियाएं कराना आवश्यक होता है। अत. उद्योग का शिक्षण या उद्योग के द्वारा शिक्षण कराते समय हम केवल अन्य विपयो की शिक्षण-विधियो का उपयोग करके ही उचित शिक्षण नही दे सकते। उद्योग-शिक्षण मे क्रिया को विधिवत् करने की तथा उसके खूव अभ्यास की आवश्यकता होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि नित्य के उद्योग-सम्वन्धी पाठ पढाने की विधि पर भी विचार किया जाय तथा उसको निश्चित भी किया जाय। यदि प्रतिदिन के उद्योग-पाठ की विधि निश्चित रहेगी तो वालक उद्योग की क्रियाएं विधिवत् करेंगे तथा जल्दी सीखेंगे।

शिक्षण-विधि

उद्योग-शिक्षण का दैनिक शिक्षण-क्रम निम्न है—

१. समस्या प्रस्तुत करना। इसे प्रस्तावना भी कह सकते है।

२. उद्देश्य-कथन।

३. क्रिया के लिए आवश्यक यन्त्र, कच्चा माल, औजार आदि का टोली-नायको द्वारा वितरण।

४. शिक्षक द्वारा कक्षा को क्रिया-सम्बन्धी तथा औजारों के उचित उपयोग सम्बन्धी उचित निर्देश देना।

५. बालकों द्वारा कच्चे माल, औजार आदि को शिक्षण द्वारा बतलाये हुए व्यवस्थित ढंग से रखना।

६ शिक्षक द्वारा क्रिया का आदर्श प्रस्तुत करना।

७. बालकों द्वारा कार्य करने का उचित आसन ग्रहण करके क्रिया प्रारम्भ करना।

८. शिक्षक का बालको की क्रिया का निरीक्षण तथा गलतियो के सुधार हेतु व्यक्तिगत सहायता करना। आवश्यकतानुसार सामूहिक रूप से कक्षा को क्रिया-सम्बन्धी उचित निर्देश देना।

९. क्रिया पूर्ण होने पर बालको द्वारा बनाई गई वस्तु को नापना, यदि सूत आदि हो तो उसे लपेटना, वज़न लेना, लेखा भरना, आवश्यक सामान तथा बनाई गई वस्तु को यथास्थान रखना।

१०. कक्षा की सफाई करना।

११ की गई क्रिया का मूल्यांकन करना। इसमें की गई क्रिया की अच्छाई तथा बुराई या दोषो पर विचार करके क्रिया करते समय किये गए दोषो के निराकरण के लिए उपायों पर विचार-विमर्श करना।

१२. समवायित ज्ञान-खण्ड पर आना।

उपरोक्त शिक्षण-क्रम को प्रतिदिन अपनाया जाय तथा इस बात का ध्यान रखा जाय कि कक्षा के प्रत्येक बालक को कोई-न-कोई कार्य अवश्य मिले। इस प्रकार यदि उद्योग के लिए इस शिक्षण-क्रम को अपनाया जाय

तो बालको को बडे उपयोगी शैक्षणिक अनुभव प्राप्त कराए जा सकते हैं, क्योंकि निर्देश लेना, उनके अनुसार कार्य करना, उत्तरदायित्व वहन करना, सहयोग से कार्य करना आदि स्वयं उपयोगी शैक्षणिक उद्देश्य हैं।

उद्योग-शिक्षण मे उद्योग मे दक्षता प्राप्त करने का बडा महत्त्व है, अत हमारी बुनियादी शालाओ मे उद्योग की क्रियाएँ कराते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालक उद्योग की क्रियाओ मे कौशल प्राप्त करे।

कौशल प्राप्त करना[1]

कौशलपूर्ण कार्य की निम्न विशेषताएँ होती हैं—

१. कौशलपूर्ण कार्य मे बेकार जाने वाली अनावश्यक चेष्टाएँ नही रहती।
२ कौशलपूर्ण कार्य मे अधिक स्थान तथा सामग्री की सुविधाएँ आवश्यक नही रहती।
३ कौशल सीखने मे न केवल अनुपयोगी चेष्टाओ का लोप होता है वरन् उपयोगी चेष्टाएँ सीखी जाती हैं।
४ कौशलपूर्ण कार्य मे उचित समय पर उचित शक्ति का प्रयोग किया जाता है।
५ कौशलपूर्ण कार्य मे लय रहती है।

कौशल बढ़ाने की विधियाँ—

शाला मे उद्योग की किसी भी क्रिया मे कौशल बढाने के लिए निम्न विधियाँ अपनानी चाहिएँ—

१. शिक्षक द्वारा प्रदर्शन।
२ बालक द्वारा निरीक्षण।
३ बालक द्वारा प्रयोग।
४. शिक्षक द्वारा आवश्यक निर्देश।
५. बालक द्वारा अनुकरण।

---

१. इस प्रकरण के विस्तृत विवेचन के लिए लेखकों की पुस्तक 'बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त' देखिए।

६. बालक द्वारा अभ्यास तथा अनावश्यक चेष्टाओं का निष्कासन।

७. क्रिया में लय लाना।

बुनियादी शालाओं में उद्योग के आधार पर ही सब विषयों का ज्ञान कराया जाता है। यहाँ बालक उद्योग की क्रियाओं में कौशल प्राप्त करने का प्रयत्न भी करता है। बिना कौशल प्राप्त किये बालक आवश्यक उत्पादन तथा अच्छे स्तर की वस्तुओं का निर्माण नहीं कर सकता। अतः उद्योग-शिक्षण के समय शिक्षकों द्वारा क्रिया का आदर्श प्रदर्शन, बालकों द्वारा उनका उचित तथा सूक्ष्म अवलोकन और तदनन्तर अभ्यास आवश्यक है। बुनियादी शालाओं में उद्योग-शिक्षण के समय हमेशा बालकों की अनावश्यक चेष्टाओं को कम करने तथा आवश्यक चेष्टाओं का अभ्यास कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

उद्योग-शिक्षण की सामान्य विधियाँ

किसी भी उद्योग के शिक्षण के लिए हम निम्न विधियों में से सुविधानुसार कोई भी विधि चुन सकते हैं—

१. निदर्शन-विधि। इस विधि में क्रिया करके दिखलानी पड़ती है। क्रिया के आदर्श प्रस्तुत करने के पूर्व आवश्यक निर्देश बालकों को दिये जाते हैं तथा बालक उन निर्देशों की सहायता से शिक्षक द्वारा की गई क्रिया देखते हैं तथा स्वयं उसका अभ्यास करते हैं। इस विधि का उपयोग बालकों की रुचि क्रिया में बढ़ाने के लिए तथा की जाने वाली क्रिया की पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए करना ठीक रहता है, क्योंकि इस विधि के द्वारा हम यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि बालक क्रिया का आदर्श देखकर ही उस क्रिया की सभी प्रक्रियाएँ उचित विधि से सम्पन्न कर सकेंगे।

२. वर्णन-विधि। उद्योग की किसी भी प्रक्रिया का वर्णन मौखिक तथा लिखित दोनों हो सकता है। बुनियादी तथा अन्य शालाओं की निम्न कक्षाओं में बालकों को लिखने-पढ़ने का अभ्यास बहुत कम होता है, अतः इन नीची कक्षाओं में मौखिक वर्णन-विधि

ही उपयुक्त रहेगी। लिखित वर्णन-विधि का उपयोग चौथी कक्षा से आठवीं कक्षा तक आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। पर वर्णन-विधि छोटे या बड़े छात्रों के लिए हमेशा या अधिक उपयोग मे न लानी चाहिए, क्योंकि बालक क्रिया देखकर अधिक सीख सकते हैं, बनिस्वत उसका मौखिक या लिखित वर्णन सुन-कर। हाँ, की गई क्रिया या अभ्यस्त क्रिया के स्पष्टीकरण के लिए इस विधि का उपयोग ठीक रहेगा।

३. विचार-विमर्श-विधि। इस विधि मे बालक तथा शिक्षक आपसी सहयोग से क्रिया के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श करते हैं तथा की जाने वाली क्रिया के सम्बन्ध मे निश्चित योजना बन जाने पर कार्य प्रारम्भ करते है। यह विधि बडी उपयोगी है, क्योंकि इसमे बालक स्वय क्रिया के सम्बन्ध मे विचार करते हैं। उन्हे आपसी सहयोग प्राप्त करने, उत्तरदायित्व वहन करने आदि का प्रशिक्षण भी मिलता है। क्रिया के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श करने से उन्हे उसकी बारीकियो का पता भी चल जाता है।

४. प्रयोग या आविष्कार-विधि। इस विधि द्वारा बालक स्वय प्रयोग करके उपस्थित हुई समस्याओ का हल ढूंढ निकालने का प्रयत्न करते हैं। इन प्रयोगो द्वारा बालक क्रियाएँ या कार्य करते हैं तथा विभिन्न घटनाओ मे निहित सिद्धान्त समझने का प्रयत्न करते है। यह विधि खेती, बागवानी आदि उद्योगो के लिए बड़ी उपयुक्त है। श्री बी० आर० पाटिल ने प्रयोग तीन प्रकार के बतलाए हैं—(क) खोज प्रयोग। इन प्रयोगो का उद्देश्य जो कुछ हुआ है, उनका पता लगाना। (ख) विवेचन प्रयोग। ये प्रयोग प्राप्त किये गए ज्ञान के सम्बन्ध मे और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए किये जाते हैं। (ग) रहस्य प्रयोग। इस प्रकार के प्रयोगों मे ज्ञान की बातें रहस्यमय ढग से प्रस्तुत की जाती हैं।

उपरोक्त तीन प्रकार के प्रयोग करते हुए बालक कृषि,

बागवानी आदि सम्बन्धी अनेक बातो तथा क्रियाओ की वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

५. पर्यटन या भ्रमण-विधि। छोटे बालको को भ्रमण मे आनन्द आता है, अतः भ्रमण द्वारा ही उन्हे कृषि, बागवानी या आवश्यकतानुसार अन्य उद्योगो की क्रियाओ का ज्ञान कराना चाहिए। भ्रमण दो प्रकार के होते है—(क) दीर्घ-कालिक, तथा (ख) अल्प-कालिक। दीर्घ-कालिक भ्रमणो मे अधिक समय, जैसे एक से तीन दिन तक का समय, तथा अल्पकालिक भ्रमण मे आधे घण्टे से तीन घण्टो तक का समय लगता है। दीर्घ-कालिक भ्रमण के एक से तीन दिन तक का होने का तात्पर्य यह नही है कि रातें भी अनिवार्य रूप से बाहर ही व्यतीत की जायँ। यहाँ तात्पर्य यह है कि दिन-ही-दिन मे आ-जा-कर तीन दिन तक भी भ्रमण किया जा सकता है। प्रारम्भिक कक्षाओ के लिए अल्प-कालिक भ्रमण उपयुक्त रहेंगे। बड़ी कक्षाओ के लिए अल्प-कालिक तथा दीर्घ-कालिक भ्रमण दोनो कराए जा सकते हैं। भ्रमण के लिए सुबह तथा शाम का समय उपयुक्त रहता है। इस विधि का उपयोग भी कृषि तथा बागबानी के उद्योग की क्रियाओ का ज्ञान देने के लिए किया जा सकता है। भ्रमण के समय बालको को सूक्ष्म तथा विधिवत् अवलोकन करने का अभ्यास कराया जाना चाहिए। उन्हे अपने अवलोकन कापी मे लिखने का अभ्यास भी कराया जाना चाहिए।

६. शिविर-विधि। शिविर लगाने का अर्थ है रात मे कहीं ठहरना। उच्च कक्षाओ के बालको को कृषि या बागवानी की क्रियाओ का ज्ञान कराने के लिए शिविर-विधि का उपयोग भी किया जा सकता है।

७. अवलोकन-विधि। इस विधि का सयोग पर्यटन-विधि से अच्छी तरह किया जा सकता है। प्रकृति और उसकी घटनाओ के प्रति सहानुभूति एव प्रेम उत्पन्न करने के लिए बालको को रुचिकर,

सुन्दर स्थलो पर ले जाकर सूक्ष्म तथा विधिवत् अवलोकन कराना चाहिए। वालको को खेतो, वगीचो आदि पर ले जाकर विभिन्न पौधे, फल, फूल, जडे, खेती के लिए हानिकारक तथा लाभदायक पक्षी, कीडे-मकोडे आदि का अवलोकन कराया जा सकता है। इस विधि से विभिन्न ऋतुओ का खेती पर प्रभाव भी उन्हे वतलाया जा सकता है। वालको को सूक्ष्म तथा विधिवत् अवलोकन करने की आदत डालने का प्रयत्न करना चाहिए तथा जैसे-जैसे वालक उच्च कक्षा मे जाय उसकी सूक्ष्म तथा सही-सही अवलोकन-क्षमता का विकास भी होते जाना चाहिए। वालक किसानो के कृषि-सम्बन्धी औज़ारो तथा साधनो, गमलो, क्यारियो, डिब्बो या प्लाटो मे वीज का अकुरण, वृद्धि, फूल, फल खिलने तथा लगने की क्रियाओ आदि का अवलोकन भी कर सकते हैं।

८ पद्धतिवद्ध परिचालन-विधि। इस विधि मे वालको की आयु तथा शारीरिक विकास के अनुसार गमले, क्यारियाँ तथा भूमि दे दी जाती है। वालक दिये गए निर्देशो के अनुसार क्रियाएँ करते हैं तथा अपने-अपने गमलो, क्यारियो मे अधिक-से-अधिक फसल उगाने की चेष्टा करते हैं। इस विधि को उपयोगी वनाने के लिए पहले वालको को परिचालन की उचित विधि प्रत्यक्ष करके दिखलानी चाहिए तथा वालको द्वारा कार्य आरम्भ करने पर ही उन्हे औज़ार तथा आवश्यक पदार्थ देने चाहिएं। इस विधि मे यह आवश्यक नही है कि क्यारियाँ, गमले आदि वालको को वांटे जायें, पर ऐसा करने से स्पर्धा की भावना का भी उचित उपयोग किया जा सकता है।

९ योजना-विधि। इस विधि मे सुविधानुसार साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक योजनाएँ वना ली जाती हैं। प्रत्येक कक्षा शिक्षक के निर्देशन मे विचार-विमर्श करके योजना के अन्तर्गत की जाने वाली क्रियाएं निश्चित कर लेती है तथा उनसे समवायित करके पढाए

जाने वाले अंशों को भी निश्चित कर लेती है। इसी समय आवश्यक सामान तथा रखी जाने वाली सावधानियो पर भी विचार किया जाता है। इस प्रकार योजनाओं द्वारा कार्य चलता है। इन योजनाओं को पूर्ण करना चाहिए तथा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पूर्व कार्यान्वित की गई योजना की क्रियाओ या कार्यों का सम्बन्ध आगे की जाने वाली क्रियाओ तथा कार्यों से जोडा जाय। यदि ऐसा न किया गया तो पहले के अनेक कार्यों पर किया गया परिश्रम व्यर्थ जायगा। योजना-विधि का उपयोग करके कार्य बडा विधिवत् तथा उत्साह से चलता है। अतः हमे इस विधि का उपयोग खूब करना चाहिए।

बुनियादी शालाओ के कुछ शिक्षको का यह विचार है कि बुनियादी शालाओ मे मूल्यांकन या परीक्षा का कोई स्थान नही है। इस विचार-

उद्योग-कार्य का मूल्यांकन

धारा का परिणाम यह होता है कि जब शिक्षक बालकों को कुछ बतलाते हैं या अनुभव कराते हैं तब यह मान लेते हैं कि बालको ने जो क्रिया की है या उन्हे जो अनुभव दिये गए हैं, उनसे सभी बालक समान रूप से लाभान्वित हुए है। पर उनकी यह धारणा ठीक नही है। हम यह जानते हैं कि व्यवहार ही किसी सिद्धान्त का प्रमाण होता है। बुनियादी शिक्षा, या यह कहें कि शिक्षण तथा अध्ययन दोनों, मे यही बात लागू होती है। बुनियादी शिक्षा 'एक नये मानव और सहकारिता पर आधारित एक नवीन सामाजिक व्यवस्था के निर्माण' मे योग देती है। बुनियादी शिक्षा का सम्बन्ध बालक के सर्वांगीण विकास से रहता है, अत. आवश्यक है कि बुनियादी शालाओं मे मूल्यांकन या परीक्षा-सम्बन्धी कार्य बालक के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र या पक्ष से सम्बन्धित हों। कहने का तात्पर्य यह है कि बुनियादी शालाओं मे बालक के व्यक्तित्व के विकास, ज्ञान, क्रिया-कलाप आदि सभी का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

बुनियादी शालाओ मे मूलोद्योग या शिल्प-कार्य ही शिक्षा का प्रमुख

आवार होता है। अतः मूलोद्योग या शिल्प-कार्य की योग्यता का मूल्याकन बुनियादी शालाओ मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। बुनियादी शालाओ में बालक अपने मूलोद्योग से किये गए उत्पादन का दैनिक तथा मासिक लेखा रखते है। शिक्षक भी ऐसा लेखा अपने पास रखते हैं। इन लेखो के सम्बन्ध मे अनेक बातो का हमे ध्यान रखना चाहिए, क्योकि मूलोद्योग मे केवल उत्पादन करना ही अधिक महत्त्व नही रखता। अत. हमारी बुनियादी शालाओ मे मूलोद्योग या शिल्प-कार्य के उचित मूल्याकन के लिए हमे निम्न बातो का ध्यान रखना चाहिए—

(क) बालको द्वारा किये गए कार्य या उत्पादन की मात्रा तथा प्रकार दोनो के सम्बन्ध मे लेखे मे विवरण होना चाहिए। बहुधा शिक्षक तथा बालक उत्पादन की मात्रा पर अधिक ध्यान देते हैं, उसके प्रकार या गुण पर नही।

(ख) बालक के कार्य करने मे लगने वाले समय का ध्यान भी लेखा भरते समय रखा जाना चाहिए। इससे बालक की काम करने की गति का अन्दाजा लग जाता है, क्योकि उद्योग मे गति का बडा महत्त्व है।

(ग) उद्योग की अनेक तथा विभिन्न प्रक्रियाओ का मूल्याकन किया जाना चाहिए, जैसे कताई की क्रिया का मूल्याकन करते समय रुई की सफाई, धुनाई, पूनी बनाई आदि प्रमुख प्रक्रियाओ पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार यदि लकडी के उद्योग मे उत्पादन का मूल्याकन किया जा रहा हो तो रदा चलाने, आरा चलाने आदि प्रक्रियाएं करने की योग्यता तथा क्षमता पर भी विचार किया जाना आवश्यक है।

(घ) उद्योग की क्रियाएँ करते-करते बालको मे कुछ योग्यताओ का विकास भी आप-से-आप होता जाता है, जैसे बुनाई की क्रिया करते-करते बालको मे सूत की अच्छाई-बुराई, सूत का नम्बर, समरूपता, मजबूती आदि परखने की क्षमता या योग्यता का

विकास होता है। उसमे कम-से-कम सामान का उपयोग करके उत्पादन करने की क्षमता का विकास होता है। वह बुनाई की प्रक्रियाएँ करते-करते बुनाई के औज़ारो तथा अन्य आवश्यक सामानो की देखभाल, मरम्मत आदि करना भी सीख जाता है। अतः यह आवश्यक है कि बालक के उत्पादन की परीक्षा या मूल्याकन के समय बालक की इन योग्यताओ के विकास का विचार भी रखा जाय।

(ङ) बालक के काम करने की आदतो तथा गतिविधियो का विवेचन भी उत्पादन-सम्बन्धी लेखे मे होना चाहिए, जैसे कार्य मे लगन, सुव्यवस्था का भाव, कार्य पूर्ण करने पर प्रसन्नता का भाव आदि। यदि बालक ज़बरदस्ती दबाव के कारण कार्य करता है तथा अधिक उत्पादन बतलाता है तो यह उतना महत्त्व का नहीं है, जितना कि अपनी प्रेरणा से उद्योग की रुचि के कारण उत्पादन का।

(च) उद्योग के लेखो मे आय-व्यय का हिसाब भी होना चाहिए। इससे बालक को अपनी निर्मित वस्तुओ के सम्बन्ध मे उनके बिकने की योग्यता का भान होता रहेगा, क्योकि बुनियादी शालाओ के बालको द्वारा बनी चीज़ें बिकने योग्य अवश्य होनी चाहिएँ।

इन व्यवस्थित लेखो द्वारा बालको की उत्पादन-क्षमता का उचित मूल्यांकन हो सकता है। इस प्रकार विस्तृत तथा व्यवस्थित लेखो द्वारा बालक की उत्पादन-क्षमता के मूल्याकन से उत्पादन की उत्तमता, उसकी प्रगति तथा उत्पादन-क्रियाओ की कला-दक्षता का ज्ञान सरलता से हो सकता है।

उत्पादन-सम्बन्धी दैनिक, मासिक लेखो के साथ-साथ वर्ष मे कभी-कभी (कम-से-कम दो-तीन बार) मूलोद्योग की विभिन्न प्रक्रियाओ मे बालकों की क्षमता का मूल्यांकन या परीक्षा भी अवश्य ली जानी चाहिए। इस

परीक्षा के लिए हमारे देश के शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान मन्त्रालय ने प्रकाशित बुनियादी शिक्षा संदर्शिका मे सूत की कताई और बुनाई तथा खेती-सम्बन्धी परीक्षण के लिए निम्न सुझाव दिया गया है—

सूत की कताई और बुनाई का परीक्षण—

क्रमांक	काम	नम्बर	तरीका	नम्बर देने का तरीका
१.	धुनना और पूनी बनाना	८	बालको को काफी मात्रा मे बिना धुनी हुई रुई दी जाती है तथा कहा जाता है कि वे १५ मिनट मे उसे धुनें तथा पूनी बनाएँ।	पहले तोले के लिए कोई गुण या नम्बर नहीं दिये जाते तथा इसके बाद के हर तोले के लिये २ गुण या नम्बर दिये जाते हैं।
२	चरखे पर सूत कातना	१२	बालको मे अपनी पूनियो द्वारा चरखे पर १५ मिनट कताई कराई जाय।	पहले ३० तारो के लिए कोई गुण या नम्बर न दिये जायँ तथा इसके बाद के प्रत्येक ५ तारो पर १ नम्बर दिया जाय।
३	ऐंठना, घिरनी को भरना तथा मिलाना	१५	बालको से ये सब काम ५-५ मिनट कराए जायँ।	प्रथम ५ तारो के लिए कोई नम्बर न दिया जाय। इसके बाद प्रत्येक ३ तारों पर १ नम्बर दिया जाय। घिरनी को भरने तथा मिलाने की सुगमता की भी जांच की जाय।

क्रमांक	काम	नम्बर	तरीका	नम्बर देने का तरीका
४.	२७ इंच अर्ज़ का कपड़ा बुनना	२५	बालको से १५ मिनट तक कपडा बुनवाया जाय।	प्रथम ४ इच कपड़ा बुनने के लिए कोई नम्बर न दिया जाय। इसके बाद प्रत्येक २ इंच बुनने पर २ नम्बर दिये जायं।

खेती के काम की जाँच का उदाहरण—

१.	बीज के नमूनो, खाद, पौधे के रोगो और कीटाणु-नाशक औषधियो को पहचानना। (लगभग १५ नमूने रखे जायें)	१५ नम्बर या गुण
२	बैलो को हल मे जोतना तथा खेतो मे हल या बक्खर चलाना।	८ नम्बर या गुण
३.	बैलो को हल मे जोतना और मोट चलाना।	७ नम्बर या गुण
४.	पौधो या अन्य फ़सलो के लिए किते बनाना।	१५ नम्बर या गुण
५	काटकर, दाब कलम लगाकर या चश्मा लगाकर पौधो की वृद्धि करना।	१० नम्बर या गुण
६.	मुर्गे तथा फार्म के अन्य जानवरो को पहचानना।	५ नम्बर या गुण

लेखो, समय-समय पर नियमित परीक्षणो, आदि के साथ-साथ उद्योग-कार्य की वार्षिक या छमाही प्रदर्शनी का आयोजन भी बालको के उचित मूल्यांकन के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। इससे बालको की प्रगति का पता लगेगा तथा अन्य बालको से उनकी योग्यता का मिलान अच्छी तरह किया जा सकेगा। इन प्रदर्शनियों मे शिक्षको को भी अपने द्वारा बनाया गया सामान बालको के लिए आदर्श के रूप मे रखना चाहिए। प्रदर्शनी मे रखा गया सामान बेचना भी उपयोगी होगा।

अध्याय २

कला तथा शिल्प-शिक्षण

बालक क्रियाशील रहता है। हमेशा क्रियाशील रहना ही बालक की प्रमुख विशेषता है। इस क्रियाशीलता का समुचित उपयोग करके बालक के उचित विकास के योग्य वातावरण का निर्माण करना हमारा कर्तव्य है। पर बालकों का उचित विकास तभी सम्भव है जबकि उन्हे रचनात्मक क्रिया अपने ही ढग से करने की स्वतन्त्रता रहे। बालक अपने आस-पास की वस्तुएँ देखता है तथा उनके सम्बन्ध मे सुनता रहता है। इससे उसके ज्ञान के भण्डार मे वृद्धि होती रहती है। अपने इस ज्ञान-भण्डार तथा स्मृति के आधार पर वह आत्माभिव्यक्ति करना चाहता है। आत्माभिव्यक्ति की इस इच्छा की पूर्ति बालक विभिन्न तरीको से करते हैं। कोई चित्र बनाता है, कोई खिलौने और कोई अन्य कागज, मिट्टी आदि के काम करके प्रसन्न होता है। ये कार्य उसके विचारो की अभिव्यक्ति के माध्यम बनते हैं। इस प्रकार बालक की अनेक गुप्त तथा निष्क्रिय शक्तियो के उचित विकास के लिए ये कार्य या शिल्प एक माध्यम या भाषा का रूप ले लेते हैं। कला या शिल्प-रूपी भाषा सभी देशो मे समान है। अत विभिन्न देशो मे सहयोग तथा भाईचारे की भावना के उचित विकास के लिए कला की शिक्षा की उचित व्यवस्था आवश्यक है। पर कला तथा शिल्प की शिक्षा चित्रकला तक ही सीमित नही रहनी चाहिए। कला की शिक्षा का प्रवेश तो व्यक्ति के दैनिक जीवन के अन्तर मे होना चाहिए। वास्तव मे चित्र बनाने, इमारत बनाने, मूर्ति बनाने, खिलौने बनाने, जहाज बनाने आदि मे कोई अन्तर नही

महत्त्व

है। सभी के निर्माण-सम्बन्धी विचार पहले कल्पना मे आते हैं तथा बाद मे वस्तु या जीवन के लिए उपयोगी स्वरूप निर्मित किया जाता है।

हम इस संसार को अच्छा, उच्च तथा उपयोगी बनाना चाहते है। हम चाहते है कि संसार के विभिन्न देशो के मानवों मे अच्छे सम्बन्ध रहे। उनके स्वार्थ तथा द्वेष का भी हम अन्त करना चाहते हैं। पर व्यक्तियो का आपसी प्रेम तभी बढ़ सकता है तथा उनमें अच्छे सम्बन्ध तभी रह सकते हैं जब कि उन्हे अच्छी शिक्षा मिले। अच्छी शिक्षा मे सत्य, शिव तथा सुन्दर के तत्त्व होने आवश्यक हैं। शिक्षा मे इन तीनो तत्त्वो का समावेश कला तथा शिल्प के अच्छे तथा उचित शिक्षण से ही हो सकता है।

कला तथा शिल्प का उचित तथा अच्छा शिक्षण बालक की अच्छी, उपयोगी तथा गुप्त शक्तियो का विकास करता है तथा उन्हे जीवन के प्रति उचित तथा भिन्न दृष्टिकोण प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति मे रचनात्मक प्रवृत्ति रहती है। लेकिन उसे निर्माण की दिशा के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। अतः यदि उसे बचपन से ही निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय तथा इसका अच्छा प्रशिक्षण दिया जाय तो वह और भी अच्छा विकसित प्रौढ बन सकता है।

बालको मे कल्पना-शक्ति होती है, पर उसके उचित विकास के अवसर न मिलने के कारण यह शक्ति प्रायः नष्ट-सी हो जाती है। हमारा कर्तव्य है कि बालको की इस अमूल्य शक्ति का उचित विकास करने में हम सहायक हो, क्योकि कल्पना-शक्ति मे ही उनके भविष्य-जीवन के सुख तथा आनन्द के स्रोत रहते हैं। इस कल्पना-शक्ति के विकास के लिए कला तथा शिल्प-शिक्षण बड़ा उपयोगी होता है, अतः इसके उचित शिक्षण की व्यवस्था शालाओ मे आवश्यक है।

कला तथा शिल्प का कार्य करते समय बालक अपने-आपको भूल जाता है। इसमे उसे एक विशेष प्रकार का सुख प्राप्त होता है। अतः कला तथा शिल्प के उचित शिक्षण की व्यवस्था करके हमें बालक के शालेय जीवन को सुखी बनाना चाहिए। इससे बालक का शालेय जीवन तो सुखी

तथा सम्पन्न होगा ही, उसका भविष्य-जीवन भी सुखी तथा सम्पन्न होगा। कला तथा शिल्प बालक के भविष्य-जीवन मे अवकाश के समय का सदुपयोग करने मे बडे सहायक होगे। ये उसकी कल्पना तथा रचनात्मक शक्तियो के विकास तथा तृप्ति के लिए उपयोगी तथा उचित वातावरण का निर्माण करने मे भी सहायक होगे।

कला तथा शिल्प के कार्य का शाला मे पढाए जाने वाले अन्य विषयो मे भी अधिक उपयोग होता है। अत. इस दृष्टि से भी इनके शिक्षण का महत्त्व अधिक है। फिर भी हमे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कलात्मक वस्तु का निर्माण कराना तथा कुछ चित्र बनवाना या खिलौने बनवाना अलग-अलग चीजें है। कला-शिक्षण कुछ चित्र बनवाना या खिलौने तैयार कराना ही नही है। साधारण तथा मशीनी ढग से किया गया कार्य कलात्मक कार्य नही हो सकता। किसी अन्य वस्तु को देखकर उसके समान वस्तु बनाना भी कला नही है। हां, सावधानीपूर्वक चित्र बनाना तथा किसी वस्तु के समान अनुकृति तैयार करना व्यक्तित्व के विकास के लिए लाभदायक तथा उपयोगी है, पर इस प्रकार के कार्य आत्माभिव्यक्ति के कार्य नही बन पाते। अत कला तथा शिल्प-शिक्षण से हमारा तात्पर्य तो बालक को उसकी आत्माभिव्यक्ति का माध्यम देना ही होना चाहिए तथा मशीनी ढग से की गई क्रिया नही।

हममे से अनेक व्यक्ति यह सोचते है कि चित्रकला-शिक्षण के बाद अब और अन्य शिल्पो के शिक्षण की आवश्यकता नही है। पर वास्तव मे छोटे बालको के लिए विभिन्न शिल्पो के शिक्षण की बहुत ही अधिक आवश्यकता है, इसमे कोई अतिशयोक्ति नही है। बालक वस्तुओ से खेलना पसन्द करते है। विभिन्न शिल्पो की क्रियाएं करते समय वे विभिन्न प्रकार की वस्तुओ तथा पदार्थों का उपयोग करके अपने आस-पास के भौतिक वातावरण से परिचित होते हैं। विविध शिल्पो के माध्यम द्वारा हम बालक को अपने विचारो तथा कल्पनाओ की अभिव्यक्ति का साधन देते हैं। केवल चित्रकला के माध्यम से ही अपनी अभिव्यक्ति के अवसर सीमित न

करके हमे उसे विविध प्रकार से ठोस, चिकनी तथा गीली वस्तुओ द्वारा अपनी आत्माभिव्यक्ति करने के अवसर भी देने चाहिएं। इस प्रकार विविध शिल्पो में काम मे आने वाले पदार्थों के आधार से वालक अपनी भाषा का विकास करता है। यह दूसरी वात है कि कुछ वालक चित्रकला, कुछ मिट्टी का काम और अन्य कागज़ या वाँस का काम अधिक पसन्द करें, पर उन्हे सभी प्रकार के कच्चे माल का उपयोग करने का अभ्यास प्रारम्भ से कराया जाना चाहिए। इनसे वालकों को जीवन मे अच्छी वस्तुओ, कपडो आदि के उपयोग करने तथा उनमे रुचि लेने की आदत पडेगी।

वालक वचपन मे वस्तुओ के सम्पर्क मे आकर उनके प्रति अपनी भावनाएं तथा विचार स्थिर करता है तथा धारणाएँ वनाता है। अत. यह आवश्यक है कि उसे वचपन से ही अधिक-से-अधिक विभिन्न प्रकार के पदार्थों से खेलने के अवसर दिये जायें। अत. इस आयु मे विधिवत् शिक्षण उसके लिए उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि विभिन्न वस्तुओ या पदार्थों के सम्पर्क मे आना। कुछ लोगो का यह विचार हो सकता है कि वालको के पदार्थों के छूते, सूंघने, दवाने, उनके साथ खेलने आदि मे उनका समय व्यर्थ ही व्यय होगा तथा वे सार्थक ज्ञान प्राप्त न कर सकेंगे, पर वस्तुओं तथा पदार्थों के सम्पर्क द्वारा अनुभवो तथा रुचियो की वृद्धि, वस्तुओ के निर्माण द्वारा प्राप्त काम करने का आत्म-विश्वास आदि स्वयं वडे लाभकारी तथा महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक उद्देश्य हैं। अत. केवल इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए भी शालाओं मे विभिन्न शिल्पो का अभ्यास कराया जाना आवश्यक है।

विभिन्न शिल्पो का अभ्यास कराते समय हमे उत्पादन पर अधिक वल नहीं देना चाहिए। वचपन मे वालको को अधिक-से-अधिक अनुभव देने का ही ध्यान रखना अधिक उपयोगी होगा, क्योंकि शिक्षा का माप निर्मित वस्तुओ की संख्या न होकर, अनुभवो का वालको पर पडने वाला प्रभाव होना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वालक के अनुभवो की वृद्धि, उसकी

समस्याओं के हल, उसके विचारो की अभिव्यक्ति, रचनात्मक तथा कल्पनात्मक शक्तियो के विकास आदि के लिए विविध शिल्पो का अभ्यास कराया जाना आवश्यक है। पर इसके साथ-साथ शालाओ मे विविध शिल्पो का अभ्यास कराने का एक और बहुत ही महत्त्वपूर्ण कारण है। वह है बालक के अचेतन मन की शक्तियो को उचित रास्ते पर लगाना। यह कारण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है तथा इस ओर लोगो का ध्यान कम ही जाता है। पर यह इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसकी उपेक्षा नही की जानी चाहिए। हम बहुधा देखा तथा सुना करते है कि बालक विभिन्न प्रकार की चीजो तथा विचारो से डरते हैं। उन्हें छाया, अँधेरा, विभिन्न प्रकार के जानवरो आदि से डर लगता है। यह डर लगना तब तक बुरा नही है जब तक कि वे इस डर मे निश्चल न हो जायँ। इस डर को दूर करने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि बालक इन डरो से सम्बन्धित पदार्थों, जानवरो आदि की अधिक-से-अधिक चर्चा करे तथा उनके सम्पर्क मे आए, जिससे उनके हृदयो से इनका डर दूर हो जाय। बालक इनके सम्बन्ध मे बातचीत न करके इनके चित्र, मॉडल या आकृतियाँ आदि बनाकर भी अपने डर को दूर कर सकते है। यदि बालक डर उत्पन्न करने वाले जानवरो या पदार्थों के चित्र, मॉडल आदि बनाएँ तो उन्हे इनके ऊपर अपने अधिकार का भान होने लगेगा। वे इन पदार्थों तथा जानवरो के चित्रो आदि को फाड़ेंगे, तोडेंगे, हँसेंगे तथा कुछ समय के बाद उन्हे लगेगा कि इनसे डरने की आवश्यकता नही है। इस प्रकार बालको के अनेक प्रकार के बनावटी डरो को दूर करने मे भी विभिन्न प्रकार के शिल्प बडे उपयोगी सिद्ध होगे।

कला तथा शिल्प के अन्तर्गत बुनियादी या अन्य शालाओ मे चित्र-कला, मिट्टी का काम, कागज का काम, नरम खिलौने, बाँस व नरकडे का काम आदि ही सिखाए जाते है। इनके शिक्षण के सम्बन्ध मे अब हम अलग-अलग विचार करेंगे।

कुछ समय पूर्व बालक को हाथ तथा आँख के अभ्यास के लिए चित्र-

कला के अन्तर्गत मॉडल, स्केल तथा ज्यामिति-चित्रकला का अध्ययन कराया जाता था। इसमे बालक कुछ यथार्थ चित्र बनाने की कला मे प्रवीण हो जाते थे। उस काल में यह सब कार्य मशीनी ढग से साधारण रूप से ही किया जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि चित्रकला-शिक्षण रूढिग्रस्त तथा पद्धतिबद्ध हो गया। बालक का काम केवल जैसा शिक्षक कहे वैसा ही करने का था। उसका ध्येय चित्रकला की परीक्षा मे पास होना-मात्र था।

चित्रकला-शिक्षण : स्थान तथा उद्देश्य

पर अब चित्रकला-शिक्षण में आत्माभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया जाने लगा है। अब चित्रकला बालक की रचनात्मक गुप्त शक्तियो के विकास तथा कल्पनात्मक और रचनात्मक प्रवृत्तियो की पूर्ति का माध्यम मानी जाने लगी है। फलस्वरूप चित्रकला-शिक्षक की जिम्मेदारी तथा उत्तरदायित्व बहुत बढ गया है। आज तो चित्रकला-शिक्षक के सामने यही समस्या अधिक रहती है कि बालक की कल्पनात्मक तथा रचनात्मक शक्तियो का विकास तथा आत्माभिव्यक्ति की स्वाभाविक इच्छा को प्रोत्साहित करते हुए उसके चित्रकला-सम्बन्धी कौशल की कैसे वृद्धि की जाय।

चित्रकला को यदि हम कुछेक नियमो या सिद्धान्तों के आधार पर कुछ चित्र बनाना ही मानें (जैसा कि पहले होता था) तो इस विषय का पाठ्यक्रम बहुत ही सरलता से बनाया जा सकता है। पर जैसा कि आजकल समझा जाता है, यदि हम चित्रकला को आत्माभिव्यक्ति का माध्यम मानें तो हमारे सामने अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती है, क्योंकि प्रत्येक दो व्यक्ति या बालक अलग-अलग सोचते हैं, उनके काम करने का ढंग भिन्न होता है तथा उनकी रुचियो मे भी अन्तर होता है। अध्यापक तथा बालकों की रुचियाँ भी भिन्न होती हैं। फिर शिक्षक भी चित्रकला के किसी एक या अधिक क्षेत्र, जैसे चित्रांकन, दृश्यांकन या व्यावहारिक व्यापारी कला आदि, मे दक्ष होते हैं। बालक के लिए तो चित्रकला के

चित्रकला का पाठ्यक्रम

सभी क्षेत्रो मे शिक्षण आवश्यक है, क्योकि प्रारम्भ से ही हमे उनको सीमाओ मे बाँधकर उसके विकास को कुण्ठित नही करना चाहिए। इतना ही नही, शहरी तथा गाँवो के वातावरण तथा परिस्थितियो के कारण भी बालको की क्षमता तथा रुचि मे विभेद होता है, जैसे कृषि-प्रधान गाँव के बालक हल, बैल, फसल आदि के चित्र ही बनाना अधिक पसन्द करेंगे, पर किसी दूसरे गाँव मे, जहाँ बगीचे तथा साग-भाजी के कछार अधिक है, वहाँ के बालको के लिए फल, फूल, पेड, पौधे आदि बाते ही पाठ्यक्रम मे रखना ठीक रहेगा। शहरी बालको के लिए सडक, मोटर, रिक्शा, फलो की दूकानें आदि पाठ्यक्रम में रखना ठीक होगा।

बालको को रग बडे प्रिय होते है, अत उनके पाठ्यक्रम मे चित्रो की रँगाई के लिए भी स्थान होना चाहिए। प्रारम्भ मे वे किसी भी रग मे कही भी रँगेंगे। उन्हे अपने हाथ पर भी अधिकार नही होगा, पर उनके अपने विचार तो होगे ही। अत. उन्हे रँगने का अभ्यास भी खूब कराया जाना चाहिए। ४ से ८ वर्ष तक की आयु के बालको को चमकने वाले, विशेषत लाल रग, अच्छे लगते है। अत बालको को चमकने वाले रगो का उपयोग स्वतत्रता मे करने के अवसर देने चाहिएं।

बालक अपने आस-पास के वातावरण से सम्बन्धित चित्र ही बनाना पसन्द करते है, अत उनके पाठ्यक्रम मे उनसे सम्बन्धित बातो या सुनी या पढी गई कहानियो के चित्र बनाने का उल्लेख ही होना चाहिए। बुनियादी शालाओ मे तो चित्रकला के अभ्यास तथा जीवन मे सुन्दरता लाने के लिए ऐसे अनेक साधन मिलते है जिनका उपयोग करके बालको को चित्रकला मे स्वाभाविक रूप से दक्ष किया जा सकता है, जैसे कताई-बुनाई के यत्र, आसन, क्रियाओ, रगो, आकृतियो, कृषि तथा बागबानी मे बीजो, फलो, फूलो, पत्तियो, कीडे-मकोडो, कन्द-मूल, लताओं आदि के चित्र बालको से बनवाए जा सकते हैं। इसी प्रकार बुनियादी शालाओ मे अपनाए जाने वाले अन्य शिल्पो-सम्बन्धी चित्र, चार्ट आदि तथा समाज मे अपनाए जाने वाले लीपने, पोतने, सजाने, मडप बनाने, रगमच तैयार

करने तथा सजावट करने, नाट्य के लिए पात्रो को तैयार करने, आदि के माध्यम से भी बालको को चित्रकला का अभ्यास सरलता से कराया जा सकता है।

८ से ११ वर्ष के बालक भी अपने ही मन के चित्र बनाना चाहेगे, पर उन्हे उपरोक्त बाते सुझाई जा सकती हैं। इस आयु के बालको को निश्चित वस्तुएँ सुझाना ठीक रहता है। इस आयु मे रंग आदि की व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए। इस आयु मे बालको को शिक्षक या अन्य किसी की नकल न करके अपने सूक्ष्म प्रेक्षण या अवलोकन के आधार पर स्वतन्त्र चित्र बनाने तथा रँगने का अभ्यास कराया जाना ठीक रहता है। इससे उन्हे कुछ रेखाओ तथा रगो के आधार पर अपने अवलोकनो को ठीक-ठीक व्यक्त करने का अभ्यास होगा। १०-११ वर्ष की आयु के बालक जैसा देखते हैं वैसा ही चित्र बनाना चाहते हैं। अत कई बार उन्हे अपने द्वारा बनाये गए चित्र रुचते नही हैं। ऐसे अवसरो पर शिक्षक को आवश्यकतानुसार बताना चाहिए कि चित्र मे सडक, टेबल, फूल आदि किस प्रकार की रेखाएँ खीचकर बनाए जा सकते हैं। उन्हे दूर तथा पास की वस्तुएँ बनाना भी सिखाया जाना चाहिए। इसीलिए इस आयु के बालको के पाठ्यक्रम मे वस्तु तथा फ्री हैण्ड-चित्रकला रखे जाते है।

११ से १४ वर्ष के बालक-बालिकाओ की अपने ही कार्यों की आलोचना करने की प्रवृत्ति अधिक रहती है। अत इस आयु के बालको को स्मृति-चित्रकला का अभ्यास कराया जाना चाहिए। इसके लिए पढी-सुनी गई कहानियो, कविताओ, ऐतिहासिक चित्रो, देश-विदेश के चित्रो आदि का अभ्यास कराना ठीक होगा। इनके अभ्यास तो अन्य विषयो के शिक्षण के समय भी समवायित तरीके से कराए जा सकते है। इस आयु के बालको को पृष्ठभूमि के बदलने से वस्तु के दृश्य मे होने वाले परिवर्तनो को देखने तथा चित्रित करने मे बडा आनन्द आता है। अत. इसका अभ्यास भी उन्हें कराया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त १४-१५ वर्ष की आयु के बालक-बालिकाओ को

डिजाइन बनाना, प्राकृतिक चित्र बनाना, स्टैंसिल काटना आदि भी सिखलाया जाना चाहिए। १३-१४ वर्ष के बच्चों को अक्षर लिखने का अभ्यास भी कराया जाना उपयुक्त रहेगा। अक्षर लिखने के अभ्यास से उनमें सही-सही तथा सावधानी से काम करने की अच्छी आदतों का विकास होता है। पर हमारे यहाँ अक्षर लिखने का अभ्यास माध्यमिक कक्षाओं में कराया जाता है।

इस तरह हम देखते हैं कि ज्यामिति तथा स्केल-चित्रकला को छोड़कर प्राय अन्य सभी प्रकार की चित्रकला का समावेश बुनियादी शालाओं के चित्रकला के पाठ्यक्रम में किया गया है।

कुछ शिक्षकों का विचार है कि चित्रकला के अभ्यास के लिए महँगे तथा उत्तम प्रकार के सामान बहुतायत से बालकों को उपलब्ध कराना आवश्यक है, पर यह धारणा ठीक नहीं है।

चित्रकला के लिए आवश्यक सामान

बुनियादी शालाओं को तो स्थानीय साधनों का उपयोग ही अधिक-से-अधिक करना चाहिए। छोटे बालकों के लिए अपनी उंगलियाँ या लकड़ी चलाकर चित्र बनाने के लिए रेत, आकृतियाँ बनाने के लिए मिट्टी, शाला में बनाये गए रंग तथा पेण्ट ही काफी हैं। कागज के लिए तो अखबार के कागज या ऐसे कागज, जिनमें केवल एक ओर लिखा हो, काम में लाए जा सकते हैं, पर कागज बड़े होने चाहिएँ। गाँवों में बड़े-बड़े ब्रुश तो मिल ही नहीं सकते, अतः दातुन या लकड़ी के एक सिरे पर रुई या कपड़ा बाँधकर ब्रुश या कूची-सी बनाकर पेंण्टिंग का काम कराया जा सकता है।

स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार गेरू, पीली मिट्टी, चूना, तेल, गोंद, फल, फूल, पत्ती, बाँस की कूची, बेसन, स्थानीय बने हुए रंग, सुरमी आदि प्राप्त किये जा सकते हैं। बालकों में अपने स्थानीय साधनों का अधिक-से-अधिक उपयोग करने की आदतें डालना ठीक रहेगा।

चित्रकला-शिक्षण के समय निम्न बातें ध्यान में रखने योग्य हैं—

१ शिक्षक को बालक की रचना पर अपने विचार जबरदस्ती थोपने

का प्रयत्न नही करना चाहिए, क्योकि ऐसा करने से वालक को हानि पहुँचती है तथा वह संकोच करने लगता है, उसकी सृजनात्मक शक्ति दव जाती है तथा कल्पना-शक्ति का उचित विकास नहीं हो पाता ।

२. वालक जिस वस्तु का चित्र वनाने लगा हो, उसे उस वस्तु का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए ।

३. हमारी देहाती तथा शहरी अधिकांश शालाओ मे वैठने के स्थान की कमी होती है । अत. कक्षा लगाने की ऐसी विधि अपनानी चाहिए, जिसमे स्थान कम लगे ।

४. चित्रकला का कार्य करते समय प्रत्येक वालक को लकड़ी या कडे पट्ठे की एक तख्ती देनी चाहिए, जिस पर कागज़ रखकर वह चित्र बना सके या रँगाई का कार्य कर सके । यदि इस तख्ती के ऊपरी भाग मे कागज़ दवाने के लिए पिन लगे हो तो अच्छा रहेगा ।

५. चित्रो का आकार-प्रकार, रगो का चुनाव तथा मिश्रण वालक की आयु, समझ तथा अनुभव के अनुसार होना चाहिए ।

६. प्रारम्भिक अवस्था तथा कक्षाओ मे चित्राकन रेत या कोमल मिट्टी मे कराया जाना चाहिए ।

७ प्रारम्भिक कक्षाओ के चित्र चटकीले रग के होने चाहिएँ ।

८ चित्रकला के साधन सस्ते तथा वालोपयोगी होने चाहिएँ ।

९. रग वनाने तथा रखने के लिए मिट्टी के अच्छी चौडी पेंदी वाले छोटे-छोटे वरतन या कटोरियाँ उपयोग मे लानी चाहिएँ ।

१०. छोटे-छोटे वालक वहुधा लाने-ले जाने मे रंग गिरा देते हैं । अत: जहाँ तक हो रगो की कटोरियाँ बालको के वैठने के स्थान तक पहुँचा देनी चाहिएं ।

११. वालकों का ध्यान एक ही चित्र के अनेक प्रसगो की ओर आकर्षित नहीं करना चाहिए । वे तो रगीन भाग से ही अधिक

प्रभावित होते हैं। अत. उनका ध्यान रंगीन भाग की ओर ही आकर्षित करना चाहिए।

१२ यदि स्थान की सुविधा हो तो बैठने के स्थान की इस क्रम से व्यवस्था की जानी चाहिए कि विभिन्न वर्गों के आने से उसमें कोई परिवर्तन न करना पडे। इससे समय तथा शक्ति की बचत होगी।

१३ बालक को चित्रकला का ज्ञान देते समय सौन्दर्य-शास्त्र की प्रमुख बातों का ज्ञान भी करा देना चाहिए। इससे बालकों के स्वतन्त्र कार्य मे भी कलात्मक अशुद्धियाँ नहीं होगी।

१४ बालक मौखिक व्याख्या की अपेक्षा चित्र की सहायता से जल्दी समझ सकता है। अत चित्रकला के पाठों के लिए हमें विभिन्न चित्रों तथा चार्टों का उपयोग करना चाहिए।

१५. चित्रकला का कार्य करते समय शरीर तना हुआ तथा ऐसी स्थिति मे होना चाहिए कि कधो के दोनों सिरे कागज के ऊपरी सिरे के समानान्तर हो। साथ-ही-साथ चित्रकला की कापी या कागज़ डेस्क के सिरे के समानान्तर भी हो।

१६ किसी वस्तु का चित्र बनाने के पहले वस्तु के मॉडल की बाहरी रेखाओं को उंगली से बनाने का अभ्यास बालकों से कराना चाहिए। इससे वस्तु के चित्र की आकृति समझने तथा उसे दिमाग मे बैठाने मे सहायता मिलती है।

१७ बालकों को स्वाभाविक रंगो की योजना को ध्यान से देखने की ओर प्रेरित करना चाहिए। साथ-ही-साथ बालकों को अपने चित्रों मे इनका उपयोग करने के अवसर देने चाहिएं। इनसे उनमें अवलोकन, रसास्वादन और विश्लेषण की आदत पड़ेगी। कुछ बड़े होने पर उन्हे रंगों के सिद्धान्तों का ज्ञान भी कराना चाहिए।

१८ बालकों को चित्र मे रंग के स्थान पर रंगीन कागज़ आवश्यक

आकार के काटकर चिपकाने का अभ्यास भी कराया जाना चाहिए।

१६ प्रकृति-अध्ययन के प्रत्येक अभ्यास के बाद बालको को उसका उपयोग डिज़ाइन मे करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

कागज़ सभी घरो तथा शालाओ आदि में सरलता से मिल जाता है। अत: कागज़ का काम एक बहुत ही सरल साधन-सुलभ तथा उपयोगी शिल्प हो सकता है। कागज़ कई प्रकार के तथा कई रगो के आते हैं, जैसे झिल्ली कागज़, कार्ड-बोर्ड, साधारण, समाचार-पत्र का कागज, वस्तुओं को बांधने या लपेटने का ब्राऊन कागज़ आदि। इस कारण कागज़ की अनेक वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं। कागज़ का काम छोटे से लेकर बड़े बालकों तथा प्रौढों सभी के लिए उपयोगी तथा रुचिकर सिद्ध हो सकता है।

कागज़ का काम

कागज़ के काम के लिए औज़ार भी सरल तथा थोडे-से लगते हैं। ये औज़ार समाज मे या शाला मे सरलता से उपलब्ध हो सकते है, जैसे कैंची, रूल, पेंसिल, लेई, पेण्ट, ब्रुश आदि। कागज़ को काटकर, मोड़कर, लपेटकर तथा गुडी करके अनेक वस्तुओ का निर्माण किया जा सकता है। कागज़ पर अन्य किसी पुस्तक या अखबार से पतले झिल्ली कागज़ से अक्स, चित्र या डिज़ाइन उतारा जा सकता है।

सभी प्रकार के अन्य शिल्पो के समान कागज़ के काम में भी कुछ क्रियाएँ कठिन तथा कुछ सरल हैं। पहली तथा दूसरी कक्षा के लिए सरल चित्रो को अक्स करके उतारना, सीमाएँ काटना, कागज़ मोड़ना, कागज़ को गोद से जोडना, कागज़ मे चीज़ें लपेटना, क्रेयान से रँगना, छेद करना, धागा बाँधना आदि क्रियाएँ सरलता से कराई जा सकती हैं। ये क्रियाएँ कराके पहली तथा दूसरी कक्षा मे कागज़ के जानवर, पक्षी, पेड, पौधे, तकली, टोकनियाँ आदि बनवाई जा सकती हैं।

तीसरी तथा चौथी कक्षा मे बालक कागज़ को काटना, मोडना, पेण्ट करना, नापना, कार्क मे छेद करना तथा तार लगाना आदि क्रियाएँ कर

सकते हैं। इन क्रियाओं द्वारा उनसे जानवर, पक्षी, मुर्गी-पालन उद्योग-सम्बन्धी चित्र, घर, खलिहान, कच्चा माल रखने का कमरा, तकली, कपास की सफाई से कताई तक के लिए आवश्यक यंत्र, नाव, मोटर आदि बनवाए जा सकते हैं।

पांचवीं से आठवी कक्षा तक डिज़ाइनो को बढाना तथा छोटा करना, रंग स्प्रे करना, कागज़ को जल्दी सूखने वाले गोंद से चिपकाना आदि क्रियाएँ भी कराई जा सकती हैं। इन क्रियाओ की सहायता से बैलगाडी, आदमी, ग्वाला, विभिन्न सांस्कृतिक आयोजनो पर उपयोग मे आने योग्य कागज़ के चेहरे आदि बनवाए जा सकते हैं।

कागज़ के काम की अनेक छोटी सरल तथा बडी और कठिन योजनाएँ बनाई जा सकती हैं। इन योजनाओ के कार्यान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि बालको को इनसे सम्बन्धित आवश्यक सिद्धान्तो की जानकारी करा दी जाय। यदि बालक एक बार इन सिद्धान्तो को समझ जायेंगे तो बाद मे कोई कठिनाई न होगी। बालकों को नये डिज़ाइन आदि के विचार समाचार-पत्र, अभिनन्दन-पत्र, पुस्तको आदि मे प्राप्त हो सकते हैं। हमे हमेशा बालको को मौलिक डिज़ाइन बनाने के लिए प्रेरित करते रहना चाहिए।

कागज़ के काम की कुछ योजनाएँ

कागज़ की वस्तुएँ बनाने की कुछ योजनाएँ नीचे दी जा रही हैं उनकी सहायता से शाला मे वस्तुएँ बनवाई जा सकती हैं—

१ कागज़ के जानवर बनाना—प्रथम विधि

(क) जानवर का बाजू का चित्र (Side view) उतार लें। चित्र उतारते समय इस बात का ध्यान रखें कि उनके पैर एक ही सतह पर रहें। चित्र उतारते समय केवल दो पैर तथा एक कान दिखाएँ।

(ख) ऊपर की विधि से उतारे हुए अक्स की सहायता से एक-से दो कार्डबोर्ड के टुकडे काटें। इन्हें फिर अच्छे रंग से रंगें।

(ग) जानवर की आँख, मुँह, खुर, नाक, गला आदि क्रेयान से दिखाएं।

(घ) १ इंच का घन बनाएँ। इसके लिए कुछ मोटा-सा कागज़, जो ३ इंच × ४ इंच का हो, ठीक रहेगा। इसे सभी ओर से गोंद से चिपका दें।

(ङ) अब इस घन आकार के कागज़ को दोनो कार्ड-बोर्डों के बीच मे चिपका दें।

(च) दोनों कार्ड-बोर्डों पर बने दोनों सिर तथा पूंछ भी चिपकाकर एक बना लें।

इस प्रकार यदि काग़ज़ अच्छा तथा कड़ा होगा तो जानवर अच्छे बनेंगे।

जानवर बनाने की दूसरी विधि

(क) बिल्ली, कुत्ता, गिलहरी, चूहे आदि छोटे जानवरो के सामने तथा पीछे के हिस्सो के चित्र कड़े-से कागज़ो पर अलग-अलग उतार लें।

(ख) चित्र उतारकर उन्हे उचित रंग से रंगें।

(ग) अब एक घिर्री या पतला चक्का-सा लेकर उसके सामने के छोर या भाग से जानवर का सामने का चित्र तथा दूसरे छोर से पीछे के भाग का चित्र चिपका दें। चिपकाते समय इस बात का ध्यान रखें कि आगे तथा पीछे के चित्रो की सतह एक-सी रहे।

(घ) अब जानवर को पिछले भाग पर रखकर सूखने दें।

२. पक्षी बनाना

(क) ८ इंच × ६ इंच का काग़ज़ का टुकड़ा लें तथा उसे मोड़कर ४ इंच × ६ इंच का बना लें।

(ख) मोड़ा हुआ भाग नीचे करके पक्षी का चित्र बनाएँ। ध्यान रहे कि पेट का भाग मोड़ पर ही आए।

(ग) कागज़ को मुड़ा हुआ ही रखें तथा पक्षी के आकार का काट

ले। दोनो कागज़ काटने का ध्यान रखे। पेट के पास का कागज का मोड़ न काटें।

(घ) अब कागज़ को यथोचित रगो से रंगे। पक्षी के पंख तथा पूंछ आदि का कागज़ दोनो तरफ रंगना चाहिए।

(ङ) अब सिर तथा धड को गोंद से चिपका दें।

(च) पखो मे उपयुक्त स्थल पर छेद करके दोनो ओर पंखो तथा पूंछ के टुकडो को मोडें तथा सुई-धागे से धागा छेद मे से ले जाकर बांधें। यदि पक्षी को किसी पेड़ पर टांगना हो तो धागा लम्बा लटकने के लिए भी रखें।

३ पेड बनाना

(क) लगभग १२ कागो (शीशियो के कार्क) मे छेद करें।

(ख) पतले हरे कागज़ के लगभग एक दर्जन पत्ते खजूर के पत्तो के समान काटे।

(ग) एक कडा पट्ठा लेकर लगभग ५ इच व्यास का गोलाकार काटकर पेड का आधार बनाएँ। एक दूसरा छोटा-सा एक पैसे-बराबर पट्ठे का गोल टुकडा काटें। अब दोनो गोलो के बीचो-बीच छोटे-छोटे छेद करे।

(घ) एक पतला लगभग १२ इच का तार का टुकडा लेकर एक सिरे पर उसे मोड दे।

(ङ) अब बिना मुडे तार के भाग को बडे पट्ठे के टुकडे के बीच के छेद से ले जाकर प्रत्येक कार्क के छेद से निकालें। ध्यान रहे कि कार्क का चौडा भाग बीच की ओर रहे।

(च) अब तार मे सभी पत्ते पिरोएं तथा उन्हे सभी दिशाओ मे फैला दे। पट्ठे का छोटा टुकडा भी तार मे पिरोकर तार को खींचें तथा कसकर बांधे। तार के छोर को मोडकर फस सकते है। यदि अधिक तार बचता हो तो उसे काट दें। कार्को से बनी पेड की पक्ति आवश्यकतानुसार मोडी जा सकती है।

मिट्टी प्राय. सभी स्थानो मे सरलता से प्राप्त की जा सकती है। मिट्टी से उगलियो से काम करके लम्बाई, चौडाई तथा ऊँचाई तीनो का उपयोग करके वस्तुएँ बनाई जा सकती है। अत. मिट्टी का काम शालाओं मे एक विशेष स्थान रखता है। मिट्टी का उपयोग निम्न तीन प्रकार के कार्यों के लिए किया जा सकता है—

मिट्टी का काम

१. मिट्टी के ठोस तथा चिपकने वाली होने के कारण बालक अपनी कल्पना के लिए विशेष रूप प्रदान करके वस्तुएँ बना सकते हैं।
२. इससे बालक अपने खेल तथा उपयोग की अनेक वस्तुएं बना सकते हैं। बालक १० तथा ११ वर्ष की आयु मे तो कटोरी, खपरे आदि सरलता से बना सकते हैं।
३ मिट्टी का उपयोग अन्य विषयों में भी सहायक सामग्री, मॉडल आदि बनाने के लिए किया जा सकता है।

शालाओं मे शिक्षको को मिट्टी का उपयोग करने मे एक सबसे बडी अड़चन इससे बनी वस्तुओ के सग्रह मे आती है। पर बच्चे स्वभावत. ही मिट्टी से खेलते हैं। यह हमारी सभ्यता का एक प्रमुख पदार्थ है। यह हर आयु के बालक-बालिकाओं के लिए उपयोगी पदार्थ है। मिट्टी के काम की एक शैक्षणिक उपयोगिता यह है कि यह कोई कार्य करने की सभी आवश्यक विधियो के उपयोग का अवसर प्रदान करती है। मिट्टी वास्तव में स्वयं सीधे काम करने का पदार्थ है। इससे काम करते समय बालक अंगुलियों से दबाना, हाथ को धकेलना तथा घुसाना आदि क्रियाएँ सीखते हैं। मिट्टी से काम करने मे विचार की अपेक्षा अधिक प्रत्यक्ष अनुभव होता है। बचपन मे बालक अपना एक काम जल्दी से करके दूसरे नये काम में लगना पसन्द करते हैं। शाला मे पढ़ाए जाने वाले अन्य विषयो तथा उद्योगों मे ऐसे अवसर ही अधिक आते है, जब बालको को अपने काम या क्रिया का, प्राप्त किये गए सामान के साथ, बार-बार अभ्यास करना पडता है। पर मिट्टी के काम मे ऐसा नही

होता । मिट्टी के काम मे तो वे जल्दी तथा विश्वास के साथ कार्य करते हैं, अनुपयोगी पदार्थ का त्याग करते है तथा प्राय प्रतिदिन नया काम प्रारम्भ करते है। मिट्टी चूंकि सस्ती पडती है, अत उसमे यह सब सम्भव है, अन्य शिल्पो के काम मे यह सम्भव नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शालाओ मे मिट्टी के काम का बालक तथा शिक्षक दोनो के लिए बडा महत्त्व है। बालक के लिए मिट्टी का काम इद्रियो की शिक्षा का क्षेत्र निर्माण करना, बालक की उंगलियों के लिए परिश्रम देना, आत्म-नियत्रण, तथा उसकी निर्माण करने की इच्छाओ के सही-सही चुनाव मे सहायक होता है। सरलता से आकार ग्रहण करने योग्य होने के कारण मिट्टी बालक को अपनी कल्पनाओ को साकार रूप देने मे बडी सहायक होती है। साथ-ही-साथ मिट्टी का काम दोषपूर्ण होने पर सरलता से तथा बिना खर्च के नष्ट किया जा सकता है और उपयोगी होने पर कडा करके पकाया भी जा सकता है।

शिक्षक मिट्टी के काम के साथ विभिन्न विषयो का समवाय सरलता से स्थापित कर सकता है। इसके काम मे कोई विशेष खर्च भी नही लगता तथा अधिकाश शालाओ को आवश्यकतानुसार जितनी चाहे मिट्टी सरलता से मिल सकती है। इस शिल्प के लिए बहुत कम सामान की आवश्यकता पडती है। शालाएँ अपने भट्टे भी तैयार कर सकती है। मिट्टी के काम द्वारा बनी वस्तुओ को पकाया भी जा सकता है। पर यदि भट्टे न भी बनें तो भी इस शिल्प की उपयोगिता कम नही होती।

मिट्टी के काम मे जानवर, पक्षी तथा मनुष्याकृतियां बनाना ही छोटे बालको को प्रिय है। इन्हे व्यक्तिगत तथा सामूहिक इकाइयों द्वारा कक्षाओ मे बनवाया जा सकता है।

मिट्टी के काम मे मिट्टी का चुनाव, एकत्रीकरण, वस्तुएं बनाने के लिए मिट्टी की तैयारी, मिट्टी के बने टुकडो को जोड़ना, बनी वस्तुओ को सुधारना, बनी वस्तुओ का रँगना, चमकाना आदि क्रियाएँ प्रमुख है।

मिट्टी के काम के लिए लाल, पीली तथा काली मिट्टी ही काम मे लाई

जाती है। काली मिट्टी मे दरारें पड़ती है, पर पीली मिट्टी अच्छी होती है। चूँकि प्रत्येक स्थान में पीली और लाल मिट्टी का मिलना कठिन तथा खर्चीला होता है, अतः प्राथमिक शालाओ मे तो शालाओ के आसपास पाई जाने वाली मिट्टी का उपयोग ही किया जा सकता है। हाँ, इस मिट्टी को काम के लायक तैयार करने मे समय और परिश्रम लगता है।

मिट्टी का चुनाव

मिट्टी को टीन के या अन्य बरतन मे इकट्ठा करके रखना चाहिए। इसे ढककर रखना चाहिए। मिट्टी के ऊपर गीली फट्टी या मोटा कपड़ा भी लगाया जा सकता है। काम मे आने के समय मिट्टी गीली होनी चाहिए। मिट्टी की वस्तुओ को बनाकर एकदम न सुखाकर धीरे-धीरे सुखाना चाहिए। एकदम सुखाने से बनी वस्तुओ मे दरारें पट जाती हैं। बनी वस्तुओं को गीले कपड़े से ढककर रखना चाहिए तथा कपड़ा सूखने पर भी उसे वस्तुओ से ही लिपटा रखना चाहिए। इससे सूखने की क्रिया धीमी हो जाती है।

मिट्टी का एकत्रीकरण

अपने आसपास पाई जाने वाली मिट्टी लाकर, कूटकर उसका चूर्ण-सा बना लेना चाहिए। इस चूर्ण को एक कपडे से छानकर आवश्यकतानुसार पानी मिला लेना चाहिए। हमे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पानी कम या अधिक न हो। कम या अधिक पानी रखने से काम करने मे कठिनाई आती है। यह जानने के लिए कि पानी उचित मात्रा मे है, गीली मिट्टी का लगभग आधा इंच व्यास का तार-सा बनाकर उसे हाथ में लेना चाहिए। यदि वह बिना टूटे मुडकर दुहरा-सा हो जाय तो समझना चाहिए कि मिट्टी अच्छी बनी है।

मिट्टी तैयार करना

वस्तुएँ बनाते समय कई बार यह आवश्यक होता है कि उनके अनेक भाग अलग-अलग बनाए जायँ तथा बाद मे जोडकर पूर्ण वस्तु या पदार्थ तैयार किया जाय। इसके लिए दो विधियो का उपयोग किया जा सकता

वस्तुओ के बने टुकडो को जोड़ना

है। सबसे साधारण विधि तो यह है कि किसी चपटी लकडी तथा उँगलियो की सहायता से अलग-अलग बने हुए भाग एक-दूसरे से चिपकाकर मिला दिए जायँ तथा जोडो को एक-सा कर दिया जाय। इसे दबाव या ठोक-पीटकर जोडना कहते हैं।

दूसरी विधि मे मिट्टी को पानी मिलाकर पतला-सा कर लिया जाता है तथा इसका गोद के समान उपयोग करते है। वस्तुओ के बने अलग-अलग भाग गीले होने चाहिएँ। ये भाग यदि सूखे होगे तो ठीक से न जुडेंगे।

बडे-बडे भागो को जोडने के लिए उपरोक्त दोनो विधियो को उपयोग मे लाया जा सकता है।

मिट्टी के काम का अन्त तो भट्ठे मे पकाकर ही होना चाहिए। पर हर शाला मे भट्टे नही होते हैं। भट्ठा लगाने से पहले वस्तुओ को चिकना

बनी वस्तुओ को सुधारना, रँगना तथा चमकाना

करना चाहिए। चिकना करने के लिए पानी तथा हल्के हाथ का उपयोग करना चाहिए। चिकना करके, भट्ठा लगाकर वस्तुएँ पकानी चाहिएँ। इससे वे कडी तथा मजबूत बन जाती है। इससे वस्तुएँ सुन्दर भी हो जाती हैं तथा चमकने लगती है।

यदि मिट्टी की बनी वस्तुओ को पकाने की सुविधा न हो तो उन्हे रँगना चाहिए। रँगाई करने से पहले वस्तुओ को खूब सुखा लेना चाहिए। यदि कोई डिजाइन बनाना हो तो उसे रँगाई के पहले पेंसिल से बना लेना चाहिए। रंग गाढा होना चाहिए तथा ब्रुश से किया जाना चाहिए। यदि ब्रुश न हो तो दातुन की कूची या खजूर की पतली शाखा की कूची का उपयोग किया जा सकता है। यदि एक से अधिक रगो से रँगाई करना आवश्यक हो तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि एक रग के सूखने पर ही दूसरा रग लगाया जाय।

रग के उडने तथा फीका पडने से वचाने के लिए वार्निश या चपडा भी लगाया जा सकता है। पर रग को कम-से-कम चौवीस घण्टे तक सूखने के वाद ही चपडे या वार्निश का उपयोग करना चाहिए। यदि गीले रंग पर ही चपड़ा या वार्निश का उपयोग किया जायगा तो वह टूट या चटख जायगा। चपड़ा या वार्निश को स्प्रे करके ही लगाना ठीक होता है। तीन भाग चपडे मे एक भाग स्पिरिट का उपयोग करके स्प्रे करना अच्छा होगा। स्प्रे वहुत अधिक गाढा भी नही होना चाहिए, नही तो पहले किया गया रंग बिगड़ जायगा।

मीने का काम करने से पहले भी वस्तु को अच्छी तरह सुखाना चाहिए।

मिट्टी के काम की कुछ योजनाएं

मिट्टी के जानवर वनाना। वालको द्वारा मिट्टी के जानवर सरलता से वनाए जा सकते हैं। पर ध्यान रखे कि जानवरों के छोटे-छोटे पतले अंग, जैसे पतले पाँव, छोटी-छोटी पूंछ आदि, न वनानी चाहिएँ, क्योंकि ये जल्दी टूट जाती हैं। जानवर वनाते समय केवल सामान्य आकृति वनाने की ओर ही वालको को प्रेरित करना चाहिए।

कोई भी जानवर वनाते समय निम्न विधि अपनाना उपयोगी होगा—

(क) मिट्टी तैयार करके उसका एक गोला वनाएँ।

(ख) पहले गोले के एक भाग को थोड़ा खीचकर सिर तथा गरदन वनाएँ। सिर गोल तथा गरदन थोडी लम्बी होनी चाहिए।

(ग) सिर के ऊपर कान वनाने के लिए मिट्टी को कुछ खींचें तथा इसी प्रकार पूंछ भी गोले के दूसरी ओर वनाएँ।

(घ) अव गोले को पोले से पकड़कर उलटा करें। ध्यान रहे कि मिट्टी को इतना न दवाया जाय कि उँगलियो के निशान वन जायें। गोले को उल्टा करके आगे तथा पीछे के पैर वनाने के लिए थोडी-सी मिट्टी खीचें।

(ङ) दो पैर वन जाने के वाद आगे तथा पीछे के पैरो को आधा-आधा करें। इससे जानवर के चार पैर वन जायेंगे। पैर छोटे

तथा मोटे ही बनाने चाहिएँ।

(च) अब जानवर को सीधा करके और भी थोड़े-से अंग बनाएँ, जैसे आँख, नाक, ओठ आदि।

(छ) इतना बन जाने के बाद उसे पानी की सहायता से चिकना-सा करके सुखा लें।

(ज) सूखने के बाद उसे पकाया या रँगा जा सकता है। सूखने, पकाने या रँगने के लिए ऊपर दी गई विधियों तथा सावधानियों का ध्यान रखें।

नरम खिलौने यथार्थ या कल्पित डिज़ाइनों के हो सकते हैं। इनके बनाने के लिए बुनियादी शालाओं की बची-बचाई छीजन, कपास, सूत आदि के टुकड़े काम में लाए जा सकते हैं। इनको बनाने के लिए कुछ मोटा कपड़ा ही काम में लेना चाहिए, जैसे दुसूती, टर्किश टावल का रोएँदार कपड़ा, मोटी खादी आदि। कुछ बहुत धनी शालाओं में फेल्ट आदि का उपयोग भी किया जाता है, पर हमारी भारतीय बुनियादी शालाएँ तो मोटी खादी, दुसूती आदि का उपयोग करके ही काम चला सकती हैं। नरम खिलौनों में जानवर, जैसे कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, हाथी, या कुछ पक्षी आदि ही बनाए जाते हैं। इनके बनाने का काम तीसरी या चौथी कक्षाओं से प्रारम्भ किया जा सकता है। इनके बनाने के लिए बहुत ही साधारण सामान की आवश्यकता पड़ती है, जैसे कैंची, कपड़ा, अन्दर भरने के लिए बुरादा, छीजन, सुई, धागा आदि। नरम खिलौने उचित आकार के कपड़े को काटकर, बुरादा, छीजन आदि भरकर और सिलाई करके बनाए जाते हैं। नरम खिलौनों के डिज़ाइन सरल तथा कठिन दोनों प्रकार के हो सकते हैं। बहुधा ये खिलौने बनाते समय जानवर या पक्षी का धड़ पहले बना लिया जाता है तथा पूँछ, कान, आँख, पैर, सींग और पंख बाद में अलग से बनाकर सी दिए जाते हैं। जानवरों तथा पक्षियों के डिज़ाइन तो सिलाई, भराई या कढ़ाई की पुस्तकों से उतारे जा सकते हैं। निम्न विधि

नरम खिलौनों का काम

को अपनाकर सरलता से कोई जानवर बनाया जा सकता है—

१. कागज पर जानवर का बाजू का चित्र उतारे। चित्र उतारते समय इस बात का ध्यान रखे कि लम्बे, पतले पैर आदि बारीक बातों का समावेश चित्र मे न किया जाय।

२. यह चित्र मोटे कपडे को दुहरा करके उस पर चिपका दे। अब इस आकार के अनुसार कैंची से कपड़े को काट लें। कपडा निश्चित आकार से लगभग चौथाई इंच अधिक ही काटे, जिससे सिलाई आदि मे काफी कपडा दबाया जा सके।

३. उचित आकार मे कपडा काटने के बाद दोनो कटे कपडे के भागो को जोडकर पिन लगा दे। कहने का तात्पर्य यह है कि सिर-से-सिर मिलाकर, पैर-से-पैर मिलाकर पिन लगाएँ तथा उसे सुई-धागे से मजबूती से सी दे। पैर वाले भाग मे कुछ स्थान बुरादा आदि भरने के लिए खुला रहने दे।

४ अब सिलाई को भीतर की तरफ पलटकर छीजन या बुरादा भरना चाहिए। छीजन या बुरादा पैरो की राह धीरे-धीरे पेंसिल या कलम या दातुन से भीतर की ओर धकेलते जाना चाहिए। सिर तथा पूंछ के अच्छी तरह भरने के बाद धड़ को भरना चाहिए।

५ सामान अच्छी तरह भर जाने के बाद जानवर या पक्षी का खुला हुआ भाग सी देना चाहिए।

६ अब आँख बनाने के लिए बटन या गुरिया, कान के स्थान पर कपडे के बने-बनाए कान, मुंह के स्थान पर थोडी-सी सिलाई आदि करके खिलौना तैयार करना चाहिए।

अध्याय ३

सामान्य विज्ञान-शिक्षण

१ : सामान्य विज्ञान का महत्त्व

सामान्य विज्ञान का महत्त्व जानने से पहले हमें यह जान लेना उपयोगी होगा कि यह है क्या। हम बहुधा विज्ञान का नाम लेते ही सोचने लगते हैं कि यह कोई कठिन, दुरूह तथा आकाश में रहने वाली सूक्ष्म चीज़ है। वास्तव में बात ऐसी नहीं है। विज्ञान न तो आकाश की कोई दुरूह वस्तु है और न रसायन-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र आदि के कुछ सिद्धान्तों या बातों की जानकारी-मात्र ही है। यह तो स्वाभाविक वातावरण का अध्ययन है। स्वाभाविक वातावरण में रसायन-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र, ज्योतिष, जीव-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र पत्थर, मिट्टी से सम्बन्धित भू-विज्ञान आदि अनेक विषयों का समावेश रहता है। फलस्वरूप यह स्वाभाविक ही है कि स्वाभाविक वातावरण से सम्बन्धित इन विषयों के क्षेत्रों की बातों का समावेश सामान्य विज्ञान के पाठ्यक्रम में किया जाय।

सामान्य विज्ञान क्या है?

बालक की जिज्ञासा भी अपने आसपास के वातावरण से सम्बन्धित बातें जानने की होती है। बालक अपने आस-पास पशु, पक्षी, वनस्पतियाँ आदि देखता है तथा उनके जीवन के सम्बन्ध में प्रश्न करता है। गरमी में बाहर खेलते या कहानियाँ सुनते समय उसका ध्यान आकाश के तारों, चन्द्रमा आदि की ओर जाता है तथा वह इनके बारे में जानने के लिए अपने नाना-दादी या साथियों से प्रश्न किया करता है। हम

वहुधा देखते हैं कि घरो तथा शालाग्रो मे वच्चे इन्ही वातो के सम्वन्ध मे प्रग्न पूछा करते हैं। इस प्रकार की वातो की जानकारी कराना कठिन नही होता। इन वातो का वहुत टेक्निकल ज्ञान भी इस प्रारम्भिक अवस्था मे कराया जाना आवग्यक नहीं, क्योकि इस छोटी आयु मे वालक इनसे सम्बन्धित वहुत ही टेक्निकल वातें समझ भी नही सकते। उन्हे तो इनके सम्वन्ध मे क्या, कौन तथा कैसे की साधारण जानकारी कराना ही ठीक रहता है। अत वालको के आसपास के वातावरण के सम्वन्ध मे कौन, क्या तथा कैसे आदि की जानकारी कराना ही सामान्य विज्ञान है।

अव प्रश्न यह उठता है कि इस सामान्य विज्ञान से सम्वन्धित वातें वालक को कहाँ से प्राप्त हो सकती हैं। हमारी वुनियादी शालाओ मे जीवन की ठोस परिस्थितियो के आधार पर ही ज्ञान देने की कल्पना की गई है। जीवन की ठोस परिस्थितियाँ वही होगी, जहाँ वालक रहते है, चलते-फिरते हैं, भोजन करते हैं, पानी पीते हैं, सोतें तथा उठते-बैठते है। इन्ही सव क्रियाओ से सम्वन्धित अनेक वातो का ज्ञान वालको को कराया जाना आवश्यक है। ये क्रियाएँ करते हुए वालको को सभी सम्वन्धित वातो की आवश्यक जानकारी कराई जा सकती है। वालक साँस लेते हैं, पानी पीते हैं, भोजन करते हैं, इन क्रियाओं से सम्वन्धित हवा, स्वच्छ जल, भोजन के तत्त्वो आदि का ज्ञान वालको को कराया जा सकता है। कही आग लग जाती है, आग लगने के कारण तथा वुझाने की विधियो का ज्ञान कराना ही सामान्य विज्ञान हो जाता है। वालको के लिए शुद्ध तथा स्वच्छ हवा में रहना-खेलना आवश्यक है; इसके लिए वगीचे, मैदान आदि के सम्वन्ध मे वताया जा सकता है। वगीचे के पेड-पौधो के उगने, साँस लेने आदि की जानकारी भी कराई जा सकती है। यही सव ज्ञान सामान्य विज्ञान के अन्तर्गत आ जाता है।

सामान्य विज्ञान की परिभाषा अनेक विद्वानो तथा वैज्ञानिक संस्थाओं ने की है। इनसे भी हमे सामान्य विज्ञान से सम्वन्धित वातो का पता लग

सकता है। सन् १९३२ मे गेल्टन नामक विद्वान् ने सामान्य विज्ञान की निम्न परिभाषा दी—"सामान्य विज्ञान सावधानीपूर्वक एकत्रित किया गया वह पाठ्यक्रम है जो सभी भौतिक तथा जीव-सम्बन्धी विज्ञानो मे निहित प्रमुख पर साधारण सिद्धान्तो से सम्बन्ध रखता है तथा जो इन सिद्धान्तो को साधारण शिक्षित मानव के जानने योग्य तथ्यो का चयन करके उन्हे समझाता है। इस पाठ्यक्रम मे वे विवरण नही रहते, जिनका अध्ययन विशिष्ट विज्ञानो मे भली भाँति किया जा सकता है।"

इसी प्रकार १९५० मे इगलैड के 'साइंस मास्टर्स असोसिएशन' ने सामान्य विज्ञान की परिभाषा देते हुए व्यक्त किया कि "सामान्य विज्ञान वैज्ञानिक अध्ययन एव अनुसधान का ऐसा विषय होना चाहिए जिसकी जडें बालको के सामान्य अनुभवो मे होती हैं तथा जो प्रमुख विज्ञानो मे से किसी को भी अलग नही करता। इसका उद्देश्य विशिष्ट वैज्ञानिक विषयो के बीच परम्परागत विभाजन पर बल न देकर, प्रकृति मे दिखाई देने वाले सामान्य सिद्धान्तो को स्पष्ट करना है।"

इन परिभाषाओ से भी यह स्पष्ट है कि सामान्य विज्ञान जीवन से सम्बन्धित बातो के विषय मे वैज्ञानिक जानकारी कराने मे सहायक होता है।

हम यह जानते है कि एक जानकार व्यक्ति अज्ञानी व्यक्ति की अपेक्षा अधिक उपयोगी तथा अच्छा होता है। व्यक्ति के जानकार या ज्ञानवान होने के लिए यह आवश्यक है कि उसे अपने आस-पास के वातावरण का अच्छा ज्ञान हो। पर वातावरण के अच्छे ज्ञान का तात्पर्य यह नही है कि व्यक्ति को वातावरण सम्बन्धी अनेक बातें याद हो, जिनका उपयोग वह बातचीत के समय करे। उसमे तो वातावरण के ज्ञान का उपयोग अपने दैनिक जीवन-यापन मे करने की क्षमता होनी चाहिए। यदि वह प्राप्त ज्ञान का उपयोग अपने जीवन-यापन तथा उसके विकास मे नही कर पाता तो वास्तविक [illegible]

सामान्य विज्ञान का महत्त्व तथा आवश्यकता

से हम उसे जानकर या ज्ञानवान नहीं कह सकते। अतः सामान्य विज्ञान के अध्ययन द्वारा प्राप्त सामान्य सिद्धान्तो का ज्ञान उसे केवल खानापूर्ति मे ही नही, वरन् उसके जीवन के विकास तथा जीवन की समस्याएँ हल करने मे भी सहायक होगा।

हम बालकों में अच्छी तरह विधिवत् सोचने-विचारने की आदतें डालना चाहते हैं। सामान्य विज्ञान के अध्ययन के समय उन्हे खोज करके सिद्धान्त-निरूपण की वैसी ही विधियाँ अपनानी पड़ती हैं जैसी कि वैज्ञानिक अपनाते है। अत. किसी बात के सम्बन्ध मे तथ्यो के आधार पर सिद्धान्त निकालने या नतीजे पर पहुँचने की अच्छी आदतें बालकों मे इस विषय के अध्ययन से आप-से-आप पड़ जाती हैं।

इस विषय के लगातार अध्ययन से बालको मे अपनी समस्याओ पर विचार करने तथा स्वयं उनके हल खोजने की अच्छी आदतें भी पडती हैं। साथ-ही-साथ अनेक प्रकार के अन्ध-विश्वासों को हटाने, सोचने तथा कारणो की सही जानकारी करने से बालको मे वस्तुओ तथा परिस्थितियो के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण रखने की आदत भी पड़ती है। इससे उन्हें एकदम किसी भी परिणाम पर पहुँचकर उसे ही सत्य मानने की बुरी आदत नहीं पडती। वे कारणो के आधार पर परिणाम निकालने तथा और विस्तृत जानकारी करके अपने परिणामो मे आवश्यक परिवर्तन करने के लिए भी तैयार रहते हैं।

हम यह जानते हैं कि बालक अपने आसपास के वातावरण सम्बन्धी बातें जानने के लिए उत्सुक रहते है। सामान्य विज्ञान का अध्ययन करके वे अपने आसपास की जमीन, जमीन के ऊपर तथा नीचे पानी, हवा तथा आकाश आदि की बातो की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। इससे उनके सामने अनेक नई-नई बातें आती है। ये नई बातें बालको की रुचियो का क्षेत्र विस्तृत करती है, और साथ-साथ पूर्व-निर्मित रुचियो की पुष्टि करती है। इतना ही नही, सामान्य विज्ञान के अध्ययन से उनमे अपने आसपास की चीज़ो मे सहानुभूति होती है तथा वे उनकी कीमत समझने लगते हैं।

वास्तव मे बालक आसपास की तितलियो, वृक्षो और फूलो के सम्बन्ध मे अनेक वार व्याख्यान सुनने के बाद भी रुचि न लेंगे। पर यदि जीवन-यापन करते समय इन वस्तुओ को बालक प्रत्यक्ष देखे तथा मानव-जीवन पर इनके द्वारा पडने वाले प्रभावो की जानकारी प्राप्त करें तो इन चीजो तथा जीवो में उनकी रुचि तथा लगन वास्तविक होगी।

इन सब बातो की जानकारी तथा स्वस्थ आदतो का विकास सामान्य विज्ञान-शिक्षण से कराया जा सकता है। पर यह सब शिक्षक की प्रतिभा तथा उसकी कार्य-शैली पर निर्भर है, क्योकि शिक्षक सामान्य विज्ञान-शिक्षण को तोता-रटन्त भी बना सकता है तथा अच्छी तरह अवलोकन से प्राप्त जानकारी के आधार पर परिणाम तथा तथ्य-निरूपण की प्रक्रिया मे भी परिवर्तित कर सकता है।

उपरोक्त लाभो के साथ-साथ सामान्य विज्ञान-शिक्षण का महत्त्व एक दृष्टि से और भी है। यह तो हम जानते हैं कि हमारा जीवन पूर्ण रूप से वैज्ञानिक नही है तथा विज्ञान का कम ज्ञान होते हुए भी हम अपना जीवन अच्छी तरह चला सकते है। पर वर्तमान समय मे होने वाले वैज्ञानिक आविष्कारो का प्रभाव हमारे जीवन पर पडे विना नही रह सकता। ये आविष्कार इतनी शीघ्रता से तथा इतनी अधिक सख्या मे हो रहे हैं कि हमारा जीवन इनसे अछूता नही रह सकता। अछूता रहने की तो बात ही क्या है, इनके प्रभाव से हमारे जीवन-यापन की विधियाँ तथा सोचना-विचारना सभी बहुत ही अधिक तेजी से बदलते जा रहे है। वास्तव मे वर्तमान आविष्कार, मशीनें तथा इनसे उत्पादित होने वाले माल इतनी गति के साथ हमारे जीवन की क्रियाओ के अभिन्न अग बनते जा रहे है कि इन क्षेत्रो मे होने वाले आधुनिकतम परिवर्तनो की जानकारी लिये विना या नये-नये उत्पादित माल का उपयोग किये विना हम अपने जीवन को सुखी और सम्पन्न नही बना सकते। हमारी बुनियादी शिक्षा व्यक्ति की जीवन-यापन की सामाजिक क्षमता की वृद्धि करना चाहती है, पर इस जीवन-यापन की सामाजिक क्षमता का विकास तभी सम्भव है जब

हम बालको को उनके वातावरण के सम्बन्ध मे वैज्ञानिक जानकारी कराएं। पर बालक के वातावरण की जानकारी को अभी तक चले आए ढंग से भौतिक, रसायन, ज्योतिष-शास्त्र आदि के पृथक्-पृथक् अध्ययन कराने से कोई लाभ न होगा। इसके लिए तो वैज्ञानिक विषयो का सह-सम्बन्ध स्थापित करते हुए इनके सिद्धान्तो की सामान्य जानकारी कराना अधिक उपयोगी रहेगा। इसीलिए बुनियादी शिक्षा के प्रणेताओ ने सामान्य विज्ञान का विषय शिक्षा के सभी स्तरों पर अनिवार्य विषय के रूप मे रखा है। केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् ने भी इसे माध्यमिक शिक्षा-काल के अन्त तक पढाए जाने की सिफारिश की है। वास्तव मे हम देखते हैं कि हमारे देश के बालक अपने आसपास के वातावरण के सम्बन्ध मे बहुत कम ज्ञान रखते हैं। इसीलिए देश मे अन्ध-विश्वास तथा दकियानूसी विचार जड़ पकड रहे हैं। सामान्य विज्ञान का ज्ञान देश को इन अन्ध-विश्वासो तथा दकियानूसी विचारो से मुक्ति दिलाएगा। पर हमे यह न सोचना चाहिए कि सामान्य विज्ञान का ज्ञान हमारे देश के बालकों के प्राचीन परम्पराओ के विश्वासो को हिला देगा। वास्तव मे वैज्ञानिक ढंग से सोचने-विचारने की स्वस्थ आदत, अवलोकन द्वारा जानकारी प्राप्त करके तथ्यो का निरूपण करने की आदत, बालको को झूठे ढकोसले को त्यागने के लिए बाध्य करेगी, पर यदि कोई वैज्ञानिक तथ्य इन परम्पराओं में होगा तो वे उसका आदर करना भी सीखेंगे। बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य बालक के जीवन को सम्पन्न, सुखी तथा उपयोगी बनाने का है। यह तभी सम्भव है जब कि बालक को अपनी परम्पराओ तथा समाज मे प्रचलित अन्ध-विश्वासो की सचाई या झुठाई की सच्ची जानकारी हो जाय। यही कारण है कि बुनियादी शिक्षा मे सामान्य विज्ञान को महत्त्वपूर्ण अनिवार्य विषय के रूप मे रखा गया है।

अभी तक जिस विधि से विज्ञान-शिक्षण भारतीय शालाओ में होता रहा है उससे बालक-बालिकाओ के ज्ञान और कर्म के बीच गहरी दरार-सी पड़ती रही है। हम बहुधा देखा तथा सुना करते हैं कि पढी-लिखी,

अच्छी डिग्रियाँ प्राप्त लडकियाँ अच्छा सुरुचिपूर्ण भोजन नही बना सकती। दैनिक जीवन मे काम मे आने वाली वस्तुओ, जैसे चटनी, अचार, बडी, पापड आदि, तक के लिए लोगो को बाजारो पर निर्भर रहना पडता है। लडकियो का ही नही, पुरुषो का भी यही हाल है। विज्ञान मे शुद्ध हवा तथा प्रतिदिन स्नान के लाभ के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के बाद भी अनेक व्यक्ति मुँह ढककर या खिडकियाँ बन्द करके सोते हैं, प्रतिदिन नहाते नही हैं, पान, बीडी, सिगरेट खाते-पीते हैं। विज्ञान मे डिग्री प्राप्त करने के बाद भी अधिकाश लोग चीजो की लम्बाई-चौडाई का अन्दाज सही-सही नही लगा पाते। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान विज्ञान-शिक्षण में व्यावहारिकता नही है। बुनियादी शिक्षा तो ज्ञान और कर्म की खाई को पाटने का प्रयत्न ही है, क्योकि इसमे कर्म के आधार पर ही ज्ञान दिया जाता है। अत बुनियादी शिक्षा मे सामान्य विज्ञान की शिक्षा द्वारा ज्ञान और कर्म की खाई को भरने तथा व्यक्तित्व के समुचित विकास करने का प्रयत्न किया गया है।

हमारे स्वतन्त्र भारत की समृद्धि तथा उन्नति जानकार सुयोग्य नागरिको पर ही निर्भर है। अतः यह आवश्यक है कि देश मे ससार की परिस्थितियो को समझने तथा अन्य देशो की वैज्ञानिक प्रगति की प्रतिक्रियाओ के साथ-साथ चलने योग्य नागरिको की सख्या अधिक-से-अधिक हो। यह तभी सम्भव है जब हमारे देश मे सामान्य विज्ञान-शिक्षण उचित ढग से हो तथा बालको मे निष्पक्षता, खोज-प्रवृत्ति, व्यावहारिकता, स्वस्थ विचार-शक्ति आदि गुण आएँ।

बुनियादी शिक्षा मे शिक्षण के तीन केन्द्र—मूलोद्योग, प्रकृति तथा समाज—माने गए हैं। प्रकृति हमे कच्चा सामान देती है, मूलोद्योग द्वारा बालक कच्चे माल को समाजोपयोगी वस्तु मे परिवर्तित करता है। उसे ही समाज उपयोग में लाता है। पर प्रकृति से प्राप्त कच्चे माल का सदुपयोग बालक तभी अच्छी तरह कर सकेगा जब उसे सामान्य विज्ञान का समुचित ज्ञान होगा। अत. हम देखते है कि बुनियादी शिक्षा में सामान्य विज्ञान-

शिक्षण का बड़ा महत्त्व है। सामान्य विज्ञान के ज्ञान के बिना बालक मूलोद्योग का कार्य भी सुचारु रूप से न चला सकेगा।

२ : : सामान्य विज्ञान-शिक्षण के उद्देश्य

सामान्य विज्ञान-शिक्षण के उद्देश्यो पर विचार करते समय हमारे लिए बुनियादी शिक्षा के उद्देश्यो को भी ध्यान मे रखना आवश्यक है, क्योंकि बुनियादी शिक्षा के उद्देश्य ही हमारे पथ-प्रदर्शक का कार्य करेंगे। बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य बालक मे सामाजिक जीवन मे प्रभावशाली ढंग से सम्मिलित होने की क्षमता का विकास करना है। वह बालक को कर्म के आधार पर ज्ञान देकर उसके ज्ञान और कर्म की खाई को भी पाटना चाहती है। पाँच प्रकार के अभ्यासों द्वारा बुनियादी शिक्षा बालकों को समाजोपयोगी, प्रभावपूर्ण तथा समाजोन्नति मे सहायक अच्छा नागरिक बनाती है। बुनियादी शिक्षा शोषणविहीन स्वनियन्त्रित समाज की कल्पना करती है। अत सामान्य विज्ञान की शिक्षा को भी इन उद्देश्यो की प्राप्ति में सहायक होना आवश्यक है। इस दृष्टि से बुनियादी शालाओ मे सामान्य विज्ञान-शिक्षण के निम्न उद्देश्य होगे—

१. बालको को समाजोपयोगी तथा समाजोन्नति मे सहायक नागरिक बनाना।
२. बालकों मे उनके आसपास के वातावरण की बातो मे जिज्ञासा तथा रुचि उत्पन्न करना।
३ बालको को संसार मे होने वाले विज्ञान-सम्बन्धी परिवर्तनो तथा तथ्यो के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावो को समझने योग्य बनाना।
४ बालकों मे प्रकृति में होने वाले कार्यो तथा प्राकृतिक नियमो को बुद्धिपूर्वक देखने तथा उनसे आनन्दित होने की क्षमता का विकास करना।
५. बालको मे वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी के आधार पर न केवल अपने दैनिक जीवन की समस्याएँ हल करने की वरन् समाजोन्नति मे सहायक बनने की क्षमता का विकास करना।

६ बालको मे व्याप्त अन्ध-विश्वासो, गलत विचारधाराओ आदि को दूर करना।

७ ससार के प्राणियो, वनस्पतियो आदि की आतरिक एकता तथा सम्बन्धो का ज्ञान कराके बालको के हृदयो मे विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास करना।

८. बालको मे सूक्ष्म निरीक्षण, तथ्यो के आधार पर नियमीकरण, तर्क तथा आत्म-शक्तियो के विकास आदि की क्षमता उत्पन्न करना।

९ बालको मे किसी घटना या क्रिया के पीछे प्राकृतिक तथा स्वाभाविक कारणो को देखने की आदत का विकास करके वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की क्षमता बढाना।

१०. बालको मे अवकाशकालीन रुचियाँ (Hobbies) का विकास करने तथा उनसे मनोरजन प्राप्त कर सकने की क्षमता उत्पन्न करना।

उपरोक्त उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए हमारा यह कर्तव्य है कि हम बालको को स्वाभाविक वातावरण तथा साधारण अनुभवो की वस्तुओ के निकट सम्पर्क मे अधिक-से-अधिक आने दे। पर हमे यह न भूलना चाहिए कि अनुभव तभी महत्त्व का हो सकता है, जब वह हमारे दैनिक आचरण मे आवश्यक उपयोगी परिवर्तन करे। अत बालको को दिये जाने वाले अनुभव उनके आचरण मे उपयोगी तथा आवश्यक परिवर्तन करने मे समर्थ होने चाहिएँ। आचरण मे इस प्रकार के परिवर्तन लाने के लिए हमे बालको की जिज्ञासा का सुरुचिपूर्ण व्यवस्थित विकास करना चाहिए। उनमे सही-सही सूक्ष्म अवलोकन करने की आदत, तथ्यो को व्यवस्थित ढग से एकत्रित करने की क्षमता, बौद्धिक सचाई का स्वभाव (किसी बात पर विचार करते समय अपनी भ्रान्त धारणाएँ, रुचि-अरुचि को छोड़कर पूर्ण-रूपेण अपने व्यक्तित्व को रास्ते की बाधा न होने देने की आदत तथा किसी बात का ज्ञान न होने पर सचाई के साथ उसे ऐसा स्वीकार करने की

आदत), स्वस्थ, सुरुचिपूर्ण, प्रिय व्यवहारों का विकास, व्यावहारिकता आदि का विकास करना आवश्यक है। अत. सामान्य विज्ञान शिक्षक होने के नाते हमें इन वातो का समुचित व्यान रखना चाहिए।

३ : पाठ्यक्रम-निर्धारण तथा सहायक सामग्री

वुनियादी शिक्षा तथा सामान्य विज्ञान के पूर्व-वर्णित उद्देश्यो की उपलव्वि के लिए यह आवश्यक है कि सामान्य विज्ञान का पाठ्यक्रम वालक के जीवन से सम्वन्वित हो। उसमे वालक के स्वाभाविक तथा भौतिक वातावरण से ही चुनकर विषय रखे जायें। आजकल शिक्षा मे वालक के नजदीक के साधनो तथा वातावरण का उपयोग करके पाठ्यक्रम को उपयोगी तथा प्रभावपूर्ण वनाने का प्रयत्न किया जाता है। हम वहुवा देखा करते हैं कि आज शालाओ मे पढाई जाने वाली अनेक वातें वालक को उसके आस-पास के वातावरण से दूर करने मे ही अविक सहायक होती हैं। इससे वालक के आस-पास की चीजें उसके लिए विदेशी तथा अनजानी वन जाती हैं तथा सुदूर की वस्तुएँ तथा वातें जानी-पहचानी। यह वहुवा इसलिए होता है कि शालाओ मे शिक्षक का सम्वन्व सीवा वालको के जीवन से नही होता। यदि नई वातें वालको के अनुभवो के आवार पर या उससे सम्वन्धित करके पढाई जायँ तो ऐसा न होगा।

सामान्य विज्ञान का पाठ्यक्रम निर्धारित करने के लिए विभिन्न स्थानो तथा शालाओ मे विभिन्न प्रकार की विधियाँ उपयोग मे लाई जाती हैं। इनमे से निम्न मुख्य हैं—

१. प्रसग विवि। इस विधि के अनुसार सामान्य विज्ञान के अन्तर्गत आने वाले विपयो, जैसे भौतिक, रसायन, ज्योतिप-विज्ञान आदि, से कुछ विपय चुन लिये जाते हैं। इन सभी विज्ञानो से प्रमुख-प्रमुख विपयो का चुनाव करके सामान्य विज्ञान का पाठ्यक्रम वनाया जाता है।

२. प्रतिनिधित्व विवि। यह विधि भी प्रसग विवि के समान ही है। इसमे सभी प्राकृतिक विज्ञानो मे से थोड़ी-थोडी-सी वातो को

चुनकर सामान्य विज्ञान का पाठ्यक्रम बनाया जाता है।

३ स्थानीयता विधि। इस विधि मे स्थानीय परिस्थितियो तथा अवस्थाओ के अनुसार ही व्यावहारिक कार्यो की योजना बना ली जाती है।

४ वास्तविक बातो के समावेश की विधि। इस विधि के अनुसार केवल प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपयोगी बातो का समावेश किया जाता है। इसमे वास्तविक जीवन के लिए उपयोगी तथा दैनिक जीवन की समस्याओ के हल के लिए ही विषय चुनकर रखे जाते है।

५ केन्द्रिक विधि। इस विधि के अनुसार छोटी कक्षाओ के लिए कुछ विषय तथा प्रकरण चुन लिये जाते है तथा क्रमश ऊँची कक्षाओ मे बालको को इन्ही विषयो तथा प्रकरणो के सम्बन्ध मे अधिक ज्ञान कराया जाता है।

६ समवाय विधि। इस विधि के अनुसार पाठ्यक्रम का निश्चय करने के समय शाला मे बालको द्वारा की जाने वाली क्रियाओ से सम्बन्धित वैज्ञानिक बातो का समावेश ही पाठ्यक्रम मे किया जाता है।

उपरोक्त विधियो पर विचार करके जब हम अष्टवर्षीय बुनियादी पाठ्यक्रम के सामान्य विज्ञान के पाठ्यक्रम पर दृष्टिपात करते है तो पता चलता है कि बुनियादी पाठ्यक्रम के सामान्य विज्ञान के पाठ्यक्रम के निर्धारण मे कई विधियो का उपयोग किया गया है। बुनियादी शालाओ के सामान्य विज्ञान के पाठ्यक्रम-निर्धारण मे प्रमुखत समवाय, वास्तविकता, स्थानीयता विधियो का उपयोग किया गया है। इनके साथ-साथ कुछ प्रकरणो, जैसे आसपास के पेड-पौधे, वायु, जल आदि, के लिए केन्द्रिक विधि का अवलम्बन किया गया है। इसमे हमे प्रतिनिधित्व विधि के दर्शन भी होते है, जैसे दिन, महीना, ऋतु का ज्ञान (दूसरी कक्षा), चुम्बक के गुण (पाँचवी कक्षा) आदि।

बुनियादी शालाओ के सामान्य विज्ञान के पाठ्यक्रम को पूर्ण करने तथा बालको के जीवन से सम्बन्धित करके पढाने के लिए हमे बालको की दैनिक जीवन सम्बन्धी क्रियाओ, जैसे मूलोद्योग की क्रियाएँ, सोने, उठने, नहाने, भोजन करने, कार्यक्रम तथा आयोजन के कार्यान्वियन सम्बन्धी क्रियाएं आदि, का उपयोग तो करना ही चाहिए। इन क्रियाओ के साथ-साथ हम आवश्यकतानुसार निम्न साधनो का उपयोग भी कर सकते है—

१. आस-पास की सड़क, खेत, जगल आदि। इनमे आग लगने के स्थानो से आग लगने के कारण, उनसे हानियाँ, आग से बचाव के उपाय, इन स्थानो मे पुन. जीवन प्रारम्भ होने सम्बन्धी बातें आदि।

२. आसपास के खेत तथा शाला, उद्यान आदि। इनसे भूमि के प्रकार, भूमि-क्षरण, भूमि-सरक्षण, विभिन्न प्रकार के कड़े-मकोडे, पौधो के लिए आवश्यक नमी, फसलो सम्बन्धी जानकारी आदि कराई जा सकती है।

३. गाँव या शहर की नव-निर्मित इमारतें। इनकी सहायता से मकान आदि बनाने के लिए आवश्यक सामग्री, वायु-बीजन, यदि शहर की इमारत हो तो नल, बिजली आदि का ज्ञान दिया जा सकता है।

४. गाँव या आसपास के तालाब या नाले। इनसे पानी के जीव, कीडे-मकोडे तथा उनका जीवन, किनारे की वनस्पतियो आदि का ज्ञान कराया जा सकता है।

५ समाज के लोगो का जीवन। इसका अवलोकन करके लोगो के धन्धे, जैसे मछली मारना, शिकार करना, मुर्गी-पालन, गाय तथा दूध देने वाले जानवरो का पालन तथा डेरी का ज्ञान, लुहारी, बढईगिरी आदि का ज्ञान कराया जा सकता है।

६. आसपास के जगल का अवलोकन। इससे बालको को सम्पूर्ण सृष्टि का एक-दूसरे पर निर्भर रहना, वनस्पति तथा जीव-जगत्

पर ऋतुओं का प्रभाव, वनस्पतियों तथा जीवों के जीवन का अध्ययन आदि पढाया जा सकता है।

इस प्रकार अनेक साधन ऐसे हैं जिनके माध्यम से हम बालकों को उनके आस-पास के वातावरण से परिचित करा सकते हैं। पर यह सब शिक्षक पर निर्भर है। केवल पुस्तक से सामान्य विज्ञान पढाने वाला शिक्षक बालकों का उचित विकास नहीं कर सकता। शिक्षक को तो अपने आस-पास के साधनों का अधिक-से-अधिक उपयोग करना चाहिए। उसे विषयानुकूल उचित साधन का चुनाव भी करना चाहिए। पर्यटन करने के पूर्व तथा बाद मे विचार-विमर्श आवश्यक है। समाज के साधनों का उपयोग अभी अनेक शालाएँ नहीं कर रही हैं। उन्हे इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। ऐसा करने पर ही सामान्य विज्ञान-पाठ्यक्रम का उचित निर्वाह सम्भव है।

सहायक सामग्री

सामान्य विज्ञान-शिक्षण मे अनेक प्रकार की सहायक सामग्रियों का उपयोग किया जाता है, जैसे प्रयोग करने के यन्त्र, वैज्ञानिकों के चित्र, पशु-पक्षियों के चार्ट, वस्तुओं के नमूने आदि। इन सब सामग्रियों की उचित व्यवस्था रखना आवश्यक है। भारतीय शालाओं मे स्थान की कमी रहती है। सूक्ष्मोद्योग की सामग्री रखने के लिए भी पर्याप्त स्थान की आवश्यकता पडती है। महँगी सहायक सामग्री के खरीदने आदि के लिए अनेक शालाओं के पास पर्याप्त धन भी नहीं रहता। अत शालाओं को प्रयोग के महँगे सामान न खरीदकर साधारण वस्तुओं से अनेक यन्त्र बनाने के लिए बालकों को प्रेरणा देते रहना चाहिए। चूंकि अनेक शालाओं मे विज्ञान का सामान रखने के लिए अलग से कमरा नहीं होता, अत. सामान्य विज्ञान-शिक्षण भारतीय शालाओं मे प्राय अन्य विषय पढाए जाने वाले कमरे मे ही किया जाता है। पर सामान्य विज्ञान-शिक्षण तो अन्य विषयों से भिन्न होता है तथा इसमे अवलोकन तथा प्रयोग आवश्यक रहते हैं। अत शिक्षकों को इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिए तथा आवश्यकता-

नुसार विभिन्न प्रकार की सहायक सामग्री का उपयोग करना चाहिए। सामान्य विज्ञान-शिक्षण के समय निम्न सहायक सामग्री का उपयोग किया जा सकता है—

१. प्रयोग करने के यंत्र। थर्मामीटर, वर्षामापक यंत्र, तराजू, बैरोमीटर, कांच की नली, काँच का बरतन आदि।

२. चित्र तथा चार्ट। सामान्य विज्ञान-शिक्षण मे प्रसिद्ध भारतीय तथा पाश्चात्य वैज्ञानिको के चित्रो की सहायता भी समयानुसार ली जा सकती है। इसके साथ पानी शुद्ध करने, बीमारियो के फैलने तथा उनसे बचने सम्बन्धी, मच्छर, कीडे-मकोडो के जीवन-सम्बन्धी चार्ट आदि का उपयोग भी रोचक रहता है। ये चार्ट आजकल बाजार मे सरलता से प्राप्त किये जाते हैं। यदि शाला मे इन्हे खरीदने के लिए धन न हो तो बालको की सहायता से कुछ चार्ट शिक्षक को स्वयं तैयार करके शाला मे रखने चाहिएं।

३. प्राकृतिक वस्तुओ के चित्र, ग्राफ तथा पोस्टर। झील, पर्वत, खदान, विशेष प्रकार के पेड-पौधे आदि के चित्र या फोटो मासिक, साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं मे आते रहते हैं। इन्हे एकत्रित करने के लिए बालको को प्रेरणा देनी चाहिए। बाजार मे भी ये बडे आकार मे प्राप्त हो जाते है। यदि शाला के पास पर्याप्त धन हो तो इन्हे खरीदा जा सकता है।

आजकल समाज-सेवा, समाज-कल्याण, चिकित्सा, कृषि आदि विभाग अनेक प्रकार के पोस्टर समय-समय पर वितरित किया करते हैं। इनमे भोजन, फसल, स्वास्थ्य, रहन-सहन सम्बन्धी बातो का विवरण रहता है। शाला के शिक्षको तथा बालको को इन्हे एकत्रित करते रहना चाहिए।

अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्तो को समझने के लिए ग्राफ काग़ज़ पर बने चित्रो का उपयोग भी किया जा सकता हैं। भोजन के तत्त्व, भोज्य पदार्थो के गुण, ताप आदि को ग्राफ की सहायता

से अच्छी तरह समझाया जा सकता है। ग्राफ के उपयोग से बालकों को तर्क द्वारा तथ्यों को समझने में सहायता मिलती है।

४. रेखा-चित्र। यन्त्रों की बनावट, विभिन्न प्रकार के प्रयोग, कार्य-विधि आदि को स्पष्ट करने के लिए रेखा-चित्रों का उपयोग भी सहायक होता है। इसके लिए रंग-बिरंगे चॉकों का उपयोग भी किया जा सकता है।

५. मॉडल। शिक्षक की सहायता तथा निर्देशन में बालक अनेक यन्त्रों, जैसे बिजली की घण्टी, कैमरा, शरीर के अंग आदि, के मॉडल तैयार कर सकते हैं। ये मॉडल बनाने के लिए टीन, कागज़, रुई, लकड़ी, लोहे आदि का उपयोग किया जा सकता है। मॉडल बनाने के लिए बालकों को हमेशा प्रेरित करते रहना चाहिए। इससे उनमें वैज्ञानिक प्रवृत्ति का विकास होता है। बुनियादी शालाओं में तो अनेक प्रकार के मॉडल तैयार कराए जा सकते हैं। बालकों को मूलोद्योग में चीज़ें बनाना सिखाया ही जाता है। अतः वैज्ञानिक वस्तुओं का निर्माण करना सिखाने में विशेष कठिनाई न होगी।

६. वस्तुओं का एकत्रीकरण। बालकों में संग्रह-प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति का उचित उपयोग करके बालकों को मिट्टी के नमूने, फसलों, पत्थरों, धातुओं, कीड़े-मकोड़ों, फूलों आदि के नमूने एकत्रित करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। कीड़े-मकोड़ों को शीशियों में, पत्तों, फूलों आदि को कापियों के पन्नों आदि में तथा मिट्टी, फसल, धातु आदि के नमूनों को अन्य छोटे-छोटे बरतनों या डिब्बों में सुरक्षित रखा जा सकता है। चूँकि सभी भारतीय शालाओं में विज्ञान के लिए अलग से कमरा नहीं होता, अतः प्रत्येक कक्षा अपनी बैठने की जगह का एक कोना नमूने की वस्तुएँ सुरक्षित रखने तथा प्रदर्शित करने के लिए दे सकती है। इससे बालक वस्तुओं की देखभाल तथा उनका संग्रह करना

सीखेंगे। साथ ही शिक्षक जब कभी इन वस्तुओ का उपयोग किसी प्रकरण तथा विषय पढाते समय करेगा तब बालक बहुत प्रसन्न होगे तथा आत्म-गौरव का अनुभव करेंगे। बालक अपने या कक्षा के एलबम भी तैयार कर सकते हैं। यदि पर्याप्त स्थान हो तो एक संग्रहालय भी स्थापित किया जा सकता है।

७. अजायबघर। यदि अच्छी व्यवस्था हो तथा रुचि से काम किया जाय तो शालाओ मे अजायबघर भी तैयार किया जा सकता है। इसमे आसपास पाए जाने वाले पक्षी आदि रखे जा सकते है। शाला मे पढने वाले बालक कभी-कभी अपने पालतू पशु-पक्षी भी थोडे समय के लिए अन्य बालको के प्रदर्शन हेतु इस अजायबघर मे रख सकते है। इससे बालकों का अन्य जीवो के प्रति प्रेम-भाव बढता है तथा आस-पास पाए जाने वाले पशु-पक्षियो के जीवन, आदतो सम्बन्धी ज्ञान की वृद्धि भी होती है।

८ ऋतु-स्टेशन। ऋतु, हवा आदि के ज्ञान के लिए बालक शिक्षक की सहायता से ऋतु-स्टेशन भी शाला मे ही तैयार कर सकते है। इसमे अधिक व्यय भी नही होता। इसके लिए आवश्यक यत्रो को हर स्थान में मिलने वाली सामग्री की सहायता से बनाया जा सकता है। बालक इस ऋतु-स्टेशन मे प्रतिदिन की हवा की दिशा, बहाव, तापमान आदि का ज्ञान सरलता से कर सकते है।

९. फिल्म प्रोजेक्टर व एपिडाइस्कोप। हमारे देश मे तो बहुत कम शालाओ को इन यंत्रो का उपयोग करने का सौभाग्य प्राप्त है, पर विदेशो मे इनका उपयोग बहुत किया जाने लगा है। इनकी सहायता से विज्ञान-सम्बन्धी समाचार तथा विभिन्न प्रक्रियाओं सम्बन्धी बातो की अच्छी जानकारी बालको को कराई जा सकती है।

सहायक सामग्री के साथ-साथ शिक्षक उपयोगी सरल पुस्तकों, उदाहरणों, कहानियों, कहावतों आदि की सहायता भी आवश्यकतानुसार ले सकते हैं। इनसे विषय रोचक, प्रभावपूर्ण तथा सजीव बन जाता है। शाला में एक 'प्रश्न तथा उत्तर सन्दूक' भी तैयार किया जा सकता है। इसके लिए कक्षा में दो छोटे-छोटे सन्दूक रखने चाहिएँ। एक सदूक में मोटे कार्ड पर प्रश्न तथा दूसरे में उनके उत्तर लिखकर रखे जाते हैं। फिर बालकों से प्रश्न वाले सन्दूक से कार्ड निकालने तथा दूसरे सन्दूक से उनके सही उत्तर ढूंढने के लिए कहा जाता है। इससे बालकों में रुचि तथा क्रियात्मकता बनी रहती है।

४. सामान्य विज्ञान शिक्षण-विधियाँ

सामान्य विज्ञान शिक्षण के लिए अनेक विधियों का उपयोग किया जा सकता है, क्योंकि बालक विभिन्न बातों की जानकारी विभिन्न विधियों से करते हैं। हम किसी भी विधि से सामान्य विज्ञान पढाएं, पर प्रभावपूर्ण तथा अच्छे शिक्षण के लिए शिक्षक तथा बालक का अच्छा सम्बन्ध तथा साम्य स्थापित होना आवश्यक है। यह तभी सम्भव है जब बालक तथा शिक्षक लगातार स्वतन्त्र वातावरण में क्रियाएँ करें, सोचे-विचारें तथा विचारों का आदान-प्रदान करें। इसके लिए यह आवश्यक है कि बालकों को सोचने-विचारने, बोलने तथा क्रिया करने के माध्यम से आगे बढने तथा आत्माभिव्यक्ति के अवसर दिये जायें। इससे बालकों के हाथ तथा मस्तिष्क दोनों का प्रभावपूर्ण तथा उपयोगी सहयोग सम्भव होगा। सामान्य विज्ञान में निम्न विधियों को अपनाकर शिक्षण प्रभावपूर्ण, क्रियाशील तथा उपयोगी बनाया जा सकता है—

१ प्रयोग विधि। बालकों में जांच-पडताल के बाद तथ्यों को ग्रहण करने या न करने के गुणों का विकास प्रयोग करने के प्रशिक्षण या आदत डालने से ही किया जा सकता है। प्रयोग तो वैज्ञानिक विधि का प्राण है। बिना प्रयोग के हम सामान्य विज्ञान-शिक्षण को प्रभावपूर्ण तथा उपयोगी नही बना सकते। बुनियादी शिक्षा

भी प्रयोग को महत्त्व देती है। कृषि करते समय विभिन्न प्रकार के खादो का प्रभाव, अच्छे वीजो की पहचान, सिंचाई तथा कलम काटने और लगाने, पानी तथा हवा के घटको की जानकारी करने, धातुओ तथा अधातुओ के गुणों का ज्ञान कराने आदि के लिए प्रयोग सरलता से किये जा सकते हैं। हाँ, घातक तथा वहुमूल्य यन्त्रो, विजली या विषैले रसायनो की सहायता से वालकों से प्रयोग कराने से पहले शिक्षक को प्रयोग का प्रदर्शन अवश्य करना चाहिए। साथ ही वालको को ध्यान मे रखने योग्य सावधानियो की जानकारी अच्छी तरह करा देनी चाहिए। ऐसी वस्तुओ की सहायता से किये जाने वाले प्रयोग शिक्षक की देख-रेख मे ही होने चाहिएँ। विभिन्न प्रकार के प्रयोग करते समय जहाँ तक हो दैनिक जीवन मे काम मे लाए जाने वाले साधारण वरतनो तथा सामानो का उपयोग करना चाहिए। इससे वालक यह प्रयोग घर पर दुहराने के लिए प्रेरित होंगे।

२. अवलोकन विधि। सामान्य विज्ञान शिक्षण मे दैनिक जीवन के स्वाभाविक वातावरण तथा वैज्ञानिक अनुभवो का सूक्ष्म तथा विधिवत् अवलोकन वडा उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण है। अत. हमें इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि वालको को विधिवत् अवलोकन करने, अवलोकन के वाद अनुभवो को पुन. स्मरण करने, तथ्य टीपने, इन तथ्यो के आधार पर नियमीकरण या परिणाम पर पहुँचने के अवसर दिये जायें। स्वाभाविक पदार्थ, जैसे भूमि, खनिज, चट्टान, स्वाभाविक दृश्य या घटनाएँ, जैसे इन्द्रधनुष, ओस, कुहरा, विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ तथा पशु-पक्षी, तारे, चन्द्रमा आदि का विधिवत् अवलोकन कराया जा सकता है। वस्तुओ के गुण जानने, उनकी वृद्धि के समय होने वाले परिवर्तनों को जानने, जानवरो तथा पक्षियो की आदतो का ज्ञान करने तथा प्रयोग के परिणामो की जानकारी के लिए भी अवलोकन

कराए जा सकते हैं। वास्तव में बिना सूक्ष्म अवलोकन के इन बातों का समुचित ज्ञान बालकों को हो भी नहीं सकता। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालक अपने अवलोकनों का रिकार्ड रखें तथा अपने साथियों तथा शिक्षकों से उन पर विचार-विमर्श करें। बालकों को सही-सही तथा बारीकी से अवलोकन करने की आदत पड़ना भी आवश्यक है। अवलोकन करने के अभ्यास से बालकों की सही अवलोकन करने की क्षमता का विकास होना चाहिए। वास्तव में यदि अवलोकन करने में सावधानी रखी जाय तो बालक अपने आसपास के वातावरण से ही अनेक बातें सीख सकते हैं। अवलोकन के लिए पर्यटन बड़े उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

३. योजना विधि। सामान्य विज्ञान-शिक्षण के लिए अनेक प्रकार की छोटी तथा बड़ी योजनाएँ बनाई जा सकती हैं। योजना-कार्य विचार-विमर्श का रूप भी ले सकता है। सामान्य विज्ञान में घरों की परिस्थितियों की जानकारी, व्यक्तिगत स्वास्थ्य-सुधार, स्वास्थ्य-पत्रिका, सरदी से बचाव के उपाय आदि से सम्बन्धित योजनाएँ कार्यान्वित की जा सकती हैं। सम्पूर्ण कक्षा सरदी के कारण तथा उससे बचने के उपायों से सम्बन्धित नाटक या प्रहसन लिखने, अभ्यास करने तथा प्रदर्शित करने की योजना बना सकती है। बुनियादी शालाओं की ऊँची कक्षाओं में तो अनेक प्रकार की योजनाएँ सरलता से कार्यान्वित की जा सकती हैं। बालक कीड़े-मकोड़ों की चमड़ी, पंख आदि तथा पेड़-पौधों के पत्ते, जड़ें, फूल आदि इकट्ठे करने की योजना कार्यान्वित करने में बड़ी रुचि लेंगे। पर शिक्षक को बालकों की रुचियों का ध्यान रखना चाहिए तथा इस बात के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए कि बालकों की रुचि बनी रहे तथा ठीक-ठीक विकसित भी हो।

बुनियादी शालाओं में सुविधानुसार निम्न योजनाएँ भी

कार्यान्वित की जा सकती हैं—(१) पालतू जानवरों तथा पक्षियो का प्रदर्शन। (२) अवकाशकालीन रुचियो (Hobbies) का प्रदर्शन। (३) बागबानी। (४) तितली तथा अन्य छोटे कीड़े-मकोडो का एकत्रीकरण। (५) कक्षा-सग्रहालय। (६) फसलो, फलों आदि की कहानी लिखना। (७) सीप की वस्तुएँ बनाना। (८) मूलोद्योग से निर्मित वस्तुओ की कहानी लिखना। (९) ऋतु, दिन-रात आदि की जानकारी करना। (१०) आकाश की बातो का पता लगाना, जैसे तारे, चन्द्र, सूर्य आदि। (११) पृथ्वी की कहानी। (१२) पूर्व-ऐतिहासिक जानवरो तथा जीवों की जानकारी प्राप्त करना। (१३) सृष्टि का आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन चक्र। (१४) भौतिक विज्ञान ने मानव-सभ्यता के लिए क्या किया। (१५) गांव की सफाई। (१६) मलेरिया-विरोधी अभियान। (१७) हवा का दवाव और उसके नियम। (१८) जल-प्राप्ति के साधन तथा पीने के लिए शुद्ध जल की व्यवस्था।

इसी तरह की अनेक योजनाओ को स्थानीय सुविधा तथा आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। पर हमे बालक की रुचि का ध्यान रखना चाहिए तथा योजनाओ की सामाजिक उपयोगिता-बढाने का प्रयत्न करना चाहिए। योजनाओ को सामाजिक दृष्टि से उपयोगी बनाने से बालको मे अपने आस-पास के वातावरण के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होगा।

४. समस्या विधि। वर्तमान काल मे विज्ञान-शिक्षण मे वैज्ञानिक बातो की विस्तृत जानकारी की अपेक्षा विज्ञान के प्रमुख सिद्धान्त बतलाने की ओर अधिक महत्त्व दिया जाता है। वास्तव मे बुनियादी शाला के जहाँ तक छोटे बालकों का सम्बन्ध है उन्हें वैज्ञानिक बातो की विस्तृत जानकारी कराने की अपेक्षा वैज्ञानिक दृष्टिकोण देने तथा अच्छी वैज्ञानिक आदतें डालने की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्हें प्रारम्भ से ही अपने ज्ञान का

उपयोग नई तथा अनजानी परिस्थितियों तथा समस्याओ को हल करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। बालकों को सही सोचने, अच्छे-बुरे की पहचान करने तथा तथ्यो के आधार पर उचित निष्कर्षों पर पहुँचने का अभ्यास कराया जाना अधिक महत्त्व-पूर्ण है। इस कार्य मे समस्या-विधि बडी उपयोगी तथा सहायक होती है। सामान्य विज्ञान के कार्य को कुछ बडी तथा कुछ छोटी समस्याओ मे विभाजित किया जा सकता है। समस्या-विधि से शिक्षण करते समय हमे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालको के समक्ष समस्या स्पष्ट रूप से रखी जाय, बालक समस्या के हल के समय प्रमुख बातो की ओर ही अधिक ध्यान दे तथा व्यर्थ के विस्तार से बचें। समस्याओ पर विचार करने के लिए कक्षा को दलो मे भी विभाजित किया जा सकता है। पर समस्या-विधि से शिक्षण करने के लिए बालकों के स्वय पढने योग्य पुस्तके अधिक सख्या मे होनी चाहिएँ। तभी हम बालकों को समस्या से सम्बन्धित बातो का अध्ययन करके, विचार-विमर्श करके हल निकालने के लिए प्रेरित कर सकते है। समस्या-विधि के शिक्षण से बालको मे आपसी सहयोग से कार्य करने तथा विवेक-बुद्धि से काम लेने की आदत पडती है। इनसे उनका आत्म-विश्वास भी दृढ होता है।

५ इकाई विधि। इस विधि मे पाठ्यक्रम को अनेक छोटे तथा बडे खण्डो मे विभाजित किया जाता है। इन खण्डो का अध्ययन सम्पूर्ण कक्षा या दल करते हैं। प्राय प्रत्येक कक्षा के लिए कुछ प्रमुख तथा कुछ छोटी इकाइयाँ तैयार की जाती है। बहुधा सामाजिक विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान की इकाइयाँ बनाना सरल होता है। इन इकाइयो का सम्बन्ध सामाजिक अध्ययन या अन्य विषयो की इकाइयो से भी हो सकता है, जैसे सामाजिक अध्ययन के 'हमारा प्रदेश या देश' इकाई के अन्तर्गत सामान्य विज्ञान से सम्बन्धित

ऋतु तथा जलवायु, यातायात के साधन, फसलें, जानवर, पक्षी आदि छोटी इकाइयो का अध्ययन किया जा सकता है। इकाई विधि से सभी विषयो की शिक्षा देने में सुविधा होती है। पर शिक्षक यदि चाहे तो छोटी-छोटी इकाइयाँ भी बना सकते हैं, जैसे पानी, हवा, सरल मशीनें, हमारे पालतू जानवर, बिजली उत्पन्न करने वाले साधन, लोहे की कहानी, आदि।

इकाई विधि से शिक्षण करते समय पाँच पदो का ध्यान रखना चाहिए। इनका विस्तृत विवेचन सामाजिक अध्ययन-शिक्षण-विधियो के अध्याय में दिया गया है।

९. स्वयं-ज्ञान विधि। इस विधि के प्रतिपादन करने वाले इंगलैंड के रसायन-शास्त्र के प्रोफेसर आर्मस्ट्राग हैं। उन्होने इस विधि के सम्बन्ध मे कहा है कि "पढाने की स्वयं खोज विधि वह प्रणाली है जो बालक को यथासम्भव एक अन्वेषक की स्थिति मे ले आती है। इसमे केवल वस्तुओ के विषय मे न कहा जाकर उनकी खोज को आवश्यक माना जाता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस विधि से शिक्षण करने से बालक को स्वय खोज करने तथा निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए अवसर दिये जाते है तथा प्रेरित किया जाता है। इस विधि मे बालकों के सामने अनेक समस्याएँ उपस्थित की जाती हैं। इन समस्याओ के हल के लिए बालको को आवश्यक निर्देश शिक्षक दे देता है। इन निर्देशो के आधार पर बालक स्वय प्रयोग करते हैं तथा समस्याओं के हल खोजते हैं। इस विधि से शिक्षण के लिए बहुत ही कुशल शिक्षक होना चाहिए। इस विधि से शिक्षण करने से बालकों मे कष्ट सहने, आत्म-विश्वास, आत्म-नियंत्रण, तीव्र निरीक्षण, तर्क तथा उचित मूल्यांकन करने, स्वतन्त्र विचार करने आदि की शक्तियो का समुचित विकास होता है। पर इस विधि से शिक्षण मे समय तथा धन भी बहुत लगता है। इस

विधि मे बालकों मे ऐसी झूठी धारणा भी बनने का भय रहता है कि खोज उन्होंने ही की है। पर इन दोषो के होते हुए भी यदि इस विधि का अच्छी तरह उपयोग किया जाय तो सामान्य विज्ञान-शिक्षण की दृष्टि से यह बड़ी उपयोगी विधि है। यह विधि प्रयोग-विधि से मिलती-जुलती ही है।

७ कार्य-विधि या एसाइनमेण्ट विधि। इस विधि मे डाल्टन विधि का उपयोग किया जाता है। डाल्टन विधि के समान इसमे सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को मासिक, अर्ध-मासिक और साप्ताहिक कार्यों मे बाँट दिया जाता है। प्रत्येक बालक को अलग-अलग कार्य दिया जाता है तथा कार्य के साथ-साथ पुस्तकें पढने, प्रयोग करने, अवलोकन करने आदि सम्बन्धी आवश्यक निर्देश दे दिये जाते हैं। एक हफ्ते का कार्य पूरा होने पर उसे आगे का कार्य दिया जाता है। इसमे बालक को इच्छानुसार कार्य करने की छूट रहती है, केवल उसे इस बात का ध्यान रखना पडता है कि सप्ताह का कार्य सप्ताहान्त तक अवश्य पूर्ण होना चाहिए।

हमारी बुनियादी शालाओ मे भी हम इस विधि का उपयोग उच्च कक्षाओ, जैसे छठी से आठवी कक्षाओ, तक कर सकते है, क्योंकि इन कक्षाओ के बालक स्वयं अध्ययन तथा प्रयोग आदि कर सकते हैं तथा कार्य की जिम्मेदारी भी ले सकते हैं। इस विधि से शिक्षण के लिए अच्छा बालोपयोगी पुस्तकालय होना आवश्यक है। शिक्षको को भी पहले से ही कार्य का विभाजन तथा आवश्यक निर्देश बनाकर रखना पडेगा।

इन विधियो के अतिरिक्त पाश्चात्य देशो मे निरीक्षण विधि, सामाजिक दल विधि, विचार-विमर्श विधि, विभागीय विधि आदि अनेक विधियो का उपयोग सामान्य विज्ञान-शिक्षण मे किया जाता है। ये विधियाँ न केवल सामान्य विज्ञान वरन् सभी विषयो के शिक्षण के लिए उपयोगी सिद्ध होती हैं। हमारी बुनियादी शालाओ मे समाज, उद्योग तथा प्रकृति की विभिन्न प्रक्रियाओ के माध्यम से शिक्षा देने की कल्पना की गई है।

इन प्रक्रियाओ से स्वाभाविक रूप से समवायित होने वाली वातो का समावेश ही वुनियादी शालाओ के सामान्य विज्ञान के पाठ्यक्रम मे रखा गया है; जैसे कताई-बुनाई उद्योग की विभिन्न क्रियाओ से कपास तथा उससे सम्वन्वित वातें, सिचाई, घर्षण, लीवर, विभिन्न रगो का ज्ञान, रासायनिक परिवर्तन, ताप के सु तथा कु चालक, गति, तोल आदि का ज्ञान सरलता से दिया जा सकता है। प्राकृतिक निरीक्षण से वर्षा, इन्द्रधनुप, ओस, बादल, तारे, सूर्य, चन्द्रमा, मौसम, मिट्टी, चट्टान, खनिज, पशु-पक्षी आदि से सम्वन्वित वातें सिखाई जा सकती हैं। स्वस्थ जीवन के अभ्यास की क्रियाओ के आवार पर भोजन के तत्त्व, शरीर की सफाई, स्नान, वस्त्र, सोना, उठना, वायु, जल, रोगी की सेवा आदि अनेक वातो का ज्ञान दिया जा सकता है। कृपि या वागवानी के माध्यम से फसल, पौधो, वनस्पतियो के लिए आवश्यक तत्त्व, पेड़-पौधो के अग तथा कार्य, खाद की आवश्यकता, प्रकार तथा उपयोग आदि पढाया जा सकता है। इस प्रकार वुनियादी शालाओ मे जीवन की ठोस क्रियाओ के आधार पर सामान्य विज्ञान का ज्ञान कराया जाता है। पर इस समवायित विधि से ज्ञान देने के लिए हमे उपरोक्त विभिन्न विधियो मे से अधिक-से-अधिक विधियो का उपयोग करना चाहिए। इन विधियो का कव तथा कैसे उपयोग करना है यह शिक्षक-विशेप की कार्य-क्षमता तथा कार्य-शैली पर निर्भर है।

सामान्य विज्ञान-शिक्षक के लिए ध्यान में रखने योग्य वातें

१. हमारे देश की शालाओं में स्थान, धन तथा सामान्य विज्ञान से सम्वन्धित आवश्यक सामग्री की कमी रहती है। अत. वुनियादी शालाओ के शिक्षको को अपने आसपास उपलब्ध होने वाली सामग्री का उपयोग करके ही शिक्षण करना चाहिए।

२. सामान्य विज्ञान-शिक्षण के लिए विज्ञान-सम्वन्धी विशेप योग्यता प्राप्त शिक्षक होना आवश्यक नहीं है और न देश की सभी प्राथमिक तथा पूर्व-माध्यमिक या सीनियर वेसिक शालाओ मे ऐसे शिक्षक दिये जा सकते हैं। अत· सभी शिक्षको को सामान्य

विज्ञान-शिक्षण विश्वास तथा विना डर के करना चाहिए। मामान्य विज्ञान-शिक्षण अन्य विषयो के शिक्षण से कोई वहुत भिन्न नही है।

३ शिक्षको को स्वय सामान्य विज्ञान की कुछ पुस्तके पढते तथा प्रयोग करते रहना चाहिए।

४. अवसर मिलने तथा सुविधा होने पर पास की किसी माध्यमिक शाला के विज्ञान-शिक्षक से सम्पर्क वनाए रखना उपयोगी सिद्ध होगा।

५ साधारणत समाज मे पाई जाने वाली वस्तुओ का उपयोग करके मामूली यत्र या वस्तुएँ वनाने के लिए वालको को प्रेरित करते रहना चाहिए।

६. वालको को प्रयोग करने के लिए अवसर देने चाहिएँ।

७ वालको को अवलोकन करने की विधि मे दक्ष करने का प्रयत्न करना चाहिए। जैसे-जैसे वालक ऊँची कक्षाओ मे जायें, वैसे-वैसे उनकी सही-सही अवलोकन करने की क्षमता की वृद्धि होनी चाहिए।

८ समय-समय पर कक्षा-प्रदर्शनी का आयोजन अवश्य करना चाहिए।

९ कभी-कभी वैज्ञानिको की जीवनी या किसी आविष्कार की कहानी का नाट्य-प्रदर्शन करने के लिए वालको को प्रेरित करना चाहिए।

१० सुविधा तथा साधन होने पर 'विज्ञान पत्रिका' निकालने के लिए वालको को प्रेरणा देनी चाहिए।

११. प्रत्येक शाला मे विज्ञान-समिति तथा विज्ञान-क्लव वनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

१२ वालको मे सामान्य विज्ञान-शिक्षण मे प्राप्त ज्ञान को वुद्धिपूर्वक अपने तथा सामाजिक जीवन की सुरक्षा तथा उन्नति के लिए उपयोग मे लाने की आदते डालने की कोशिश करते रहना चाहिए।

अध्याय ४

गणित-शिक्षण

गणित के सम्बन्ध मे विद्वानो के विभिन्न मत हैं। सामान्य जनता में कुछ लोग इसे अकों का उपयोग मानते हैं। अन्य इसे विज्ञान के सिद्धान्तो तथा सूत्रों के रूप मे देखते हैं। इनके अतिरिक्त

गणित क्या है ?

कुछ अन्य व्यक्ति रेखागणित के रूप मे, इसे आधुनिक इमारतो की कृति के रूप मे देखते हैं। यह तो सामान्य तथा साधारण जनता की वात हुई। पर गणितज्ञ भी गणित को अनेक रूपो में देखते हैं। कुछ विद्वान् इसे विधि तथा आकृति सम्बन्धी भावनाएँ तथा विचार व्यक्त करने वाली कला मानते हैं। अन्य विद्वान् इसे विज्ञान के सिद्धान्तो का आधार मानते है। इनके अलावा अनेक विद्वान् गणित तथा तर्कपूर्ण सोचने की क्रिया मे समानता स्थापित करते हैं। इन विद्वानो तथा सामान्य जनता के गणित-सम्बन्धी विचारो पर यदि अच्छी तरह मनन किया जाय तो गणित की परिभाषा का स्वरूप स्थिर किया जा सकता है। वास्तव मे गणित किसी विशेष प्रकार के विचारों को व्यक्त करने वाली भाषा है। इस रूप में गणित एक भाषा का रूप ले लेता है। हमारे अनेक विचार वस्तुओ के गुणो से सम्बन्धित रहते हैं, जैसे केला, रसगुल्ला आदि मीठे, आग गरम, पानी, वरफ ठण्डे आदि। इससे हम इन वस्तुओ को उनके मीठे, गरम, ठण्डे आदि गुणों के आधार पर जानते हैं। हमारी इस भाषा का वहुत-सा अंश गुणात्मक ही रहता है। पर इसके साथ-साथ हम अन्य भाषाओ द्वारा भी अपने विचार व्यक्त करते हैं, जैसे संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य-कला आदि। इन सभी

साधनों या भाषाओं द्वारा हम अपने अनेक विचार तथा भावनाएँ दूसरो को बतलाते या व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार सख्यात्मक भाषा के रूप मे भी, जिसे हम गणित कहते हैं, हम अपने विचार प्रकट करते है। हमारे जीवन मे प्रतिदिन ऐसे अवसर आते रहते है जब हमे सख्या का उपयोग करना पडता है, जैसे मकान का किराया देते समय, रिक्शा वाले को पैसे देते समय, किसी कार्य के लिए दिनाक या तिथि निश्चित करते समय, कपडा या साग-भाजी खरीदते समय आदि। इस दृष्टि से गणित सख्या की भाषा है। यह सख्या की भाषा हमारे विचारो को अन्य भाषाओ की अपेक्षा अधिक स्पष्ट, निश्चित तथा प्रभावपूर्ण बनाती है। अन्य भाषाएँ इतनी निश्चित तथा स्पष्ट नही होती। इसीलिए आज के वैज्ञानिक ससार मे गणित का अधिक महत्त्व है। आज तो हम बिना गणित के कोई समस्या या योजना पर विचार ही नहीं कर पाते। इतना ही नही, वह समय अब निकट ही है जब गणित के अच्छे ज्ञान के बिना हम अच्छे नागरिक नही बन सकेंगे, क्योकि शीघ्रता मे परिवर्तनशील नई सामाजिक परिस्थितियाँ हमे औसत, अधिकतम, न्यूनतम आदि रूपो मे सोचने तथा अधिक-से-अधिक गणना तथा लेखा करने के लिए बाध्य करती जा रही हैं। फलस्वरूप जिस प्रकार आज हम लिखना तथा पढना, अच्छे नागरिक बनने तथा सामाजिक जीवन को अच्छा बनाने के लिए आवश्यक समझते हैं, उसी प्रकार भविष्य मे गणित भी हमारे लिए उतना ही आवश्यक हो जायगा।

गणित का महत्त्व तथा आवश्यकता

गणित के विकास के महत्त्व तथा आवश्यकता के सम्बन्ध मे हम निम्न दृष्टिकोणो से विचार कर सकते हैं—

१. व्यावहारिक महत्त्व। हमारे वर्तमान जीवन मे जितना काम गणित से पडता है शायद ही किसी अन्य विषय से इतना पडता हो। वास्तव मे हम अपना जीवन-निर्वाह बिना गणित के ज्ञान के अच्छी तरह नही कर सकते। हमे यदि लिखना-पढना न भी

आता हो तो भी हम अपना काम चला लेंगे, पर बिना गिनती या गणना सीखे हमारा जीवन नहीं चल सकता। यदि हमे गणित न आये तो घर में कितने बच्चे, जानवर, रुपये, बरतन आदि हैं इसका लेखा रखना भी कठिन हो जायगा। मजदूर अपनी मजदूरी ही न गिन पाएगा। भोजन बनाते समय मिर्च, नमक, मसाला, घी, तेल आदि का परिमाण निश्चित करना कठिन हो जायगा। बढई मेज या अन्य सामान निश्चित माप का न बना सकेगा, दरजी हमारे कपड़े किसी भी आकार तथा नाप के सीकर दे देगा। दवाई हम कितनी भी पी लेंगे। इस तरह हम देखते हैं कि हमारे व्यक्तिगत जीवन मे हम बिना गणित के अपना काम नही चला सकते। बिना गणित के ज्ञान के हम सिनेमा के पैसे नहीं दे सकते, यात्रा के लिए टिकट नहीं खरीद सकते, बाजार-हाट ठीक से नहीं कर सकते, आदि। अब सामाजिक जीवन की दृष्टि से यदि हम गणित पर विचार करें तो हमें पता चलेगा कि समाज के स्वास्थ्य, सुरक्षा, यातायात आदि, सभी बातो की उचित व्यवस्था के लिए हमे गणित का पहले की अपेक्षा अधिक अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है। आज का समाज बिना गणित के ज्ञान के सुचारु रूप से उपयुक्त व्यवस्था नही कर सकता। आज प्रायः प्रतिदिन समाचारपत्रों, प्रतिवेदनों, रेडियो, सिनेमा आदि सभी साधनो द्वारा जनता के सामने संख्यात्मक भाषा मे अनेक विचार प्रस्तुत किये जाते हैं। भविष्य में इसकी संख्या तो और भी बढ़ जायगी। अतः अब हमें सामाजिक जीवन के विकास, सुव्यवस्था तथा उन्नति के लिए भी गणित का अच्छा तथा पहले की अपेक्षा अधिक ज्ञान आवश्यक है।

२. सांस्कृतिक महत्त्व। हमारी आज की वैज्ञानिक सभ्यता का निर्माण गणित के कारण ही सम्भव हुआ है। बिना गणित के ज्ञान के हम आज ससार मे होने वाले विकास तथा परिवर्तनो

को ठीक-ठीक नही समझ सकते । इनके आधारभूत वैज्ञानिक नियमो की जानकारी के लिए गणित का ज्ञान आवश्यक है। वैज्ञानिक नियम ही क्यो, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवहारो का ज्ञान भी विना गणित के होना सम्भव नही। अत यह आवश्यक है कि वालको को मानव-सभ्यता को विकसित करने वाली क्रियाओ मे समुचित योगदान देने योग्य वनाने के लिए उन्हे गणित के सामान्य सिद्धान्तो की आवश्यक जानकारी करा दी जाय। वर्तमान काल मे गणित के सास्कृतिक महत्त्व के वढते जाने के कारण ही श्री युग ने कहा है कि आज की इस लौह, भाप तथा विजली की भौतिक सभ्यता मे गणित का आधार अत्यावश्यक है। यह सभ्यता गणित की आधार-शिला हटते ही नष्ट हो जायगी। वास्तव मे किसी भी आविष्कार की सम्भावनाऐं पहले कागज़ पर गणित की सहायता से आँकी जाती है। गणित द्वारा गणना के आधार पर यह पता लगाया जाता है कि क्रिया सम्भव है या नही। गणना द्वारा क्रिया सम्भव सिद्ध होने पर ही प्रयोग प्रारम्भ किये जाते हैं। इसीलिए प्रो० वाल ने कहा है कि "एक अन्वेपक के लिए नया अनुसन्धान करना तव तक कठिन है जव तक कि वह गणितज्ञ न हो।" इस प्रकार हम देखते है कि विश्व के प्रत्येक क्षेत्र मे हो रहे परिवर्तनो तथा विकासो का आधार गणित ही है।

३ नैतिक महत्त्व। गणित पर शिक्षक या अन्य व्यक्ति की व्यक्तिगत धारणाओ तथा विचारो का प्रभाव नही पडता। पर अन्य विपयो मे ऐसा होता ही है, क्योकि अन्य सभी विपयो मे शिक्षक की रुचि, धारणा, विचार आदि के अनुसार वालक के उत्तरो का मूल्याकन विभिन्न हो सकता है। इस प्रकार गणित मे २ और २ चार ही होगे, पाँच नही। ऐसी पूर्णता अन्य विपयो मे सम्भव नही है। ऐसी पूर्णता-प्राप्ति भी एक प्रकार से व्यक्तित्व

के विकास मे सहायक होती है। इस प्रकार गणित बालक के नैतिक विकास का एक उत्कृष्ट साधन भी है। गणित ईमानदारी और सत्य का यथार्थ प्रशिक्षण देता है, क्योकि इसमे झूठ, कपट, ईर्ष्या, आडम्बर आदि के लिए कोई स्थान नही है। इसमे या तो बात सत्य हो सकती है या झूठ। व्यर्थ की गप्पें तथा आडम्बर इसमें सहायक नही होते।

४. अनुशासनात्मक महत्त्व। गणित का अभ्यास करते समय मौलिक विचार-विमर्श, परिणाम की सुनिश्चितता, विश्लेषण तथा तर्क करने की शक्तियो का उपयोग होता ही है, चाहे यह प्रत्यक्ष रूप से हो या अप्रत्यक्ष रूप से। इन शक्तियो का विकास जटिल परिस्थितियो वाले इस ससार मे प्रभावपूर्ण तथा उपयोगी ढंग से कार्य करने तथा जीवित रहने के लिए आवश्यक है। अन्य समयो की अपेक्षा वर्तमान काल के मानव को अपना कार्य निश्चित करने तथा उचित रास्ता अपनाने के लिए पहले से अधिक सोच-विचारकर कार्य करना पडता है। उसे धन व्यय करने, रोज़-गार अपनाने, वोट देने, सिनेमा जाने या अन्य कार्य पर पैसा खर्च करने आदि दैनिक जीवन की अनेक बातो के सम्बन्ध मे उचित निर्णय लेने पड़ते है। इन्ही निर्णयो पर उसका जीवन आधारित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन की साधारण बातो के सम्बन्ध मे उचित निर्णय लेने योग्य प्रशिक्षित मस्तिष्क का होना आवश्यक है। गणित हममे ऐसे ही सुसंस्कृत तथा प्रशि-क्षित मस्तिष्क का विकास करने मे सहायक होता है। इसलिए हृश नामक एक विद्वान् ने कहा है कि "गणित एक ऐसी सिल्ली है जिस पर अपना मस्तिष्क रगडकर व्यक्ति स्पष्ट, क्रमबद्ध तथा सावधानीपूर्वक सोचना-विचारना सीखता है।"

५. शैक्षणिक महत्त्व। गणित के अध्ययन का महत्त्व उपरोक्त दृष्टि-कोणो तथा लाभो के कारण तो है ही, साथ ही इसका अध्ययन

शैक्षणिक दृष्टि से भी है, क्योंकि गणित के विचारों तथा शब्दावली का उपयोग अन्य विषयो के शिक्षण मे आवश्यक रहता है, जैसे सामाजिक अध्ययन, ड्राइंग या चित्रकला, मूलोद्योग आदि। इतना ही नही, गणित की विचार-धारा तथा योग्यताओ के विना कुछ अन्य विषयो का अध्ययन ठीक-ठीक हो ही नही सकता। गणित की इतनी अधिक आवश्यकता होते हुए भी हम देखते है कि शाला के वालको मे सख्यात्मक वर्णन या कथन को समझने तथा उसका समुचित रीति से उपयोग करने की क्षमता वहुत ही कम होती है। इन सब बातो की दृष्टि से शालाओ मे गणित का शिक्षण आवश्यक है। विना गणित के अच्छे अध्ययन के वालक अन्य विषयो मे भी अपनी योग्यता न वढा सकेंगे।

गणित-शिक्षण के उद्देश्य

एशिया के विभिन्न देशो मे गणित विषय लगभग २,००० वर्ष से पढाया जा रहा है। इसका शिक्षण व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से ही प्रारम्भ किया गया था। चीन, भारत तथा मुस्लिम देशो मे प्राचीन काल मे शिक्षा धार्मिक पुस्तको तक ही सीमित रखी जाती थी। उस काल मे गणित-शिक्षण तो केवल गौण तथा आकस्मिक ही होता था। उस काल के सरल जीवन के लिए गणित का यह आकस्मिक या प्रसगवश तथा गौण रीति से प्राप्त किया हुआ ज्ञान उपयुक्त था। पर धीरे-धीरे गाँव-गाँव, शहर-शहर तथा जाति-जाति के वीच सम्पर्क तथा सम्बन्ध वढता गया। इसमे सख्यात्मक ज्ञान की ओर भी अधिक आवश्यकता पडी। फलस्वरूप धीरे-धीरे गणित पर और अधिक ध्यान दिया जाने लगा। वेवीलोनिया, असीरिया तथा यहूदी देशो मे इसीलिए गणित को अधिक महत्त्व दिया गया था। वेवीलोन मे तो खुदाई मे वैंक-प्रणाली प्रचलित होने तक के प्रमाण मिले हैं। रोम एक वृहद् राज्य था तथा इतने वडे राज्य का कार्य ठीक चलाने के लिए गणित का अधिक ज्ञान होना आवश्यक समझा जाना स्वाभाविक ही था। कालान्तर

मे उत्तरी इटली का व्यापारिक सम्वन्ध पूर्वी देशों से हुआ तथा फलस्वरूप मध्य यूरोप मे गणित का प्रचार हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन तथा अर्वाचीन काल मे गणित-शिक्षण का उद्देश्य व्यापार मे दक्ष होने तक ही रहता था और उस काल मे गणित-शिक्षण मे उपयोगिता का उद्देश्य ही प्रमुख था।

यूनानी लोग गणित को दो रूपो मे पढाते थे—(१) तर्क तथा (२) गणित। तर्क के अन्तर्गत आज गणित के अन्तर्गत आने वाली संख्यात्मक गणना तथा अन्य प्रकार के अभ्यास रहते थे। इसका अध्ययन प्रमुखत उपयोगिता तथा व्यावहारिकता की दृष्टि से होता था, क्योंकि इसका अध्ययन वालक व्यापार मे दक्ष होने की दृष्टि से ही करता था। गणित के अन्तर्गत प्राय यूनानियो ने वर्तमान काल की उच्च गणित मे शामिल होने वाली सख्या के गुणो सम्वन्धी वातो का समावेश किया था। इसका अध्ययन केवल दार्शनिक ही करते थे, क्योंकि इससे तर्क-शक्ति का विकास होता था। इस प्रकार यूनान मे तर्क व्यापारियो तथा गणित विचारवान नेताओ के लिए पढाया जाता था।

यूनानियो का तर्क तथा गणित तो आज भी हम गणित के नाम से पढाते है। पर गणित-शिक्षण का हमारा उद्देश्य अव केवल व्यापार या तर्क मे दक्ष वनाना-मात्र नहीं रह गया है। वुनियादी शिक्षा चूंकि मूलोद्योग तथा जीवन की ठोस क्रियाओ तथा परिस्थितियों के आधार से दी जाती है, अत वुनियादी शालाओ मे गणित-शिक्षण के निम्न उद्देश्य होते हैं—

१ वालक को दैनिक साधारण जीवन मे सख्याओ का महत्त्व समझने मे सहायता देना।

२. वालक की अपने आसपास के ससार के सख्यात्मक पक्ष मे रुचि का विकास करना।

३ वालक मे मूलोद्योग तथा दैनिक जीवन से सम्वन्वित सख्यात्मक तथा रेखागणित सम्वन्धी समस्याओ को सही-सही तथा उचित

ढग से हल करने की क्षमता लाना ।

४ बालक को सही-सही सोचने तथा एकाग्र-चित्त हो लगातार कार्य करने के अवसर देना ।

५ बालक में संख्यात्मक शब्दावली तथा रेखाचित्रों को समझने तथा उनके उचित उपयोग करने की क्षमता का विकास करना ।

गणित का पाठ्यक्रम

किसी भी विषय का पाठ्यक्रम बनाते समय दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है—

१ पाठ्यक्रम में क्या-क्या रखा जाय । पाठ्यक्रम में शामिल करने के लिए विषयों, प्रकरणों तथा क्रियाओं का चुनाव करते समय हमें देश की शिक्षा-नीति तथा विषय-विशेष के शिक्षण के उद्देश्यों को ध्यान में रखना चाहिए । इन बातों का ध्यान रखने के लिए चुने जाने वाले विषयों आदि के सम्बन्ध में निम्न बातों का ध्यान रखा जाता है । इन बातों तथा परीक्षाओं पर खरे उतरने वाले प्रकरण, विषय तथा क्रियाएँ ही पाठ्यक्रम में शामिल की जाती हैं—

(क) अनुशासनीय मूल्य-परीक्षा । अभी हमने देखा कि गणित बालकों में तर्क, विचार-विमर्श, कल्पना, सयम, आत्म-विश्वास आदि अनेक शक्तियों तथा गुणों के विकास में सहायक होता है । अत गणित में वे विषय, प्रकरण तथा क्रियाएँ ही रखी जानी चाहिएँ जिनसे बालकों में इन शक्तियों का समुचित विकास हो सके ।

(ख) उपयोगी मूल्य-परीक्षा । गणित बालकों के दैनिक जीवन में उपयोगी होना चाहिए । यदि गणित के विषय या प्रकरण उपरोक्त गुणों तथा शक्तियों का विकास करने में तो सफल हुए पर बालक के दैनिक जीवन में काम आने योग्य न हुए, तो ऐसे गणित-शिक्षण से हमारा जीवन ठीक-ठीक नहीं चल

सकता। अत. गणित का पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय हमे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालक के दैनिक जीवन मे उपयोगी होने वाले विषयो, प्रकरणो तथा क्रियाओ का समावेश गणित मे किया जाय। वास्तव मे इस परीक्षा मे सफल होने वाली बातो का समावेश पाठ्यक्रम मे किया जाना अधिक आवश्यक है।

(ग) क्रियात्मकता-परीक्षा। आधुनिक मनोविज्ञान तथा शिक्षण बालक को निष्क्रिय तथा स्थिर नही मानते। बालक क्रियाशील है तथा उसका अपना व्यक्तित्व होता है। अत बालक के दैनिक जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति मे सहायक होने के साथ-साथ, गणित-पाठ्यक्रम को बालक की स्वाभाविक शक्तियो, मानसिक विकास तथा प्रवृत्तियो के अनुकूल भी होना चाहिए। फलस्वरूप गणित के पाठ्यक्रम मे शामिल किये जाने के लिए विषयो, प्रकरणो तथा क्रियाओ को इस परीक्षा की दृष्टि से भी उपयोगी सिद्ध होना चाहिए।

(घ) उच्च श्रेणियो मे प्रवेश की योग्यता-परीक्षा। बालक की शिक्षा केवल जूनियर वेसिक या सीनियर वेसिक शाला तक ही सीमित नही रहेगी। इनमे से अनेक बालक और भी आगे की शिक्षा प्राप्त करेंगे। अत. हमारी बुनियादी शालाओ के गणित के पाठ्यक्रम के विषयो को उच्च श्रेणियो मे प्रवेश की योग्यता-परीक्षा की दृष्टि से भी उपयुक्त होना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि बुनियादी शालाओ मे रखे जाने वाले विषयो, प्रकरणो तथा क्रियाओ का सम्बन्ध उच्च कक्षाओ मे पढाए जाने वाले विषयो, प्रकरणो तथा क्रियाओं से भी होना चाहिए।

उपरोक्त चार परीक्षाओ की दृष्टि से जो प्रकरण, विषय या क्रियाएँ उपयुक्त हो उन्हें हम गणित के पाठ्यक्रम मे सम्मिलित कर सकते हैं। गणित का पाठ्यक्रम बनाते समय हमे शाला

मे पढाए जाने वाले अन्य विषयो तथा गणित के लिए दिये जाने वाले समय का भी ध्यान रखना चाहिए। यदि हम इनका ध्यान न रखेंगे तो पाठ्यक्रम मे कम या अधिक बातो के समावेश होने की सम्भावना रहेगी। फलस्वरूप या तो पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षण समय के अन्दर पूर्ण न होगा या जल्दी पूर्ण हो जायगा।

२ पाठ्यक्रम मे रखी जाने वाली बातो का क्रम-निर्धारण। यह निश्चित हो जाने पर कि गणित मे हमे क्या-क्या पढाना है यह आवश्यक है कि पढाए जाने वाली बातो का क्रम-निर्धारण भी किया जाय, अर्थात् यह निश्चित किया जाय कि किस प्रकरण के बाद या किस स्तर पर क्या-क्या पढाया जाना चाहिए। इनके लिए विभिन्न स्थानो मे विभिन्न प्रकार की विधियाँ अपनाई जाती हैं, जिनमे से निम्न मुख्य हैं—

(क) तार्किक और मनोवैज्ञानिक विधि। कुछ विद्वानो का विचार है कि गणित के पाठ्यक्रम मे तर्क की दृष्टि से क्रमबद्ध विषय पढाए जाने चाहिएँ। पर कई विद्वान् केवल मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त क्रम रखने को ठीक मानते है। साधारण दृष्टि से देखने से यह प्रतीत होता है कि ये दोनो विधियाँ एक-दूसरे के प्रतिकूल हैं, पर वास्तव मे ऐसा नही है। सभी सोचना-विचारना मनोवैज्ञानिक होता है। शिक्षा का काम उसे तर्कयुक्त बनाना होता है। अतः इस झगडे मे न पडकर हमे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गणित के पाठ्यक्रम मे रखी जाने वाली सामग्री मनोविज्ञान तथा तर्क दोनो के अनुसार उपयुक्त हो। हाँ, कुछ विषय तर्क की दृष्टि से उपयोगी हो सकते हैं, जैसे दशमलव का शिक्षण भिन्न गिनती के बाद ठीक रहता है। पर यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ठीक नही है। अत गणित के विषयो के सम्बन्ध मे दोनो विधियो की दृष्टि से परीक्षण करके क्रम निर्धारित करना ठीक रहेगा।

(ख) कठिनाई विधि। प्रयोग तथा उपयोगिता की दृष्टि मे गणित के

अनेक विषय या प्रकरण ऐसे होते हैं जो छोटी कक्षाओं के लिए उपयोगी तथा लाभदायक हैं, पर इन प्रकरणों को छोटी आयु के बालकों को समझने मे कठिनाई हो सकती है। अत: क्रम-निर्धारण के समय बालक की मानसिक क्षमता तथा विकास का ध्यान रखना चाहिए। इनके अनुसार प्रारम्भ मे सरल बातें तथा बौद्धिक विकास के साथ-साथ गणित-सम्बन्धी कठिन बातों का समावेश होता जायगा।

(ग) प्रकरण तथा प्रकरण-अंग-विधि। वास्तव मे प्रारम्भिक कक्षाओ में सरल प्रकरण तथा बातों का समावेश होना चाहिए। पर व्यवहार मे यह देखा जाता है कि किसी प्रकरण के कुछ अंग सरल तथा कुछ बहुत कठिन होते हैं। इस कठिनाई से बचने के लिए हमें प्रकरण के सभी अंग एक ही कक्षा में नही रखने चाहिएँ। जैसे क्षेत्रफल का प्रकरण है। क्षेत्रफल वर्गाकार, त्रिकोण, आयताकार, गोल चीजों आदि का हो सकता है। क्षेत्रफल के सभी अंगों को एक ही कक्षा मे पढाना प्रकरण-विधि का उपयोग कहलाएगा। पर हम यह जानते हैं कि यह ठीक नहीं है। आयताकार चीजों का क्षेत्रफल सरल होता है तथा बुनियादी शालाओ मे खेती या मूलोद्योग का कार्य करने से बालकों की समझ मे यह जल्दी आ जाता है। अत: वहाँ इसे तीसरी कक्षा में प्रारम्भ कर सकते हैं। पर त्रिकोण तथा गोल चीजो का क्षेत्रफल निकालना कठिन होता है, अत. इसे पाँचवी या छठी के लिए रख सकते हैं। इसे प्रकरण-अंग विधि कहते है। अतः गणित के प्रकरणों का क्रम या स्तर निर्धारण करते समय हमे इसका ध्यान रखना चाहिए।

(घ) आयोजित एवं प्रासंगिक विधि। अनेक शालाओ में योजनाओ तथा क्रियाओं के आधार पर शिक्षण दिया जाता है। इस प्रकार की शालाओ मे योजना-विधि, बुनियादी शिक्षा, खेल-पद्धति आदि का उपयोग किया जाता है। इनमे योजनाएँ या क्रियाएँ चुन ली

जाती हैं तथा इनके कार्यान्वयन के समय आवश्यकतानुसार भाषा, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, गणित आदि विषयो का ज्ञान कराया जाता है। इस प्रकार की शिक्षण-विधि मे प्रासगिक विधि का उपयोग होता है। डाकिया, डाकखाना, बाजार, दुकानदार, रेलवे स्टेशन आदि अनेक प्रकार के आयोजनो के आधार पर गणित तथा अन्य विषयो का ज्ञान दिया जा सकता है। इन विधियो के समर्थको का कथन है कि ज्ञान एक है तथा उसे विषयो में टुकडे करके न पढाना चाहिए। यह ठीक है, पर इन विधियो से बालक अधूरा या टुकडो मे ज्ञान प्राप्त करते हैं। गणित के अच्छे ज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि केवल प्रासगिक ज्ञान पर ही निर्भर न रहा जाय। अतः गणित का आयोजित शिक्षण भी अति आवश्यक है। बुनियादी शालाओ मे प्रासगिक ज्ञान ही दिया जाता है, पर अभ्यास के लिए हम आयोजित शिक्षण की व्यवस्था भी कर सकते है। इससे बालक प्राप्त ज्ञान का पूर्ण ज्ञान भी प्राप्त करेगा तथा उसका जीवन मे उपयोग भी सीखेगा।

(ङ) केन्द्रीकरण-विधि। समवाय का सिद्धान्त, जो प्रासगिक विधि मे लागू किया जाता है, उपयोगी अवश्य है पर इसके मानने वाले कुछ विद्वानो ने केन्द्रीकरण विधि को अपनाया। इस केन्द्रीकरण विधि के अनुसार एक 'केन्द्र' विषय माना जाता है तथा उसके सहारे अन्य विषयो का ज्ञान दिया जाता है। बुनियादी शिक्षा मे किसी विषय को केन्द्र न मानकर मूलोद्योग तथा जीवन की ठोस परिस्थितियो को शिक्षा का आधार माना जाता है।

केन्द्रीकरण विधि के समर्थको का कथन है कि गणित तथा अन्य विषयो का ज्ञान इससे अच्छी तरह दिया जा सकता है। पर वास्तव मे ऐसा नही है। मान लीजिए कि कही जाने की योजना बनाई। उसके लिए सामान एकत्र करना, उसका हिसाब रखना, खर्च का हिसाब रखना, चीजें मोल लेना आदि बातें तथा

क्रियाएँ की जायेंगी। इसमे गणित की वातो का समावेश अवश्य होता है। पर गणित की प्रारम्भिक वातो का अभ्यास, हिसाव करने की विधि आदि का अभ्यास काफी समय तक होना आवश्यक है। वास्तव में इस विधि मे गणित का प्रासगिक ज्ञान ही प्राप्त होता है, जिसे हम पूर्ण नही कह सकते।

(च) योजना-विधि। यह विधि तात्त्विक दृष्टि से भले ही केन्द्रीकरण विधि से भिन्न हो, पर इसमे गणित के प्रकरणो तथा क्रियाओं का ज्ञान केन्द्रीकरण विधि के समान प्रासगिक रूप से ही होता है। इसमे योजना के कार्यान्वियन के समय ही गणित का ज्ञान कराया जाता है।

(छ) समवाय-विधि। गणित मे समवाय निम्न प्रकार से किया जा सकता है—(१) गणित का जीवन से समवाय, (२) गणित का शाला के अन्य विषयो से समवाय, (३) गणित की किसी एक शाखा का उसकी विभिन्न उप-शाखाओ से समवाय, (४) गणित की विभिन्न शाखाओ से समवाय, और (५) गणित का मूलोद्योग की क्रियाओ से समवाय।

(ज) क्रिया-विधि। सभी स्वस्थ वालक क्रियाशील रहते हैं। क्रिया मे उन्हे प्रसन्नता होती है। बुनियादी शिक्षा भी वालक की क्रियाशीलता का उपयोग करले की कल्पना करती है। छोटी कक्षाओ में वालक अधिक क्रियाशील होते है, अत गणित पाठ्य-क्रम का क्रम-निर्धारण भी उपयुक्त क्रियाओ के आधार पर होना चाहिए। क्रियाएँ छोटी कक्षाओ मे अधिक रखी जानी चाहिएँ। इसके लिए प्रत्यक्ष वस्तुओ के आधार पर गणित-शिक्षण किया जाना ठीक रहेगा।

उपरोक्त सिद्धान्तो तथा विधियो की कसौटी पर बुनियादी शालाओ के लिए गणित का पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय हमे इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि यह पाठ्य-वस्तु को केवल तार्किक विधि से ही तो प्रस्तुत

नही करता है । चूँकि बुनियादी शालाओं मे बालक के सामने जीवन की समस्याएँ आती रहती हैं, अत. इनमे उन समस्याओ के तात्कालिक हल के लिए गणित का आवश्यक ज्ञान देने योग्य बातो के समावेश का प्रयत्न किया जाना चाहिए । इसमे क्रियात्मक क्रम के लिए भी स्थान रहना आवश्यक है । इस पाठ्यक्रम मे लचीलापन भी होना चाहिए, इससे शिक्षक आवश्यकतानुसार हेर-फेर कर सकता है । बालक के मानसिक विकास का भी इसमे ध्यान रखा जाना चाहिए। इस पाठ्यक्रम मे बालक के लिए आकर्षक तथा प्रोत्साहन देने वाली सामग्री का भी समावेश हो । मूलोद्योग तथा जीवन से प्रत्यक्ष तथा परोक्ष समवाय तो इससे स्थापित होना ही चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बुनियादी शालाओ का गणित-पाठ्यक्रम बालक की शाला, घर, समाज, जीवन आदि सभी की आवश्यकताओ की पूर्ति मे सहायक होना चाहिए । बुनियादी शाला मे गणित को तो मूलोद्योग, बालक की व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक क्रियाओ तथा जीवन को सुचारु रूप से चलाने तथा विकसित करने के लिए आवश्यक ज्ञान देने वाला होना चाहिए ।

गणित शिक्षण-विधियाँ

बुनियादी शालाओ मे क्रिया को अधिक महत्त्व दिया जाता है तथा उसी के आधार पर गणित तथा अन्य विषय पढाए जाते है। अत बुनियादी शालाओ मे अपनाई जाने वाली विधियाँ अन्य सामान्य शालाओ मे अपनाई जाने वाली विधियो से भिन्न होगी । पर इससे हमे यह नही सोचना चाहिए कि अन्य शालाओ मे अपनाई जाने वाली विधियो का उपयोग बुनियादी शालाओ में नही किया जा सकता । वास्तव मे आवश्यकतानुसार विभिन्न विधियो का उपयोग करने से बालको की रुचि बनी रहती है तथा बात अच्छी तरह समझ मे आ जाती है ।

वैसे तो प्रत्येक शिक्षक की अपनी-अपनी विशेष शिक्षण-विधि होती है, पर यहाँ गणित-शिक्षण की सभी प्रमुख विधियो का विवेचन उपयुक्त होगा । इनमे से शिक्षक आवश्यकतानुसार विधियो का उपयोग कर सकते

हैं। गणित-शिक्षण मे प्रमुखत. निम्न विधियो का उपयोग किया जाता है—

१. आगमन-विधि। इस विधि मे किसी सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिए शिक्षक कुछ उदाहरण लेता है तथा प्रश्नोत्तर विधि द्वारा सामान्य नियम निर्धारित करता है। इसमे कुछ तथ्यो के आधार पर किसी विशेष परिणाम पर पहुँचते हैं। उदाहरणार्थ कक्षा मे तीन टोलियाँ है। प्रत्येक टोली मे पाँच बालक हैं। पहली टोली ने ५० तार, दूसरी ने ६० तार तथा तीसरी ने ६५ तार काते तो, प्रत्येक टोली के एक बालक की कताई के तारो की औसत सख्या बताओ। शिक्षक इस प्रश्न से बालको से प्रश्नोत्तर-विधि द्वारा औसत निकलवाएगा। तत्पश्चात् इसी प्रकार के एक-दो और प्रश्न लेकर प्राप्त तथ्यो के आधार पर 'औसत' की परिभाषा निर्धारित करेगा। इस विधि की सफलता के लिए बालको के सामने उनके अनुभव के भीतर की बातो से सम्बन्धित प्रश्न ही रखने चाहिएँ। छोटी कक्षाओं के बालक क्या और क्यो नहीं समझ पाते, अत. इस विधि का उपयोग इन कक्षाओ मे कम करना चाहिए।

२. निगमन-विधि। इस विधि मे सामान्य नियम की जानकारी पहले करा दी जाती है तथा इसके बाद बालक उस नियम का प्रयोग करके प्रश्न हल करते हैं। उदाहरणार्थ साधारण ब्याज का नियम—साधारण ब्याज=मूलधन×दर×समय÷१००। यह नियम बतलाने के बाद बालक ब्याज के प्रश्न हल करते हैं। यह विधि आगमन विधि के विपरीत ही है। इस प्रणाली के उपयोग से समय तथा शक्ति कम व्यय होती है, पर बालक की तर्क-शक्ति का विकास नहीं हो पाता। साथ ही यदि बालक नियम भूल जायँ तो प्रश्न हल नहीं कर सकते। वास्तव मे निगमन तथा आगमन विधियाँ दोनों का उपयोग आवश्यकतानुसार एक-दूसरे के पूरक के रूप मे करना चाहिए।

३. सश्लेषण-विधि । सश्लेषण तथा विश्लेषण तर्क की दो विधियाँ हैं। सश्लेषण मे हम जानी हुई बात से अपना तर्क प्रारम्भ करते हैं तथा अज्ञात की ओर जाते है । इस विधि मे शिक्षक किसी प्रश्न का आदर्श हल विधिवत् बालको को बतलाता है तथा इसके बाद बालक उसी आधार पर इसी प्रकार के अन्य प्रश्न हल करते हैं। हमारी पुस्तको मे प्रत्येक उदाहरणमाला के पहले कुछ प्रश्न हल किये रहते हैं तथा बाद मे कुछ प्रश्न हल करने के लिए रहते हैं। इस प्रकार उनमे इसी विधि का उपयोग किया जाता है। यह विधि सरल है तथा अधिकाश शालाओ मे उपयोग मे लाई जाती है। इसमे ज्ञात से अज्ञात की ओर जाने का नियम अपनाया जाता है।

४ विश्लेषण-विधि । यह विधि सश्लेषण विधि से ठीक उलटी है। इस विधि मे अज्ञात से अपना तर्क प्रारम्भ करके ज्ञात की ओर जाते हैं। इस विधि मे प्रत्येक पद या पग उठाने का तर्क बालक के सामने रहता है। इस विधि का उपयोग तर्क-शक्ति की वृद्धि करता है तथा बालको को स्वय हल खोजने की ओर प्रेरित करता है। इस विधि का उपयोग बीज गणित मे अधिक होता है। इस विधि मे अज्ञात से ज्ञात की ओर जाने का नियम अपनाया जाता है।

५ स्वय ज्ञान विधि । इस विधि के जन्मदाता लन्दन के प्रो० आर्मस्ट्राग है। इस विधि का निर्माण विज्ञान-शिक्षण के लिए ही किया गया था। गणित मे भी इसका उपयोग किया जा सकता है। इस विधि मे बालक अनुसधानकर्ता के समान स्वय प्रश्न का हल या नया ज्ञान प्राप्त करता है। इसमे समय अवश्य बहुत लगता है, पर बौद्धिक विकास की दृष्टि से यह विधि बडी उपयोगी है। इससे बालक आत्म-विश्वास पाते हैं। पर गणित में इस विधि के उपयोग के लिए विशेष प्रकार की पुस्तकें तथा

साहित्य आवश्यक है। इस विधि मे संश्लेषण तथा विश्लेषण दोनो प्रकार की विधियो का उपयोग होता है।

६. प्रयोगशाला-विधि। इस विधि मे बालक स्वय क्रियाएँ करके गिनना, गुणा करना, भाग देना, रूपान्तर करना या गणित सम्बन्धी अन्य बातें सीखते हैं। इससे उन्हें गणित का व्यावहारिक तथा वास्तविक उपयोग का ज्ञान हो जाता है। यह विधि अत्यन्त उपयोगी है। अभी तक बालको का गणित का ज्ञान अव्यावहारिक-सा ही होता था। इतना पढने-लिखने के बाद वे साधारण वस्तुएँ खरीदते समय हिसाब आदि नही लगा पाते थे। पर इस विधि से शिक्षण के लिए विज्ञान आदि की प्रयोगशाला के समान गणित की प्रयोगशाला भी होनी चाहिए। इस प्रयोगशाला मे नापने, तोलने, चित्र बनाने आदि के औज़ार या सहायक सामग्री रखी रहनी चाहिए। इस विधि मे बालक नियमो आदि की जाँच स्वयं प्रयोग करके करते हैं। वे नापने के लिए गज, फुट, इंच का उपयोग करते हैं, तोलकर वस्तुओ का वज़न निकालते हैं; भिन्न का ज्ञान वस्तु के टुकड़े करके या विभिन्न रगो मे रँगकर प्राप्त करते है। इस विधि से गणित-शिक्षण रोचक तथा आकर्षक होता है। बालक क्रियाशील रहते हैं। क्रिया के आधार पर प्राप्त किया हुआ ज्ञान ठोस तथा पक्का रहता है। बालक गणित का व्यावहारिक उपयोग सीखते हैं। इस विधि का उपयोग बुनियादी शालाओ मे अधिक किया जाना चाहिए, क्योकि इस विधि की कार्य-प्रणाली बुनियादी शिक्षण से मेल खाती है। पर इस प्रणाली के लिए शाला मे पर्याप्त स्थान होना चाहिए। इस प्रणाली से गणित के सभी प्रकरणो का ज्ञान देना सम्भव नही है।

७. व्याख्यान-विधि। इस विधि मे शिक्षक गणित के किसी प्रकरण को समझाने के लिए व्याख्यान-मात्र ही देता है तथा कल्पना कर लेता है कि उसके कहने-मात्र से ही बालक सब बातें समझ लेते

हैं। यह विधि केवल बहुत ही कुशाग्र बुद्धि वाले बालको के लिए उपयोगी होती है, अत इसका उपयोग शालाओ मे गणित के लिए तो किया ही नही जाना चाहिए।

८. पुस्तक-विधि। पुस्तक-विधि मे शिक्षक को कम परिश्रम करना पडता है। इसमे शिक्षक विषय को न समझाकर बालको से पुस्तक की सहायता से प्रश्न हल करवाता है। यह विधि भी व्याख्यान विधि के समान अनुपयुक्त है। देहाती शालाओं मे यही विधि काम मे लाई जाती है, पर यह उचित नही है। हमारे देश मे अभी इस विधि के उपयोग के योग्य पुस्तकें ही नही बनी हैं। हाँ, गृह-कार्य तथा अभ्यास इस विधि की सहायता से कराया जा सकता है।

९ समवाय-विधि। 'समवाय' आधुनिक प्रगतिशील शिक्षा का आवश्यक अग है। मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि मन एक इकाई के रूप मे रहता है, अत वह ज्ञान को भी टुकडो के रूप मे प्राप्त न करके एक इकाई के रूप मे प्राप्त करता है। इसीलिए हमारी बुनियादी शिक्षा भी विषयों को अलग-अलग मानकर पढाने पर बल न देकर समवायित ढग से पढाने को महत्त्व देती है। बुनियादी शालाओ मे गणित के उद्देश्यो पर विचार करते समय हमने विचार किया था कि बुनियादी शालाओ मे गणित-शिक्षण का मुख्य उद्देश्य बालक मे अपने व्यावहारिक जीवन मे आने वाली उद्योग-सम्बन्धी क्रियाएँ, सामाजिक तथा घरेलू कार्य सरलतापूर्वक करने के लिए आवश्यक गणित की क्षमता का विकास करना है। इसके लिए यह आवश्यक है कि गणित-सम्बन्धी नये नियम तथा अभ्यासात्मक प्रश्न ऐसी समस्याओ के रूप मे प्रस्तुत किये जायें जो (१) बालक के वास्तविक जीवन से ली गई हो, (२) बालक के अनुभव के अन्तर्गत आती हों, (३) बालक को रुचिकर हो, (४) बालक को चुनौती देने वाले

सीखने के अवसर प्रस्तुत करने वाली हो, तथा (५) जो स्पष्ट सरल भाषा मे प्रस्तुत की गई हो ।

ऐसी समस्याएँ शिक्षक को सरलता से प्राप्त हो सकती हैं, क्योंकि बुनियादी शिक्षा मे मूलोद्योग तथा पाँच प्रकार के जीवन के अभ्यास ही शिक्षा का आधार होते है । इनकी क्रियाएँ करते समय सामाजिक, घरेलू तथा मूलोद्योग सम्बन्धी समस्याएं आप-से-आप उपस्थित होगी तथा इनके द्वारा बालक को गणित तथा अन्य विषयो सम्बन्धी ज्ञान सरलता से दिया जा सकेगा । इन समस्याओ के हल के लिए शिक्षक अवसरानुकूल उपयुक्त विधियो का उपयोग कर सकता है । छोटी कक्षाओ मे बालक कम आयु के होते हैं । उनकी समझ तथा अनुभव भी सीमित रहते है, अत निगमन विधि तथा प्रयोगात्मक विधि उपयोगी रहेगी । बडी कक्षाओ मे आगमन विधि का उपयोग ठीक रहेगा । प्रयोग-विधि तो छोटी तथा बडी सभी प्रकार की कक्षाओ के लिए ठीक रहेगी, क्योकि बुनियादी शाला मे सूत एव कपडा नापना, पूनी, तकली, चरखे आदि गिनना, कपास एवं पूनियाँ तोलना, फूलो की माला बनाना, जिल्द चढाना, विभिन्न आयोजनो की व्यवस्था के लिए पैसो का हिसाब रखना आदि के आधार पर गणित-सम्बन्धी अनेक बातो का ज्ञान सरलता से कराया जा सकता है । संश्लेषण तथा विश्लेषण विधियो का उपयोग तो प्रत्येक समस्या के हल के लिए किया जा सकता है । अत इनका उपयोग बुनि-यादी शालाओ मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से होता ही रहेगा । इन विभिन्न प्रकार की विधियों का उपयोग समवाय-विधि के अन्तर्गत अवसरानुकूल ही होगा, क्योकि समवाय बुनियादी शिक्षा की आत्मा है । बुनियादी शालाओ मे विभिन्न क्रियाओं से सम-न्वित करके ही गणित तथा अन्य विषयो का ज्ञान दिया जाता है । यह समवाय दो प्रकार का होता है—

(क) प्रत्यक्ष समवाय। क्रियाएँ करने के लिए गणित के ज्ञान की आवश्यकता भी कई अवसरों पर पडती है। ऐसे समय गणित का ज्ञान कराना ही प्रत्यक्ष समवाय कहा जायगा। उदाहरणार्थ पहली कक्षा मे बालको से तकली वितरित कराई। लडके २० हैं तथा तकलियाँ २५। बालक को बची हुई तकलियो की जानकारी कराने के लिए यह आवश्यक है कि उसे आवश्यक गिनती का ज्ञान हो, तभी वह बची हुई तकलियो या बाँटी गई तकलियो की संख्या बतला सकेगा। घटाने का ज्ञान भी आवश्यक है।

(ख) परोक्ष समवाय। गणित का सभी ज्ञान क्रिया करते समय क्रिया के लिए ही सहायक या आवश्यक नही होता। बहुत सी बाते सीधे क्रिया मे सहायक न होकर बालक के विकास मे सहायक होती हैं। इस प्रकार के ज्ञान को समन्वित करके देना परोक्ष समवाय होता है। बालक कपडा बनाना चाहता है। इसके लिए सूत कातते समय लम्बाई, चौडाई, वजन आदि देना प्रत्यक्ष समवाय होगा, पर कपडे बनाकर बेचने मे हानि-लाभ, प्रतिशत आदि का ज्ञान परोक्ष रूप से समवायित ज्ञान ही कहलाएगा।

कुछ शिक्षकों तथा विद्वानो का विचार है कि बुनियादी शालाओं मे समवायित ढग से केवल औसत, क्षेत्रफल, गुणा, जोड, घटाना तथा लाभ-हानि ही सरलता से पढाए जा सकते है, अन्य प्रकरणों को समवायित ढग से पढाने मे कठिनाई आती है या वे पढाए ही नहीं जा सकते। वास्तव मे जीवन तथा मूलोद्योग की क्रियाओं मे समवायित करके बालकों को सभी प्रकार का जीवनोपयोगी गणित का ज्ञान दिया जा सकता है। हाँ, सभी प्रकरण मूलोद्योग की क्रियाओं से समवायित नही किये जा सकते। पर सामाजिक क्रियाओं, जैसे उत्सव और विशेष दिवस मनाकर, पचायतो का हिसाब-लेखा रखकर, ब्याह-शादी, पर्यटन आदि का लेखा रखकर अनेक प्रकरण सरलता से पढाए जा सकते हैं।

गणित-शिक्षण के लिए अनेक प्रकार के सहायक साधनो का आवश्यकतानुसार उपयोग किया जा सकता है। इन साधनो का उपयोग दो बातों के लिए किया जाता है—(१) विषय की व्याख्या मे सहायता देने के लिए तथा (२) बालको की आँखो तथा मन का उपयोग करके उनके उचित मानसिक विकास के लिए। इसके साथ-साथ इनसे पाठ्य-विषय रोचक भी बनता है। ये साधन दृश्य तथा श्रव्य दोनो प्रकार के होते हैं तथा इनमे ये प्रमुख हैं—गोली, लकडी के टुकड़े, श्यामपट, चार्ट, चित्र, मॉडल, एपिडास्कोप, डाइस्कोप, फिल्म, सिनेमा, रेडियो, पुस्तकालय, भ्रमण तथा यात्राएँ।

गणित-शिक्षण के सहायक साधन

इन विभिन्न प्रकार के साधनो का उपयोग करके हमे बालको को गणित का व्यावहारिक स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए। इनके अभाव मे बालक यह सोचने लगते हैं कि गणित तो केवल कापियो तथा स्लेटो पर करने के लिए है। हाँ, यह अवश्य है कि हमारे देश की बुनियादी तथा अन्य अधिकाश शालाओ मे एपिडास्कोप, फिल्म, सिनेमा आदि के उपयोग की सामान्य सुविधाएँ तथा यंत्र नही है। पर जिनमे ये साधन उपलब्ध हो वहाँ इनका समुचित उपयोग करके गणित को रोचक तथा स्पष्ट बनाया जा सकता है।

गणित में मूल्यांकन

बुनियादी शालाओ मे बाहरी परीक्षाओ का स्थान नही रहता। पर इनका तात्पर्य यह नही है कि किसी भी प्रकार की परीक्षाएँ बुनियादी शालाओ मे होनी ही नही चाहिएँ। परीक्षा या मूल्यांकन का तो जीवन मे बडा महत्त्व है, अतः बुनियादी शालाओ मे भी। बुनियादी शालाओ मे गणित विषय मे बालक की योग्यता, उसकी कठिनाइयो आदि के जानने के लिए परीक्षा या मूल्यांकन आवश्यक है। गणित मे बालको को बहुधा की जाने वाली गलतियो से बचाने के लिए भी मूल्याकन किया जाना सहायक होता है। गणित मे केवल सही उत्तर आना ही महत्त्वपूर्ण नही

होता, वरन् सवाल करने की विधि तथा प्रत्येक पद (step) सही होना चाहिए। मूल्याकन से हमे यह पता चल जाता है कि वालक कौनसा पद ठीक-ठीक नही समझा है। यदि प्रारम्भ मे ही वालक की इन कठिनाइयो तथा गलतियो को सुधारा जाय तो वालक आगे चलकर गलतियाँ न करेंगे। अत. यह आवश्यक है कि वालक के गणित के कार्य मे जो भी पद आएँ, उनका समुचित विश्लेषण किया जाय तथा उनका उचित परीक्षण भी हो। वालक की कठिनाइयो तथा गलतियो को उचित ढग से हल करने के लिए शिक्षक को वालक की मानसिक प्रक्रिया का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। वालक की मानसिक प्रक्रिया मे प्राप्त यह अन्तर्दृष्टि शिक्षक को वालक द्वारा किये जाने वाले गणित के कार्य करने की आदतो और गलतियाँ करने की विधि का ज्ञान कराएगी। इस प्रकार वालक की मानसिक प्रक्रिया की अन्तर्दृष्टि तथा वालक की विशिष्ट कमजोरियो का पता लगाने मे भी मूल्याकन सहायक हो सकता है। इन गलतियो का पता होने पर ही शिक्षक उनके सुधार के लिए उपयुक्त कार्य तथा अभ्यास करा सकता है और अपनी शिक्षण-विधि मे भी आवश्यक परिवर्तन कर सकता है।

वालक अनेक वातो के कारण प्रश्नो का सही-सही हल नही निकाल पाते। कई वालक केवल सही उत्तर का पता लगाने तथा उसे किसी प्रकार अन्त मे लिखने के फेर मे रहते हैं। कई वालक सवाल को पढकर ठीक-ठीक यह पता नही लगा पाते कि उनसे पूछा क्या गया है, अर्थात् उनमे पढने तथा समझने की योग्यता कम होती है। कई वालक गुणा, भाग या जोड आदि मामूली-सी गलतियो के कारण सही-सही सवाल नहीं कर पाते। इसमे उनकी लापरवाही ही पाई जाती है। कुछ वालको मे सही-सही तर्क करने की क्षमता ही नही रहती। इन सब वातो का पता शिक्षक के लिए मूल्याकन के सही तरीके के द्वारा ही हो सकता है। इन विभिन्न प्रकार की वातो को जानने तथा वालको की गणित-सम्बन्धी योग्यता का पता लगाने के लिए हम बुनियादी शालाओ मे निम्न परीक्षा या मूल्याकन-विधियो का उपयोग कर सकते हैं—

१. उपचारात्मक परीक्षा। इस प्रकार की परीक्षा द्वारा शिक्षक बालक की व्यक्तिगत कमजोरियों का पता लगाता है तथा उनकी जानकारी के आधार पर बालक की उन कमज़ोरियों को सुधारने का प्रयत्न करता है।

२. निपुणता जाँच-परीक्षा। इस प्रकार की परीक्षा द्वारा शिक्षक बालक की गणित-सम्बन्धी समस्याओं को हल करने की गति तथा कुशलता का पता लगाता है। इस प्रकार की परीक्षा मे बालक की प्रश्नो के हल करने की गति का पता लगाना प्रमुख ध्येय रहता है।

३. क्षमता जाँच-परीक्षा। इस प्रकार की परीक्षा में बालको की गणित-सम्बन्धी कठिन समस्याओं को हल करने की क्षमता की जानकारी करना ही प्रमुख ध्येय रहता है।

४. रचना-शक्ति जाँच-परीक्षा। इस प्रकार की परीक्षा द्वारा बालको की गणित-सम्बन्धी रचनात्मक शक्ति की जाँच की जाती है। इसमे व्यावहारिक बातों या कार्यों का समावेश ही अधिक रहता है, जैसे रेखागणित की आकृतियाँ खीचना, व्यावहारिक कार्य के लिए पुस्तिका बनाना, कुछ संख्याओ, जैसे २०+१५, ५×१२, ६÷२ आदि के लिए इबारत बनाना या परिस्थिति निर्माण करने के लिए देना, आदि।

उपरोक्त परीक्षाओ के लिए मौखिक या लिखित प्रश्न, नवीन परीक्षाएँ (रिक्त स्थान-पूर्ति, शुद्ध-अशुद्ध निर्णय, युगल बनाना, सही चुनाव करना आदि) तथा प्रमाणित परीक्षाओ (Standardised tests) का उपयोग किया जा सकता है।

मन-गणित तथा मौखिक कार्य गणित का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक अंग है। यह न केवल रोचक वरन् बड़ा प्रभावपूर्ण भी होता है। पर इसे सावधानीपूर्वक तथा विधिवत् कराया जाना चाहिए।

मन-गणित तथा मौखिक कार्य : महत्त्व

अव्यवस्थित रीति से कराया गया मन-गणित कार्य अपने उद्देश्यों की पूर्ति मे सहायक तथा सफल नही हो सकता। मन-गणित से समय तथा शक्ति की बचत होती है, क्योंकि इसमे लिखित कार्य मे की जाने वाली अनेक बातो तथा पदो को करना आवश्यक नही रहता। फलस्वरूप सीखने की प्रक्रिया मे इससे बडी सहायता मिलती है। मन-गणित बालक की श्रवण, कल्पना, शीघ्र सोचने तथा मानसिक चित्र या खाका शीघ्रता से खीचने की शक्ति का विकास करता है। यह बालको मे शीघ्रता से सही-सही कार्य करने की आदतो का विकास भी करता है। मन-गणित मे दक्ष होकर बालक अपने भविष्य जीवन मे दैनिक कार्य, खरीदना-बेचना आदि क्रियाएँ करते समय अन्य लोगो पर निर्भर न रहेंगे, तथा आजकल बाजारो मे जो कम पैसे लेने-देने का धोखा हो जाया करता है, वह न होगा। मन-गणित सफल नागरिक बनने के लिए बडा आवश्यक है। शिक्षण की दृष्टि से भी यह उपयोगी है, क्योंकि इसकी सहायता से शिक्षक बालकों का ध्यान अपनी ओर या गणित की प्रक्रिया की ओर आकर्षित कर सकता है। इससे बालक समझ रहे है या नही, इसका पता भी शिक्षक को शीघ्रता से लग सकता है। मौखिक तथा मन-गणित कार्य आवृत्ति के भी अच्छे साधन हैं।

मौखिक तथा मन-गणित कार्य इतना उपयोगी, प्रभावपूर्ण तथा महत्त्वपूर्ण है कि इसे बुनियादी शालाओ की प्रत्येक कक्षा मे समुचित स्थान दिया जाना चाहिए। इसे लिखित गणित का पूरक तथा बालको के नागरिक प्रशिक्षण का आवश्यक अग मानना चाहिए।

मौखिक कार्य-विधि

गणित मे मन-गणित तथा मौखिक कार्य शिक्षको द्वारा नई विधियाँ या क्रियाएँ समझाते समय कराया जा सकता है। लिखित गणित का अभ्यास कराने, गुरु या सरल मार्ग सिखाने, शीघ्रता से सोचने तथा गणित सम्बन्धी क्रियाओ को शीघ्रता से करने की आदतें डालने, कठिन प्रश्नो को हल करने मे

सहायक सरल प्रश्नो को करने के अभ्यास, पूर्व किये गए कार्य की पुनरावृत्ति आदि के लिए मौखिक तथा मन-गणित कराया जा सकता है। इसके लिए अलग से समय भी दिया जाना चाहिए। शिक्षक प्रतिदिन लिखित गणित प्रारम्भ करने के पूर्व पाँच या सात मिनट मौखिक कार्य करा सकता है। किसी विधि को समझाते हुए बीच-बीच मे भी प्रश्न पूछकर मौखिक कार्य हो सकता है। पर वालको को लिखित कार्य करते समय जितनी गणना या क्रियाएँ सरलता से मौखिक रूप से की जा सकती हो, करने की आदत भी डालनी चाहिए। अतः हमारा यह सिद्धान्त होना चाहिए कि वालक जो 'मस्तिप्क मे कर सकते हों, उसे कागज़ पर न करें।' योग, गुणा, भाग आदि पहाडा तो वालको की आदतें-सी वन जानी चाहिएँ।

मौखिक या मन-गणित के लिए दिये गए प्रश्न सोद्देश्य होने चाहिएँ तथा इनका चयन सोच-विचारकर किया जाना चाहिए। इनका निश्चित क्रम भी होना चाहिए। इनकी भाषा सरल, स्पष्ट तथा सक्षिप्त होनी चाहिए। मौखिक या मन-गणित कार्य केवल प्रश्नों के रूप मे न होकर चित्रो, ग्राफो आदि के रूप मे भी होना चाहिए। मौखिक कार्य प्रारम्भिक कक्षाओ मे अधिक-से-अधिक होना चाहिए, क्योकि इन कक्षाओ के वालकों को लिखने का अभ्यास कम होता है, अत. वे लिखित कार्य कम कर पाते हैं। इसे साफ तथा धीरज से करने का अभ्यास कराया जाना चाहिए। पर गणित मे कभी भी केवल मौखिक कार्य ही नही होना चाहिए; इससे वालक ऊव जाते है तथा रोचकता नही रहती।

बुनियादी शालाओ मे मूलोद्योग तथा जीवन की वास्तविक परिस्थितियो के आधार पर गणित की वातो का प्रत्यक्ष तथा परोक्ष समवाय से ज्ञान कराया जाता है। पर गणित-सम्बन्धी वुनियादी तथ्यो तथा विधियो का अच्छा ज्ञान कराने के लिए अभ्यास आवश्यक रहता है। विना वार-वार अभ्यास किये वालक आवश्यकतानुसार इनका उचित उपयोग नहीं कर सकते। संख्या, पहाडे आदि अभ्यास से ही सीखे जा सकते हैं।

अभ्यास-कार्य

विना अभ्यास के इनके उपयोग मे गति तथा सही उपयोग सम्भव नही है। इनके समुचित अभ्यास के वाद ही वालक इनका उपयोग अपने दैनिक जीवन मे कर सकेगा। पर हमे इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि वालक यत्रवत् विना समझे इन्हे न रटें। अभ्यास हम निम्न उद्देश्यो से कराते हैं—

१. गणित-सम्वन्धी विवियो तथा तथ्यो मे पूर्णता-प्राप्ति के लिए।
२ इनके वार-वार उपयोग मे उच्चकोटि का कौशल प्राप्त कराने के लिए।
३. सफलतापूर्वक गणित-सम्वन्धी विधियो तथा तथ्यो के उपयोग करने की क्षमता तथा श्रम को कम करने के लिए।

अभ्यास करने की उत्प्रेरणा देना वडा महत्त्वपूर्ण है। वुनियादी शालाओ मे वालक समूह मे आपसी सहयोग से कार्य करते है, अत वहाँ अभ्यास की उत्प्रेरणा देना अपेक्षाकृत सरल है। वुनियादी शालाओ मे वालक तकली, पूनी वितरित तथा इकट्ठी करते हैं, सूत लपेटते हैं, तारो की सख्या गिनते हैं या वागवानी मे पेड-पौधे लगाते हैं, आदि। इनके आधार पर छोटी कक्षाओ मे जोडने, घटाने तथा गुणा करने का अच्छा अभ्यास कराया जा सकता है। दूसरी या तीसरी कक्षा मे पूनी वनाने तथा तोलने की क्रियाओ द्वारा रुपये, आने के रूपान्तर का अभ्यास कराया जा सकता है। तारो की सख्या तथा नाप द्वारा गज, फुट, इच का अभ्यास हो सकता है। इसी प्रकार अभ्यास के लिए खेल का उपयोग भी अच्छा रहता है। खेल से अभ्यास की अरोचकता तथा थकान कम हो जाती है। अभ्यास के लिए सख्या, गुणा, जोड़ आदि सम्वन्धी अनेक खेलो तथा चार्टो का उपयोग कराया जा सकता है। इस प्रकार क्रिया तथा खेलो के उपयोग से वालको मे अभ्यास के प्रति रोचकता वनाई रखी जा सकती है।

अभ्यास को प्रभावपूर्ण वनाने के लिए हमे निम्न वातो का ध्यान रखना चाहिए—

१ अभ्यास का सम्वन्ध क्रिया या खेल के साथ जोडने से वालको की

अभ्यास से अरुचि नही होती ।

२. अभ्यास करने से प्राप्त सफलता का ज्ञान समय-समय पर बालको को कराते रहना चाहिए । इससे उन्हे और अधिक प्रयत्न करने की प्रेरणा मिलती है ।

३. बालक की गलती को ठीक करने के लिए व्यक्तिगत अभ्यास उपयोगी रहते हैं ।

४. अभ्यास कराने के पूर्व उसका सयत प्रारम्भिक अभ्यास तथा विधिवत् समीक्षा अवश्य करानी चाहिए । इससे बालक समझकर अभ्यास करते हैं ।

५ अभ्यास ध्यानपूर्वक होना चाहिए ।

६. अभ्यास बहुत अधिक समय तक नही कराना चाहिए, नहीं तो उसमे अरोचकता उत्पन्न हो जाती है ।

७. अभ्यास का सम्बन्ध ज्ञान की बातो से जोडना उपयुक्त रहता है । इससे बालक शीघ्रता से सीखते हैं ।

८. एक बार मे बहुत अधिक अभ्यास-कार्य नही देना चाहिए ।

९. एक बार सीखने के बाद समय-समय पर दोहराने का कार्य अवश्य कराना चाहिए । प्रारम्भ मे दोहराने की क्रियाओ मे समय का अन्तर कम हो, किन्तु बाद मे समय का यह अन्तर बढाते जाना चाहिए ।

गणित-शिक्षण को उपयोगी, प्रभावपूर्ण तथा रोचक बनाने के लिए निम्न बातें अपनानी चाहिएं—

१. सरल से कठिन की ओर जाने के सिद्धान्त का पालन करना ।

२. अनिश्चित से निश्चित की ओर जाने का सिद्धान्त छोटे बालकों को गणित सिखाने के लिए उपयोगी रहता है, क्योकि बालक प्रारम्भ में कुछ, कम, बहुत, और आदि सीखता है तथा बाद मे २, ३, ४, १० सीखता या समझता है ।

३ गणित-शिक्षण ठोस वस्तुओ तथा परिस्थितियो से प्रारम्भ होकर

उच्च कक्षाओं में सैद्धान्तिक तथा अमूर्त होना चाहिए।

४ गणित-शिक्षण की विभिन्न विधियों का आवश्यकतानुसार समुचित उपयोग किया जाना चाहिए।

५ छोटी कक्षाओं में बालकों को क्यों तथा कैसे का ज्ञान कराने के पीछे नहीं पडना चाहिए।

६. बालकों को स्वयं सोचने तथा प्रश्नों के हल करने की प्रेरणा तथा अभ्यास कराते रहना चाहिए।

७ सख्यात्मक ज्ञान में बालकों की रुचि बढाना तथा उन्हे इस प्रकार का और अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते रहना चाहिए।

८ गणित-सम्बन्धी तथ्यों तथा सिद्धान्तों के अभ्यास में बहुत अधिक समय नहीं लगाना चाहिए।

९ बालक की आयु शारीरिक तथा बौद्धिक विकास के अनुरूप ही गणित-सम्बन्धी बातों का ज्ञान कराना चाहिए।

१० सरल तथा स्पष्ट भाषा का उपयोग करना चाहिए।

११. गणित के अर्जित ज्ञान का समय-समय पर अभ्यास या पुनरावृत्ति कराई जानी चाहिए।

१२ मन-गणित तथा मौखिक कार्य को भी यथोचित समय देना चाहिए।

अध्याय ५

सामाजिक अध्ययन-शिक्षण

१ : सामाजिक अध्ययन तथा उसका महत्त्व

हमारा देश लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है। अत. हमारे देश की शालाएँ भी लोकतंत्रात्मक सिद्धान्तो के संरक्षण, प्रसार तथा उपयोग की केन्द्र होनी चाहिएँ। इसके लिए यह आवश्यक है कि हमारी शालाओ का पाठ्य-क्रम, शिक्षण, कार्य, सभी वालक के इस उद्देश्य की पूर्ति करने मे सहायक हो। हमारी शालाएँ भी एक प्रकार का समाज ही हैं। ये हमारे समाज का छोटा रूप होने के साथ-साथ उस समाज द्वारा संगठित तथा पोषित भी है। इतना ही नहीं, शालाएँ हमारे भविष्य के समाज का दर्पण भी हैं। इनसे हमे हमारे भविष्य के समाज के स्वरूप का पता चलता है। वालक भी एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज मे रहना पसन्द करता है। अतः यह आवश्यक है कि हमारी शालाएं समाज के अनुरूप ही संगठित हो। यदि हम चाहते हैं कि हमारा समाज तथा राष्ट्र लोकतन्त्रात्मक प्रणाली को अपनाए तथा उसके सिद्धान्तो के अनुसार संगठित हो, तो यह आवश्यक है कि हमारी शालाओ के वालको को अधिक-से-अधिक स्वतत्र लोकतंत्रात्मक प्रणाली से कार्य करने के अवसर प्रदान किये जायँ।

इस दृष्टिकोण से जब हम शिक्षा पर विचार करते है तो पता चलता है कि हमारे देश मे सामाजिक अध्ययन के शिक्षण की आवश्यकता है। वास्तव मे कोई भी व्यक्ति अपने आसपास के वातावरण से भिन्न नहीं है तथा कोई भी शिक्षा किसी देश की सांस्कृतिक तथा सामाजिक परम्परा से अलग नही हो सकती। किसी भी शिक्षा में सामाजिक तत्त्व लाने के

लिए या तो पढाए जाने वाले विषयो मे सामाजिक तत्वो को महत्त्व दिया जाना चाहिए या किसी एक विषय मे मनुष्य के समय के विचार से इतिहास, उसके रहने के स्थान के विचार से भूगोल तथा उसके मानव के प्रति व्यवहार के विचार से नागरिकता, उसके कुटुम्ब, देश, समाज की अर्थ-व्यवस्था के विचार से अर्थशास्त्र आदि का समावेश करके पढाया जाना चाहिए ।

उपरोक्त दो विधियो से हम शिक्षा मे सामाजिक तत्वो का समावेश कर सकते हैं । पर किसी एक विषय मे सामाजिक जीवन के तत्वो के ज्ञान के लिए कक्षा के भीतर तथा बाहर आवश्यक क्रियाओ तथा योजनाओं का समावेश करके बालको को जीवन की परिस्थितियो से परिचित कराया जाना अधिक सुविधाजनक है । इसीलिए सामाजिक अध्ययन विषय पाठ्य-क्रम मे रखा गया है ।

सामाजिक अध्ययन क्या है ?

सामाजिक अध्ययन विषय मानव तथा उसके सामाजिक एव स्वाभाविक वातावरण की प्रतिक्रियाओ से सम्बन्ध रखता है । यह विषय मानव के आपसी सम्बन्धो से सम्बद्ध है । इन विषय के अध्ययन मे जीवन-यापन की विधियो तथा सहयोग से कार्य करने, अपनी प्रमुख आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए वातावरण का उपयोग करने, सस्कृति तथा उसके प्रभावशाली तत्वो आदि बातो पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है । प्राथमिक शालाओ मे सामाजिक अध्ययन विषय मे मानव के सम्बन्धो से सम्बद्ध विषय ही इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, अर्थ-शास्त्र, समाजशास्त्र आदि से लिये जाते हैं । इन विषयो के अन्तर्गत ऐसे-ऐसे प्रकरणो तथा क्रियाओ को ही शामिल किया जाता है जो बालकों को लोकतन्त्र के लिए आवश्यक सामाजिक प्रक्रियाओ तथा मानव के आपसी सम्बन्धो तथा निर्भरता का ज्ञान कराने मे सहायक होते है । इनसे बालको मे लोकतन्त्र के लिए आवश्यक योग्य नागरिकता का विकास होता है ।

पर सामाजिक अध्ययन सामाजिक विज्ञान से कुछ भिन्न विषय ही

है। वेसले महोदय का कथन है कि सामाजिक विज्ञान के शिक्षण-योग्य विषयो से ही सामाजिक अध्ययन विषय बनता है। सामाजिक विज्ञान मे मानव-सम्बन्धो का गूढ विवेचन तथा अध्ययन होता है, पर सामाजिक अध्ययन मे भाषा तथा कला के तत्त्व अधिक होते हैं। सामाजिक अध्ययन विषय के लिए प्रकरणो तथा क्रियाओ का चुनाव अनेक विधियो से होता है, जिनका विस्तृत विवेचन हम सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम के सन्दर्भ मे करेंगे। पर सभी विधियो मे बालको को उपयोगी, प्रभावोत्पादक तथा क्रियाशील व्यक्ति तथा समाज का सदस्य बनाने के लिए आवश्यक बातों का समावेश किया जाता है। प्रारम्भिक कक्षाओं मे बालक के वातावरण से ही बातें ली जाती है, धीरे-धीरे उनका क्षेत्र बढ़ता जाता है तथा उच्च कक्षाओ मे देश तथा संसार के अन्य क्षेत्रो की बातो का समावेश किया जाता है और स्थानीय तथा वर्तमान पर दृष्टि रखते हुए ससार के अन्य क्षेत्रो तथा देशो मे मानव-जीवन को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसमे जीवन से सम्बन्धित क्षेत्रों, जैसे यातायात, विचार-विनिमय के साधन, खाद्य-सामग्री का उत्पादन, सास्कृतिक तथा धार्मिक विचारो का व्यक्तीकरण आदि, का समावेश किया जाता है। इससे बालको को संसार के विभिन्न क्षेत्रो मे मानव द्वारा अपनी प्रमुख आवश्यकताओ, जैसे भोजन, वस्त्र, आवास तथा सुरक्षा आदि, की पूर्ति करने की विधियो का ज्ञान हो जाता है। इसमे सामाजिक ज्ञान-प्राप्ति के साधनो का समावेश भी किया जाता है। समस्याओ के हल, निर्णय लेने, सहयोग से कार्य करने आदि प्रशिक्षण देने के लिए भी इस विषय में अनेक बातो तथा क्रियाओ का समावेश किया जाता है।

अनेक विद्वान् सामाजिक शिक्षा का उपयोग सामाजिक अध्ययन के लिए करते हैं, पर सामाजिक शिक्षा सामाजिक बातों के सीखने के लिए उपयोग मे आने वाली बातो से सम्बन्धित है। सामाजिक ज्ञान बालक के शाला तथा उसके बाहर होने वाले सामाजिक विकास से सम्बन्धित है। इस दृष्टि से सामाजिक शिक्षा सामाजिक अध्ययन से अधिक विस्तृत है,

क्योकि इसमे बालक के सामाजिक विकास के उपयोगी सभी अनुभवो का समावेश होता है। पर सामाजिक अध्ययन विषय भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसके विषय या क्रियाएँ बालक की सामाजिक क्षमताओ की वृद्धि करती हैं। पर इस विषय का शिक्षण करते समय हमे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक प्रकरण को पढाते समय या क्रिया कराते समय सामाजिक ज्ञान की वृद्धि मे सहायक बातो या तत्वो का विश्लेषण तथा जानकारी अच्छी तरह कराई जाय।

सामाजिक अध्ययन की सामाजिक उपयोगिता

सामाजिक अध्ययन का सम्बन्ध मनुष्य तथा उसके सामाजिक तथा भौतिक वातावरण के सम्बन्धो से है। इस तरह सामाजिक अध्ययन विषय मे मानवीय सम्बन्धो का वर्णन रहता है। इसलिए इसमे रहन-सहन तथा कार्य करने की विधियो, मानव की मूलभूत आवश्यकताओ, परम्पराओ, मूल्यो, परिस्थितियो आदि की पूर्ति के लिए आसपास के वातावरण के उपयोग पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार सामाजिक अध्ययन बालक को सामाजिक वातावरण से परिचित कराता है। यह बालक को समाज के सामूहिक जीवन तथा आदर्शों से परिचित कराके उसके सामाजिक आचरण का समुचित विकास करता है। वैदिक काल की अनेक जातियो तथा आज भी कई आदिवासी तथा अन्य समाजो मे समाज के वातावरण से परिचित कराने के लिए उपनयन या अन्य सस्कार होते हैं। हमारे उद्योग जब तक हमारे कुटुम्ब, गांव या स्थानीय समाज तक ही सीमित थे, तब तक बालक अपने घर या समाज के लोगो का अनुकरण करके कार्य तथा जीवनोपयोगी बातो को सीख लेता था। वास्तव मे उस काल मे जीवन ही शिक्षा थी। पर अब उद्योग बडे-बडे कारखानों मे बदल गए हैं। हमारी आवश्यकताओ की पूर्ति भी दूर देशो मे उत्पादित वस्तुओ से होने लगी है। अत. अब हमारे घर, कुटुम्ब या गांव हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के केन्द्र नहीं रह गए हैं। अत यह आवश्यक है कि हमारी शालाओ की

कार्य-प्रणाली बालक के सम्बन्धों की सीमा को हमारे पडोस तथा गाँव से बढाकर देश तथा संसार के विभिन्न विभागो तक स्थापित कर दे।

इसके साथ-साथ बालक का सामाजिक बातो का ज्ञान उसे समाज के जीवन, कार्य, आदर्श आदि से ऐक्य स्थापित कराने मे सफल होना चाहिए। उसे इस बात का ज्ञान भी होना चाहिए कि वह अपने समाज की उन्नति मे कितना तथा किस प्रकार सहायक हो सकता है। केवल समाज मे ही नही, वरन् उसे इस बात का ज्ञान भी होना आवश्यक है कि पूर्ण ससार की उन्नति मे वह कितना तथा किस प्रकार सहयोग दे सकता है।

हमारे देश मे सामाजिक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य लोकतन्त्र के गुणो का स्पष्ट ज्ञान कराना होना चाहिए। हमारी वर्तमान लोकतन्त्रात्मक सस्थाएँ प्राचीन काल की सामाजिक तथा राजनीतिक सस्थाओ से इतनी भिन्न हो गई हैं कि हमे इनके लोकतन्त्रात्मक गुणो का ज्ञान केवल अन्य विपयो के पढाते समय न देकर अलग से देना आवश्यक हो गया है।

लोकतन्त्रात्मक शिक्षा की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि हमारी शिक्षा मे सहयोग, सामाजिकता आदि का समावेश हो। सामाजिक अध्ययन मे अनेक प्रकार की क्रियाओ का समावेश किया गया है। ये क्रियाएं शिक्षक, बालक तथा समाज को बहुत पास-पास आने की प्रेरणा देती है तथा इनके सम्बन्धो को घनिष्ठ बनाती हैं।

इनके अतिरिक्त सामाजिक अध्ययन बालक मे नैतिक तथा बौद्धिक गुणो तथा मूल्यो का विकास करता है। आत्म-सयम, आत्म-विश्वास, उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता आदि गुणो का विकास इस विपय के अध्ययन से होता है। इस विषय के अध्ययन से विचार की स्पष्टता, सत्य-प्रेम, बौद्धिक जागृति आदि का उद्भव तथा विकास भी सम्भव है। सामाजिक संस्थाओ तथा वर्तमान प्रचार के प्रति समालोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास भी इससे होता है। इस विपय के अध्ययन के समय सही निर्देशो द्वारा बालक मे अच्छे तथा बुरे कार्य पहचानने, कार्य करने के सही तरीके तथा सही लक्ष्य अपनाने, सामाजिक दृष्टिकोण रखने आदि का विकास

भी होता है।

सामाजिक अध्ययन विषय पढते समय बालक समाज की विभिन्न गतिविधियो का अध्ययन करते हैं। इससे अनायास ही उन्हे समाज के विभिन्न उद्योगो तथा कार्यो के लिए आवश्यकताओ तथा क्षमताओ का ज्ञान होता है। अपनी योग्यताओ तथा क्षमताओ का मिलान करके वे अपने लिए उपयुक्त कार्य या उद्योग का चुनाव भी कर सकते हैं। इस तरह सामाजिक अध्ययन का शिक्षण बालको के लिए अच्छे एव उपयुक्त कार्य का चुनाव करने मे भी सहायक होता है। बालक द्वारा अपने लिए उद्योग या कार्य का चुनाव उपयुक्त व्यक्ति को उपयुक्त कार्य मे लगाने मे सहायक होने के साथ-साथ बालक के व्यक्तित्व तथा आचरण का विकास भी करता है।

सामाजिक अध्ययन का शिक्षण बालको की रुचियो का समुचित विकास करके उनमे अपने अवकाश के समय का सदुपयोग करने की क्षमता की वृद्धि भी करता है। आधुनिक यान्त्रिक तथा वैज्ञानिक विकास, सामाजिक कानून आदि सभी मनुष्य के अवकाश के समय की वृद्धि कर रहे हैं। अत. यदि अवकाश के समय के सदुपयोग करने की शिक्षा बालक को न दी जायगी तो यह अवकाश मनुष्य के लिए अहितकर सिद्ध होगा।

सामाजिक अध्ययन की शैक्षणिक उपयोगिता

पहले शिक्षा-शास्त्रियो का मत था कि किसी कठिन विषय के शिक्षण से बालक का मानसिक विकास किया जा सकता है, जैसे संस्कृत या लेटिन के अध्ययन से याद करने की योग्यता बढाना या गणित या तर्क-शास्त्र पढाकर तर्क-शक्ति का विकास करना आदि। उनका विचार था कि किसी विशेष विषय के अध्ययन का लाभ जीवन के अन्य क्षेत्रो मे आप-से-आप मिल सकता है। इसे प्रशिक्षण का स्थानान्तरण कहते हैं। इस दृष्टि से उस समय पाठ्यक्रम मे कठिन-से-कठिन शिक्षण-सामग्री रखने पर बल दिया जाता था।

पर अब मनोविज्ञान की खोजो ने यह सिद्ध कर दिया है कि बालक का मानसिक विकास किसी विषय-विशेष के अध्ययन पर निर्भर न होकर

उस विषय के शिक्षण या अध्ययन करने की विधियो पर निर्भर है। इसी-लिए सिरिल वर्ट ने लिखा है कि शिक्षक का मुख्य ध्येय किसी विषय-सामग्री को रटाना-मात्र न होकर बालक की रुचियो को परिपक्व करना तथा उपयुक्त विधियो का उपयोग करना होना चाहिए।

इससे यह सिद्ध होता है कि किसी भी विषय के शिक्षण से बालक का मानसिक विकास किया जा सकता है। वास्तव में गणित या प्राचीन भाषा तथा साहित्य के अध्ययन से जो सोचने-विचारने की क्रिया का प्रशि-क्षण होता है वह हमारे वर्तमान समाज की समस्याओं पर विचार करने की क्रियाओ के लिए आवश्यक प्रशिक्षण से भिन्न होता है।

इसके साथ-साथ किसी भी विषय को केवल उसके अनुशासनीय मूल्य (Disciplinary value) के कारण ही पाठ्यक्रम मे नही रखा जा सकता। यदि हमारी नई पीढी को हमारे वर्तमान सभ्य समाज की जटिल परिस्थितियों को समझने, हल करने मे सक्रिय योग देने वाली बनाना है तब उसे वर्तमान समाज की मूलभूत समस्याओ तथा सिद्धान्तो का ज्ञान कराना आवश्यक है। उसे आज के समाज की समस्याओ पर सही ढंग से विचारने तथा सोचने का उपयुक्त प्रशिक्षण भी मिलना आवश्यक है। सामाजिक अध्ययन का शिक्षण करते समय हमारे समाज की समस्याओ पर विचार तथा मनन करना ही पडता है। इससे बालक को अपने समाज की समस्याओं पर सही ढंग से मनन तथा विचार करने का प्रशिक्षण आप-से-आप मिलता है।

जॉन ड्युई नामक अमेरिकन शिक्षा-शास्त्री शिक्षा को अनुभव द्वारा, अनुभव के लिए तथा अनुभव का ही मानता है। उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'एक्सपीरिएन्स एण्ड एजुकेशन' मे लिखा है कि शिक्षक को आस-पास के सामाजिक तथा भौतिक वातावरण का सदुपयोग करना आना चाहिए, जिससे कि वह बालक द्वारा दिये जाने वाले अनुभवो का उचित उपयोग कर सके। इसलिए वह लिखता है कि शिक्षण के लिए स्थानीय समाज की भौतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, व्यावसायिक सभी परिस्थितियो का उपयोग करना

चाहिए । इससे बालक मे ज्ञान प्राप्त करते जाने की वृत्ति का विकास होता है ।

व्हाइटहेड नामक शिक्षा-शास्त्री ने भी ऐसे विचारो की शिक्षा को, जिसका जीवन मे कोई उपयोग नही हो सकता, केवल अनुपयोगी ही नही, निश्चित रूप से हानिकारक बताया है ।

इससे यह सिद्ध होता है कि विषयो को समन्वित करके ही पढाना उपयुक्त रहता है । अनेक विषयो को पाठ्यक्रम मे रखने से भी पाठ्यक्रम के सन्तुलन मे गडबडी आती है। विषयो को अलग-अलग करके पढाने मे कुछ शिक्षको द्वारा कुछ बालको को किसी विषय के टुकडो को पढाने के समान परिस्थिति उत्पन्न होती है। पर वास्तव मे बालक की शिक्षा टुकडों मे नही होनी चाहिए, क्योकि वह विभिन्न क्रियाओं के टुकडो के रूप मे जीवन-यापन नही करता है। शिक्षण बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के समन्वय के लिए होता है, न कि उसके व्यक्तित्व के आंशिक विकास के लिए। गेस्टाल्ट नामक मनोविज्ञान-शास्त्री तथा उसके समर्थक भी शिक्षा को टुकडो मे न देकर पूर्ण बनाने पर बल देते है। इनसे यह सिद्ध होता है कि विषयो को उनके आपसी तथा जीवन के साथ स्थापित सम्बन्धो को बतलाते तथा स्पष्ट करते हुए शिक्षण देना अधिक उपयुक्त रहेगा। इस तरह बालक तथा सीखने की प्रक्रिया दोनों की दृष्टियो मे विभिन्न विषयों के समन्वय की आवश्यकता प्रतीत होती है। सामाजिक अध्ययन, सामान्य विज्ञान आदि कुछ ऐसे ही समन्वित विषय है जिनका शिक्षण बालक को कराया जाने लगा है।

किसी भी क्रिया या कार्य के आधार के लिए एक उपयुक्त दर्शन आवश्यक है। किसी भी राष्ट्र के शिक्षा के उद्देश्य उसकी नीति तथा विचारो पर आधारित रहते है। भारत एक लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है। अत देश मे सामाजिक अध्ययन-शिक्षण के उद्देश्य भारतीय लोकतन्त्रात्मक आदर्श से प्रभावित होगे। फलस्वरूप सामाजिक अध्ययन विषय के पाठ्यक्रम का प्रत्येक भाग भारत के लोकतन्त्रात्मक आदर्श के विकास तथा उसकी पुष्टि करने मे सहायक होना चाहिए। इस दृष्टि से जब हम सामाजिक अध्ययन

विपय पर विचार करते है तो हमे पता चलता है कि सामाजिक अध्ययन वालको को आत्म-निर्भर वनाकर, मानव को आपसी सम्वन्धो का दिग्दर्शन कराके, समाज की आर्थिक क्षमता की वृद्धि करके तथा नागरिक उत्तरदायित्वो की जानकारी द्वारा राष्ट्र की विचार-धारा की पुष्टि तथा विकास में सहायक हो सकता है। प्राचीन काल का पाठ्यक्रम समाज के केवल कुछ चुने हुए व्यक्तियो के वालको के लिए उपयुक्त था, पर लोकतंत्र मे शिक्षा किसी श्रेणी या जाति-विशेप तक ही सीमित नही रह सकती है। हमारे भारत की ऐसी विचार-धारा भी नही है। अतः भारतीय लोकतन्त्रात्मक आदर्श के अनुरूप सभी की शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम को विस्तृत, ठोस तथा उदार वनाया जाना आवश्यक है। सामाजिक अध्ययन, सामान्य विज्ञान आदि विषय पाठ्यक्रम को लोकतंत्रात्मक विचार-धारा के अनुरूप, वालक का व्यक्तिगत समुचित विकास करते हुए, समाज के विकास मे उचित सहयोग देने योग्य वनाते हैं।

सामाजिक अध्ययन के शिक्षण के समय वालक अपनी-अपनी विचार-धारा तथा रुचि के अनुसार दलो मे विभक्त होकर सामाजिक समस्याओ पर विचार करते हैं तथा उनके हल निकालते हैं। इस प्रकार कक्षा मे विभिन्न विचारो तथा रुचियो के अधिक वालक होने पर भी समस्याओ पर विचार करने वाले विभिन्न छोटे दलो मे एकरूपता तथा सामजस्य स्थापित हो जाता है। इन दलो मे लोकतन्त्र के लिए आवश्यक स्वतन्त्र विचार करने की आदत का विकास भी वालको मे होता है। लोकतन्त्र मे आपसी सहयोग तथा सद्भावना प्रमुख है। सामाजिक अध्ययन भी वालको मे इन उपयोगी तत्त्वो का विकास करने में योग देता है। सामाजिक अध्ययन विपय का पाठ्यक्रम तथा शिक्षण-पद्धति उसे रोचक, व्यावहारिक तथा उपयोगी वनाते हैं। इससे वालको मे वादविवाद करने तथा अपने विचार लिखने की क्षमता का विकास भी होता है। पर्यटन द्वारा उनके ज्ञान की वृद्धि होती है तथा समाज से उनका सम्पर्क वढता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक अध्ययन से निम्न लाभ और हैं—

१ समस्याएँ हल करने की क्षमता। सामाजिक अध्ययन से बालकों मे उत्तरदायित्व वहन करने तथा कार्य करने के लिए आगे आने की क्षमता का विकास होता है। वह अपनी समस्याओं का हल किसी पुस्तक मे न ढूंढकर स्वय कार्य करके निकालने का प्रयत्न करता है। स्वय अपने पर भरोसा करने के कारण वह अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहता है।

२. सहयोग से कार्य करने की आदत। वर्तमान शालाओं मे बालकों को सहयोग से कार्य करना नही सिखलाया जाता। कक्षा-शिक्षण मे वे प्राय अपनी व्यक्तिगत क्षमता-वृद्धि मे ही लगे रहते है। केवल सह-पाठ्यक्रम-गामी क्रियाओं तथा खेल के मैदानों मे बालक आपसी सहयोग से काम करने की चेष्टा करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बडे होने पर यही बालक अपने काम से मतलब रखने की प्रवृत्ति को अपनाते है तथा स्वार्थी बन जाते है। वे परस्पर सहयोग का उपयोग तो केवल अपने मनोरंजन तथा अवकाश का समय व्यतीत करने के लिए ही करते है। व्यक्तित्व का यह द्वित्व प्राचीन सरल समाज के उपयुक्त था, क्योंकि उस काल मे वर्षा, धूप, ठण्ड आदि मे अपनी रक्षा करना तथा अपना भोजन ढूंढना लोगों का प्रमुख कार्य था तथा अपनी उन्नति के लिए स्वय परिश्रम करना उस काल मे आवश्यक था। पर आज के जटिल तथा एक-दूसरे से सम्बन्धित समाज मे उस द्वित्व से कार्य नही चल सकता, क्योंकि आज किसी एक देश का जीवन स्वय अपने मे पूर्ण नहीं है। उसे तो अन्य देशों पर निर्भर रहना आवश्यक हो गया है। अत. बालकों मे सहयोग से कार्य करने की आदतों का निर्माण करना किसी भी विषय की शिक्षा का उद्देश्य अवश्य होना चाहिए। सामाजिक अध्ययन मे किसी योजना या इकाई को पूर्ण करते समय बालक अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार सहयोग से कार्य करते है। इन योजनाओं को पूर्ण करने

समय बालक इस बात का ध्यान भी रखते हैं कि वे अपने से कमज़ोर बालको को भी अपने साथ-साथ ले जाने योग्य बनाएँ। इतना ही नही, कमज़ोर तथा मन्द बुद्धि वाले बालक कक्षा-शिक्षण मे पुस्तकीय ज्ञान को याद करने तथा उसमे क्षमता बढाने मे अन्य अच्छी बुद्धि वाले बालको से पिछडे रहते है। लगातार पिछडे रहने से उनमे हीनता की भावना का विकास होता है। पर सामाजिक अध्ययन मे योजनाओ तथा समस्याओ के हल के लिए विभिन्न विधियो का उपयोग किया जाता है। इससे उनमे सहयोग से कार्य करने की आदत पडती है तथा कमज़ोर एवं मन्द-बुद्धि बालको को भी अपनी क्षमता दिखाने का अवसर मिलता है।

३ उपयुक्त चुनाव करने की क्षमता। हमारी सभ्यता का जैसे-जैसे अधिक विकास होता जा रहा है वैसे-वैसे हमारा जीवन जटिल तथा संघर्षमय बनता जाता है। इस जटिल तथा सघर्षमय जीवन मे विविध बातो तथा परिस्थितियो मे अपने योग्य तत्त्वो तथा परिस्थितियो का चुनाव करना एक कठिन कार्य है। अत. जब तक बालको मे अपने अनुकूल तत्त्वो तथा परिस्थितियो का उपयुक्त चुनाव करने की क्षमता का विकास न होगा तब तक वे वर्तमान जीवन मे सफलता प्राप्त न कर सकेंगे। वास्तव मे आज हम सभी के लिए जीवन एक चुनाव की क्रिया हो गई है, क्योकि नौकरी, शिक्षा, पुस्तक, अखबार, सिनेमा, रेडियो, सास्कृतिक कार्यक्रम, मित्रता, अवकाश का समय आदि सभी बातो मे उपयुक्त चुनाव करना आवश्यक हो गया है। अत बालको मे इसकी क्षमता का विकास करना आवश्यक है। सामाजिक अध्ययन इस प्रकार के अनेक अवसर प्रदान करता है, अतः इसका शैक्षणिक मूल्य अन्य पुराने विषयो की अपेक्षा अधिक है।

४. दृष्टिकोण मे परिवर्तनशीलता तथा स्वेच्छानुरूपता का विकास।

आज संसार मे बडी शीघ्रता से परिवर्तन होते जा रहे है। नये-नये आविष्कार हो रहे है। इस एटम तथा स्पुतनिक-संसार मे बालक को इस परिवर्तनशीलता के अनुरूप स्वेच्छा से बदलने की शिक्षा देना आवश्यक है। इससे बालको मे संसार मे होने वाले परिवर्तनो से साम्य स्थापित करने की क्षमता का विकास होगा। पुराने विषय जो निश्चित पाठ्यक्रम के अनुसार निश्चित विधियो से लकीर के फकीर की तरह पढाए जाते है वे बालको में इस क्षमता का विकास नही कर सकते, क्योकि निश्चित तथ्यो का परोक्ष रूप से ज्ञान कराने से बालको मे हम मानव की प्राचीन तथा वर्तमान समस्याओ को हल करने की क्षमता का विकास नही कर सकते। इसके लिए तो स्वेच्छा से कार्य करने, मौलिक विचार प्रस्तुत करने तथा नवीन और अचानक आने वाली समस्याओ को हल करने के अवसर देकर ही हम बालको में परिस्थितियो तथा जीवन के प्रति उचित दृष्टिकोण रखने की प्रेरणा दे सकते हैं।

५ अपना कर्तव्य समझने की क्षमता। आज समाज मे अनेक व्यक्ति अपने समाज से दूर, समाज का बिलकुल ध्यान न रखते हुए अपना जीवन-यापन करते हैं। अनेक व्यक्ति तो अज्ञानता के कारण अपने समाज तथा संस्कृति से विलग हो गए हैं, पर अनेक व्यक्ति समाज मे सहयोग से रहने के अभ्यस्त न होने के कारण अपने साथियो से दूर रहना पसन्द करते हैं। सामाजिक अध्ययन बालक को अपने समाज के निर्माण करने वाले तत्त्वो के मेल का ज्ञान कराता है। इसके साथ-साथ समाज द्वारा अनुमोदित अनेक कार्य भी बालक अपने साथियो के सहयोग से पूर्ण करता है। इस तरह सामाजिक अध्ययन बालको मे समाज के प्रति अपने कर्तव्यो का अच्छी तरह ज्ञान कराने मे सहायक होता है। वास्तव मे समाज के प्रति अपने कर्तव्य तथा स्थान का ज्ञान होना ही व्यक्ति

की व्यक्तिगत तथा सामाजिक सुरक्षा का प्राण है।

६. विश्व-बन्धुत्व की भावना का विकास। विश्व-बन्धुत्व की भावना के विकास में तीन बाते बाधक होती है—(क) पक्ष लेना या तरफदारी करना, (ख) किसी समस्या के हल के लिए पूर्ण या कुछ नही वाले सिद्धान्त पर बल देना, तथा (ग) अप्रदर्शित अपराध तथा कष्ट के लिए किसी को बलिदान का बकरा बनाना।

उपरोक्त तीनो बातें झगडों को बढाती हैं तथा उनके हल के लिए रचनात्मक बाते सुझाने मे बाधक होती हैं। सामाजिक अध्ययन मे बालक आपसी सहयोग से मानव के इतिहास तथा वातावरण का अध्ययन करते हैं। इससे उन्हे इस बात का भान होने लगता है कि किसी समस्या का हल पक्षपात करने, किसी को दोषी ठहराने या अपना प्रभुत्व जमाने से नहीं निकल सकता। वे यहाँ किसी समस्या पर अनेक दृष्टिकोणो से विचार करते हैं तथा सहयोग से उसे हल करते हैं। उन्हे वस्तुओ में और भी अधिक सह-सम्बन्ध के दिग्दर्शन होते हैं तथा वे सृष्टि की वस्तुओ की एक-दूसरे पर निर्भरता को समझने लगते हैं। सामाजिक अध्ययन बालको मे हीनता, दूसरों को दबाने तथा अपराध करने की भावनाओ को भी नही आने देता। ये भावनाएँ ही आपसी झगडो तथा द्वेष की जड़ होती हैं। इस प्रकार सामाजिक अध्ययन बालको मे विश्व-बन्धुत्व की भावनाओ का विकास भी करता है।

२ : : सामाजिक अध्ययन-शिक्षण के उद्देश्य

हमारी किसी भी क्रिया या प्रयत्न के निश्चित उद्देश्य आवश्यक हैं। निश्चित उद्देश्यो के अभाव मे हमें सफलता मिलना कठिन ही है। सामाजिक अध्ययन-शिक्षण के सम्बन्ध मे भी यही बात सत्य है। इस विषय का क्षेत्र इतना विस्तृत तथा विभिन्न है कि कोई भी शिक्षक उद्देश्यो पर हमेशा ध्यान रखे बिना विधिवत् शिक्षण नहीं कर सकता।

सामाजिक अध्ययन विषय के शिक्षण के उद्देश्यों पर विचार करते समय हमारे लिए भारतीय लोकतन्त्रात्मक आदर्श के उद्देश्यों को भी ध्यान

मे रखना आवश्यक है। हमारे देश मे लोकतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली, धर्म-निरपेक्ष नीति तथा इसके फलस्वरूप प्राप्त जीवन-यापन का तरीका ही प्रमुख रूप से विचारणीय हैं। सामाजिक अध्ययन-शिक्षण के उद्देश्यो पर विचार करते समय राष्ट्र के उद्देश्यो के साथ-साथ देश की शिक्षा-नीति तथा उसके उद्देश्यो का ध्यान रखना भी आवश्यक है। हमारे देश की केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो ने बुनियादी शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा के रूप मे मान्यता दी है, क्योंकि बुनियादी शिक्षा राष्ट्र के धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक आदर्शो के अनुकूल व्यक्ति तथा समाज का उचित विकास कर सकती है। बुनियादी शिक्षा समाज की भोजन, वस्त्र, आवास तथा सुरक्षा की मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति करके बालक के समुचित एव सर्वांगीण विकास करने पर बल देती है।

सामाजिक अध्ययन-शिक्षण के उद्देश्य राष्ट्र तथा राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्यो के अनुकूल होने चाहिएँ। इस दृष्टि से सामाजिक अध्ययन-शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य बालक को अपने सामाजिक वातावरण से सामजस्य स्थापित करने योग्य बनाना होना चाहिए। बालक के सामाजिक वातावरण मे कुटुम्ब, जाति, समुदाय, राज्य तथा राष्ट्र, सब सम्मिलित होते हैं। अत बालक को इस बात का ज्ञान कराना आवश्यक है कि उसके आज के समाज का वर्तमान स्वरूप किस प्रकार विकसित हुआ तथा सामाजिक तथा अन्य परिस्थितियो ने इसका स्वरूप बदलने मे कितना तथा कैसा योग दिया। इस उद्देश्य के अतिरिक्त सामाजिक अध्ययन-शिक्षण के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं—

१ इतिहास, भूगोल, नागरिक-शास्त्र, अर्थशास्त्र तथा ज्ञान के अन्य क्षेत्रो से उचित सामग्री का चयन करके तथा उसे समन्वित रूप मे प्रस्तुत करके बालको को उसके वातावरण के विभिन्न तत्त्वो के सम्बन्धो से परिचित कराना, जिससे उन्हे इस बात की जानकारी हो जाय कि उनके वर्तमान वातावरण के निर्माण मे किन परिस्थितियो ने किस प्रकार योग दिया तथा भविष्य की परि-

स्थितियो के उचित विकास के लिए वे किस प्रकार सहायक हो सकते है।

२. वालको मे लोकतन्त्र, सभ्यता तथा व्यक्तिगत क्रियात्मकता के लिए उचित मूल्यो, गुणो, स्तरो, दृष्टिकोणो आदि का विकास करना। इसके लिए केवल पुस्तकीय ज्ञान आवश्यक नही है, वरन् सहयोग से कार्य करने, राष्ट्र-प्रेम तथा विश्व-बन्धुत्व की भावनाओ का उचित विकास करना भी आवश्यक है।

३. वालको मे उचित कार्य तथा विचार की क्षमता का विकास करना। सामाजिक अध्ययन-शिक्षण द्वारा दिया गया ज्ञान तथा इसके द्वारा प्राप्त किये गए गुणो से वालक को सामाजिक तत्त्वो, ममस्याओ तथा सम्वन्धों के वारे मे रचनात्मक उचित न्याय तथा उचित निष्कर्षो पर पहुँचने योग्य वनाना चाहिए।

४. वर्तमान परिस्थितियो के अनुकूल ज्ञान, जीवन तथा सीखने के प्रति उचित दृष्टिकोण निर्माण करने मे सहायक होना। वालको मे विशेपतः इतिहास तथा मानव के सभी अनुभवो को एक परिवर्तन एवं विकास के रूप मे देखने के दृष्टिकोण का निर्माण करना।

५ वालको मे आत्म-निर्भरता, मन का लचीलापन, सहनशीलता, समस्याओ को समझने तथा हल करने का साहस, निर्भीकता, रचनात्मक कार्यो से आनन्द लेना, विश्व-वधुत्व, जीवन-दर्शन नोद्देश्यता, स्पष्ट विचारशीलता आदि गुणों का उचित विकास करना।

६. वालको मे पढने तथा अन्य ऐसे रुचिकर कार्य करने की क्षमता का विकास करना, जिससे शिक्षण के वाद भी वालक अपने अवकाश के समय का सदुपयोग कर सकें।

७. वालको मे क्रियात्मक शिक्षण द्वारा, व्यक्तिगत उपलब्धियाँ प्राप्त करके, समूह मे सहयोग से कार्य तथा अपने वातावरण की

छानबीन करके अपना व्यक्तिगत विकास करने की क्षमता उत्पन्न करना।

८. बालकों में अपनी सामाजिक, आर्थिक तथा अन्य समस्याओं पर विचार करने की क्षमता का विकास करके उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने की आदत डालना। इतना ही नहीं, अपनी समस्याओं के हल के लिए अपने ज्ञान, वातावरण तथा शक्ति का उपयोग करने की क्षमता बढ़ाना।

९. बालकों में काम करने तथा ज्ञान प्राप्त करने की उपयुक्त तथा अच्छी आदतों का विकास करके उनकी आर्थिक क्षमता का विकास करना, जिससे बालक घर, शाला, समाज तथा राष्ट्र की गतिविधियों में सक्रिय योग देने योग्य कुशल कार्यकर्ता बनें।

३. सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम

कुछ वर्षों से 'सामाजिक अध्ययन' विषय हमारे देश की शालाओं के पाठ्यक्रम में एक महत्त्व का विषय बनता जा रहा है। अन्य पाश्चात्य देशों में तो यह विषय बहुत पहले से रहा है तथा उन देशों में इस विषय के सम्बन्ध में अनेक खोजें की गई हैं। इस विषय को पाठ्यक्रम में शामिल करने का मुख्य उद्देश्य बालक को लोकतन्त्र में सफलतापूर्वक जीवन-यापन करने योग्य बनाना है। वास्तव में सामाजिक अध्ययन, जो ज्ञान-मूल्यों का संरक्षण तथा सामाजिक सम्बन्धों का अधिक-से-अधिक विकास करता है, हमारी समस्याओं पर विचार करके उनके हल का मार्ग सुझाता है। अतः इस विषय का पाठ्यक्रम बनाते समय हमें बहुत अधिक सावधानी रखने की आवश्यकता है। यह विषय प्रारम्भ में इतिहास, भूगोल, नागरिक-शास्त्र आदि विषयों की विशेष बातें बतलाने वाला ही माना जाता था। पर अब धीरे-धीरे इसे उन विभिन्न विषयों की जानकारी द्वारा समाज की वर्तमान तथा भविष्य की समस्याएं हल करने में सहायक मानने लगे हैं। अतः अब इसे केवल कुछ विषयों की विशेष बातों का ज्ञान कराने वाला न मानकर हमारे सामाजिक सम्बन्धों को दृढ़ बनाने वाला तथा

सामाजिक समस्याओ पर विचार करके उन्हे हल करने वाला समझा जाता है। इस प्रकार अब हमारे जीवन-मूल्यो के परिवर्तन के साथ-साथ इसके पाठ्यक्रम मे भी परिवर्तन होते जा रहे हैं।

हमारा भारतीय समाज बडी शीघ्रता से परिवर्तित हो रहा है। हमारे समाज मे अज्ञानता तथा अन्ध-विश्वास अधिक मात्रा मे होने से जनता को वर्तमान जीवन से सम्बन्धित बातो का ज्ञान नही हो पाता। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद प्रथम तथा द्वितीय पचवर्षीय योजनाओं के कार्यान्वित होने से देश मे व्यावसायिक तथा प्राविधानिक ज्ञान की बहुत अधिक वृद्धि हो रही है। वैज्ञानिक प्रगति भी अधिक हो रही है। हमारे देश की आबादी भी बडी तेज़ी से बढ रही है। इन सब बातो के प्रभाव से हमारी सभ्यता तथा जीवन मे शीघ्रता से परिवर्तन हो रहे है। शहरो की सख्या बढती जा रही है। जाति का कठोर बन्धन ढीला हो रहा है। बडे-बडे उद्योग चलाने के लिए विशेष ज्ञान वाला कार्यकर्ता आवश्यक हो गया है। आज जनता अपने बच्चो को शिक्षित करने के लिए उत्सुक है। हमारा कुटुम्ब, जो हमारे जीवन का केन्द्र तथा सहयोग का प्रतीक था उसका भी विघटन होने लगा है, क्योकि अब हम शिक्षा, उद्योग, आमोद-प्रमोद आदि के लिए कुटुम्ब पर ही निर्भर नही रह सकते। इनके लिए हमे अनेक अन्य सस्थाओ पर निर्भर रहना पडता है। उद्योगीकरण के कारण कुटुम्ब अन्य स्थानों को भी जाने लगे हैं। रेडियो, सिनेमा, समाचार-पत्र, विज्ञापन आदि लोगो को अनेक नई-नई बातो के लिए आकर्षित करने लगे है। इससे हमारा भारतीय जीवन जटिल तथा सघर्षमय होता जा रहा है। इन सब परिस्थितियो की पृष्ठभूमि मे ही हमारे 'सामाजिक अध्ययन' विषय का पाठ्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। फलस्वरूप सामाजिक अध्ययन विषय का पाठ्यक्रम हमारे देश का सास्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास करने वाला होना चाहिए। वास्तव मे हमारा पाठ्यक्रम बालको मे विश्व-बन्धुत्व, सामाजिक चेतना, आर्थिक बुद्धि, व्यावसायिक जानकारी तथा कुटुम्ब के सम्बन्धो को समझने तथा विकसित करने वाला होना चाहिए।

पाठ्यक्रम के सम्बन्ध मे हमे एक बात और ध्यान मे रखनी चाहिए। सामाजिक अध्ययन विषय शाला के प्रत्येक स्तर के लिए उपयोगी विषय है तथा प्राथमिक कक्षाओ के सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम का सम्बन्ध माध्यमिक कक्षाओ के पाठ्यक्रम से अवश्य होना चाहिए। इन दोनो स्तरो के पाठ्यक्रमो मे अच्छा सामजस्य तथा सम्बन्ध होने पर ही हम इस विषय के शिक्षण से अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त कर सकते है।

सामाजिक अध्ययन पाठ्यक्रम के प्रकार

हमारे देश तथा अन्य देशो मे सामाजिक अध्ययन विषय के अनेक प्रकार के पाठ्यक्रम चलते हैं। इन पाठ्यक्रमो की जाँच करके हम इन्हे निम्न दो खण्डो मे विभाजित कर सकते हैं—

१ पाठ्य-विषय से सम्बन्वित पाठ्यक्रम। इस प्रकार वनाये गए पाठ्यक्रमो मे प्रमुखत तीन प्रकार से वनाये गए पाठ्यक्रम आते हैं—

(क) विषयो के लिए विभिन्न पुस्तको वाले पाठ्यक्रम। इतिहास, भूगोल, नागरिक-शास्त्र आदि के पाठ्यक्रमो के लिए अलग-अलग पुस्तकें रहती है। प्रत्येक क्षेत्र के लिए पाठ्य-पुस्तकें चुनकर शिक्षण दिया जाता है। वालको को पाठ्य-पुस्तको मे लिखी वाते याद कराई जाती हैं तथा सुनी जाती है। इस प्रकार इसमे इतिहास भूगोल, नागरिक-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र आदि विषयो का एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नही रहता। प्रत्येक विषय के अन्तर्गत सम्बन्धित विषयो की वातो तथा प्रकरणो का ही समावेश किया जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम मे समाज की आवश्यकताओ तथा समस्याओ का ध्यान नही रखा जाता और न उन पर बालक विचार करते हैं। इनमे वालक आपसी सहयोग से कोई क्रिया आदि करके ज्ञान-प्राप्ति की चेष्टा भी नही करते। इन प्रकार के पाठ्यक्रम प्राथमिक कक्षाओ के लिए उपयोगी नही होते, क्योंकि इन कक्षाओ के बालको की पठन-क्षमता अधिक नहीं होती।

इन कक्षाओं के वालको के लिए तो क्रियात्मक अनुभव देने वाले पाठ्यक्रम अधिक उपयोगी होते है।

(ख) विपयो की अलग-अलग इकाइयो पर आधारित पाठ्यक्रम। इस प्रकार के पाठ्यक्रमों में सामाजिक अध्ययन के विभिन्न विपयो के शिक्षण के लिए अलग-अलग पुस्तको पर निर्भर नही रहना पडता। इसमे इतिहास, भूगोल, नागरिक-शास्त्र, अर्थशास्त्र आदि की अलग-अलग इकाइयाँ वनाई जाती है। इन इकाइयों का शिक्षण करने के लिए विभिन्न सम्वन्धित पुस्तको, चित्रो, मॉडलो, नक्शों आदि की सहायता ली जाती है। पर इसमे भी अलग-अलग विषयों के आधार पर ही शिक्षण किया जाता है। हाँ, एक विषय की इकाइयाँ दूसरे विपय के साथ-साथ रखकर या वाद मे रखकर विषयो का कुछ सम्वन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है, जैसे भूगोल की 'हमारा राज्य' इकाई के वाद इतिहास की 'हमारा राज्य' इकाई पढ़ाकर सम्वन्ध स्थापित करना आदि। पर वास्तव मे इसमे सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत आने वाले विषयो मे अच्छा सह-सम्वन्ध स्थापित नही हो पाता। इस प्रकार के पाठ्यक्रम प्राय चौथी या पाँचवी कक्षा के लिए ही उपयुक्त रहते है, क्योकि इन्ही कक्षाओ मे राज्य या देश पढ़ाया जाता है।

(ग) सह-सम्वन्धित इकाइयो पर आधारित पाठ्यक्रम। इस प्रकार के पाठ्यक्रम मे इतिहास, नागरिक-शास्त्र, भूगोल आदि विषयो मे ऐसे प्रकरण चुनकर रखे जाते हैं जिनका आपस मे सम्वन्ध होता है। इनका चुनाव करके इनकी इकाइयाँ वनाई जाती हैं। इसमे पाठ्य-पुस्तकें भी विभिन्न विषयों का सह-सम्वन्ध स्थापित करते हुए लिखी जाती हैं तथा इनका थोडा-वहुत सम्वन्ध समाज की समस्याओ से भी रहता है। पर इस प्रकार के पाठ्यक्रम का शाला के अन्य विपयो से कोई सम्वन्ध नही

रहता। पर इसमें भी बालक की रुचियों तथा आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्य-विषयों का चुनाव नहीं होता। इसमें इकाई के अन्तर्गत सामाजिक अध्ययन विषय के विभिन्न विषयों के समवायित ज्ञान की अपेक्षा बालकों से की जाती है। अनेक विद्वानों ने सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत अलग-अलग विषयों तथा समवायित विषयों के शिक्षण पर प्रयोग करके निष्कर्ष निकाले हैं कि समवायित ढंग से बनाया गया पाठ्यक्रम मिडिल-कक्षाओं के बालकों के लिए उपयुक्त होता है। इस दिशा में सीगो, टेलर, कोलिंग आदि ने प्रयोग किये तथा सभी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि सह-सम्बन्ध स्थापित करने वाले पाठ्यक्रम से बालकों की रुचियों, आदतों तथा क्षमताओं का विकास अलग-अलग विषय-पाठ्यक्रम की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है। प्रेस्टन भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है।

२ बालक के अनुभव से सम्बन्धित पाठ्यक्रम। इस प्रकार के पाठ्यक्रमों को सामाजिक जीवन से सम्बन्धित पाठ्यक्रम भी कहते हैं। उपरोक्त पाठ्यक्रमों से इन पाठ्यक्रमों में यह भिन्नता होती है कि इनमें निश्चित विषय निर्धारित नहीं रहते और न उन्हें स्थापित ही किया जा सकता है। बालकों के अनुभव तथा जीवन की प्रमुख क्रियाएँ ही पाठ्यक्रम निर्धारित करती हैं। इन पाठ्यक्रमों में व्यक्तिगत तथा सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आपसी सहयोग से योजना बनाई जाती है, क्रिया की जाती है तथा उसका मूल्यांकन किया जाता है। इनमें बालकों की आवश्यकताओं तथा रुचियों के अनुसार कार्यक्रम आगे बढ़ता जाता है। इनमें शालेय तथा सामाजिक कार्यों से सम्बन्धित, जैसे सुरक्षात्मक बातों की जानकारी, बगीचे की सफाई, शाला की सफाई, पानी पीने की व्यवस्था, आस-पास के उद्योग आदि, बातों का समावेश किया जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रमों में शिक्षण भी अनेक प्रकार

की सामग्रियो का उपयोग किया जाता है, जैसे पुस्तकें, पर्यटन, चित्र, सिनेमा-प्रदर्शन सामग्री आदि। इन पाठ्यक्रमो का उद्देश्य बालको में उनके जीवन-सम्बन्धी समस्याएँ हल करने की क्षमता का विकास करना रहता है। इनमे लोकतन्त्रात्मक समाज के लिए उपयोगी व्यवहार किया जाता है। प्रत्येक बालक की जाँच उसके विकास, जैसे आपस में सहयोग से कार्य करने, चित्र बनाने तथा अधिक जानकारी प्राप्त करने की क्षमता आदि, के आधार पर की जाती है। इस तरह हम देखते हैं कि इस प्रकार के पाठ्यक्रमो मे बालक की आवश्यकताएँ, रुचियाँ तथा समस्याएँ ही प्रमुख रहती हैं।

३. विस्तृत सामाजिक अध्ययन इकाई पाठ्यक्रम। पाठ्य-विषय तथा बालक के अनुभव से सम्बन्धित पाठ्यक्रमो को मिलाकर एक प्रकार से सामाजिक अध्ययन की विस्तृत इकाई वाला पाठ्यक्रम भी तैयार किया जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम मे इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र तथा अन्य क्षेत्रो से सामग्री लेकर अध्ययन का एक विस्तृत क्षेत्र तैयार किया जाता है। इसमें विस्तृत इकाइयाँ, जैसे हमारा समाज, हमारा घर, हमारी सभ्यता आदि, बनाई जाती हैं। इसमें बालक की रुचियो तथा आवश्यकताओ के साथ-साथ समाज के साधनो पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। सहयोग से समूह मे योजना बनाने तथा उसकी जाँच करने आदि को भी समुचित महत्त्व दिया जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम की सहायता से मूल सामाजिक विचार, रचनात्मक दृष्टिकोण तथा लोकतत्र के लिए उपयोगी आचार-व्यवहार के विकास करने का प्रयत्न किया जाता है। इसमे सामूहिक विचार-विमर्श के लिए भी स्थान रहता है। इस प्रकार यह पाठ्य-विषय तथा बालक के अनुभव से सम्बन्धित पाठ्यक्रमो को मिलाकर बीच का पाठ्य-

क्रम है, जिससे मूल विचारो तथा लोकतन्त्रात्मक जीवन का विन्यास किया जाता है।

उपरोक्त पाठ्यक्रमो के अतिरिक्त जीवन के क्षेत्रो तथा जीवन की परिस्थितियो के आधारो पर भी सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम बनाए जाते हैं।

१. जीवन के क्षेत्र या सामाजिक कार्य के आधार पर बनाये गए पाठ्यक्रम। सामाजिक अध्ययन का सम्बन्ध मानवीय सम्बन्धो से रहता है। अत कुछ स्थानो मे मानव की प्रमुख क्रियाओ के आधार पर पाठ्यक्रम बनाए जाते हैं। इनमे मानव की अपने साथियो तथा वातावरण से किस प्रकार की प्रतिक्रिया होती है या होती रही है, इसी पर अधिक विचार किया जाता है। इसीलिए इसमे मानव की प्रमुख क्रियाओ, जैसे उत्पादन, वितरण, यातायात, शिक्षा, मनोरजन, विचार-विनिमय, सरकार आदि, को चुनकर सभी प्रकार की सस्कृतियो से सम्बन्ध जोडा जाता है। यहाँ यह आवश्यक नही है कि इन क्रियाओ को अलग-अलग इकाइयो मे ही पढाया जाय, पर कुछ क्रियाओ, जैसे यातायात, मनोरजन आदि, की इकाइयाँ तो बनाई ही जा सकती हैं। इनके सम्बन्ध मे ज्ञान देते समय सामाजिक व्यवस्था पर इनके प्रभाव की जानकारी कराना भी आवश्यक है। इन विषयो तथा क्रियाओ सम्बन्धी ज्ञान छोटी कक्षा से लेकर उच्च कक्षा तक विस्तार परिधि (Concentric method) विधि से दिया जा सकता है।

२ जीवन की परिस्थितियो पर आधारित पाठ्यक्रम। सामाजिक अध्ययन विषय का पाठ्यक्रम बनाने की यह नवीन विधि है। इसमे बालको के दैनिक जीवन मे उपस्थित परिस्थितियो के आधार पर ही ज्ञान दिया जाता है। ये दैनिक जीवन मे उपस्थित होने वाली परिस्थितियाँ ही महत्त्वपूर्ण होती हैं। इनमे से कई तो बालको के बाद के जीवन मे उपस्थित होती हैं तथा

चलती रहती है। इस प्रकार ये जीवन की परिस्थितियाँ ही अन्य पाठ्य-विपयो का स्थान ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम मे सामाजिक अध्ययन विपय का प्रारम्भ वालक के जीवन की ठोस परिस्थितियो से होता है तथा जैसे-जैसे वालक का विकास होता जाता है और उसका वाहरी सम्पर्क वढता जाता है, वैसे-वैसे सामाजिक अध्ययन विपय की परिधि का विस्तार भी होता जाता है। वालक का प्रत्येक नया अनुभव उसे निर्देशन देता है तथा जीवन की प्रत्येक समस्या के हल के लिए उसके अनुभव रास्ता वतलाने का कार्य करते है। इस प्रकार उसके जीवन की समस्याओ का हल होता चलता है। वालक के जीवन की परिस्थितियो को हम निम्न तीन भागो मे विभक्त कर सकते हैं—

(क) व्यक्तिगत क्षमता के विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ,
(ख) सामाजिक सहयोग तथा विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ, और
(ग) वातावरण की वातो तथा शक्तियो से सम्वन्ध स्थापित करने की क्षमता के विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ।

इन तीनो प्रकार की परिस्थितियो के स्रोत हमारे घर, समाज, सामाजिक तथा नागरिक क्रियाओ, अवकाश तथा आध्यात्मिक क्रियाओ मे उपलव्ध होते है तथा इनका उपयोग करके वालको को लोकतंत्रात्मक जीवन व्यतीत करने योग्य वनाया जा सकता है।

सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम वनाते समय ध्यान मे रखने योग्य वातें

१. सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम शिक्षक, वालक तथा समाज की सहयोगी भावना के आधार पर वनाया जाना चाहिए।
२ पाठ्यक्रम का ऊपरी ढाँचा विशेप रूप से प्रशिक्षित विद्वान् तैयार करे, पर उसकी विस्तृत योजना परिस्थितियो के अनुकूल वालकों

तथा समाज के लोगो के सहयोग से शिक्षक तैयार करें।

३ पाठ्यक्रम सामाजिक ज्ञान देने, मानवीय सम्बन्धो के सन्तुलन, दैनिक जीवन की समस्याओ तथा आवश्यकताओ के हल या पूर्ति मे सहायक हो।

४ वालक के विकास के अनुकूल विकसित होने वाला हो।

५ समस्याओं के हल के लिए जीवन के अनेक क्षेत्रो से सहायक सामग्री का उपयोग करने वाला हो।

६ इसमे ऐसे पाठ्य-विपय तथा अनुभवो का समावेश होना चाहिए जिससे लोकतत्रात्मक जीवन की माँग पूर्ण हो।

७ जहाँ तक हो, पाठ्य-विपय समवायित इकाइयो मे रखा जाने वाला होना चाहिए।

८ पाठ्य-विपय ज्ञान-प्राप्ति की क्रिया को क्रमवद्धता से विकसित करने वाला होना चाहिए।

४ . सामाजिक अध्ययन के शिक्षक

हमारा भारतवर्ष एक नवनिर्मित लोकतत्रात्मक गणराज्य है। हमारा देश ही क्यो, एशिया के प्राय सभी देशो ने, कुछ समय ही हुआ, स्वतत्रता प्राप्त की है तथा प्राय सभी एशियाई देश संकट-काल से गुजर रहे है। इन सभी देशो का समाज ज्ञान, आपसी सहयोग तथा नैतिकता के स्तर की वृद्धि करके ही सुसगठित रह सकता है। इनके अभाव मे ये देश हिसा के चक्र मे भी फँस सकते है तथा कुछ कुचक्री देश को परतंत्र वनाने मे भी सफल हो सकते हैं। अत इन देशो के समाज को सामाजिक ज्ञान तथा सामाजिक दृष्टिकोण देकर उसके सदस्यो की नैतिकता की वृद्धि करना सामाजिक अध्ययन के शिक्षक का कर्तव्य है। पर यह कर्तव्य केवल सामाजिक अध्ययन-शिक्षक का ही नही है। अन्य शिक्षको को भी इस उत्तरदायित्व से वरी नही किया जा सकता। पर सामाजिक वातो से अधिक सम्वन्वित होने मे सामाजिक अध्ययन के शिक्षक को एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व निभाना है।

सामाजिक अध्ययन के शिक्षक का कार्य प्राचीन शिक्षक के समान विषय का ज्ञान देना-मात्र नही है। सामाजिक अध्ययन मे विषय का ज्ञान देना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि सही सामाजिक दृष्टिकोण, नैतिकता की वृद्धि, सहयोग की भावना, तथा अपनी समस्याओ का सामना करके उन्हे हल करने की क्षमता। आज सामाजिक अध्ययन के शिक्षक का कार्य तो केवल सामाजिक जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देने से भी नहीं चल सकता। गाधीजी ने कहा था कि शाला को समाज का अग बनकर उसके उत्थान मे सहायक होना चाहिए। वे तो शाला को नई समाज-व्यवस्था लाने मे बड़ा सहायक मानते थे। इसी प्रकार सामाजिक अध्ययन के शिक्षक को न केवल सामाजिक जीवन की शिक्षा देनी है, वरन् उसे इस विषय के शिक्षण द्वारा एक नई सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने योग्य बनाना है।

वर्तमान सामाजिक अध्ययन के शिक्षक का उत्तरदायित्व बहुत अधिक है। उसकी परिस्थिति कक्षा मे बालको की संख्या-वृद्धि, सहायक सामग्री की कमी, बालको तथा समाज मे अज्ञानता की अधिकता, समाज मे जीवन की मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति के साधनो के अभाव, नये वैज्ञानिक आविष्कारो के परिणामस्वरूप समाज की गति मे परिवर्तनशीलता, समाज मे प्रचलित अन्ध-विश्वास आदि कारणो से और भी विषम होती जा रही है। वास्तव मे आज हमारा समाज तथा सभ्यता की अपनी स्थिति बनाए रखने की दृष्टि उतनी सजग नहीं है जितनी कि होनी चाहिए।

इन सब कारणो तथा परिस्थितियो के फलस्वरूप सामाजिक अध्ययन-शिक्षक को केवल विधिवत् कक्षा-शिक्षण करने वाला होने के अतिरिक्त कुछ और भी होना आवश्यक है। उसे तो बालक के विकास के लिए उसके सामाजिक वातावरण की सच्ची तथा सरल व्याख्या करने वाला तथा उसे इस सामाजिक वातावरण से सच्चा परिचय कराने वाला होना चाहिए। अत यह आवश्यक है कि शिक्षक होने के साथ-साथ सामाजिक अध्ययन का शिक्षक पूर्ण मानव भी हो। उसमे अनुभव तथा पुस्तको

से अधिक-से-अधिक ज्ञान तथा उत्साह प्राप्त करने की क्षमता होनी चाहिए। उसकी रुचि अनेक क्षेत्रो मे हो, वह समाज के लोगो के प्रति सद्भावना तथा अच्छे सम्बन्ध रखे तथा द्वेष, ईर्ष्या, अन्ध-विश्वासो आदि से मुक्त हो। उसमे सक्रिय सामाजिक चेतना भी होनी आवश्यक है। सामाजिक अध्ययन के शिक्षक मे बौद्धिक ज्ञान की अपेक्षा सामाजिक तथा व्यक्तिगत गुण अधिक होने चाहिएँ। उसे जीवन तथा मानव मे सच्ची रुचि तथा विश्वास होना चाहिए। उसे बालक को सभ्यता की वृद्धि तथा विकास के रूप मे देखना चाहिए। उसका व्यक्तित्व विस्तृत तथा पूर्ण होना चाहिए। उसमे वर्तमान ससार की गतिविधियो को सही रूप मे देखने की क्षमता होनी चाहिए, पर यह तभी सम्भव है जब वर्तमान मसार के साथ उसका सामजस्य स्थापित हो गया हो। आज ससार मे परिवर्तन तथा विकास प्रमुख रूप से दिखाई देते है। सामाजिक अध्ययन के शिक्षक की इन हलचलो मे रुचि होनी चाहिए। उसमे अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध भी अच्छे रखने की क्षमता होनी चाहिए। उसे न केवल अपने बालको तथा साथी शिक्षको से सम्बन्ध ठीक रखना है, वरन् समाज से सहयोग भी प्राप्त करना है। अत उसमे अन्य लोगो के सहयोग को समझने तथा प्राप्त करने की क्षमता भी होनी चाहिए। सामाजिक अध्ययन का शिक्षक शिक्षण के साथ-साथ सीखता भी जाता है। अत उसमे यह अहम् भाव न होना चाहिए कि वह सब-कुछ जानता है तथा बालक उसे कुछ नही सिखा सकते। कहने का तात्पर्य यह है कि उसमे बालको से आवश्यकतानुसार सीखने की क्षमता भी होनी चाहिए।

सामाजिक अध्ययन के शिक्षक को बालको को समूह-चर्चा, पर्यटन, अवलोकन, सिनेमा-प्रदर्शन आदि से जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रेरित करना पड़ता है। अत यह आवश्यक है कि वह बालको से अच्छी तरह परिचित हो। उसे बालको को अपनी समस्याओ का सामना करने योग्य बनाना चाहिए। इतना ही नही, इन समस्याओ के हल के लिए उसे बालको का पथ-प्रदर्शक भी बनना आवश्यक है। इन समस्याओ के हल के लिए

वह उचित पथ-प्रदर्शन तभी कर सकेगा जबकि वह समाज तथा संसार की वर्तमान गतिविधियो से स्वयं परिचित होगा । कहने का तात्पर्य यह है कि सामाजिक अध्ययन के शिक्षक का मानव और उसकी समस्याओ का ज्ञान अच्छा बढा-चढा होना चाहिए, जिससे कि वह बालको को सभी समस्याओ तथा परिस्थितियों के सम्बन्ध मे उचित परामर्श दे सके ।

सामाजिक अध्ययन के शिक्षक मे बालकों को आपसी सहयोग से कार्य करने की प्रेरणा देने की क्षमता भी होनी चाहिए। लोकतन्त्र मे हम व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करते हुए उसे सम्पूर्ण समाज के विकास मे सहायक बनाना चाहते हैं। यह तभी सम्भव है जब आपसी सहयोग से सम्पूर्ण समाज की उन्नति के लिए कार्य करने की आदत डाले ।

चूंकि सामाजिक अध्ययन विषय के अन्तर्गत विविध तथा विभिन्न प्रकार की मानव-क्रियाओ का समावेश रहता है, अत शिक्षण-कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए शिक्षक मे उचित सामग्री का चुनाव कर सकने की क्षमता भी होनी चाहिए । उसकी शिक्षण-विधि भी लोकतंत्र-प्रणाली के विकास मे सहायक होनी चाहिए। शिक्षण मे लोकतन्त्र-प्रणाली का तात्पर्य यह है कि शिक्षक द्वारा दिये गए आदेश ही सब-कुछ न होगे। बालक भी स्वतन्त्रता से सोच-विचार करेंगे तथा अपना मार्ग निश्चित कर आगे बढेंगे । बालक अपने किये जाने वाले कार्य की योजना बनाने मे भी पूर्ण सहयोग देंगे ।

सामाजिक अध्ययन विषय मे अन्य विषयो की अपेक्षा बालको में पठन के लिए उपयुक्त पुस्तको के चुनाव की क्षमता का होना भी आवश्यक है । अत: बालकों मे पुस्तकालय का उपयोग करने की क्षमता का विकास करना सामाजिक अध्ययन के शिक्षक का कार्य है । उसे बालकों मे पठन की उचित आदतों तथा अपनी समस्याओ के हल के लिए समाज के साधनो का उचित उपयोग कर सकने की क्षमता का विकास करने की सामर्थ्य होनी चाहिए।

सामाजिक अध्ययन-शिक्षण के समय अनेक ऐसी जटिल समस्याएं आ

सकती हैं जिनके सम्बन्ध मे बालको मे मतैक्य न हो। इस प्रकार की समस्याओ के कारण बालको मे आपसी मतभेद तथा साथ-ही-साथ समाज से मतभेद भी हो सकता है। सामाजिक अध्ययन के शिक्षक को ऐसी समस्याओ की उपेक्षा न करनी चाहिए, क्योकि ऐसी समस्याओ पर विचार-विमर्श ही बालको मे नागरिकता-सम्बन्धी उचित आदतो तथा अभ्यासो का विकास करेगा। इस विचार-विमर्श मे बालक का अपनी समस्याओ के सम्बन्ध मे स्वतन्त्रता से बोलने तथा विचार रखने का अधिकार निहित रहता है। पर इसका तात्पर्य यह नही है कि शिक्षक को इस प्रकार की विवाद वाली बातो का समावेश कक्षा मे किसी प्रकार करना ही चाहिए, वरन् उसे तो इस प्रकार की बातो के स्वाभाविक रूप से कक्षा मे उपस्थित होने पर ही विचार करना चाहिए। साथ-ही-साथ शिक्षक का यह कर्तव्य हो जाता है कि ऐसे अवसरो पर वह बालको का उचित मार्ग-प्रदर्शन करे। पर मार्ग-प्रदर्शन करते समय शिक्षक को अपनी विचार-धारा बालको पर थोपनी नही चाहिए। उसे तो बालको का उचित पथ-प्रदर्शन करके उनमे किसी बात या समस्या पर सभी दृष्टिकोणो से शान्तिपूर्वक विचार करने की आदतो का विकास करना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते है कि सामाजिक अध्ययन के शिक्षक का कार्य कठिन है। वह सस्कृति का विकास करने वाला है। वह शिक्षण करते हुए भी बालको तथा परिस्थितियो से सीखने वाला है। सामाजिक अध्ययन का शिक्षक बालको के हित मे अन्य विषयो का सामजस्य सामाजिक अध्ययन विषय से करने वाला, बालको के मन मे लोकतन्त्र, नागरिकता, सहनशीलता, समस्याओ को हल करने की बौद्धिक तत्परता, ईमानदारी, सहयोग, उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता, सद्भावना तथा दूसरो का विचार रखने की आदत तथा सामाजिकता आदि गुणो का विकास करके उन्हे अपने आस-पास तथा पूर्ण ससार की बातो में दिलचस्पी लेने योग्य बनाने वाला होता है। सामाजिक अध्ययन विषय का शिक्षक बालको को यह प्रदर्शित करता है कि जीवन अच्छा है तथा सीखना जीवन का उत्तेजित

तथा गतिमान पहलू है।

५ . : सामाजिक अध्ययन में पठन तथा अन्य सहायक सामग्री

सामाजिक अध्ययन में पठन तथा अन्य सहायक सामग्री का वहुत उपयोग किया जा सकता है। हम देखते हैं कि सामाजिक अध्ययन विषय मे कुटुम्ब का तथा सामाजिक जीवन, आस-पास तथा दूर के स्थान, महान् ऐतिहासिक महापुरुष तथा महिलाएँ, संसार की संस्कृति, भोजन, वस्त्र, भारतीय प्राचीन तथा वर्तमान जीवन आदि प्रकरण या वातो का समावेश रहता है। इन वातो की जानकारी के लिए विविध प्रकार की पठन-सामग्री तथा अन्य सहायक सामग्री, जैसे सिनेमा, रेडियो, पर्यटन, नाटक, चित्र, संग्रहालय आदि की सहायता ली जा सकती है।

पठन-सामग्री

सामाजिक अध्ययन मे कई प्रकार की पठन-सामग्री आवश्यक होती है। विभिन्न प्रकार की पठन-सामग्री वालको की व्यक्तिगत विभिन्नता की दृष्टि से ठीक रहती है। साथ-ही-साथ यह विभिन्न दृष्टिकोणो को वालकों के समक्ष उपस्थित करती है। इससे विभिन्न देशों के लोगो के जीवन, उनकी क्रियाओ तथा स्थानो को समझने मे सुविधा होती है। पठन-सामग्री के प्रमुखत. निम्न विभाग कर सकते हैं—

१. पाठ्य-पुस्तके। इनमे वालको तथा शिक्षको के लिए आवश्यक सामग्री एक स्थान मे क्रम-वद्धता के साथ लिखी उपलव्ध हो जाती है। इससे शिक्षक तथा वालको को पाठ्यक्रम की सामग्री यहाँ-वहाँ खोजने मे समय व्यय नही करना पडता। इस प्रकार पाठ्य-पुस्तकें एक प्रकार की सस्था-सी हो जाती हैं। पाठ्य-पुस्तको की प्रशंसा तथा बुराई दोनो की जाती हैं, पर हमे यह न भूलना चाहिए कि आजकल औसत तथा औसत से कम योग्यता के शिक्षको के लिए पाठ्य-पुस्तकें ही वहुत महत्त्व रखती हैं। वालक भी इनसे सम्वन्धित विषयो को पहले या वाद मे पढ सकते हैं। लेकिन सामाजिक अध्ययन-शिक्षण मे पाठ्य-पुस्तको के अधिक

उपयोग पर ही आश्रित रहने से शिक्षको की मनोवृत्ति पाठ्य-पुस्तको मे वर्णित तथ्यो तथा बातो तक ही अपने को सीमित रखने की हो गई है। फलस्वरूप उनका शिक्षण पाठ्य-पुस्तको तक ही सीमित रहता है। इससे बालको का दृष्टिकोण सीमित होता है तथा शिक्षण मे रूढिवद्धता तथा अरोचकता आती है। बालक क्रियाएँ करना पसन्द करते हैं तथा पुस्तको मे वर्णित बातो के बाहर भी जाना चाहते हैं। पाठ्य-पुस्तको की निर्भरता ने शिक्षको को शिक्षण मे केवल बालको के लिए सफा या पाठ निर्धारित करने वाला बना दिया है। इस प्रकार पाठ्य-पुस्तको ने शिक्षक का स्थान ले लिया है।

सामाजिक अध्ययन मे तो क्रियाओ, जैसे पर्यटन, चित्र बनाना, मॉडल बनाना आदि, के लिए समुचित स्थान रहता है, अत शिक्षको को केवल पाठ्य-पुस्तको के पठन तक ही अपने शिक्षण-कार्य को सीमित न रखना चाहिए।

२ पथ-प्रदर्शक सामग्री। इस प्रकार की सामग्री मे एटलस, शब्द-कोष, विश्वकोष, गज़ेटियर्स, वार्षिक पुस्तकें, सरकारी विज्ञप्तियाँ आदि सम्मिलित हैं। इनका भी समुचित उपयोग बालको तथा शिक्षको को करना चाहिए।

३ अस्थिर (Fugitive) सामग्री। बुलेटिन, फोल्डर्स, समाचार-पत्र तथा इसी प्रकार की अन्य मुफ्त मे मिलने वाली सामग्री इसके अन्तर्गत आती है। सामाजिक अध्ययन-शिक्षण मे इस प्रकार की सामग्री का उपयोग आवश्यकतानुसार करना उपयोगी सिद्ध होगा।

४ वर्तमान परिस्थितियो से सम्बन्धित सामग्री। सामाजिक अध्ययन मे वर्तमान परिस्थितियो तथा समय से सम्बन्धित अनेक विषय या प्रकरण रहते हैं। इन विषयो के उचित ज्ञान तथा वास्तविक परिस्थिति से बालको को परिचित कराने के लिए

दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक समाचार-पत्र उपयोगी रहते हैं। इनमें वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियो पर अनेक विद्वानो के विभिन्न दृष्टिकोणो से लिखे गए लेख रहते हैं। वालक इन्हे पढकर वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियो से परिचित हो सकते हैं तथा इनके प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास कर सकते हैं।

५. साहित्यिक सामग्री। सामाजिक अध्ययन-विषय मे कई प्रकरण ऐसे रहते हैं, जिनकी जानकारी के लिए विभिन्न प्रकार की साहित्यिक सामग्री का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार की सामग्री मे कविता, कहानियाँ, लोक-कथाएँ, जीवनी, यात्राओं का वर्णन आदि आते हैं। इस प्रकार की साहित्यिक सामग्री सामाजिक अध्ययन मे आने वाली जीवनी, यात्राओ, सामाजिक जीवन-सम्बन्धी विषयो की जानकारी के लिए वड़ी रोचक तथा उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

६. स्रोत तथा मूल वातो की जानकारी कराने वाली सामग्री। पाठ्य-पुस्तको, अन्य पुस्तको, अखवारो आदि मे मूल या स्रोत साधनों से प्राप्त सामग्री से ली गई वातो का ही समावेश रहता है। सामाजिक अध्ययन के वालको को कुछ मूल वातो की जानकारी कराने वाली सामग्री से भी ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार की जानकारी से परिस्थितियों, समस्याओं आदि का अच्छा तथा मौलिक ज्ञान होता है। अन्य लेखको या व्यक्तियो का प्रभाव इस प्रकार की सामग्री पर नही होता। अवस्थानुसार वालक मूल स्रोतो से प्राप्त सामग्री का मिलान अन्य लेखको की कृतियो से भी कर सकते हैं। मूल स्रोतो तथा साधनो के लिए वालक मूल पत्र, डायरी, सभाओं की कार्य-प्रणाली का लेखा, टाइमटेवल, नक्शो आदि का उपयोग सरलता से कर सकते हैं।

७ चार्ट्स आदि का उपयोग। सामाजिक अध्ययन मे चार्ट्स आदि का उपयोग भी सरलता से किया जा सकता है। चार्ट्स आदि की सहायता से कठिन तथ्यो का ज्ञान सरल रीति से कराया जा सकता है। इनसे पाठ्य-वस्तु रोचक भी वन जाती है। चार्ट्स सामूहिक जानकारी, आवश्यकताओ, प्रश्नो, निर्देशो आदि के लिए उपयुक्त होते हैं।

उपरोक्त पठन-सामग्री का उपयोग सामाजिक अध्ययन के शिक्षक को करना चाहिए तथा बालको को किसी बात की जानकारी कराने के लिए इनमे से अधिक-से-अधिक सामग्रियो का उपयोग करना चाहिए। सामग्री की उपलब्धि, पाठ्यविपय की आवश्यकताओ, बालक के मानसिक तथा शारीरिक विकास आदि का इन सामग्रियो के चुनाव के समय ध्यान रखना चाहिए। इनके समुचित उपयोग से बालको मे किसी समस्या का हल करते समय विवेक तथा सोच-विचारकर कार्य करने की आदतो का विकास किया जा सकता है। साथ-ही-साथ हम देखते है कि कोई भी पाठ्य-पुस्तक सभी प्रकार की अच्छी, पूर्ण सामग्री उपलब्ध नही कर सकती। अत यदि हम चाहते हैं कि बालको के विचार सुदृढ हो तथा सूझ-बूझ और ज्ञान ठोस जानकारी पर आधारित हो, तो इन विभिन्न प्रकार की सामग्रियो का शिक्षण मे उपयोग किया जाना आवश्यक है तथा शिक्षको को केवल किसी एक पाठ्य-पुस्तक पर निर्भर रहना छोड देना चाहिए। इन विभिन्न पठन-सामग्रियो द्वारा बालको के समक्ष विभिन्न दृष्टिकोण भी उपस्थित किये जा सकते है तथा उन पर विचार-विमर्श किया जा सकता है।

सामाजिक अध्ययन मे बालक तथ्यो की जानकारी करने, नाटक करने के लिए सामग्री ढूंढने, समस्याओ को अच्छी तरह समझने, अपने मन मे उत्पन्न हुए प्रश्नो तथा विचारो का समाधान ढूंढने, अन्य क्षेत्रो के लोगो तथा स्थानो की जीवन-सम्बन्धी वातो की जानकारी करने आदि के लिए पढते तो अवश्य है तथा सामाजिक अध्ययन-शिक्षण मे पठन एक प्रमुख विधि हो सकती है, पर पठन के प्रमुख होते हुए भी सामाजिक अध्ययन

मे समस्याओ के हल तथा जानकारी के लिए इसको एकमात्र उपयोगी विधि या साधन न मानना चाहिए। यह तो अनेक अन्य साधनों तथा विधियो मे एक है, जैसे सिनेमा-प्रदर्शन, चित्र, मॉडल, चार्ट्स आदि बनाना। साथ ही हमे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्य-पुस्तक-पठन ही हमारा शिक्षण न हो जाय। पठन तो हमारी क्रियाओ को उपयोगी बनाने तथा ज्ञान का भण्डार बढाने की दृष्टि से ही किया जाना चाहिए।

दृश्य एवं श्रव्य सहायक सामग्री

शिक्षण की कोई भी सामग्री, जो पठन को छोडकर दृश्य तथा आवाज़ द्वारा बालक के अनुभवो की वृद्धि करे, दृश्य एवं श्रव्य सहायक सामग्री कहलाएगी। इस सामग्री की सहायता से विचारों का विकास, दृष्टिकोणो का परिवर्तन तथा विकास, रुचियो तथा गुणग्राहकता की वृद्धि की जा सकती है। बालक ने शिक्षण के समय जो पढ़ा या देखा है उसके लिए ये समूह-योजना बनाने, विवेकपूर्ण सोचने तथा विचार-विमर्श के लिए ठोस आधार भी प्रस्तुत करते हैं। दृश्य तथा श्रव्य सहायक सामग्री बालको की सीखने की प्रक्रिया को उत्तेजित करती है। यह बालको के लिए रोचक भी रहती है तथा इसकी सहायता से सीखने मे स्थायित्व भी आता है। बालको को कोई बात केवल मौखिक बताने से उन्हे वह थोडे समय तक ही याद रहती है, पर यदि वही बात इस सामग्री का आधार लेकर बतलाई जाय तो वह उन्हे अधिक समय तक याद रहेगी। इस प्रकार बालको की समझ के लिए इस सामग्री द्वारा अन्य साधनों को प्रयुक्त करके किसी घटना तथा विचार का अर्थ और भी स्पष्ट किया जा सकता है। फिल्म, चित्र, ग्राफ, नक्शे आदि न केवल कक्षा-शिक्षण मे सहायक होते हैं वरन् ये बालको के लिए विभिन्न बातो की जानकारी कराने के साधन भी होते हैं।

पर दृश्य तथा श्रव्य सहायक सामग्री की सहायता शिक्षक के उसके सफलतापूर्वक उपयोग पर निर्भर रहती है। उसे ही इस प्रकार की सामग्री की उपलब्धि, प्राप्ति तथा उचित आवश्यकतानुसार उपयोग की व्यवस्था

करनी पडती है। दृश्य तथा श्रव्य सहायक सामग्री विविध प्रकार की होती है। इसे हम निम्न भागो मे विभाजित कर सकते हैं—

१ यथार्थ तथा यथार्थ से मिलती-जुलती वस्तुएँ। इसके अन्तर्गत मॉडल, यथार्थ वस्तुएँ तथा उनके नमूने, जैसे गहने, सिक्के, कपडे, पाण्डुलिपियां, चिट्ठी-पत्री आदि, आते हैं। यातायात के साधनो के नमूने, गाने-बजाने की वस्तुएँ, घरो के मॉडल, हथियार आदि भी इसी मे सम्मिलित हैं। इनमे से अधिकाश वस्तुएं शिक्षक समाज के सदस्यो की सहायता से सरलता से प्राप्त कर सकते है। इनमे अनेक वस्तुएं बाजारो से भी खरीदी जा सकती हैं या शाला मे बालको द्वारा स्वय बनाई जा सकती है। बालक केवल शब्दो की सहायता से भूतकाल के समय तथा स्थान की वास्तविक जानकारी नही कर सकते, पर यदि उनके सामने अतीत की कुछ वस्तुएँ रखी जायँ तो उनका उस अतीत का ज्ञान वास्तविक तथा उपयोगी हो सकता है। बालक इन वस्तुओ को अपने शाला-सग्रहालय मे रख सकते हैं। बुनियादी शालाओ में सग्रहालय तो रहता ही है। इस शाला-सग्रहालय मे इन्हे सग्रहीत किया जा सकता है। इन यथार्थ वस्तुओ के उपयोग के लिए निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिएं—

(क) इनका उपयोग अनुभवो को उत्तेजित करने तथा सम्बन्धित विषय पर चर्चा प्रारम्भ करते समय करना चाहिए।

(ख) बालको को इन वस्तुओ को स्वय छूने या उपयोग मे लाने लायक होने पर उपयोग मे लाने देना चाहिए।

(ग) वस्तुओ को देखते समय तथा उपयोग मे लाते समय बालक शिक्षक से जो भी प्रश्न पूछें उनका उत्तर देकर बालको की जिज्ञासा शान्त करनी चाहिए।

(घ) इनका उपयोग करते समय सम्बन्धित चित्रो, मॉडलो आदि का उपयोग भी करना चाहिए।

(ङ) वालको को इन्हे एकत्रित करने के लिए प्रोत्साहित करते रहना चाहिए ।

२. सिनेमा-चित्र तथा फिल्म आदि । सिनेमा की फिल्मे शिक्षक के लिए वड़े उपयोगी साधन है । अमेरिका मे इनके उपयोग के सम्वन्ध मे प्रयोग किये गए हैं । इनके अनुभव से पता चला के है कि फिल्मो के उपयोग से अधिक विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करते है तथा पाठ्य-विपय अविक समय तक याद भी रहता है। सिनेमा की फिल्मो का उपयोग औसत तथा कमज़ोर वालको के लिए वड़ा लाभप्रद सिद्ध हुआ है। ससार के धनी देशो की शालाओ मे फिल्मो का उपयोग दिन-प्रतिदिन अधिक होता जा रहा है । शालाओ के लिए उपयोगी विभिन्न प्रकार की फिल्मे विशेष रूप से वनाई भी जाने लगी हैं । पर भारत जैसे गरीव देश मे इनका उपयोग केवल शहरो की कुछ शालाओ मे, जहाँ इनके प्रदर्शन के कमरे तथा विजली की सुविधा है, किया जा सकता है । हमारे देश मे शालाओ के लिए हिन्दी मे सिनेमा की फिल्मे तैयार की जा रही हैं, पर इनकी सख्या अभी वहुत कम है । यदि सुविधा हो तो सामाजिक अध्ययन विषय मे तो सिनेमा की फिल्मो का उपयोग वहुत किया जा सकता है । विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ, विभिन्न देशो के लोगो का जीवन, महत्त्वपूर्ण घटनाएँ आदि इन फिल्मो द्वारा यथार्थ पृष्ठभूमि मे दिखाई जा सकती हैं। इन फिल्मो की सहायता से ससार की वर्तमान गतिविधियाँ, अतीत की घटनाएँ, सुदूर के स्थान तथा मानव शाला की कक्षा मे अवतरित हो जाते हैं । अनेक प्रकार की प्रक्रियाएँ, जिन्हे हम अपनी आँख से नही देख सकते, इन फिल्मो की सहायता से कक्षा मे वालको को दिखाई जा सकती हैं । सिनेमा की फिल्मे रुचिकर होती हैं तथा वालको का ध्यान अधिक समय तक केन्द्रित रख सकती हैं । ये वालको का दृष्टिकोण परिमार्जित करने

मे भी सहायक होती हैं।

सिनेमा की फिल्मो के समान लेण्टर्न स्लाइड्स भी उपयोगी होती है। इनके प्रदर्शन के समय आवश्यक बातो की जानकारी कथन-विधि से बतलाई जाती है।

२ चित्र, फोटो आदि। हम अपने दैनिक जीवन मे अनेक प्रकार के चित्रो तथा फोटो का उपयोग करते है। वास्तव मे वर्तमान काल मे विचारो के प्रसार के लिए चित्रो तथा फोटो का अधिक-से-अधिक उपयोग हमारी सभ्यता की विशेषता है। अत हमे इनका उपयोग शिक्षण मे अवश्य करना चाहिए। चित्र द्वारा बालक किसी भी परिस्थिति को और अच्छी तरह समझ जाता है। ऐतिहासिक घटनाओ के सम्बन्ध मे तो यह और भी अधिक सत्य है। अतीत काल की सभ्यता तथा सस्कृति की अनेक बातें बालक बिना चित्रो या फोटो के समझ नही पाते, क्योकि वे अपने वर्तमान जीवन मे अतीत काल के अनुभवो का भान ही नहीं कर पाते। किसी घटना या स्थान के सम्बन्ध मे पढते समय बालको का ध्यान बारीकी की अनेक बातो की ओर चित्र या फोटो की सहायता से ही आकर्षित किया जा सकता है। बिना इनके बालको का ध्यान इन बारीकियो की ओर नही जा सकता। अत सामाजिक अध्ययन-शिक्षक को इनका समुचित उपयोग करना चाहिए। शिक्षको को चाहिए कि बालको को चित्र इकट्ठे करके एलबम बनाने की प्रेरणा भी दें। एलबम या चित्र-पुस्तिका बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक चित्र के नीचे उसका कुछ विवरण या शीर्षक अवश्य रहे। बालक स्वय अनेक चित्र बना सकते हैं। प्रारम्भ मे उनके चित्र अच्छे न होंगे, पर बाद में वे काफी अच्छे बनाने लगेंगे। पाठ्य-पुस्तको मे भी अनेक चित्र रहते हैं। उनकी ओर भी बालको का ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए।

४. रेडियो। आजकल रेडियो का उपयोग बहुत अधिक होने लगा है। अब तो गाँवो मे भी रेडियो पहुँच गए हैं। मनोरंजन तथा व्यापार के विज्ञापन के अतिरिक्त रेडियो की शैक्षणिक उपयोगिता भी बहुत अधिक है। इसलिए अब रेडियो स्टेशनो मे शालाओ के लिए अलग से समय देने की व्यवस्था भी है। रेडियो द्वारा शाला के लिए प्रोग्राम देने का तात्पर्य यह नहीं है कि उतने समय के लिए शिक्षक अनावश्यक है। वरन् रेडियो के इस प्रकार के प्रोग्राम उनके शिक्षण को सहायक, रुचिकर तथा उपयोगी बनाते हैं। इसमे शिक्षक की ज़िम्मेदारी भी बहुत बढ जाती है, क्योकि उसे प्रोग्राम का चुनाव तथा उसके सुनने की व्यवस्था के साथ-साथ उसका सामंजस्य अपने शिक्षण-कार्य के साथ भी जोड़ना पड़ता है।

इस सम्बन्ध मे यूनेस्को ने अपने प्रतिवेदन में कहा है कि शालाओ के लिए रेडियो प्रोग्राम बालको मे विवेकपूर्ण सुनने की आदतों का विकास करता है। यह समाज की व्याख्या शालाओं के लिए तथा शाला की व्याख्या समाज के लिए करता है। इगलैण्ड के बी० बी० सी० रेडियो स्टेशन ने भी इस कार्यक्रम के सम्बन्ध में कहा है कि शालाओ के लिए जो रेडियो कार्यक्रम दिया जाता है वह महान् पुरुषो तथा महिलाओ को कक्षा तक पहुँचाता है। इसके माध्यम से बड़े-बड़े यात्री, विशेषज्ञ और अनुभवी विज्ञान-शास्त्री बालको तक पहुँचते हैं। इनसे अच्छा सुरुचिपूर्ण संगीत, नाटक, कविता तथा बालको के लिए विशेष रूप से लिखित व्याख्या शालाओ तक पहुँचाई जाती है। ये कार्यक्रम बालको मे वर्तमान जगत् की समस्याओ तथा गतिविधियो की ओर जागृति उत्पन्न करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रेडियो कार्यक्रम शालाओ के लिए बड़े उपयोगी तथा रुचिकर होते हैं। पर इन कार्यक्रमो के

उपयोग मे सबसे बडी असुविधा इनके समय का शाला के समय तथा समय-विभाग-चक्र से सामजस्य स्थापित करने मे होती है।

५ चार्ट्स, ग्राफ तथा नक्शे आदि। सामाजिक अध्ययन मे ग्राफ बनाकर सख्यात्मक विचारो को सामाजिक जानकारी से सबद्ध किया जाता हैं। वृत्ताकार, अर्ध-वृत्ताकर, सीधी लकीर वाले या टेढी लकीरो वाले ग्राफ ही प्रमुख होते हैं। ये धन, स्थान, समय, दूरी, लम्बाई, तापमान, क्षेत्रफल, वज़न आदि की तुलना या ज्ञान कराने के लिए बनाए जाते हैं। इनका उपयोग बालको के विकास के अनुकूल होना चाहिए। चित्रो के ग्राफ सरल तथा रोचक होते हैं। इन्हे छोटे बालक भी समझ सकते हैं।

चार्ट आदि बनाना सामाजिक अध्ययन-विषय मे बडा उपयोगी है। चार्ट बनाते समय समस्या के प्रमुख तत्त्वो की ओर बालको का ध्यान जाता है तथा वे उनके आपसी सम्बन्धो को भी समझ जाते है। वास्तव मे चार्ट किसी बात के सम्बन्ध मे अनेक बातो को इकट्ठा करके उसकी पुनरावृत्ति करता है। इससे बालक के मस्तिष्क मे चार्ट के चित्र अच्छी तरह अकित होते हैं तथा उन्हे वे बातें अधिक समय तक याद रहती है, बालको को स्वय चार्ट बनाने की रुचि होती है।

चार्ट विभिन्न प्रकार के होते हैं। इनकी विभिन्नता मानव-मस्तिष्क की विभिन्नता के समान है।

नक्शो का उपयोग तो सामाजिक अध्ययन मे किया ही जाता रहा है। अभी तक अन्य साधनो की अपेक्षा नक्शो का उपयोग सामाजिक अध्ययन-शिक्षक अधिक करते रहे हैं। इतना होने पर भी नक्शो का सही उपयोग नही किया जाता। वैसे तो ग्लोब की सहायता से ससार के किसी क्षेत्र का ज्ञान अधिक स्पष्टता से कराया जा सकता है, पर नक्शो से भी ससार या उसके किसी क्षेत्र का ज्ञान कराया जा सकता है। नक्शे दूरी, स्थिति,

स्वाभाविक परिस्थितियाँ, राजनीतिक तथ्य, खनिज पदार्थ, जल-वायु, जनसख्या का वितरण आदि अनेक बातो का ज्ञान कराने मे सहायक होते हैं।

नक्शे न केवल शिक्षक द्वारा शिक्षण-कार्य मे सहायक के रूप मे उपयोग मे लाए जाने चाहिएँ, वरन् बालको द्वारा उन्हे स्वयं बनाने का अभ्यास भी कराया जाना चाहिए। इस प्रकार के रचनात्मक कार्य द्वारा बालको के मस्तिष्क मे ज्ञान स्पष्ट तथा ठोस रूप से बैठता है। नक्शो का उपयोग उनकी समझ तथा ज्ञान की वृद्धि करने के लिए भी किया जा सकता है।

६. रिकार्ड, टेप आदि। रिकार्डिग टेप, तार या तवो पर की जा सकती है। टेप पर की गई रिकार्डिग सबसे अच्छी तथा सस्ती होती है। इसे आवश्यकतानुसार उपयोग मे लाकर दुबारा रिकार्डिग के लिए भी काम मे लाया जा सकता है। तार पर की गई आवाज़ की रिकार्डिग भी प्राय. टेप पर की गई रिकार्डिग के समान होती है, पर तवे पर की गई रिकार्डिग महँगी पड़ती है तथा उसे बदलकर दूसरी रिकार्डिग नही की जा सकती।

रिकार्डिग रेडियो आदि से अधिक सुविधाजनक तथा कक्षा-शिक्षण के लिए अधिक उपयोगी है, क्योकि रिकार्ड की बातो को कक्षा मे सुविधानुसार सुनाया जा सकता है। सुनाते समय बीच-बीच में सुनाना बन्द करके व्याख्या या कथन का उपयोग भी किया जा सकता है। यह सस्ती भी है तथा बाज़ारो मे टेप की सामग्री उपलब्ध भी होती है। बालक या शिक्षक भी अपनी ध्वनि टेप-रिकार्ड से रिकार्ड कर सकते हैं।

सामाजिक अध्ययन मे टेप-रिकार्ड का उपयोग अनेक स्थलो पर किया जा सकता है। शाला मे होने वाले महान् पुरुषो के व्याख्यान, बालकों के वादविवाद, विचार-विमर्श, विविध मनो-रंजन के कार्यक्रमो आदि का टेप-रिकार्ड किया जा सकता है। टेप-

रिकार्ड की हुई बातो का उपयोग सामाजिक अध्ययन-शिक्षण मे प्रारम्भ, मध्य या अन्त मे कभी भी किया जा सकता है। यदि साधन हो तो टेप-रिकार्ड करके विभिन्न प्रकार की सामग्री पुस्तकालय की पुस्तको के समान अलमारी मे सुरक्षित रखी जा सकती है। इसका उपयोग फिर कभी भी आवश्यकतानुसार किया जा सकता है।

६ · सामाजिक अध्ययन-शिक्षण-विधियाँ

सामाजिक अध्ययन-शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य बालको को समूह तथा राष्ट्रीय जीवन मे अधिक-से-अधिक सफलतापूर्वक, बुद्धिपूर्ण तथा प्रभावपूर्ण सहयोग देने योग्य बनाना है। अत यह आवश्यक है कि शाला मे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष सामाजिक अनुभवो के अवसर बालको को प्रदान किये जायँ। फलस्वरूप हमारी आज तक चली आई प्राचीन शिक्षण-विधियाँ सामाजिक अध्ययन-विषय के उपयुक्त सिद्ध नही होगी। हम यह चाहते हैं कि शिक्षक के 'शिक्षण' की अपेक्षा बालको का 'सीखना' अधिक महत्त्वपूर्ण हो। इस प्रकार हमे अपनी शिक्षण-विधियो को बालक के प्रभावपूर्ण 'सीखने' के लिए उपयुक्त बनाना आवश्यक होगा। 'सामाजिक अध्ययन' विषय ही कुछ ऐसा है जो बालको द्वारा सीखने के लिए एव क्रियात्मक सहयोग करने के लिए आप-से-आप प्रेरणा देता है। इस विषय के शिक्षण के लिए हम निम्न विधियो का उपयोग कर सकते हैं—

१ योजना-विधि। योजना-विधि की रूपरेखा अमेरिका मे विलियम हेनरी किलपेट्रिक द्वारा सन् १९१८ मे तैयार की गई थी। यह एक ऐसी विधि है जो शिक्षण के प्राचीन ढग के दोषो को दूर करके सीखने की प्रक्रिया के आवश्यक तत्त्वो को अधिक महत्त्व देती है। स्टीवेन्सन नामक शिक्षा-शास्त्री ने योजना या प्रोजेक्ट के विचार को आगे बढाया तथा योजना की परिभाषा निम्न रूप से दी—"प्रोजेक्ट या योजना वह समस्यात्मक कार्य है जिसे स्वाभाविक परिस्थितियो मे पूरा किया जाता है।" प्रसिद्ध

शिक्षा-शास्त्री वार्सिंग ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है कि "योजना स्वाभाविक रीति से बालक द्वारा नियोजित तथा पूर्ण की हुई समस्यामूलक क्रिया की ऐसी महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक इकाई है जिसमे अनुभव की पूर्ति के लिए भौतिक साधनो तथा वस्तुओ का उपयोग आवश्यक रहता है।"

उपरोक्त परिभाषाओ से हमे पता चलता है कि प्रॉजेक्ट या योजना (क) सीखने की एक समवायित क्रिया है, (ख) स्वाभाविक वातावरण मे किया हुआ स्वाभाविक कार्य है, (ग) समस्यामूलक कार्य है, तथा (घ) स्वाभाविक रीति से उद्देश्य पूर्ण किया हुआ कार्य है।

सामाजिक अध्ययन मे अनेक प्रकार की योजनाओ का निर्माण किया जा सकता है। बालक ठोस तथा यथार्थ वस्तुओ मे रुचि रखते हैं, अतः पर्यटन की योजनाओ द्वारा बालको को आस-पास की भूमि, पहाड, पेड़-पौधे, उद्योग-धन्धे, लोगो के रहन-सहन, पशु-पक्षी तथा उनके जीवन आदि का यथार्थ तथा सूक्ष्म ज्ञान कराया जा सकता है। पर्यटन में कितना समय लगाना है, कैसे जाना है, क्या-क्या देखना है, क्या नोट करना है आदि सभी बातें बालको से विचार-विमर्श करके ही निश्चित की जानी चाहिएँ। बालकों को नगर या ग्राम की सार्वजनिक संस्थाओ की जानकारी देने के लिए भी पर्यटन आयोजित किये जा सकते हैं। यदि बालक राज्य की राजधानी के पास रहते हैं तो विधान सभा के कार्य की जानकारी के लिए भी बालकों को ले जाया जा सकता है। चुनाव की योजना भी चुनी जा सकती है। ये तो सामूहिक योजनाएँ हुईं, क्योकि इनमें पूर्ण कक्षा सम्मिलित होती है। इनके साथ-साथ व्यक्तिगत योजनाएं भी कार्यान्वित की जा सकती हैं। इस प्रकार की व्यक्तिगत योजनाएँ बालको के लिए पढ़ी गई सामग्री और भी अच्छी तरह समझने मे सहायक होती है।

बालको से जहाज, घर, महान् व्यक्तियो आदि के चित्र या मॉडल बनवाए जा सकते हैं। पढी गई कहानी या घटना के सम्बन्ध मे नाटक कराया जा सकता है। बालको को स्वय पात्र बनकर कहानी लिखने के लिए कहना, किसी पुस्तक से कहानी या घटना का विवरण पढना, कविता लिखना, वादविवाद-प्रतियोगिता आयोजित करना आदि कुछ व्यक्तिगत योजनाएं हैं जिन्हे सामाजिक अध्ययन मे आयोजित या कार्यान्वित किया जा सकता है।

योजना-विधि से निम्न लाभ हैं—

(क) इससे सामाजिक अध्ययन-विषय के शिक्षण मे रोचकता आती है।
(ख) इससे व्यक्तिगत रुचियां तथा कौशल सरलता से उत्तेजित किये जा सकते हैं।
(ग) योजना के कार्यान्वयन के समय अन्य विषयो का भी ज्ञान प्राप्त होता जाता है।
(घ) बालको मे उत्तरदायित्व वहन करना, सहयोग से कार्य करना, सहनशीलता, दृढता, नेतृत्व करना आदि गुणो का विकास होता है।
(ङ) बालक स्वय अनेक कार्य पूर्ण करते हैं, जिससे उनमें आत्म-विश्वास, आत्म-प्रकाशन आदि का विकास होता है।
(च) बालक की क्रियात्मक एव रचनात्मक प्रवृत्तियो के उपयोग के अवसर मिलते हैं।

योजना-विधि के निम्न दोष हैं—

(क) इसमे समय तथा धन बहुत व्यय होता है।
(ख) यह विधि प्राइमरी तथा मिडल शालाओ की छोटी कक्षाओ के लिए ही उपयुक्त है।
(ग) सम्पूर्ण पाठ्यक्रम इस विधि से नही पढाया जा सकता।
(घ) बहुत ही कुशल शिक्षको की आवश्यकता पडती है।

२. इकाई-विधि। सामाजिक अध्ययन मे इकाई किसी प्रकरण या विषय के सम्बन्ध में बालको के अनुभवो के सामाजिक अध्ययन-

शिक्षण के उद्देश्यो को पूर्ण करने वाले क्रमिक शृखलावद्ध विकास को कह सकते है। एक अच्छी तरह तैयार की गई इकाई का उद्देश्य सामजिक दृष्टि से अच्छे प्रकरणो तथा पठन, वस्तु-निर्माण, नाट्य-प्रदर्शन, विचारो का दर्शन तथा विचार-विमर्श आदि अनेक अनुभवों के लिए समुचित अवसर प्रदान करना है। सामाजिक अध्ययन मे इकाई भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि विभागो के अनुसार नही वनानी चाहिए, वरन् इनमे जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणो को महत्त्व देने के लिए जीवन के विभिन्न क्षेत्रो का समावेश करना चाहिए। इससे वालको को मानव-सम्वन्धो तथा सामाजिक प्रक्रियाओ का अच्छा ज्ञान होगा। इस प्रकार की कुछ इकाइयाँ कुटुम्ब-जीवन, हमारा राज्य, समाज मे जीवन, यातायात के सावन, हमारा भोजन, लोकतंत्र का विकास, आदि हो सकती हैं।

सामाजिक अध्ययन विषय की इकाई समस्या हल करने, लोकतन्त्रात्मक आचरण करने, आपसी सहयोग प्राप्त करने का कौशल, विचार-विमर्श, वस्तुओ के उपयोग आदि की क्षमता का विकास करने मे सहायक होनी चाहिए। प्रत्येक इकाई मे वालको के जीवन के महत्त्वपूर्ण तत्त्वो का समावेश अवश्य होना चाहिए। इसे जीवन से अलग केवल ज्ञान देने का सावन ही न होना चाहिए। इकाई को वालकों के अतीत के अनुभवो तथा उनकी रुचियों के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो से सम्वन्धित भी होना चाहिए।

इकाई समय, धन, समाज मे उपलब्ध साधनो आदि की दृष्टि से भी व्यावहारिक होनी चाहिए। सामाजिक अध्ययन मे इकाई-विधि से शिक्षण करते समय विभिन्न प्रकार की सामग्रियो तथा क्रियाओ, जैसे दृश्य-श्रव्य सहायक सामग्री, नाटक, वाद-विवाद, पर्यटन, जाँच आदि, का उपयोग किया जाना चाहिए।

इकाई-विधि मे किसी भी इकाई को पाँच पदो मे विभक्त करके पढाना चाहिए—(क) खोज, (ख) प्रस्तुतीकरण, (ग) तुलना, (घ) विचारो का प्रवन्धीकरण, और (ङ) प्रयोग।

इकाई-विधि के गुण निम्न हैं—

(क) इकाई से सम्बन्धित क्रियाएं करने मे वालको की रुचि रहती है तथा उन्हे आनन्द का अनुभव होता है।

(ख) प्रतिदिन के कार्य मे क्रमवद्धता रहती है।

(ग) वालको की विभिन्न रुचियो तथा क्षमताओ के अनुकूल इकाइयाँ वनाकर दी जा सकती हैं।

(घ) वालको मे सहयोग, नेतृत्व, सहानुभूति, शिष्टाचार, दूसरो के प्रति आदर आदि गुणो का विकास किया जाता है।

(ङ) विभिन्न प्रकार की सहायक सामग्री के समुचित उपयोग के अवसर उपलब्ध होते हैं।

(च) मनोविज्ञान ने प्रयोगो के आधार पर यह सिद्ध किया है कि टुकडों की अपेक्षा पूर्ण रूप से विचार करने से सरलता से तथ्यो का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इससे आपसी सम्बन्धो का ज्ञान भी अच्छी तरह हो जाता है। इकाई-विधि मे भी किसी भी प्रकरण तथा विषय पर पूर्ण रूप से विचार किया जाता है।

(छ) लोतन्त्रात्मक प्रणाली का समुचित पालन होता है।

(ज) समवाय, केन्द्रीकरण आदि इकाई-विधि मे सम्भव है।

इकाई-विधि के दोप निम्न है—

(क) इकाई के आधार पर पाठ्यक्रम कम वने हैं तथा शिक्षको को इस विधि से शिक्षण देने का प्रशिक्षण भी प्राप्त नही है।

(ख) केवल सामाजिक अध्ययन विषय को ही इकाई-विधि से पढाना उपयुक्त न होगा। शाला मे सभी विषयो को इस विधि से पढाया जाय, तभी ठीक रहता है।

(ग) इस विधि से शिक्षण देने मे सन्, स्थान, टेक्निकल शब्दावली आदि की उपेक्षा सम्भव है।

(घ) समय अधिक व्यय होता है।

३. समस्या-विधि। समस्या-विधि में बालको की बौद्धिक आवश्यकताओ का समुचित उपयोग किया जाता है। गुड नामक प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री तथा विद्वान् ने समस्या-विधि के दो रूप माने हैं—(क) सीखने की क्रिया उत्तेजित करने के लिए विवादग्रस्त तथा चुनौती देने वाली समस्याओ के हल के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली विधि। (ख) अनेक छोटी-छोटी आपस मे सम्बन्धित समस्याओं के सहयोग से किसी बडी समस्या को हल करने की विधि।

उपरोक्त परिभाषा मे हम देखते हैं कि समस्या-विधि मे जीवन से समस्याओ के हल बालक आपस मे विचार-विमर्श करके निकालने का प्रयत्न करते हैं। इस विधि मे समस्याएँ शिक्षक के पथ-प्रदर्शन मे बालकों द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं। समस्याएँ अनेक प्रकार की तथा विविध कठिनाई के स्तर की हो सकती हैं। सरल-से-सरल कठिनाई बालक के प्रश्न के रूप मे होती है। पर कई ऐसी समस्याएँ भी हो सकती हैं जो बालको के शालेय जीवन के उपरान्त भी बनी रह सकती हैं। समस्याएँ ऐतिहासिक भी होती हैं, जैसे भारत मे आर्य कैसे आये, उनके आने का क्या परिणाम हुआ, मुगल राज्य का पतन क्यो हुआ, आदि। वे नागरिक जीवन से सम्बन्धित भी होती हैं, जैसे क्या सहकारी खेती हमारे देश के लिए उपयोगी होगी, लोकतन्त्र मे सार्वजनिक संस्थाओ के अधिकार तथा कर्तव्य क्या होने चाहिएँ, आदि।

समस्या-विधि से शिक्षण करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी निष्कर्ष अन्तिम रूप से मान्य न कर लिये जायँ। विचार-विमर्श मे यदि निष्कर्ष बदलने

आवश्यक हो तो उन्हे वदलना चाहिए। समस्याओ पर विचार तो इकाई-विधि मे भी होता है, क्योकि वहाँ समस्या एक प्रकरण का स्थान ले लेती है। कभी-कभी पूर्ण वर्ष का समय भी किसी एक बडी समस्या के हल के लिए लगाया जा सकता है, जैसे भारतीय गणराज्य। पर इस प्रकार की समस्याएँ उच्च कक्षाओ के लिए ही उपयुक्त रहती हैं। किसी भी समस्या पर विचार करने के लिए निम्न विधि का उपयोग किया जा सकता है—(क) समस्या का प्रस्तुतीकरण, (ख) समस्या का विस्तार, (ग) हल के लिए प्रयत्न तथा सहायक सामग्री का एकत्रीकरण, (घ) निष्कर्ष, और (ङ) कार्यान्वियन (निष्कर्षो के आधार पर)।

समस्या-विधि के गुण निम्न हैं—

(क) यह इकाई-विधि द्वारा शिक्षण मे वडी सहायक होती है।

(ख) सामाजिक अध्ययन के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को समस्याओ के रूप मे सरलता से प्रस्तुत किया जा सकता है।

(ग) शाला मे समस्याओ के हल करने का प्रशिक्षण देकर वालको को जीवन की व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्याओ के हल का प्रशिक्षण सरलता से दिया जा सकता है।

(घ) यह उच्च कक्षाओ के लिए वडी उपयोगी है।

समस्या-विधि के दोष निम्न हैं—

(क) यह छोटी कक्षाओ के वालको के लिए उपयुक्त नही है।

(ख) कक्षा द्वारा लिये गए निष्कर्षों की उपयोगिता कभी-कभी ठीक तरह से नही आँकी जा सकती।

(ग) यथार्थ तथा वनावटी समस्याओ मे भेद करना कभी-कभी कठिन होता है, अत वनावटी समस्याओ पर भी समय तथा परिश्रम करना वेकार जाता है।

(घ) समस्या-विधि के उपयोग से हम वालको के लिए विधिवत् ज्ञान सञ्चित नही करा सकते।

(ङ) समस्याएँ बहुत सरल या कठिन होने से बालको मे समस्याओ की उपेक्षा का दृष्टिकोण विकसित हो सकता है।

(च) व्यर्थ के विचार-विमर्श या वादविवाद मे बहुत समय व्यय किया जा सकता है।

४. विचार-विमर्श-विधि। इस विधि मे बालक आपस मे वादविवाद करके या किसी बात पर खूब विचार-विमर्श करके निष्कर्षो पर पहुँचते हैं। इसमे प्रत्येक बालक अपने विचार स्वतंत्रता से व्यक्त कर सकता है। किसी को किसी का बन्धन नही होता। इस विधि का अच्छा उपयोग करने के लिए हमारी सामाजिक अध्ययन-कक्षाएँ छोटी होनी चाहिएँ या उन्हे अनेक समूहो मे विभक्त किया जाना चाहिए। इस विधि के उपयोग के लिए यह आवश्यक नही है कि विचार के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले विषय का चुनाव तथा विचार-विमर्श सभी बालको पर ही छोड दिया जाय। शिक्षक को तो आवश्यकतानुसार पथ-प्रदर्शन करना ही पडेगा। विचार या वादविवाद के लिए मुगल राज्य के पतन के कारण, चीनी सभ्यता, समुद्र-तट के लोगो का जीवन, सार्वजनिक सस्थाएँ, उनके काम आदि विषय लिये जा सकते है। विवाद या विचार-विमर्श के समय शिक्षक को अपना स्थान कमरे के किसी कोने तक ही सीमित रखना चाहिए। उसे इसमे प्रमुख भाग न लेना चाहिए। हाँ वह समूह के सदस्य के नाते समूह मे बैठकर थोडा-बहुत बोल सकता है। पर उसे आज्ञा देकर या निश्चित व्याख्या करके अपनी राय बालको पर न थोपनी चाहिए।

विचार-विमर्श-विधि के गुण निम्न हैं—

(क) बालक इसमे बड़ी रुचि लेते है।

(ख) बालको मे आपसी सहयोग से कार्य करने की आदत का विकास होता है।

(ग) बालको को अपने विचारो के प्रतिकूल विचार रखने वाले के

साथ रहने, उठने-बैठने तथा शिष्टाचार से व्यवहार करने की आदत पड़ती है।

(घ) लोकतन्त्रात्मक भावना का उचित विकास होता है।

(ङ) नेतृत्व की भावना का भी विकास होता है।

विचार-विमर्श-विधि के दोष निम्न हैं—

(क) समय अधिक व्यय होता है।

(ख) विचार-विमर्श के समय सही तथा उपयुक्त बातो की उपेक्षा तथा अनावश्यक बातो को अधिक महत्त्व दिया जा सकता है।

(ग) शिक्षक के योग्य न होने पर इस विधि का उपयोग ठीक-ठीक नहीं किया जा सकता।

(घ) पूर्व तैयारी की बहुत आवश्यकता होती है।

(ङ) छोटी कक्षाओ के लिए यह विधि अनुपयुक्त है।

उपरोक्त विधियो के अतिरिक्त पत्र-व्यवहार, प्रेस रिपोर्टिंग सर्विस आदि विधियो का उपयोग भी पाश्चात्य देशो की अनेक शालाओ मे किया जाता है। इनका उपयोग हमारी शालाओ मे भी प्रारम्भ किया जा सकता है। इगलैंड, अमेरिका आदि देशो मे जहाज तथा कारखानो के कार्यकर्ताओ से बालक पत्र-व्यवहार करते हैं। वे इन जहाजो तथा कारखानो के कार्यकर्ताओ को पत्रिकाएँ भेजते है तथा उनसे उपहारस्वरूप चीजें ग्रहण करते हैं, कभी-कभी उनमे पर्यटन के लिए भी जाते हैं। इससे बालको को अनेक कारखानो तथा स्थानो का ज्ञान हो जाता है। हमारे देश मे समुद्र के किनारे के स्थानो की शालाओ के बालक जहाजो तथा अन्य स्थानो के बालक कारखानो के कार्यकर्ताओ से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। हमारे देश मे कारखानो की बडी उन्नति हो रही है तथा इस प्रकार के सम्बन्ध सामाजिक अध्ययन-शिक्षरण के अग बन सकते हैं। इस योजना के अन्य रूप भी हो सकते हैं, जैसे पास के किसी गाँव या शहर को अपनाना तथा सम्पूर्ण शाला का उससे सम्बन्ध स्थापित करना। इनसे बालको को

गांव या शहर की जानकारी भी होगी तथा वे उस स्थान की उन्नति करने में भी सहायक होगे।

पत्र-व्यवहार मे धन अधिक व्यय होता है तथा हमारे देश की शालाएँ इतनी धनी नही है कि दूर के स्थानो से अधिक समय तक पत्र-व्यवहार द्वारा सम्बन्ध बनाए रखने मे समर्थ हो। पर आस-पास के गाँव या शहर को वे सरलता से अपना सकते हैं। ऐसे प्रयोग कई स्थानों मे किये भी गए हैं। पर अभी तक किये गए प्रयोगों का ध्येय भारत सेवक समाज या अन्य ग्राम-सुधार-सस्थाओ के कार्यक्रम पूरे करने का ही रहा है। सामाजिक अध्ययन-शिक्षण की दृष्टि से शायद ही गाँव या शहर अपनाकर कोई ज्ञान देने की योजना बनी हो।

'प्रेस रिपोर्टिंग सर्विस' भी प्रत्येक कक्षा मे व्यवस्थित की जा सकती है। कक्षा के बालको को कई दलो मे विभक्त करके फसल, बाज़ार, खेल-कूद, सार्वजनिक सस्था तथा राजनीति, मनोरजन आदि के सम्बन्ध मे खबरें एकत्रित करके प्रेस रिपोर्ट बनाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। शिक्षक तथा कुछ बालक सम्पादक का कार्य कर सकते हैं। इस प्रकार अपने गाँव या आस-पास के क्षेत्र के सम्बन्ध मे एक हस्तलिखित पत्रिका निकाली जा सकती है। बालक भोजन की कमी, घर-व्यवस्था, बेकारी, ऋण आदि की जानकारी भी इस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं। इतना ही नही, अभ्यास होने पर बालको को ससार की वर्तमान समस्याओ, जैसे स्वेज़ नहर-विवाद, सयुक्तराष्ट्र सघ आदि, पर समाचार-पत्रों से कटिंग आदि द्वारा सामग्री एकत्रित कराई जा सकती है। इसके बाद आपस मे वादविवाद होने पर कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। इस प्रकार बालको को सामाजिक अध्ययन विषय के अन्तर्गत आने वाले अनेक प्रकरणो का अच्छा ज्ञान रोचक क्रियात्मक ढंग से कराया जा सकता है।

अभी शालाओं में बहुधा हरबर्ट की पचपदी के आधार पर ही अधिकाश विषयो का शिक्षण होता है। पर सामाजिक अध्ययन-विषय के लिए हरबर्ट की पंचपदी उपयोगी नहीं होती, क्योंकि सामूहिक विचार-विमर्श

कक्षा में प्रतिदिन शिक्षण की विधि

तथा योजना बनाना इस विषय के लिए अधिक महत्त्व रखते हैं। अत सामाजिक अध्ययन-शिक्षण के लिए हम निम्न पदो को अपना सकते है—

१. खोज या क्षेत्र का पर्यवेक्षण। इस पद मे बालक पाठ्यक्रम से पढने के लिए अपना विषय निश्चित करेंगे तथा विषय से सम्बन्धित सहायक सामग्री, उपलब्ध साहित्य आदि मे विषय के सम्बन्ध मे और अधिक जानकारी प्राप्त करेंगे। इसके बाद विषय के सम्बन्ध मे वे क्या जानते हैं तथा उन्हे क्या-क्या जानना चाहिए, इन बातो से सम्बद्ध निश्चित रूपरेखा तैयार करेंगे।

२ कार्य-विभाजन। इस पद मे बालक 'विषय के सम्बन्ध मे उन्हे क्या-क्या जानना चाहिए' इसकी रूपरेखा बनाएँगे। इसके बाद कक्षा को दलो मे विभक्त करके प्रत्येक दल को निश्चित कार्य सौंपा जाता है। अपने-अपने दलो में कार्य करने हेतु जाने से पूर्व जानकारी प्राप्त करने की विधियो तथा साधनो पर सम्पूर्ण कक्षा विचार-विमर्श करती है।

३ जाँच तथा नई खोज। इस पद मे बालक विषय-सम्बन्धी जानकारी के लिए पर्यटन करके, लोगो से मिलकर, पुस्तके पढकर तथा प्रयोग करके नई खोज करने का प्रयत्न करते हैं।

४. विचार-विमर्श तथा विभिन्न क्रियाओ के निष्कर्ष। विभिन्न दल काफी समय तक जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते है। इसके बाद वे अपनी जानकारी सम्पूर्ण कक्षा के समक्ष रखते हैं। इन दलो की रिपोर्ट विभिन्न विधियो तथा तरीको द्वारा लिखी होती है। दल का मुखिया उसे सम्पूर्ण कक्षा के समक्ष प्रस्तुत करता है। सम्पूर्ण कक्षा मे इस पर विचार-विमर्श होने के बाद उसका स्वरूप निश्चित किया जाता है।

५ निष्कर्ष लिखना। वैसे तो जाँच, नई खोज तथा निष्कर्षों पर

विचार करते समय ही वहुत-कुछ लिखा जाता है, पर ग्राफ, चित्र, नक्शो आदि मे सुधार तथा आवश्यकतानुसार और वनाने का काम इस पद मे किया जाता है। यहाँ लेखन-कार्य का तात्पर्य केवल भाषा या वाक्य लिखने से ही नही है।

६. सामान्य पुनर्विचार। इस पद मे विषय के सम्वन्ध मे और भी विस्तृत दृष्टिकोण से विचार किया जाता है। कभी-कभी कई समस्याओ या वातो पर विचार करना छूट ही जाता है। उन पर इस समय विचार किया जाता है तथा आगे की समस्या या विषय के सम्वन्ध मे निर्णय लिये जाते है।

इस प्रकार उपरोक्त छः पदो मे विभाजित करके प्रत्येक विषय या प्रकरण को पूर्ण करने से वालको मे लोकतंत्रात्मक भावना, जीवन तथा आदतो का समुचित विकास किया जा सकता है।

७ : : सामाजिक अध्ययन की नवीन प्रवृत्तियाँ तथा मूल्यांकन

नवीन प्रवृत्तियाँ

आधुनिक युग परिवर्तन का युग है। जीवन के सभी क्षेत्रो मे शीघ्रता से परिवर्तन होते जा रहे हैं। सामाजिक अध्ययन के सम्वन्ध मे भी यही सत्य है। 'सामाजिक अध्ययन' पाश्चात्य देशो मे तो काफी समय से पाठ्यक्रम में स्थान पा रहा है, पर हमारे देश मे यह विषय नया ही है। अत पाश्चात्य देशो मे इस विषय के अध्ययन तथा शिक्षण के सम्वन्ध मे काफी खोज की गई है। उन देशों में इस विषय के सम्वन्ध मे जो परिवर्तन हो रहे हैं उनकाप्र भाव हमारे देश में सामाजिक अध्ययन-शिक्षण पर पड़ना स्वाभाविक ही है। सामाजिक अध्ययन-विषय के पाठ्यक्रम तथा शिक्षण-पद्धतियाँ, दोनो क्षेत्रो मे अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यहाँ हमे इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम तथा शिक्षण-विधियो मे परिवर्तन लाने मे शैक्षणिक आवश्यकताएँ तथा वाहरी प्रभाव, जैसे प्रथम तथा द्वितीय महायुद्ध, वैज्ञानिक आविष्कार आदि, सहायक रहे हैं। इन परिवर्तनो मे निम्न प्रमुख हैं—

(क) पाठ्यक्रम-सम्बन्धी नवीन प्रवृत्तियाँ

१ इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिक-शास्त्र आदि विपयो को अलग-अलग पुस्तको से न रखकर मिलाकर विस्तृत आधार वाला या समवायित पूर्ण पाठ्यक्रम बनाना।

२ इतिहास, भूगोल या अन्य विपयो के क्षेत्रो से वर्णनात्मक या सैद्धान्तिक बाते ही अधिक न लेकर इन घटनाओं तथा सिद्धान्तो के मानवीय जीवन पर पडने वाले प्रभाव को अधिक महत्त्व देना।

३ सम्पूर्ण विश्व की एकता तथा एक-दूसरे पर निर्भरता को महत्त्व देने वाले विपयो का समावेश करना।

४ वर्तमान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक बातो का ज्ञान कराने वाले प्रकरणो का समावेश करना।

५ आपसी सहयोग, विचार-विमर्श आदि के विकास मे सहायक क्रियाओ का समावेश करना।

६. प्राथमिक तथा माध्यमिक शालाओ के सामाजिक अध्ययन-पाठ्यक्रम मे सामजस्य स्थापित करना।

(ख) शिक्षण-पद्धतियो से सम्बन्धित नवीन प्रवृत्तियाँ

१ प्राचीन पुस्तक-शिक्षण-विधि को अनुपयुक्त समझना।

२. योजना, समस्या, इकाई, विचार-विमर्श आदि विधियो का उपयोग करके पाठ्यक्रम को पूर्ण करना।

३. विपय-सम्बन्धी ज्ञान-प्राप्ति के लिए केवल एक या दो पुस्तको को ही आधार न बनाना। पर्यटन, समाचार-पत्र-पठन, सिनेमा फिल्म, पत्रोत्तर, रेडियो आदि सहायक सामग्री का समुचित उपयोग करना।

४. सामाजिक साधनो का अधिक-से-अधिक उपयोग करना।

५ व्यक्तिगत सम्प्रेक्षण या अवलोकन तथा जाँच-पडताल को अधिक महत्त्व देना।

६. वर्तमान समस्याओ को हल करके समाज की उन्नति मे सहायक होना ।
७. वर्तमान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओ पर विचार-विमर्श के लिए अधिक समय देना ।

हमारे जीवन मे जाने या अनजाने मूल्याकन तो चलता ही रहता है। वास्तव मे हमारे किये गए कार्यो के मूल्याकन के बिना हमारी प्रगति का पता ठीक-ठीक नही लग पाता । अपनी प्रगति के बोध एव सन्तोष के लिए मूल्याकन आवश्यक है । मूल्यांकन शिक्षक को बालको की आवश्यकताओं, समस्याओ, क्षमताओ, कमजोरियो आदि से अवगत कराता है। मूल्याकन से प्राप्त निष्कर्ष शिक्षक के लिए अपनी शिक्षण-विधि तथा उद्देश्यो मे आवश्यकतानुसार सुधार करने मे सहायक होते हैं। सामाजिक अध्ययन-शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक ज्ञान देकर आपसी सहयोग, लोकतन्त्रात्मक दृष्टिकोण, विचार-धारा तथा आदतो का विकास करना है । फलस्वरूप अभी तक चली आई पुरानी परीक्षा-प्रणाली, जिसमे बालक रटी बातो को कागज पर उगल देते थे, सामाजिक अध्ययन के लिए उपयोगी सिद्ध नही हो सकती । सामाजिक अध्ययन का अधिक कार्य व्यावहारिक ही रहेगा । अतः सामाजिक अध्ययन-शिक्षण मे मूल्याकन करते समय हमे निम्न तीन बातो की जाँच आवश्यक रहेगी—

सामाजिक अध्ययन मे मूल्यांकन

१. बालक की सामाजिक परिस्थितियो तथा सस्थाओ-सम्बन्धी ज्ञान की जाँच ।
२ बालक के सामाजिक दृष्टिकोण, क्षमता तथा जानकारी की जाँच।
३. बालक की सामाजिक समस्याओ पर सही-सही सोचने की क्षमता की जाँच ।

इसके साथ-साथ बालको के योग्यतानुसार वर्गीकरण करने, शिक्षण के प्रभाव की जानकारी करने आदि के लिए भी मूल्याकन किया जाता

है। अच्छे मूल्याकन के लिए निम्न बातें ध्यान मे रखने योग्य हैं—

१. मूल्याकन शिक्षक तथा बालको की एक सहयोगी क्रिया होनी चाहिए।

२ मूल्याकन में शिक्षक एक महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण करता है तथा मूल्याकन किसी शिक्षक के दृष्टिकोण तथा योग्यता के स्तर से उच्च नही हो सकता। अत शिक्षक को मूल्याकन निष्पक्ष तथा सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

३ मूल्याकन को हम शिक्षण से भिन्न नही मान सकते। अच्छे शिक्षक तो शिक्षण के समय ही बालको का अनेक दृष्टिकोणो से मूल्याकन करते जाते हैं। सामाजिक अध्ययन मे बालक अनेक क्रियाएँ तथा कार्य करते हैं। ये क्रियाएँ तथा कार्य अच्छी तरह करना ही बालको का मूल्याकन हुआ।

४ विशेष क्षमता या ज्ञान के मूल्याकन के लिए वर्ष मे दो-चार बार समय निश्चित किया जा सकता है, पर साधारणत मूल्याकन प्रतिदिन, प्रति सप्ताह तथा प्रति माह लगातार चलने वाली तथा विकसित होने वाली प्रक्रिया है।

५ मूल्याकन शिक्षण के उद्देश्य सामने रखकर किया जाना चाहिए।

६. सामाजिक अध्ययन मे न केवल विषय-सम्बन्धी ज्ञान की ही जाँच की जाती है, वरन् बालक की सामाजिक मनोवृत्ति, रुचि, सहयोग मे काम करने की क्षमता आदि का मूल्याकन भी किया जाता है। बालक मे इन बातो के विकास का मूल्याकन करने के लिए शिक्षक को विभिन्न प्रकार की परिस्थितियो का आधार लेना चाहिए, जैसे सहयोग से कार्य करने की क्षमता, सामाजिक मनोवृत्ति, रुचि आदि के मूल्याकन के लिए विचार-विमर्श, समूह मे कार्य करना, पठन आदि का सहारा लिया जा सकता है। आचरण का मूल्याकन नाट्य-प्रदर्शन, खेल के मैदान, निर्माण-कार्य आदि द्वारा सरलता से किया जा सकता है। बालको की

सामाजिक मनोवृत्ति की जाँच उनके रचनात्मक कार्यों द्वारा भी की जा सकती है।

७ मूल्याकन केवल एक या कुछ विधियो, अर्थात् केवल निबन्ध रूप मे जाँच, पर्यवेक्षण, प्रत्यक्ष भेंट आदि, तक ही सीमित नही होना चाहिए। मूल्याकन के लिए अधिक-से-अधिक तथा विभिन्न विधियों का उपयोग करना चाहिए।

८. सामाजिक अध्ययन में बालको को स्वय अपने कार्य तथा प्रवृत्तियो का मूल्याकन करने की आदत का विकास भी करना चाहिए। बुनियादी शालाओं मे तो बालको को अपने प्रतिदिन के कार्य का मूल्याकन करने का अभ्यास कराया जाता है। इस अभ्यास का समुचित उपयोग सामाजिक अध्ययन-शिक्षण मे किया जा सकता है।

९ मूल्याकन की विविध रीतियो से प्राप्त सामग्री की उचित व्याख्या की जानी चाहिए। व्याख्या करते समय शिक्षको को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किस प्रकार की मूल्याकन-विधि से प्राप्त सामग्री को कितना महत्त्व दिया जाय।

१०. प्रत्येक बालक अपने साथी से भिन्न होता है तथा उसका विकास भी उसकी अपनी गति से ही होता है। अत. मूल्याकन करते समय उसकी प्रक्रियाएँ, समस्याएँ, आवश्यकताएं, व्यक्तिगत विशेषताएँ, सभी का ध्यान रखना चाहिए।

११ मूल्याकन केवल बालको का वर्गीकरण करने या वर्गोन्नति के लिए ही नही किया जाना चाहिए। मूल्यांकन के अवलोकनो का उपयोग शिक्षक को अपनी शिक्षण-पद्धति सुधारने तथा बालको के सीखने के अनुभवों मे उचित परिवर्तन करने के लिए करना चाहिए, क्योंकि बालको का मूल्यांकन शिक्षको का भी मूल्यांकन है।

सामाजिक अध्ययन मे हमे वालको के पाठ्यक्रम-सम्वन्वी ज्ञान के साथ-साथ उनकी सामाजिक मनोवृत्ति, मानसिक गुण, प्रकृति आदि की

सामाजिक अध्ययन मे मूल्यांकन की विधियाँ

जाँच करना आवश्यक रहता है। मूल्याकन से हमे यह भी पता चल जाता है कि हमारा शिक्षण कितना प्रभावपूर्ण रहा है। मूल्याकन करके हम वालको का उचित वर्गीकरण भी कर सकते है। मूल्याकन या जाँच के लिए हम निम्न विधियो का उपयोग कर सकते है—

१. निवन्ध प्रकार के प्रश्नो द्वारा मूल्याकन। हमारी शालाओ मे वहुधा इसी प्रकार के प्रश्नो द्वारा वालको की जाँच की जाती है। इस प्रकार के प्रश्नों द्वारा मूल्याकन करने से निम्न लाभ है—

(क) मूल्यांकन करने के लिए प्रश्न तैयार करने मे वहुत कम समय लगता है।

(ख) एक ही साथ वालक की अनेक प्रकार की क्षमताओ का मूल्याकन किया जा सकता है, जैसे पाठ्य-विपय का ज्ञान, भाषा की योग्यता, विचारो को क्रमवद्ध रखने की क्षमता आदि।

(ग) इससे वालको की रचनात्मक शक्ति का विकास होता है।

(घ) इसमे वालको को आत्माभिव्यक्ति के अवसर प्राप्त होते है।

(ङ) इससे वालक की प्रकरण-सम्वन्वी पूर्ण ज्ञान की जानकारी हो जाती है।

(च) इसमे वालक को विपय-वस्तु को युक्तिपूर्ण विधि से सजाने के अवसर प्राप्त होते हैं।

(छ) इसके द्वारा कम समय में ही वालको की जाँच की जा सकती है।

उपरोक्त लाभो के होते हुए भी सामाजिक अध्ययन के मूल्याकन के लिए हम केवल निवन्ध प्रकार के प्रश्नो पर निर्भर नही रह सकते। साथ ही इस प्रकार के मूल्याकन मे निम्न दोष रहते हैं—

(क) इस प्रकार के मूल्याकन द्वारा हम वालको की रुचियो, सामाजिक मनोवृत्तियो आदि की ठीक-ठीक जाँच नही कर सकते ।

(ख) इस प्रकार के मूल्यांकन मे शिक्षक का निजी मापदण्ड ही अधिक महत्त्वपूर्ण रहता है। इससे शिक्षक की परिस्थिति, जैसे सुख-दुःख, प्रसन्नता, वालक से कम या अधिक परिचय आदि, के कारण विभिन्न शिक्षको द्वारा किसी वालक की उसी सामग्री के मूल्याकन मे वहुत अधिक अन्तर रहता है। न ही विभिन्न शिक्षको, वरन् एक ही शिक्षक के विभिन्न समयो मे किये गए मूल्याकन मे भी वहुत अन्तर पाया जाता है।

(ग) इस प्रकार के मूल्याकन में केवल वालक की स्मरण-शक्ति की जाँच हो पाती है।

(घ) इसमे सयोग तथा अवसर का अधिक महत्त्व रहता है। कभी-कभी पढे हुए अग से ही प्रश्न आ जाने से वालक अच्छे नम्वर पा जाते हैं। पर इसके विपरीत भी हो सकता है। इस प्रकार वालक की तैयारी, दक्षता, कुशाग्र-वुद्धि आदि का कोई विशेप मूल्य इस निवन्ध-प्रणाली मे नही रहता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निवन्ध-प्रणाली से मूल्याकन मे गुण तथा दोप दोनों हैं। सामाजिक अध्ययन मे हम केवल निवन्ध-प्रणाली के मूल्याकन पर ही निर्भर नही रह सकते, क्योंकि इस प्रणाली द्वारा हम वालको की क्रिया तथा प्रवन्ध करने की दक्षता, सामाजिक मनोवृत्ति आदि की जाँच नही कर पाते। निवन्ध-प्रणाली के दोपो को हम निम्न उपायों द्वारा दूर कर सकते हैं—

(क) प्रश्नो की सख्या वढाकर तथा प्रत्येक प्रश्न के उत्तर मे कम ज्ञान-सामग्री को लिखने योग्य वनाकर हम सयोग तथा अवसर का तत्त्व कम कर सकते हैं।

(ख) प्रश्नो को सम्पूर्ण पुस्तक से देकर भी सयोग तथा अवसर के तत्त्व कम किये जा सकते हैं।

(ग) प्रश्नो का कम या अधिक महत्त्व वतलाने के लिए उनके पूर्णांक अवश्य लिखे जाने चाहिएँ।

(घ) उत्तर की कापियो मे कुछ ऐसी व्यवस्था की जाय कि जाँचते समय सभी वालको के एक प्रश्न के जाँचे जाने के वाद ही दूसरे प्रश्न के जाँचने का कार्य प्रारम्भ किया जाय।

(ङ) इस प्रकार की मूल्याकन-प्रणाली के साथ-साथ मूल्याकन की अन्य प्रणालियो का उपयोग भी किया जाय।

(च) इनका उपयोग उच्च कक्षाओ मे ही अधिक किया जाय।

२ वस्तुतत्रीय प्रकार का मूल्याकन। कुछ समय से शिक्षा मे वस्तुतत्रीय मूल्याकन का उपयोग वढता जा रहा है। वस्तुतत्रीय मूल्याकन मे विभिन्न व्यक्ति एक-से नम्वर ही देते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि इसमे विभिन्न व्यक्तियो की रुचियो, धारणाओ आदि का नम्वर देने पर कोई प्रभाव नही पडता। इसमे नम्वर देने या जाँचने का कार्य भी जल्दी पूर्ण हो जाता है। सही उत्तर सामने रखकर शीघ्रता से जाँच की जा सकती है। इससे पढी गई सामग्री मे से अधिक-से-अधिक सामग्री के सम्वन्ध मे प्रश्न वनाए जा सकते हैं तथा वालको की जाँच की जा सकती है। फलस्वरूप शिक्षक को यह मालूम हो जाता है कि वालको ने वास्तव मे कितना सीखा है। इसमे वालको को अधिक लिखना भी नही पडता। प्रश्नो की विभिन्नता होने के कारण वालको की रुचि भी वनी रहती है। इसमे दिये गए प्रश्नो के उत्तर निश्चित तथा सक्षिप्त होते है। कभी-कभी तो केवल निशान वनाने या गुणा का चिह्न लगाने से काम चल जाता है।

वस्तुतत्रीय प्रणाली से मूल्याकन करते समय अनेक प्रकार की प्रश्नावली का उपयोग किया जाता है। इनमे से निम्न मुख्य हैं—

(क) सत्य-असत्य प्रकार के प्रश्न। इस प्रकार के प्रश्नो का उत्तर देते समय वालक अन्दाज़ तथा अटकलबाज़ी से भी उत्तर देकर नम्वर प्राप्त करने का प्रयत्न करते है। इस प्रकार की अटकलबाज़ी तथा अन्दाज़ से वचने के लिए वालको को स्पष्ट कहा जा सकता है तथा नियम बनाया जा सकता है कि गलत उत्तर देने पर दो नम्वर तथा उत्तर न लिखने पर केवल एक नम्वर काटा जायगा। इस प्रकार वालक केवल जाने-समझे तथा विश्वसनीय उत्तर ही लिखने के लिए प्रेरित किये जा सकते हैं।

इस प्रकार सत्य-असत्य प्रकार में कुछ परिवर्तन करके वालको को गलत वात की गलती वतलाने तथा सही उत्तर लिखने के लिए कहकर कुछ भिन्न प्रश्न भी वनाए जा सकते हैं।

(ख) अनेक से एक का चुनाव वाले प्रश्न। इस प्रकार के प्रश्न के तीन-चार सम्भाव्य उत्तर दिये जाते हैं। इनमे एक सही होता है तथा उसे ही चुनने या निशान लगाने के लिए कहा जाता है। इन प्रश्नो का चयन करते समय इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि सम्भाव्य उत्तरो मे से कोई एक उत्तर तो सही हो तथा अन्य उत्तर सही उत्तर के समान जान पड़ें। इसके लिए हमे इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि सन्, व्यक्ति, घटनाएँ, स्थान आदि न मिलाए जायँ तथा अलग-अलग ही उपयोग मे लाए जायँ, जैसे संसार का सवसे अधिक कॉफी उत्पन्न करने वाला देश (१) जावा, (२) व्राज़ील (३) मेक्सिको है।

अनेक से एक का चुनाव करने वाले प्रश्नो से वालको की विवेचनात्मक शक्ति का विकास होता है। इससे उनकी स्मृति की भी जाँच हो जाती है।

कभी-कभी इस प्रकार के प्रश्नो मे एक प्रकार का परिवर्तन भी किया जा सकता है। प्रश्नो के सम्भाव्य तीन-चार उत्तरों मे से केवल एक गलत होता है तथा अन्य सभी सही होते हैं।

वालक से गलत उत्तर ढूंढने के लिए कहा जाता है। इस प्रकार के प्रश्नो के और भी कई रूप हो सकते है।

(ग) सयोजन के प्रश्न। इस प्रकार के प्रश्नो का उपयोग वहुधा किया जाता है। इनमे दो स्तभो मे दो प्रकार की चीजें दी जाती हैं। एक स्तम्भ मे शब्द, वाक्याश या कोई कथन दिये रहते हैं। इन्हे दूसरे स्तम्भ मे दी गई वातो से सही-सही मिलान करके जोडना पडता है। इस प्रकार के प्रश्न देते समय हमे इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि शब्दो या कथनो की सूची वहुत लम्वी न हो, क्योकि सूची वहुत लम्वी होने से अधिक समय व्यर्थ व्यय होने की सम्भावना रहती है। इसके साथ-साथ दोनो स्तम्भो मे एक ही प्रकार की वाते—जैसे स्थान या सन् या व्यक्तियो से सम्वन्धित वातें—होनी चाहिएँ। दूसरे स्तम्भ मे पहले स्तम्भ से कुछ वाते अधिक होनी चाहिएँ। इसका एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

पहला स्तम्भ	दूसरा स्तम्भ
१ ग्रीक लोग	१ धार्मिक, सीधे तथा सरल होते हैं।
२ रोमन लोग	२. मृतको को मसाले मे रखते थे।
३ मिश्रवासी	३ जनतत्र का सवसे पहले प्रयोग करने मे सफल हुए।
४ भारतवासी	४ अतीत-विषयक वातो को पसन्द करते थे।
	५ ईश्वरवादी थे।

इस प्रकार प्रश्नो मे भी परिवर्तन करके वालको से किसी एक वात के सम्वन्ध मे अनेक उत्तर देने के लिए कहा जा सकता है। नक्शो तथा फोटो आदि का उपयोग भी इस प्रकार के प्रश्नो मे किया जा सकता है।

(घ) पूर्ति प्रश्न। ये वहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न माने जाते हैं, क्योंकि

इनके हल के लिए बालकों को सही उत्तरो का ज्ञान होना आवश्यक है। इनके जाँचने की सुविधा के लिए खाली स्थान दाहिनी या बाईं ओर छोड़ना चाहिए।

इस प्रकार के प्रश्नो मे भी परिवर्तन करके विविध प्रकार के प्रश्न बनाए जा सकते हैं।

उपरोक्त प्रश्नो के अतिरिक्त वर्गीकरण के प्रश्न, क्रम-स्थापना के प्रश्न आदि भी दिये जा सकते हैं। पर इन सभी प्रकार के प्रश्नो का चयन बड़ी सावधानीपूर्वक करना आवश्यक है। इनके हल से सम्बन्धित निर्देश भी बड़ी स्पष्ट तथा सरल भाषा मे दिये जाने चाहिएँ।

३. प्रामाणिक वस्तुतंत्रीय मूल्याकन। आजकल वस्तुतत्रीय प्रणाली द्वारा मूल्याकन का बड़ा चलन है, क्योंकि इससे बालकों का उचित मूल्याकन किया जा सकता है। आजकल अन्य विषयो के समान सामाजिक अध्ययन के लिए भी प्रामाणिक वस्तुतत्रीय प्रश्नावली तैयार की जाने लगी है। प्रामाणिक वस्तुतत्रीय प्रश्नावली तैयार करने मे काफी समय तथा परिश्रम लगता है। पर एक बार विधिवत् तैयार हो जाने के उपरान्त इनका अधिक-से-अधिक क्षेत्रो मे उपयोग किया जा सकता है। प्रामाणिक वस्तुतत्रीय प्रश्नावली तैयार करने के लिए निम्न विधि अपनाई जाती है—

(क) परीक्षण का उद्देश्य निश्चित करना।

(ख) परीक्षण के उद्देश्य से सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित करना।

(ग) प्राप्त आँकड़ो को वस्तुतत्रीय प्रश्नावली के रूप मे गठित करके निश्चित आयु के बालको की काफी संख्या पर प्रयोग करना।

(घ) प्रयोग से प्राप्त उत्तरो का परीक्षण।

(ङ) परीक्षण मे सगति-मूल्य, कठिनाई-मूल्य, सह-सम्बन्ध-मूल्य आदि द्वारा बनाई गई प्रश्नावली की विविवता, विश्वसनीयता, आत्म-

सगति आदि की जाँच की जाती है। इन सब बातो की जानकारी मे काफी समय लगता है तथा अनेक विधियो का उपयोग किया जाता है।

इस प्रकार कई महीनो के परिश्रम से प्रामाणिक वस्तुतत्रीय प्रश्नावली तैयार की जाती है। एक बार प्रामाणिक वस्तुतत्रीय प्रश्नावली तैयार हो जाने पर उसका उपयोग सरलता से किया जा सकता है।

४. सप्रेक्षण या अवलोकन द्वारा मूल्याकन। प्राथमिक शालाओ मे सप्रेक्षण ही मूल्याकन की प्रमुख विधि होती है। यदि प्रतिदिन वालको का अवलोकन करके उसका रिकार्ड रखा जाय तो वालको के विकास का ऐसा चित्र या खाका शिक्षक को प्राप्त होता है जो किसी अन्य विधि से प्राप्त होना वडा कठिन है। चूंकि सामाजिक अध्ययन में विभिन्न प्रकार की क्रियाओ तथा कार्यों द्वारा वालको को अनेक प्रकार के अनुभव कराए जाते हैं, अत सप्रेक्षण या अवलोकन का इस विषय मे वडा उपयोग तथा महत्त्व है। वालको के सामूहिक कार्य करते समय, विचार-विमर्श करते समय, समस्याओ के हल के समय तथा नवीन साधनो की सहायता से ज्ञान-प्राप्ति के समय उनका अवलोकन किया जा सकता है। किसी विशेष कौशल, प्रवृत्ति या विचार-सम्वन्धी जाँच के लिए विशेष प्रकार के अनुभव देने की व्यवस्था करके भी शिक्षक उनका पता लगा सकता है। इन विभिन्न परिस्थितियो मे वालको का व्यवहार ही मूल्याकन का आधार होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सप्रेक्षण अनेक प्रकार की परिस्थितियो में किया जा सकता है। पर्यटन, नाट्य-प्रदर्शन, पठन, खेल आदि के समय भी सप्रेक्षण द्वारा अनेक वातो का पता लगाया जा सकता है।

सप्रेक्षण से शिक्षक वालको की रुचियो, विचारो, सामाजिक

मनोवृत्तियो, कार्यक्षमता, सवेगात्मक विकास, अवधानशक्ति, उत्तरदायित्व-वहन आदि अनेक वातो का पता लगा सकते हैं।

शिक्षको को सप्रेक्षण या अवलोकन से प्राप्त सामग्री से निष्कर्ष निकालते समय इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि एक ही प्रकार के आचरण विभिन्न वालको के सम्वन्ध मे विभिन्न वातो का ज्ञान करा सकते हैं। वालक विभिन्न होते है तथा उनके एक ही प्रकार के कार्य विभिन्न प्रतिक्रिया का परिणाम हो सकते हैं; जैसे एक वालक मेहनती होने के कारण ही किसी समस्या के हल करने मे रुचि रखता हो तो अन्य केवल उस समस्या के हल न कर सकने से होने वाली हानि के डर से ही रुचि लेता हो। वालक आपस मे सहयोग से इसलिए भी कार्य कर सकते हैं कि उनमे सहयोग से कार्य करने की आदतो का उचित विकास हो रहा हो, या कुछ वालक केवल अपनी मेहनत वचाकर किसी तरह आगे बढ़ने के लिए भी सहयोग से कार्य करते हो। इन सब वातो की जानकारी के लिए शिक्षक का सतर्क तथा मेहनती होना आवश्यक है।

सप्रेक्षण या अवलोकन लिखित विधिवत् या अवसर मिलने पर अलिखित हो सकता है। लिखित विधिवत् सप्रेक्षण अधिक उपयोगी होता है तथा उसे भविष्य मे भी उपयोग मे लाया जा सकता है। पर हमे यह याद रखना चाहिए कि केवल आचरण का मूल्याकन करने के लिए ही सप्रेक्षण न करना चाहिए। इसका तो सीखने के विस्तृत क्षेत्र पर उपयोग करके आचरण-सम्वन्धी निष्कर्ष भी निकाल लेना चाहिए। संप्रेक्षण का लेखा रखते समय इस वात की भी सावधानी रखनी चाहिए कि वालक जो कुछ करते हैं वही लिखा जाय, न कि शिक्षक की प्रतिक्रिया।

५. प्रत्यक्ष भेंट द्वारा मूल्याकन। प्रत्यक्ष भेंट विधिवत् पूर्व-निश्चित

तथा अवसर मिलने पर साधारण रूप से, दोनो प्रकार की हो सकती है। दोनो प्रकार की भेंट बालक के सामाजिक ज्ञान का मूल्याकन करने मे सहायक होती है। साधारण तौर पर अवसर आने पर की गई भेंट तात्कालिक समस्याओ या कठिनाइयो के हल के लिए उपयोगी होती है। पर विधिवत् की जाने वाली भेंट में पहले तैयार किये गए प्रश्न, रेटिंग स्केल, चेक लिस्ट आदि का उपयोग किया जाता है। पर हमे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भेंट के समय बालक को स्वतन्त्र रहना चाहिए तथा शिक्षक या भेंट-कर्त्ता से उसका सम्बन्ध अच्छी तरह स्थापित हो जाना चाहिए। शिक्षक को बालक के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार भी करना चाहिए। लिखित प्रत्यक्ष भेंट के अभिलेख का उपयोग भविष्य मे भी आवश्यकतानुसार किया जा सकता है।

६ डायरी द्वारा मूल्याकन। सामाजिक अध्ययन मे बालको के उचित मूल्याकन के लिए बालको के व्यक्तिगत तथा सामूहिक अभिलेख या डायरी का उपयोग किया जा सकता है। व्यक्तिगत डायरी मे तो बालक की अपनी योजनाएँ, कार्य तथा प्रतिक्रियाएँ रहती हैं, पर सामूहिक या कक्षा-डायरी मे सम्पूर्ण समूह या कक्षा की प्रतिक्रियाओ, योजनाओ तथा कार्यों का विवरण भी रहता है। प्राथमिक कक्षाओ मे बालको की लेखन-क्षमता का अधिक विकास नही हो पाता, अत डायरी-लेखन के लिए चित्रो का उपयोग कराया जा सकता हैं।

७ क्रियाओ-सम्बन्धी अभिलेखो द्वारा मूल्याकन। इस प्रकार के अभिलेखो मे बालको द्वारा की गई क्रियाओ तथा आचरण का विवरण रहता है। चूंकि इनमे अधिक लिखना पडता है तथा समय भी अधिक लगता है, अत इनके लिखने की सरल विधि निकालनी चाहिए। कुछ शिक्षक रजिस्टर मे प्रत्येक बालक के नाम से एक पृष्ठ निश्चित करके प्रतिदिन बालको द्वारा की गई क्रियाएँ

तथा आचरण-सम्बन्धी बातें लिख लेते हैं। इन अभिलेखों में आचरण-सम्बन्धी दो या तीन बातों का समावेश ही होना चाहिए, नही तो इसे प्रतिदिन भरने मे बहुत अधिक समय व्यय होगा।

उपरोक्त मूल्याकन-विधियो के अतिरिक्त केस स्टडी, चार्ट तथा चेक लिस्ट, प्रश्नावली आदि अनेक विधियो का उपयोग भी बालकों के उचित मूल्याकन के लिए किया जा सकता है।

अध्याय ६

संगीत-शिक्षण

हमारे देश मे प्राथमिक शालाओ मे सगीत-शिक्षण अभी कुछ ही वर्षों से प्रारम्भ हुआ है। वालको को लय तथा सगीत अच्छा लगता है। चार-पाँच वर्ष की अवस्था से ही वालक-वालिकाओ को तुकवन्दी या लयात्मक वाक्य प्रिय लगते हैं। छोटे वालक-वालिकाओ को सगीत-शिक्षा देने का कार्य

महत्त्व

उतना ही कठिन है जितना कि घर मे उन्हे भापा या वोलना सिखाने के लिए माँ-वाप का कार्य। एक दृष्टि से माँ-वाप का भापा या वोलना सिखाना अपेक्षाकृत सरल है, क्योकि वालक के आस-पास के सम्पूर्ण वातावरण मे जो कुछ भी वोला जाता है वह विश्वसनीय रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उसका स्तर तथा मात्रा वालक की अवस्था के अनुकूल होती है। सगीत के सम्वन्ध मे यह नही कहा जा सकता, क्योकि वालक अपने आस-पास ऐसा सगीत सुनता रहता है जो केवल प्रौढो के लिए ही उपयोगी रहता है तथा समुचित रूप से केवल उनकी ही समझ मे आता है। ऐसा सगीत वालको की समझ मे भी नही आता। सगीत एक मातृभापा के समान है, पर वालक जो सगीत वचपन मे अपने आस-पास सुनता रहता है वह न तो भापीय रहता है और न मात्रीय। इस संगीत मे वालक के दृष्टिकोण का कोई विचार ही नही किया जाता।

इतने प्रतिकूल वातावरण तथा परिस्थितियो मे हमे वालक-वालिकाओ का सगीत-शिक्षण प्रारम्भ करना पडता है। पर हमे यह भी मानना पडेगा कि इतनी प्रतिकूल परिस्थितियो के वाद भी हमारे पास

बालक की सगीत-सम्बन्धी स्वाभाविक रुचि रूपी पूंजी रहती है। हमे इस स्वाभाविक पूंजी का समुचित उपयोग करना चाहिए। हम बहुधा यह देखा करते है कि जब कभी भी बालक अपने आस-पास संगीत या लयात्मक तुकबन्दी सुनता है तो वह उसके बिना समझे ही उससे अपना सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश करता है तथा आनन्दित होता है। आठ या दस साल के बच्चे तो कभी-कभी एक-सी ध्वनि से अन्त होने वाले शब्द कहकर तुकबन्दी करने का प्रयत्न करते है। यह दूसरी बात है कि इस तुकबन्दी में कोई अर्थ न रहता हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि छोटे बालको को लय, तुक तथा संगीत मे स्वाभाविक रुचि रहती है। वे स्वर के उतार-चढ़ाव को समझते है।

बालको मे सगीत-सम्बन्धी रुचि के होते हुए भी अभी तक इस विषय के शिक्षण की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। आज इस विषय के पाठ्यक्रम मे जुड़ने के बाद भी शिक्षक इसकी ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। इसके अनेक कारण हैं, जैसे शालाओं मे संगीत-शिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध न होना, शिक्षको की स्वय इस ओर रुचि न होना, सगीत-शिक्षण मे उनका प्रशिक्षण न होना, आदि। पर सगीत शाला के पाठ्यक्रम का एक उपयोगी तथा आदर्श विषय है। सगीत बालकों को आपसी सहयोग से कार्य करने के अवसर प्रदान करता है तथा किसी कार्य को स्वत प्रारम्भ करके पूर्ण करने की आदतो का विकास करता है। सगीत-शिक्षण तो ऐसे शिक्षको के लिए भी लाभकारी होगा जो इस दिशा मे कम ज्ञान रखते हैं, क्योकि बालको को सिखाते-सिखाते वे स्वयं सगीत का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे देश मे तो सगीत का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। हमारे भारतीय जीवन मे तो सगीत को इतना अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है कि दिन-रात के चौबीस घण्टों को स्वर, ताल, राग-रागिनियो आदि के आधार पर विभाजित किया गया है, जैसे ब्राह्म-मुहूर्त मे भैरव, प्रात-काल मे भैरवी, संध्या मे साम कल्याण, दोपहर के बाद पीलू, मध्य-रात्रि

मे विहाग आदि । इतना ही नही, वर्ष के वारह मासो के लिए राग-रागिनियाँ निश्चित थी, जैसे चैत मे राम-गाथा, वर्षा ऋतु मे मल्हार और कजरी, गरमी मे जाँतसरी, फाल्गुन मे कृष्ण-गाथा आदि । हमारे दैनिक जीवन की अनेक वातो के लिए भी सगीत-विधान का स्वरूप निश्चित किया गया है, जैसे वच्चों को सुलाने के लिए लोरी, जगाने के लिए प्रभाती, जोश लाने के लिए विरुदावली, विपत्तिकाल मे मृत्युजय, विवाह मे मगलगान आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे पूर्वजो ने न केवल वालक-वालिकाओ की शिक्षा वरन् सम्पूर्ण जीवन मे सगीत की उपयोगिता को समझकर उसे समुचित स्थान दिया। प्राचीन काल मे दैनिक शिक्षण का प्रारम्भ सगीत से ही होता था । आश्रमों में शिक्षण तथा दिन के अन्य कार्यक्रम वेदमन्त्रो से प्रारम्भ किये जाते थे । वैसे तो हमारी वुनियादी शालाओ का कार्यक्रम भी प्रार्थना से ही प्रारम्भ होता है, पर आज सगीत केवल कहने तथा सुनने के लिए ही रह गया है। उसका वास्तविक महत्त्व अव उतना नहीं रहा । कुछ अभिभावक तथा शिक्षक तो सगीत-शिक्षण को समय की वरवादी करने वाला समझते हैं। इसलिए वे इस विषय के शिक्षण के लिए शाला का ऐसा समय देना चाहते है जो सवसे अधिक अनुपयोगी हो। सगीत की ऐसी उपेक्षा वास्तव मे हानिकारक है ।

हमे अपनी शालाओ मे सगीत-शिक्षण की ओर समुचित ध्यान देना चाहिए तथा इसकी उचित और अच्छी व्यवस्था करनी चाहिए। हमे अपनी शालाओ मे निम्न वातो के कारण सगीत-शिक्षण पर उचित ध्यान देना चाहिए—

१ सगीत हमारी सस्कृति तथा सभ्यता के विकास मे वड़ा सहायक रहा है।

२ सगीत मे हमे अपने समाज के विचारो की झाँकी मिलती है ।

३. सगीत सौन्दर्य का एक पूर्ण रूप है ।

४. सगीत न केवल हमे प्रसन्नता देता है, वरन् सम्पर्क मे आने वाले सभी व्यक्तियो के हृदय को प्रसन्नता से भर देता है ।

५. सगीत आपसी सहयोग से कार्य करने का अति उत्तम साधन है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सामूहिक सगीत से सामाजिक भावनाओ का प्रसार होता है।
६. सगीत हमारे अवकाश के समय का सदुपयोग करने का उत्तम साधन है।

संगीत-शिक्षण के उद्देश्य

हम अपनी बुनियादी या अन्य शालाओं मे संगीत के लिए कितना ही कम या अधिक समय दे, पर हमारे सगीत-शिक्षण के निम्न उद्देश्य होने चाहिएं—

१. बालको मे कान से दूसरो का संगीत सुनकर गाने की क्षमता का विकास करना।
२. अच्छे मधुर स्वर से गाने की क्षमता बढाना।
३ लययुक्त राग से पढने की क्षमता की वृद्धि करना।
४. राग याद रखने की आदतों का विकास करना।

संगीत-शिक्षण में ध्यान देने योग्य बातें

१. प्रारम्भिक कक्षाओ मे संगीत तथा खेल एक साथ कराए जाने चाहिएँ।
२. संगीत मे स्वर ही वस्तु होता है, पर भाषा में ऐसा नही होता। जब हम 'तीन रुपये' कहते हैं तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि तीन रुपये की आवाज़ जो हमने निकाली वह तीन तथा रुपया नामक वस्तुओ के लिए निश्चित की गई आवाज़ ही हमारे द्वारा निकली। पर संगीत मे तो जो स्वर निकलते हैं वे स्वयं वस्तुएँ होती हैं। अतः संगीत-शिक्षण के समय हमारा ध्येय बालक-बालिकाओ में स्वर निकालने तथा उनका आनन्द लेने की क्षमता का विकास करना होना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि सगीत मे हमे बालको को राग या स्वर का स्वेच्छाचारी अर्थ नही बतलाना चाहिए और न स्वेच्छाचारिता से उन्हे रागो का

ज्ञान देना चाहिए ।

३. वालक डिजाइन-निर्माण करना चाहते हैं । उनकी रचनात्मक प्रकृत्ति होती है, अत. यदि वालक-वालिकाएँ स्वय अपने ही स्वर या राग निर्मित कर सके तो उन्हे इसके लिए प्रेरित करना चाहिए । यह उसी प्रकार होना चाहिए जिस प्रकार हम उनसे नई-नई रचनाएँ भाषा के घण्टे मे लिखवाते हैं ।

४. रेडियो, ग्रामोफोन आदि की पहुँच अब गाँवो मे होने लगी है । अत संगीत-शिक्षण मे हमे इनकी सहायता भी लेनी चाहिए ।

५ गाँव या शहर के सगीतज्ञो के सम्पर्क मे भी वालक-वालिकाओ को आने देने के अवसर मिलने चाहिएँ । पर इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि इनके दोषो का अनुकरण वालक-वालिकाएँ न करें तथा सगीत का बुरा प्रभाव शाला तथा वालको पर न पडे ।

६ शाला मे सहज उपलब्ध या समाज मे सरलता से प्राप्त होने वाले वाद्यो का उपयोग ही अधिक किया जाय, जैसे ढोलक, मजीरा, एकतारा, झाँझ, दण्डताल, तवला, हारमोनियम आदि ।

७ वालको को सरल, सुन्दर, उपदेशपूर्ण पद सग्रह करने के लिए प्रेरित करना चाहिए । इन पदो का अवसर तथा राग-रागिनियो के अनुसार वर्गीकरण करना चाहिए ।

८. शिक्षक को स्वय उचित राग, स्वर आदि मे गाना तथा वजाना चाहिए तथा इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि वालक उसका ठीक-ठीक अनुकरण करें ।

९ आवश्यकतानुसार सामूहिक गान, नाच, तालियो आदि का आयोजन भी शालाओं मे किया जाना चाहिए । इसके लिए गाँव की वाल-मण्डलियाँ, भजन तथा कीर्त्तन-मण्डल, रामायण-सभा आदि का आयोजन किया जा सकता है ।

१०. पर्व, त्योहार, सार्वजनिक समारोह आदि के अवसरो पर सगीत, नाटक, प्रहसन, कविता-पठन आदि का उपयोग भी लाभकारी होगा ।

बुनियादी शिक्षा मे समाज के सभी सांस्कृतिक पर्वों को शाला में मनाने का आयोजन आवश्यक समझा गया है। इन पर्वों को मनाते समय वालक, शिक्षक तथा ग्राम-समाज के सदस्य एक होकर अपने को समाज का अग मानते हैं। इस प्रकार समाज शाला की ओर वढता है तथा शाला समाज का अंग वन जाती है। साथ ही वालक भी समाज के त्यौहारो तथा संस्कृति से परिचित हो जाते हैं।

संगीत-शिक्षण का बुनियादी शिक्षा मे स्थान

बुनियादी शिक्षा पाँच प्रकार के अभ्यासो के आधार से सभी ज्ञान देने पर वल देती है। इन पाँच प्रकार के अभ्यासो मे रचनात्मक तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का अभ्यास भी एक है। इसमे खेल-कूद, नृत्य, संगीत, नाटक, सामाजिक, धार्मिक तथा सास्कृतिक उत्सव मनाना, साहित्य-सृजन करना आदि शामिल हैं। इसके द्वारा मातृ-भापा का अच्छा ज्ञान, राष्ट्र-भापा का काम चलाने योग्य ज्ञान, कला तथा संगीत मे सुरुचि का विकास तथा मनोरंजन के लिए सगठन आदि गुणों का विकास किया जाय। इस अभ्यास से वालक-वालिकाओ की कलात्मक प्रवृत्तियो का विकास करने की अपेक्षा की जाती है।

संगीत तथा सास्कृतिक कार्यक्रमो के लिए बुनियादी शालाओं मे समय-समय पर नाटक, गायन, वादविवाद, महान् पुरुप-दिवस, जयन्तियाँ, पुण्य तिथियाँ मनाना तथा अन्य सास्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। इसके लिए शाला मे प्रति सप्ताह वाल-सभा की वैठक होती है। इस वाल-सभा की व्यवस्था वालकों के हाथो मे होती है। शिक्षक तो केवल मार्ग-प्रदर्शन का काम करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बुनियादी शालाओ में संगीत तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमो का वड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अध्याय ७

शारीरिक शिक्षा-शिक्षण

हमारे जीवन में स्वास्थ्य का बहुत अधिक महत्त्व है। अस्वस्थ व्यक्ति न केवल स्वय अपने लिए ही भार है, वरन् वह कुटुम्ब और समाज के विकास मे भी बाधक होता है। अत यदि हम यह कहे कि स्वास्थ्य ही हमारी व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति का आधार है तो कोई अत्युक्ति न होगी। हरबर्ट स्पेंसर ने इसीलिए कहा है कि "अच्छा प्राणी होना जीवन की सफलता की प्रथम आवश्यकता है और अच्छे प्राणियो का राष्ट्र बनाना राष्ट्रीय उत्थान की प्रथम शर्त है।"

शारीरिक शिक्षा का अर्थ तथा महत्त्व

हम देखते हैं कि प्राचीन काल से मानव की अच्छे स्वास्थ्य तथा स्वस्थ जीवन व्यतीत करने की अभिलाषा रही है। उसे बीमारी तथा मृत्यु से डर लगता रहा है तथा आज भी डर लगता है। स्वास्थ्य उसके इस डर को दूर करता है तथा जीवन को पूर्ण बनाता है। स्वास्थ्य नाश की गति को कम करके मृत्यु को दूर रखता है। इसीलिए अतीत काल से मानव स्वास्थ्य बढाने की विधियाँ खोजता रहा है तथा योजनाएँ बनाता रहा है। इसीलिए जडी-बूटियो की खोज की गई तथा इसी कारण हजारो-लाखो दवाखाने तथा अस्पताल खोले गए। इतना ही नहीं, ससार के प्राय सभी धर्मो मे स्वास्थ्य-वृद्धि के लिए जनता की सेवा एक धार्मिक कार्य माना गया है।

शारीरिक शिक्षा मे व्यक्ति या बालक के मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उपाय ही शामिल हैं। प्राचीन काल मे व्यक्ति या तो

जीवित रहता था या मृत्यु को प्राप्त होता था। पर वर्तमान काल मे इन दोनो आखिरी सीमाओ के बीच देश, काल तथा परिस्थितियो के अनुसार विभिन्न श्रेणियां भी हो गई है। वर्तमान सभ्यता की परिस्थितियां, जैसे घने बसे शहर, व्यक्ति को एक ही स्थान पर अचल बिठाए रखने वाले उद्योगों की वृद्धि, मानसिक कार्य की वृद्धि, स्वाभाविक विकास मे बाधक अनेक अवसर तथा परम्पराएँ, जीवन की गतिशीलता आदि, सभी शारीरिक शिक्षा का महत्त्व बढ़ाती हैं तथा इसे और भी अधिक आवश्यक बनाती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान विषम परिस्थितियो मे व्यक्ति के मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य की वृद्धि के लिए शारीरिक शिक्षा बहुत आवश्यक है।

शारीरिक शिक्षा बालक की शिक्षा का एक अंग ही है। कोई भी शिक्षा, जो बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा अन्य प्रकार की शिक्षा से शारीरिक शिक्षा को अलग रखती है या इसकी उपेक्षा करती है, अपूर्ण है और पूर्णरूपेण उपयोगी सिद्ध नही हो सकती। शिक्षा को तो व्यक्ति के सभी पहलुओ का विकास करने योग्य होना चाहिए। अत. यह आवश्यक है कि बुद्धि, मन, शरीर, आत्मा, चरित्र सभी को एक-दूसरे से सम्बन्धित स्वीकार किया जाय। इसीलिए तो आजकल शिक्षा मे हस्तकार्य तथा शिल्प-शिक्षण को अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है। हमारी बुनियादी शिक्षा तो उपयोगी उत्पादक हस्तकार्य के माध्यम से ही शिक्षा देने के पक्ष मे हैं। शारीरिक शिक्षा बालक के स्नायु तथा मांसल नियन्त्रण-शक्ति का विकास करती है। वास्तव मे बालक की शारीरिक स्थिति के आधार पर ही हम उसकी बौद्धिक शिक्षा का भवन-निर्माण कर सकते हैं। अत. यह आवश्यक है कि बालक को बचपन से ही, जैसे वह शाला जाना प्रारम्भ करता है, शारीरिक शिक्षा का ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। इतना ही नही, शारीरिक शिक्षा उसके सम्पूर्ण शालेय जीवन तक दी जानी चाहिए। शालाओ में शारीरिक शिक्षा की आवश्यकता इसलिए भी है कि यहाँ बालक-बालिकाएँ कक्षा मे अनुशासन तथा प्रबन्ध आदि के दबाव के कारण

ऐसी स्वतत्र शारीरिक क्रियाएँ नही कर पाते जो वे बचपन मे घरो मे दौडकर, खेलकर, आपस मे लड-भिडकर करते हैं। अत यह आवश्यक है कि शाला के इस नियत्रण से होने वाली हानियो की पूर्ति शारीरिक शिक्षा द्वारा की जाय। हममे से बहुत से व्यक्ति यह सोच सकते हैं कि शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रखने तथा उससे सम्बन्धित बातो की व्यवस्था करने का कार्य अस्पतालो तथा डॉक्टरो का है। यह ठीक है, पर डॉक्टरो तथा अस्पतालो को तो प्रत्यक्ष रूप से बीमारो या विभिन्न बीमारियो के शिकार व्यक्तियो की देख-रेख करने तथा उन्हे स्वास्थ्य-लाभ कराने का काम ही अधिक करना पडेगा। पर ये बीमारियाँ अनेक प्रकार की बुरी तथा अस्वस्थ आदतो के कारण होती हैं। शिक्षक होने के नाते हमारा यह कर्तव्य है कि बालको मे इस प्रकार की बुरी अस्वस्थ आदतो का विकास होने ही न दें। यह कार्य हम शारीरिक शिक्षा द्वारा सरलता से कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते है कि शालाओ मे शारीरिक शिक्षा बडी आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है।

शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य

अधिकाश बालको के शारीरिक दोषो के लिए शाला मे स्वास्थ्य सम्बन्धी बातो की उपेक्षा ही एक प्रमुख कारण होता है। अनेक अभिभावक स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातो को जानते-समझते नही हैं तथा कुछ जो जानते-समझते हैं वे इनको कार्यान्वित करने के उपाय नही जानते। वे समाज मे उपलब्ध साधनो का उपयोग भी अपने या बालको के स्वास्थ्य-लाभ के लिए नही कर पाते। अत घरो मे बालको के स्वास्थ्य की देख-रेख अच्छी तरह नही हो पाती। इन सब कारणो से हमारी शालाओ मे शारीरिक शिक्षा के निम्न उद्देश्य होने चाहिएँ—

१. बालक-बालिकाओ को अपना स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए आवश्यक बातो का ज्ञान कराना।

२ बालक-बालिकाओ मे ऐसी अच्छी आदतो का विकास करना जो

न केवल शालेय जीवन वरन् उसके बाद के जीवन मे भी उन्हें स्वस्थ तथा शक्तिशाली वनाए रखें।

३. वालक-वालिकाओ के अभिभावको तथा समाज के लोगो को स्वास्थ्य-सम्वन्धी वातें वतलाकर ऐसा प्रभावित करना कि वे अपने वच्चो मे स्वास्थ्य-सम्वन्धी अच्छी आदतो तथा विचार-धाराओं को विकसित करने मे सहायक सिद्ध हो।

४. समाज तथा व्यक्ति के भविष्य को स्वास्थ्यवर्धक बनाने मे सहायक होना, जिससे आगे की पीढ़ियाँ स्वस्थ तथा वलशाली हो।

पाश्चात्य देशो मे निम्न तीन प्रकार की शारीरिक शिक्षा-प्रणालियाँ विकसित हुई हैं—

१. स्वीडिश प्रणाली। लिंग तथा उसके समर्थको द्वारा चलाई गई। इसका प्रमुख ध्येय वलशाली, देश-भक्त नागरिक तैयार करना था। इसमे खेल के लिए कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नही था।

२. जर्मनी की जिमनेस्टिक प्रणाली। गट्सन्नथ, जॉन आदि द्वारा प्रचलित की गई। इसका उद्देश्य भी वलशाली, देशभक्त नागरिक तैयार करना था। इसमे खेल का स्थान महत्त्वपूर्ण नही था।

३. अग्रेज़ो की खेल-कूद प्रणाली। यह अँग्रेजी विश्वविद्यालयो तथा पब्लिक शालाओं मे प्रचलित हुई।

हमारे देश मे भी अनेक देशीय प्रणालियाँ प्रचलित रही है, जैसे मलखम, कुश्ती, दण्ड-बैठक, सूर्य-नमस्कार, आसन आदि, जिनका समुचित उपयोग हमारी भारतीय शालाओ मे किया जा सकता है।

शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत आने वाली क्रियाओ को साधारणतः हम दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं—

१. केलिस्थेनिक्स। इसके अन्तर्गत हाथ, पैर, गरदन, कमर आदि की क्रियाएँ, डम्वल, देशी मुद्गल, रिंग, गेंद फेंकना, मार्चिग, नाच आदि आते है।

२ जिमनेस्टिक्स। इसमे डवल वार, सिंगल वार, तथा अन्य साधनो द्वारा की गई क्रियाएँ शामिल हैं।

शारीरिक शिक्षा मे इन दोनो प्रकार की क्रियाओ को शामिल किया जाना उपयोगी रहता है, क्योकि जिमनेस्टिक्स की क्रियाएं केवल व्यक्तिगत शारीरिक विकास के लिए ही उपयोगी रहती हैं। इनसे अच्छे सामाजिक गुणो, जैसे सहयोग से एक साथ काम करना, किसी को हानि न पहुँचाना, द्वेप न रखना आदि, का विकास नही होता। पर खेल तथा केलिस्थेनिक्स की क्रियाओ से शरीर के विकास के साथ-साथ सद्गुण और चरित्र का विकास भी होता है।

वालिकाओ के लिए उनकी शारीरिक वनावट आदि के कारण वालको से कुछ भिन्न प्रकार की क्रियाएँ उपयोगी रहेगी, जैसे मार्चिग, विना अपरेटस के केलिस्थेनिक्स, कूदने तथा फुदकने की साधारण क्रियाएँ, नाच, रस्सी-कूद आदि। ये क्रियाएं सभी आयु की वालिकाओ के लिए उपयोगी रहेंगी। वैसे तो दस-ग्यारह वर्ष की वालिकाएँ वालको के लिए निर्धारित सभी क्रियाएँ (केवल कुछ अधिक परिश्रम की आवश्यकता वाली क्रियाओ को छोडकर) कर सकती है।

वुनियादी शालाओ मे शारीरिक शिक्षा के शिक्षण मे निम्न क्रियाकलाप सामान्य रूप से कराए जा सकते है—

१ स्वाभाविक क्रियाकलाप, जैसे चलना, दौडना, कूदना, छलांग लगाना, चढना, गेद फेकना, लटकना आदि।

२ शरीर वनाने की क्रियाएँ। ये क्रियाएँ वालको की प्राकृतिक क्रियाओ मे कौशल वढाती है तथा शारीरिक अंगो को पुष्ट करती हैं। इनके अतर्गत निम्न क्रियाएं आती हैं—सिर, पैर, हाथ, धड आदि से सम्वन्धित क्रियाएँ, जैसे सीधा खडा होना, पालथी मारकर वैठना, मुडकर, लम्बा होकर, घुटने के वल, झुककर वैठना, चित लेटना, आगे-पीछे तथा वगल की ओर उछाल मारना, सिर आगे-पीछे तथा वाजू की ओर मोडना, धड को नीचे की ओर झुका-

कर सिर ज़मीन से या घुटनो से लगाना, पैर की विभिन्न प्रकार की कसरतें करना, पीठ के बल लेटकर दोनो बाजुओ की सहायता से एक या दोनो घुटनों को शरीर से सटाना, विशेष क्रियाकलाप (रस्सी-कूद, दौड, फेंकना, आसन आदि) करना ।

३. मनोरजक क्रियाकलाप । इन क्रियाकलापो से मनोरजन के साथ-साथ बालक-बालिकाओं की शारीरिक क्षमता और गठन का विकास होता है । ये बालक-बालिकाओं मे सद्गुणो का विकास करने मे भी सहायक होते हैं, जैसे प्रसन्नता तथा सहयोग से कार्य करना, आत्म-निर्भर बनना आदि । इन क्रियाकलापो के अन्तर्गत पैदल यात्रा, शिविर-आयोजन, तैरना, स्काउट, गाइड, रेड-क्रॉस आदि के काम, छोटे-छोटे खेल, जिनमे गाना, नाच, स्वाँग, कहानी का नाटकीय रूप शामिल हो, आते है ।

बचपन मे बालको को अपना स्वास्थ्य सुधारने तथा अच्छा बनाए रखने के लिए आवश्यक अच्छी आदतें डालना बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है । अतः स्वास्थ्य-ज्ञान-सम्बन्धी बातो का समावेश भी शारीरिक शिक्षा के पाठ्यक्रम मे किया जाना आवश्यक है। पर स्वास्थ्य-ज्ञान का मौखिक ज्ञान देने की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान देना अधिक उपयोगी सिद्ध होगा । इसीलिए बुनियादी शिक्षा मे स्वस्थ तथा सरल जीवन के अभ्यास को पाँच प्रकार के अभ्यासो मे प्रथम स्थान दिया गया है । स्वस्थ तथा सरल जीवन व्यतीत करके तथा अन्य अभ्यासो के आधार पर ही अन्य विषयो का ज्ञान दिया जाता है । इससे छोटे-छोटे बालको मे सोने, उठने, बैठने, साँस लेने, भोजन करने, स्नान करने, सफाई से रहने आदि की स्वस्थ आदतें पडती हैं । आवश्यकतानुसार बुनियादी शालाओ में इनके सम्बन्ध मे साधारण ज्ञान भी दिया जाता है। पर इनके सम्बन्ध मे 'क्यो' और 'क्या' का ज्ञान तो नौ-दस वर्ष की आयु के बाद ही बालको को हो पाता है । अत. प्रारम्भिक

कक्षाओ मे इनके 'क्यो' तथा 'क्या' की चिंता न करके अच्छी स्वस्थ आदतो का निर्माण करने की ओर ही विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए ।

खेलो तथा टूर्नामेंट का सचालन

खेल बालक की प्रकृति के अनुकूल है। इनसे उनकी रचनात्मक तथा मानसिक शक्तियो का समुचित विकास होता है। इससे कार्य की गम्भीरता भी कम की जा सकती है। खेल द्वारा बालक की विभिन्न प्रवृत्तियो एव सामाजिक गुणो, जैसे सहकारिता, दया, करुणा, सहानुभूति आदि, का विकास हो सकता है। अत. शारीरिक शिक्षा मे खेलो का समावेश किया जाना चाहिए ।

टूर्नामेंट के आयोजन से अनेक लाभ हैं। इनके आयोजन से बालको को अपनी क्षमता का पता लगता है। वे अपने कौशल तथा क्षमता का मिलान अन्य स्थानो के बालक-बालिकाओ से कर सकते हैं। टूर्नामेंट मे भाग लेने के लिए प्रयत्नशील रहकर बालक अपने कौशल तथा क्षमता की यथेष्ट वृद्धि कर लेते हैं। टूर्नामेंट मे भाग लेकर तथा अन्य प्रतियोगियो की कार्य-विधियो को देखकर बालक अपने तरीको मे आवश्यक सुधार करके और भी अधिक प्रगति कर सकते हैं। टूर्नामेंट के माध्यम से वे विभिन्न स्थानो के बालको से सम्पर्क स्थापित भी करते हैं। इससे आपसी सहयोग तथा मैत्री बढती है। इन सब उपयोगिताओ के कारण टूर्नामेंटो का आयो-जन वर्ष मे एक या दो बार अवश्य करना चाहिए। बहुधा टूर्नामेंट शाला, गाँव या शहर, जनपद या तहसील, जिला, राज्य, देश तथा अन्तर्देशीय स्तर के कराए जाते हैं। खेलो तथा टूर्नामेंट के सचालन मे निम्न बातो का ध्यान रखना चाहिए—

१ खेल विधिवत् तथा विषयो के अनुसार खिलाए जाने चाहिएँ ।

२ खेल के नियमो की साधारण रूप-रेखा पहले से बतला देनी चाहिए, पर बालको से यह अपेक्षा न करनी चाहिए कि वे आर्पक्रिक या दो बार मौखिक बतलाने से ही खेल के नियम सीख जायेंगे। खेल

के नियम तो खेलते-खेलते ही समझ मे आते है।

३. खेल का समय निश्चित होना चाहिए।

४. निर्धारित समय से अधिक खेलने से बालको को थकान अधिक होती है। थकान मे खेलने से हानि होती है।

५. खेल भोजन करने के एकदम बाद नही खिलाए जाने चाहिएँ।

६ खेल के बाद पसीना पोछना चाहिए तथा हवा मे न घूमना चाहिए।

७ खेल के एकदम बाद स्नान न करना चाहिए।

८. खेल मे प्रतिस्पर्धा इतनी न बढने देनी चाहिए कि बालक आपस मे द्वेष रखने लगें।

९. खेल मे अपने प्रतियोगी को हानि या चोट पहुँचाकर जीतने की भावना कभी न आने देनी चाहिए, 'खेलो तथा दूसरो को खेलने दो' की भावना ही हमेशा मन मे रखने की प्रेरणा देनी चाहिए।

१०. खेल के लिए अच्छा खुला तथा चौड़ा मैदान तैयार करना चाहिए।

११. खेल के मैदान के पास ही खेल का सामान रखने की व्यवस्था होनी चाहिए। यदि ऐसी व्यवस्था किसी कारण सम्भव न हो तो खेल खेलने के पूर्व तथा बाद मे खेल का सामान यथास्थान लाने तथा ले जाकर रखने का ध्यान रहना चाहिए।

१२. खेल का नेता किसी अच्छे खिलाडी को ही बनाना चाहिए। इससे बालको मे द्वेष तथा गुटबन्दी नही होती। बालक अच्छे खिलाडी के नेतृत्व मे ही रहना पसन्द करते है।

१३. खेल मे केवल अच्छे खिलाड़ियो को ही भाग लेने की व्यवस्था न रखिए। अच्छे तथा कमज़ोर सभी प्रकार के बालको को खेलने के अवसर देने चाहिएँ, क्योकि अच्छी तरह कौशल से खेलना ही महत्त्वपूर्ण नही है; सभी का खेल मे भाग लेना उससे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

१४ बालको के साथ शिक्षको को भी खेलना चाहिए। यदि शिक्षक

वृद्ध है या नही खेल सकता है, तो उसे खेल के नियमो की जानकारी करके रेफरी वनना चाहिए। पर वालको को खेलने के लिए कहकर बेकार टहलने तथा दूसरो से वातचीत करते रहने से खेल की व्यवस्था मे गडवडी होती है।

१५ खेलते समय वालको द्वारा गलती होने पर डाँटना या मारना उचित नही है। इसमे वालक हतोत्साह होते हैं तथा खेल मे अरुचि रखने लगते हैं।

१६ वालक-वालिकाओ को उनकी रुचि के खेल अधिक खिलाए जायँ, पर अन्य खेलो का अभ्यास भी कराया जाय।

किसी भी टूर्नामेंट की व्यवस्था तथा मचालन के लिए निम्न कार्य आवश्यक रहते हैं—

१ मैदान की तैयारी।

२ खेल-कूद के लिए आवश्यक सामान की व्यवस्था।

३ वाहर से आये प्रतियोगियो के ठहरने, भोजन करने आदि की व्यवस्था।

४ मैदान पर खेल-कूदो का विधिवत् सचालन।

५. इनामो या पारितोपिको की खरीद तथा टूर्नामेंट के वाद वितरण की व्यवस्था।

६ निमत्रण-पत्रो की छपाई, लिखाई तथा वितरण।

७. वाहर से आये प्रतियोगियो की विदाई।

८ वाहर से आये सामान की वापसी।

९ टूर्नामेंट मे होने वाले खर्च की व्यवस्था तथा हिसाव रखना।

उपरोक्त कार्यो के लिए टूर्नामेंट होने की तिथि से काफी पहले एक टूर्नामेंट समिति तथा उसके अन्तर्गत इन विभिन्न कार्यों के लिए अलग-अलग छोटी-छोटी समितियाँ वना लेनी चाहिएं। इन समितियो को अपने क्षेत्र मे कार्य करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, पर इन्हे समय-समय पर अपने कार्य की प्रगति का विवरण टूर्नामेंट समिति या उसके द्वारा नियुक्त

कार्यकारिणी समिति को देते रहना चाहिए। इन समितियो को टूर्नामेंट की कार्यकारिणी द्वारा दिये गए सुझावो को भी यथायोग्य मानना तथा कार्यान्वित करना चाहिए। इन समितियो के लिए सदस्यों तथा मन्त्रियों का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रहना चाहिए कि इन कार्यो मे रुचि रखने वाले व्यक्तियो को ही इन समितियो मे रखा जाय। साथ ही किसी एक व्यक्ति को जहाँ तक हो दो से अधिक समितियो मे न रखना चाहिए, नही तो उसे अधिक देखभाल करनी पड़ेगी तथा कार्य मे गड़बडी होने की सम्भावना रहेगी। जिस स्थान मे टूर्नामेंट हो रहा हो उस शाला के अधिपाठक को टूर्नामेंट समिति (बृहत्) का मंत्री तथा शाला के खेल-कूद मे विशेष रुचि लेने वाले शिक्षक को सहायक मत्री रखना चाहिए। विभिन्न छोटी समितियो को अपने-अपने कार्य के सम्बन्ध में निम्न बातो का ध्यान रखना चाहिए—

१. मैदान की तैयारी। मैदान की तैयारी करने वाली समिति को इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि टूर्नामेंट मे कौन-कौनसे खेल-कूद शामिल किये गए हैं, जिससे उन सबके लिए उचित व्यवस्था की जा सके। इस समिति को पहले खेल के मैदान को सम तथा एक-सा करा लेना चाहिए। कहीं गड्ढे आदि हो तो उन्हें भरवा लेना चाहिए। इसी समिति के पास मैदान की सजावट का काम, दर्शको, खिलाड़ियो, शाला के बालक-बालिकाओ, विशेष रूप से आमन्त्रित व्यक्तियो के बिठाने आदि की व्यवस्था का भार भी होना चाहिए। खेल के मैदान पर पानी पीने, पेशाब, पाखाना आदि की व्यवस्था का ध्यान भी रखा जाना चाहिए। मैदान मे बैठने की व्यवस्था करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दौड, कूद, गोला-फेंक आदि खेलो का अन्त विशेष रूप से आमन्त्रित व्यक्तियो के बैठने के स्थान के पास, सामने की ओर ही हो। मैदान में खेल कराने की व्यवस्था कुछ ऐसी होनी चाहिए कि मैदान के चारो ओर के दर्शक खेल देख सकें तथा एक ही

समय मैदानी खेल, जैसे कूद, तथा ट्रैक के खेल, जैसे दौड़ आदि साथ-ही-साथ चलाए जा सकें।

२. खेल-कूद के लिए सामान की व्यवस्था। इसकी व्यवस्था बहुत पहले कर लेनी चाहिए। इस समिति को भी टूर्नामेंट में होने वाले खेलो तथा उनमे लगने वाले सामान का ज्ञान होना चाहिए। इस समिति को स्थानीय समाज मे उपलब्ध साधनो का पता लगाकर उपलब्ध होने वाले सामान की सूची बना लेनी चाहिए। बाद मे आस-पास के स्थान या बाहर से मँगाए जाने वाले सामान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। इस समिति को टूर्नामेट के दिन मैदान पर सामान को एक स्थान पर एकत्रित रखने, खेल-कूदो के लिए सामान देने तथा वापस लेने का ध्यान रखना चाहिए। साधारणत छोटे टूर्नामेटो के लिए अन्त के लिए रस्सी, रस्सा-खिचाई के लिए रस्सा, गोला-फेंक के लिए गोला, कुरसी-दौड के लिए कुरसियाँ, घण्टा या हारमोनियम, प्रारम्भ करने के सीटी या पिस्तौल, झण्डी-दौड के लिए झण्डियां, सुई-धागे की दौड के लिए सुई-धागा, आलू- चम्मच दौड के लिए आलू, आँवला आदि, रुकावट की दौड के लिए बेंच, बाँस आदि, कूद (लम्बी तथा ऊँची) के लिए आवश्यक डण्डे तथा रस्सियाँ, नापने के लिए फीता आदि की व्यवस्था करना ही आवश्यक रहता है। फिर अन्य सामान की व्यवस्था टूर्नामेट मे रखे गए खेल-कूदो के ऊपर निर्भर रहेगी।

३. बाहर से आने वाले प्रतियोगियो तथा शिक्षको के ठहरने की व्यवस्था। यह व्यवस्था बहुत अच्छी तथा सुविधाजनक होनी चाहिए। बहुधा टूर्नामेट ठण्ड मे ही होते हैं, अत तापने के लिए आग तथा बिछाने के लिए पयाल की व्यवस्था अवश्य की जानी चाहिए। पीने के लिए पानी शुद्ध तथा अच्छा होना चाहिए। भोजन मे पूरी-साग न देना चाहिए। बालको को हल्का तथा

ताज़ा भोजन ही दिया जाना उचित है। बहुधा देखा गया है कि भोजन समय पर तथा ठीक नहीं मिलता। यह इसलिए होता है कि इस कार्य के लिए नियुक्त व्यक्ति बिलकुल ठीक समय पर ही यानी टूर्नामेंट के दिन ही पहले से सोची गई भोजन-व्यवस्था में परिवर्तन करते है या सामान की व्यवस्था आरम्भ करते है। भोजन के लिए आवश्यक सामग्री की व्यवस्था बहुत पहले से करनी चाहिए। हाँ, साग-भाजी एक-दो दिन पहले खरीदी जा सकती है। इस कार्य मे जो व्यक्ति लगे हो उनकी सख्या अधिक होनी चाहिए तथा उन्हे और कोई कार्य न दिया जाना चाहिए। इससे उनका ध्यान न हटेगा तथा कार्य व्यवस्थित होगा। टूर्नामेट में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य ठहरने तथा भोजन ठीक समय पर तथा अच्छा देने का है। अत: इस कार्य के लिए योग्य तथा ज़िम्मेदार व्यक्ति चुनने चाहिएँ। इस कार्य के लिए बनाई गई समिति का काम है कि भोजन, चाय, नाश्ता कब तथा कहाँ मिलेगा इसकी सूचना बाहर से आये प्रतियोगियों तथा उनके साथ आये प्रतिनिधियो या शिक्षको को दे। साथ-ही-साथ टूर्नामेट में बीमार होने वाले प्रतियोगियो के लिए भी उचित भोजन की व्यवस्था का ध्यान रखे। प्रतियोगियों के रहने की व्यवस्था जहाँ तक हो मैदान के पास ही होनी चाहिए, जिससे आने-जाने में कम परिश्रम तथा समय लगेगा। शिक्षको तथा बालको के ठहरने की व्यवस्था एक ही साथ होनी चाहिए। बालिकाओ के लिए ठहरने की व्यवस्था अलग होनी चाहिए।

४. मैदान पर खेल-कूदों का विधिवत् संचालन। यह कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसकी व्यवस्था के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि खेल ऐसे क्रम से रखे जायें कि यदि एक ही लड़का दो या तीन खेलो मे भाग ले रहा हो तो उसे लगातार भाग लेना आवश्यक न हो जाय। साथ-ही-साथ दौड़ या तेज़ी से होने

वाले खेल लगातार एकदम पूर्ण न कर दिये जायें। विभिन्न ग्रेडों के खेलो की व्यवस्था कुछ ऐसी की जाय कि यदि बालको के ग्रेट की दौड चल रही है तो बालिकाओ की कूद आदि रखी जाय। इससे एक ही समय मे दो या अधिक खेल चल सकेंगे तथा समय की बचत होगी। खेल-कूदो की व्यवस्था के समय बहुधा एक गडबड़ी देखी जाती है। वह है पुकार होने के बाद खेलो का प्रारम्भ न होना तथा एक खेल पूर्ण होने के कुछ देर बाद अन्य खेल प्रारम्भ करना। यह ठीक नही है। इसकी उचित व्यवस्था के लिए इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि जब एक खेल चल रहा हो तभी दूसरे खेल के खिलाडियो को मैदान पर आने के लिए तैयार होने को कहा जाय। विभिन्न शालाओ के प्रतिनिधियो के पास भी होने वाले खेलो के क्रम की सूची होनी चाहिए, जिससे उन्हे इस बात का पता रहे कि कब, कौनसा खेल तथा किसके बाद होना चाहिए। खेल के मैदान पर विशेषत निर्णायकों के आस-पास बहुधा शिक्षको या प्रतियोगियो की भीड रहा करती है; यह नही होने देना चाहिए। इससे निर्णय मे गलती होने की सम्भावना रहती है तथा दर्शको को यह दिखलाई नही देता कि खेल का अन्त कैसे हुआ। यहाँ-वहाँ फालतू घूमने वाले लोगो को भी मैदान पर टहलने न देना चाहिए।

५ इनामो तथा पारितोषिको की खरीद तथा टूर्नामेंट के बाद उनका वितरण। पारितोषिक सस्ते तथा उपयोगी होने चाहिएँ। पारितोषिक खेलो मे लगने वाली मेहनत के अनुकूल भी होने चाहिएँ, जैसे रुकावट की दौड, मील-आध मील की दौड आदि के लिए इनाम की कुछ अच्छी वस्तुएँ खरीदनी चाहिएँ। इनाम की चीजें खरीदते समय खेल तथा व्यय की जाने वाली रकम का ध्यान रखकर पहले, दूसरे तथा तीसरे इनाम के लिए व्यय निश्चित कर लेना चाहिए। फिर बाजार मे जाकर उतनी कीमत की वस्तुएँ

खरीद लेनी चाहिएँ। बुनियादी शालाओ मे (तथा अन्य शालाओ मे भी) साबुन, कंघी, तौलिया, तकली, पूनी स्लेट, कापियाँ, कपड़ा आदि ही इनामो के लिए खरीदने चाहिएं, खिलौने आदि खरीदने मे पैसा व्यर्थ व्यय होता है।

इनाम की वस्तुएँ खरीदकर टेवल पर उसकी व्यवस्था करना वड़े महत्त्व का है, क्योकि वहुधा देखा जाता है कि वालक इनाम लेने आ जाता है तथा शिक्षक उसकी चीज़ टेवल पर ढूंढता रहता है। यह वुरा लगता है। इसके लिए सम्पूर्ण खेलो की क्रमवार सूची की दो प्रतियाँ वना लेनी चाहिएँ। सूची वनाते समय प्रत्येक खेल का नाम लिखकर पहला, दूसरा तथा तीसरा स्थान पाने वाले प्रतियोगी के लिए तीन लकीरे छोड़ देनी चाहिएं। इस प्रकार टूर्नमिट में होने वाले खेलो की क्रमवार सूची श्रेणीवार तैयार कर लेने के वाद टेबल पर इसी क्रम से वस्तुएँ रखनी चाहिएँ। सवसे ऊपर पहला इनाम, उसके नीचे दूसरा तथा सवसे नीचे तीसरा इनाम रखना चाहिए।

इनाम-वितरण के समय वहुधा देखा जाता है कि प्रत्येक प्रतियोगी के इनाम लेने के वाद इनाम वाँटने वाले अतिथि को थोड़ी देर इसीलिए रुकना पड़ता है कि अगला प्रतियोगी इनाम-वितरण की टेवल के पास जल्दी नही पहुँचता। यह इनाम लेने के लिए नाम पुकारने वाले व्यक्ति का दोप है। वह दूसरे प्रति-योगी का नाम तव पुकारता है जवकि पहला प्रतियोगी इनाम ले चुकता है। वास्तव मे जव एक प्रतियोगी इनाम ले ही रहा हो तभी अगले आने वाले प्रतियोगी का नाम पुकारना चाहिए। इससे दूसरा प्रतियोगी यथासमय टेवल तक पहुँच सकेगा। प्रतियोगियो को टेवल से दूर भी नही विठाना चाहिए। हर शाला के प्रतियोगियो को कतार से टेवल के सामने अर्धचन्द्राकार विठाना ठीक रहता है। इनाम-वितरण के वाद धन्यवाद मे

अधिक समय न लगाना चाहिए, क्योंकि बालक तथा अन्य सज्जन आपके लम्बे व्याख्यान के लिए उत्सुक नही रहते तथा शोर करने लगते है।

६ निमत्रण-पत्रो की छपाई, लिखाई तथा वितरण। टूर्नामेंट की तिथियाँ निश्चित होते ही निमत्रण-पत्रो की छपाई या लिखाई का काम प्रारम्भ कर देना चाहिए, क्योकि छपाई मे काफी समय लग जाता है। गाँवो मे छापाखाने न होने से इसमे और भी अधिक समय लगता है। निमत्रण-पत्र मे केवल निमत्रण के लिए आवश्यक शब्द ही न रहे, औपचारिक निमत्रण तो रहे ही, साथ-ही-साथ निमत्रण-पत्र मे पिछले वर्ष के खेलो के रिकार्ड, विविध कार्यरत सज्जनो के पद तथा नाम और यदि छपाई मे धन अधिक व्यय किया जा सकता हो तो राज्य या देश के ओलिम्पिक खेलो के रिकार्ड भी साथ मे छपवाने चाहिएँ। इससे जनता तथा बालको को खेलो-सम्बन्धी रिकार्डों का पता चल जाता है तथा वे अपने रिकार्ड को और अच्छा बनाने का प्रयत्न करते हैं। निमत्रण-पत्र मे टूर्नामेंट के किस दिन कौन-कौनसे खेल होने है, इसका विवरण भी स्पष्ट होना चाहिए।

निमत्रण-पत्र छपने के बाद उन्हे जहाँ-जहाँ भेजना है यथा-समय भेजने की व्यवस्था भी अति आवश्यक है। इसके लिए पहले से ही निमन्त्रित किये जाने वाले व्यक्तियो की सूची बनाकर तैयार कर लेनी चाहिए। सूची के अभाव मे कभी-कभी कई सज्जनो के पास निमत्रण-पत्र पहुँच ही नही पाते। इस सूची मे निमत्रण-पत्र जिन सज्जनो या दफ्तरो को भेजे गए है उनके नाम के सामने निशान भी लगाते जाना चाहिए। इससे इस कार्य की प्रगति का पता शीघ्र ही सरलता से चल जाता है।

७ बाहर से आये प्रतियोगियो की विदाई। कई स्थानो मे इसका ध्यान नही दिया जाता। कार्य पूर्ण होने पर ऐसा अनुमान

कर लिया जाता है कि आये हुए अतिथि तथा प्रतियोगी वापस चले ही जायेंगे, पर इस ओर ध्यान देना शिष्टाचार के नाते आवश्यक है। उनकी वापसी के समय स्वागत-समिति के सदस्यों तथा टूर्नामेंट के मत्री आदि को उपस्थित रहना चाहिए तथा टूर्नामेंट के दिनों मे ठहरने, भोजन, पानी आदि की असुविधाओ के लिए क्षमा-याचना करनी चाहिए। इससे लोगो के आपसी सम्बन्ध अच्छे रहते है तथा बातचीत के दौरान में भविष्य के लिए सुझाव भी मिल जाते हैं।

८. बाहर से आये सामान की वापसी। बहुधा देखा जाता है कि टूर्नामेंट करने वाले सामान की आवश्यकता पड़ने पर तो लोगो के पास कई बार जाते है, पर काम पूरा होने पर सामान वापस करने मे महीनो लगा देते है। न केवल महीनो, बल्कि जिस हालत मे वे सामान लाते हैं उस हालत मे वापस नही करते। टूर्नामेंट की व्यवस्था करने वालो को हमेशा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि काम पूरा होते ही बाहर से आया हुआ सामान, जैसे खेल का सामान, दरी, गलीचे, पानदान, टेबल-कुरसी, बेंच, टकी आदि, सब अच्छी तरह साफ करके ठीक हालत में शीघ्र ही वापस पहुँचाया जाय तथा सामान देकर टूर्नामेंट में सहायक होने के लिए लोगो का आभार मौखिक या लिखित रूप से माना जाय। यदि कोई सामान टूर्नामेंट मे टूट-फूट गया हो या खराब हो गया हो तो उसकी मरम्मत करके ही उसे वापस पहुँचाना ठीक रहता है। बाहर से सामान लाते समय सूची बनाते रहना चाहिए, वापसी के समय उसी सूची के अनुसार सामान वापस करना ठीक रहता है। बहुधा ऐसे सामान की, जो एक जैसा हो, अदला-बदली हो जाया करती है। इसकी सावधानी रखनी चाहिए।

९ टूर्नामेंट के खर्च की व्यवस्था तथा हिसाब रखना। टूर्नामेंट की दृष्टि से यह कार्य सबसे अधिक महत्त्व तथा झंझटो का होता

है। वहुधा इसी के कारण टूर्नामेंट की व्यवस्था-समिति या गाँव वालो मे आपसी मतभेद हो जाया करते हैं। लोगो को बहुधा अविश्वास हो जाता है तथा टूर्नामेंट के वाद जनता मे पैसे खाने सम्बन्धी या उसका दुरुपयोग करने सम्बन्धी तरह-तरह की अफवाहे फैल जाती हैं। टूर्नामेंट होने के महीनो बाद भी ठीक-ठीक हिसाब वनकर जनता के सामने नही आ पाता। इससे हिसाव की गड़वडी की और भी अधिक पुष्टि होने लगती है। इन सब बातो से वचने तथा हिसाव ठीक रखने के लिए निम्न उपाय काम मे लाने उपयोगी होगे—

(क) पैसा रखने तथा अर्थ-व्यवस्था के लिए ऐसे व्यक्तियो की समिति वनानी चाहिए, जिनका समाज मे आदर हो तथा जो शका से परे हों।

(ख) यथासम्भव अधिपाठक या शाला के किसी शिक्षक को खज़ाची वनना चाहिए।

(ग) चदा वसूली के समय केवल चुने हुए लोगो को ही चदा वसूली का कार्य करना चाहिए तथा चदा लेने पर रसीद देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

(घ) विभिन्न समितियो को खर्च के लिए कुछ रकम रोज़ के छोटे-मोटे कार्यों के लिए एडवास या अग्रिम निधि के रूप मे देनी चाहिए तथा वाद मे और अधिक पैसो की आवश्यकता होने पर टूर्नामिंट-समिति के अध्यक्ष द्वारा अरजी पर हस्ताक्षर होने के बाद ही पैसे देने चाहिएँ।

(ङ) प्रत्येक खर्च की विधिवत् रसीद रखनी चाहिए।

(च) विभिन्न समितियो के लिए आवश्यक खर्च का हिसाव तथा उनके लिए आवश्यक रकम मोटे रूप से पहले से ही विचार करके निश्चित कर लेनी चाहिए।

(छ) टूर्नामेंट होने के शीघ्र ही बाद सभी समितियो को अपने हिसाब लिखित रूप में प्रस्तुत करने के लिए कहना चाहिए। आने पर टूर्नामेंट-समिति के समक्ष पूर्ण व्यौरा टूर्नामेंट-मंत्री द्वारा प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(ज) यदि आवश्यकता समझी जाय तो खर्च तथा आमदनी का पूर्ण व्यौरा शाला के नोटिस बोर्ड पर भी कुछ दिन टँगा रहना चाहिए, जिससे जो भी हिसाब देखना चाहे देख सके।

शारीरिक शिक्षा-व्यवस्था के लिए सुझाव

१. शारीरिक शिक्षा-सम्बन्धी आवश्यक सामान तथा अन्य सभी प्रकार की व्यवस्था स्थानीय समाज में उपलब्ध साधनो को ध्यान मे रखकर करनी चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि बालक-बालिकाओ की वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओ को देखते हुए ही शारीरिक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।

२. शारीरिक शिक्षा में शालेय तथा सामाजिक जीवन मे प्रतिदिन काम में आने वाली स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातो का समावेश अवश्य होना चाहिए।

३ नौ या दस वर्ष की आयु के बालक-बालिकाओ को स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमो के 'क्यो' और 'क्या' के फेर मे न डालना चाहिए। उन्हे तो स्वास्थ्य-सम्बन्धी अच्छी आदतें ग्रहण करने का अभ्यास अधिक कराना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्यक्ष जीवन के अभ्यास द्वारा ही शारीरिक शिक्षा दी जानी चाहिए।

४. स्वास्थ्य-सम्बन्धी जो भी बातें बतलाई जायें वे केवल वैयक्तिक ही न हो। उनके सम्बन्ध मे समाज के दृष्टिकोण का भी ध्यान रखा जाय। इससे बालको को सामाजिक उत्तरदायित्व वहन करने का प्रशिक्षण मिलेगा।

५ बालको को भोजन, मूलोद्योग की क्रियाएँ या बगीचे मे काम करते समय या जानवरो, पक्षियो का अध्ययन करते समय स्वास्थ्य

तथा शारीरिक शिक्षा-सम्बन्धी अनेक बातें सरलता से बतलाई जा सकती हैं।

६. शारीरिक शिक्षा के लिए शाला मे अलग से समय निश्चित रहना ही चाहिए, पर यह कार्य केवल शारीरिक शिक्षा के घण्टे तथा शिक्षक तक ही सीमित न होना चाहिए। यह तो सब शिक्षको की सामूहिक जिम्मेदारी होनी चाहिए।

७ हमेशा बालको को सकारात्मक आदेश दिये जाने चाहिएँ, या उन्हे हमेशा 'क्या करना चाहिए' यही बतलाया जाय तथा 'क्या नही करना चाहिए' इस ओर उनका ध्यान आकर्षित न किया जाय।

८ शारीरिक शिक्षा के लिए डर का उपयोग न किया जाय, क्योकि डराकर कोई कार्य कराना ठीक नही होता। उदाहरणार्थ, बीमार होने का डर दिखाकर बालको से कोई कार्य न कराना चाहिए। अपना स्वास्थ्य अच्छा रखने, शक्ति बढाने तथा अपने जीवन को अच्छी तरह व्यतीत करने की क्षमता का विकास करने की प्रेरणा देना बीमारी के डर की अपेक्षा अधिक अच्छा है।

९. शारीरिक शिक्षण केवल एक विषय के रूप मे न देखा जाय वरन् यह जीवन-यापन की विधि के रूप मे समझा जाय।

१०. शारीरिक शिक्षा का कार्यक्रम बालक के अनुभवो का भाग ही होना चाहिए तथा इन्ही अनुभवो से उसे विकसित भी होना चाहिए।

११ बालक की खेल मे रुचि, वज़न, ऊँचाई, और शारीरिक विकास-सम्बन्धी अन्य बातो का उचित लेखा रखा जाना चाहिए।

१२. समय-समय पर बालको तथा अभिभावको को प्रतिवेदन या लेखा भेजकर उनके बालक-बालिकाओ की शारीरिक विकास सम्बन्धी प्रगति से उन्हे अवगत कराते रहना चाहिए।

शालाओ मे बालक-बालिकाओ की खेलो मे रुचि तथा शारीरिक विकास-सम्बन्धी विभिन्न बातो का उचित तथा सही-सही लेखा रखा जाना आवश्यक है। इससे उनकी तत्सम्बन्धी प्रगति या अवनति का पता

बालक-बालिकाओं का लेखा या रिकॉर्ड रखना

चलता रहता है। साथ-ही-साथ आवश्यकता पडने पर उनका उपयोग डॉक्टर, अभिभावक या अन्य व्यक्ति कर सकते हैं।

लेखा रखने के लिए कार्ड-प्रणाली या रजिस्टर दोनो मे से किसी एक का उपयोग किया जा सकता है। इन दोनो विधियो मे कुछ गुण तथा दोप है। कार्ड-प्रणाली मे प्रत्येक बालक के लिए अलग-अलग कार्ड बनाने चाहिएँ। ये कार्ड बनाने मे खर्च अधिक पड़ता है तथा इनके गुम जाने का भय रहता है। हमारी देहाती शालाओ मे यह सुविधाजनक नही है। पर इनसे एक ही नज़र मे बालक का पूर्ण विवरण डॉक्टर, शिक्षक या अभिभावक के सामने उपस्थित हो जाता है। यदि शालाओं मे कार्ड-प्रणाली अपनाई जाय तो कार्डों को वर्णमाला के अक्षरो के क्रम से जमा कर रखना चाहिए। इससे बालको के कार्ड खोजने में समय व्यय न करना पडेगा। रजिस्टर भरने मे इन कठिनाइयो का हल हो जाता है, पर रजिस्टर बनाने में भी अडचनें आती है। रजिस्टर से प्रत्येक बालक का लेखा आवश्यकता पडने पर अलग करने मे बडी असुविधा होती है।

बालक-बालिकाओ का लेखा रखने का तात्पर्य यही है कि उनके शारीरिक विकास का पता चलता रहे तथा समय-समय पर या आवश्यकता पडने पर डॉक्टर, अभिभावक आदि को इस लेखे का प्रतिवेदन भेजा जा सके। अत यदि छपे कार्ड या रजिस्टर न भी मिले तो बालक की ऊँचाई, वज़न, खेलो मे रुचि, आयु, सामान्य स्वास्थ्य, शारीरिक दोप, स्वास्थ्य-सम्बन्धी आदतो आदि के सम्बन्ध मे कागजो पर खाने खीचकर लेखा रखा जा सकता है।

अध्याय ८

मातृभाषा-शिक्षण

मानव-सभ्यता का विकास भाषा द्वारा ही हो सका है। भाषा ने ही समाज को गति और अमरता दी है। यदि भाषा न होती तो मानव पशु-अवस्था मे ही रहता। भाषा की सहायता से व्यक्ति अपने भावो, चितनो तथा अनुभवो की अभिव्यक्ति करता है। वैसे तो अग-सचालन से भी थोडे-बहुत भावो तथा विचारो की अभिव्यक्ति की जा सकती है, पर भाषा के समान अच्छी तरह नही। व्यक्ति के मस्तिष्क तथा बुद्धि का विकास भाषा द्वारा ही होता है। भाषा के शब्द ऐसे सकेत है, जिनके द्वारा हम अपने भाव, विचार तथा अनुभवो को दूसरो तक पहुँचाते हैं तथा दूसरो के विचार, भाव, अनुभव आदि स्वय ग्रहण करते है। मनुष्य मे समूह मे रहने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के कारण वह दूसरो से अपनी कहना चाहता है तथा दूसरो की स्वय सुनना चाहता है। इस स्वाभाविक प्रवृत्ति की तुष्टि का प्रमुख तथा प्रभावपूर्ण साधन भाषा, विशेषत मातृभाषा, ही है। शाला मे भरती होते समय बालक वही भाषा बोलते है जो वे अपने गाँव, मुहल्ले तथा घरो मे माँ-बाप, भाई-बहन आदि के साथ बोलते हैं। वास्तव मे यही सच्ची मातृभाषा है। पर सामाजिक तथा व्यापक दृष्टि से जनता या जनपद की भाषा ही मातृभाषा कही जाती है।

महत्त्व

मातृभाषा मे दी गई शिक्षा बालक जल्दी समझते तथा ग्रहण करते हैं, क्योकि मातृभाषा बालक के आस-पास के वातावरण के अनुकूल होती है। अत मातृभाषा-शिक्षण द्वारा ही शिक्षक बालक के लिए बोलने, लिखने,

समझने तथा भाव व्यक्त करने मे अधिक सहायक हो सकता है ।

भापा और भाव या विचार वड़ी गहराई से जुड़े रहते हैं। इसीलिए एक के अभाव मे दूसरे का अस्तित्व सम्भव नही है। श्री पी० वी० वैलार्ड ने 'विचार और भापा' में लिखा है कि "जव शब्द और आन्तरिक विचार ऐसे मिश्रित है कि दोनो का विकास तथा ह्रास साथ-ही-साथ होता है। तव हम एक के विकास के विना दूसरे का विकास नही कर सकते और मातृ-भाषा—जिसमे वालक स्वप्न देखता तथा सोचता है—शिक्षा-शाला मे सवसे अधिक महत्त्व की हो जाती है। यह भापा ही सस्कृति का सवसे सूक्ष्म उपकरण है।" वैसे तो यह सभी भाषाओ के सम्वन्ध मे सत्य है, पर मातृभाषा के सम्वन्ध मे यह और भी अधिक सत्य है, क्योकि व्यक्ति मातृभापा के वातावरण मे ही जन्म लेता तथा पलता है ।

वहुत से शिक्षक मातृभापा को केवल विपय के रूप मे देखते हैं। पर वास्तव मे मातृभापा को केवल एक अलग घण्टे मे पढ़ाए जाने वाले विपय के रूप मे देखना उचित नहीं है। मातृभापा तो सम्पूर्ण शाला के कार्य का मूलाधार है। जॉर्ज सेम्पसन ने अपनी पुस्तक 'इग्लिश फॉर द इग्लिश' मे लिखा है कि "सरल शब्दो मे कहना चाहिए कि अंग्रेज़ी तो पाठशाला का विषय है ही नही। यह तो शालेय जीवन का अत्यावश्यक अंग है। यह जीवन का एक अविभाज्य अग है तथा अग्रेज़ी वोलने वाली जनता के जन्म से लेकर मरण तक यह अनिवार्यत: साथ है। अग्रेज़ी द्वारा शाला मे केवल ज्ञान ही नही दिया जाता, वरन् यह शिशु के मानव-जीवन मे प्रवेश करने की प्रथम सीढी है।"

श्री सेम्पसन ने अग्रेज़ी के सम्वन्ध मे जो कुछ भी कहा है वह मातृ-भापा के महत्त्व को स्पष्टत. प्रदर्शित करता है। मातृभापा न केवल सम्पूर्ण शालेय जीवन का मूलावार ही है, वरन् इसकी उचित शिक्षा-व्यवस्था पर ही वालक की उन्नति तथा सभी प्रकार का विकास निर्भर है। मानसिक विकास, शारीरिक विकास, आध्यात्मिक विकास, रचनात्मक शक्ति का विकास, वुद्धि का विकास, सभी मातृभापा से सम्वद्ध हैं। वालक के सम्पूर्ण विकास के लिए

मातृभाषा का भावात्मक तथा रागात्मक प्रभाव बहुत ही आवश्यक है। अच्छे नागरिक के गुण, जैसे स्पष्ट विचार-शक्ति, सत्य, स्पष्ट, सही और ठीक-ठीक विचारो की अभिव्यक्ति, मन, वचन और कर्म से निष्कपटता, भावात्मक, रागात्मक तथा रचनात्मक जीवन की पूर्णता, तभी सुसस्कृत तथा विकसित किये जा सकते हैं जब हमारे रागात्मक और बौद्धिक जीवन की आधार-शिला और नींव—मातृभाषा—की शिक्षा अच्छी हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बालक की शिक्षा मे मातृभाषा-शिक्षण का बहुत अधिक महत्त्व है। बुनियादी शिक्षा तो जीवन-केन्द्रित शिक्षा है तथा स्वाभाविक है कि इस प्रकार की शिक्षा मे मातृभाषा का बहुत अधिक महत्त्व हो।

बुनियादी शालाओ मे शिक्षा मूलोद्योग तथा जीवन की ठोस परिस्थितियो तथा क्रियाओ के माध्यम से दी जाती है। इस प्रकार बुनियादी शालाओ मे बालक के जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकने वाली क्रियाएँ ही प्रमुख रूप से की जाती हैं। फलस्वरूप बालकों को दैनिक जीवन में उपयोगी, व्यावहारिक तथा आवश्यक ज्ञान ही प्राप्त होता है। अत बुनियादी शालाओ में मातृभाषा-शिक्षण के निम्न उद्देश्य होगे—

मातृभाषा-शिक्षण के उद्देश्य

१ मौखिक रूप से स्पष्टता तथा सरलता से विचार व्यक्त करने और समझने की शक्ति का विकास करना। बालको मे अपने विचार स्पष्टत तथा सरल भाषा मे व्यक्त करने की क्षमता का विकास करना हमारा प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। बहुधा देखा जाता है कि व्यक्ति कहना कुछ चाहते हैं तथा कह कुछ और जाते है। इतना ही नही, कहा कुछ जाता है तथा उसका अर्थ कुछ और लगाया जाता है। ससार के प्राय सभी झगडे, द्वेष, घृणा आदि की जड जैसा सोचते तथा समझते हैं वैसा व्यक्त न कर सकना तथा दूसरे व्यक्ति जैसा तथा जिस दृष्टि से कह रहे हैं वैसा उसी

रूप मे न समझना ही है। मातृभाषा-शिक्षक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालक मे निम्न दो प्रकार की क्षमता का उचित विकास हो—

(क) सरलता तथा स्पष्टता से जैसा सोचते तथा विचारते हैं वैसा व्यक्त करने की क्षमता।

(ख) सरलता तथा स्पष्टता से जैसा दूसरे कहते है उसे उसी रूप मे समझने की क्षमता।

इन क्षमताओ के विकास के लिए बुनियादी शालाओ मे बालको मे कुछ क्षमताओ का विकास किया जाना उपयोगी होगा, जैसे शाला, घर, आस-पडोस मे देखी वस्तुओ तथा सुनी बातो पर स्वतंत्रता से वार्तालाप करने, किसी घटना या की गई क्रिया का विवरण सुनाने या छोटा साधारण व्याख्यान देने, कहानी कहने तथा अभिनय करने, वाद-विवाद तथा कविता-पठन करने आदि की क्षमता।

२ लिखित रूप मे स्पष्टता तथा सरलता से विचार व्यक्त करने तथा समझने की क्षमता का विकास करना। जैसा कि अभी मौखिक रूप से विचार व्यक्त करने तथा समझने के सम्बन्ध मे कहा गया, लिखित रूप मे भी बहुधा देखा जाता है कि जिस प्रकार के भाव हमारे मन में रहते हैं वैसा हम लिख नही पाते। हम लिखना कुछ चाहते हैं पर लिख कुछ और जाते हैं। इसी प्रकार दूसरो द्वारा लिखित विचारो को जैसा वे लिखते हैं वैसा समझने की क्षमता भी बालको मे होनी चाहिए। अत स्पष्ट है कि हमें बालक मे निम्न क्षमता उत्पन्न करनी चाहिए—

(क) सरलता तथा स्पष्टता से जैसा वे सोचते तथा विचारते है वैसा लिखने की क्षमता।

(ख) सरलता तथा स्पष्टता से जैसा दूसरे लिखते है वैसा ही उसी रूप मे समझने की क्षमता।

इन क्षमताओ के विकास के लिए हमे बालको मे कुछ क्षमताओ का विकास करने का प्रयत्न करना चाहिए, जैसे दैनिक अनुभवो व घटनाओ का लेखा रखने, अपने कार्यों तथा की गई क्रियाओ का विवरण रखने, व्यावहारिक, व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक पत्र लिखने, शुद्ध लेख के रूप मे शीघ्रता से शुद्ध लिखने आदि क्षमताओ का विकास।

मातृभाषा-शिक्षण मे उपरोक्त दो उद्देश्य ही प्रमुख है। इन उद्देश्यो को विभक्त करके निम्न चार प्रमुख उद्देश्य बनाए जा सकते हैं—

१. सरलता तथा स्पष्टता से जो बोलना चाहते हैं उसे बोलकर व्यक्त करने की क्षमता उत्पन्न करना।
२ सरलता तथा स्पष्टता से जो कहना चाहते हैं उसे उसी रूप मे लिखकर व्यक्त करने की क्षमता का विकास करना।
३ सरलता तथा स्पष्टता से जो दूसरे कहते या बोलते हैं उसे उसी रूप से समझने की क्षमता उत्पन्न करना।
४. सरलता तथा स्पष्टता से जो दूसरे लिखते हैं उसे उसी रूप मे समझने की क्षमता का विकास करना।

इन चार प्रमुख उद्देश्यो के अतिरिक्त मातृभाषा-शिक्षण के निम्न गौण उद्देश्य भी हो सकते हैं—

१ ज्ञान-ग्रहण तथा आनन्द-प्राप्ति के लिए लिखने तथा पढने की क्षमता का विकास करना।
२ साहित्य मे अभिरुचि उत्पन्न करना।
३ अवकाश के समय का सदुपयोग करने के लिए लिखने तथा पढने की क्षमता उत्पन्न करना।
४ बालक की रचनात्मक तथा तर्क-शक्ति का विकास करना।
५ बालक का भावात्मक, मानसिक तथा चारित्रिक विकास करना।

बुनियादी शाला मे मूलोद्योग तथा दैनिक जीवन की ठोस परि-स्थितियो के माध्यम से सभी ज्ञान दिया जाता है। अत स्वाभाविक है कि बुनियादी शाला मे मातृभाषा-शिक्षण का आधार मूलोद्योग, जीवन

बुनियादी शाला मे मातृभाषा-शिक्षण के आधार

की ठोस परिस्थितियाँ तथा क्रियाएँ ही होगी। कोई विशेप पुस्तक या अन्य पठन-सामग्री बुनियादी शालाओ मे मातृभाषा-शिक्षण का आधार इसलिए नही हो पाती, क्योकि वहाँ तो जीवन के लिए उपयोगी तथा सामाजिक हित के योग्य कार्यकलाप या क्रियाएँ ही प्रमुख स्थान रखती हैं। स्वाभाविक ही है कि जिन क्रियाओ तथा कार्यो पर सम्पूर्ण शालेय जीवन आधारित है वे ही क्रियाएँ और कार्य मातृभाषा-शिक्षण के आधार वन सकते है।

मूलोद्योग तथा शिल्प-कार्य के अन्तर्गत कताई-बुनाई (कपास उगाने से कपडा तैयार करने तक की क्रियाएँ), खेती, वागवानी (अनाज, फल, शाक-भाजी आदि उत्पन्न करने की क्रियाएँ), लकडी,

मूलोद्योग तथा शिल्प-कार्य

कागज, मिट्टी आदि के काम ही बुनियादी शालाओं मे कराए जाते हैं। ये कार्य सभी प्रकार के ज्ञान देने का आधार भी होते हैं। अतः मातृभापा-शिक्षण मे हमे इनका उपयोग आवश्यकतानुसार करना चाहिए। मातृभाषा-शिक्षण में इनकी क्रियाओ का उपयोग सरलता से किया जा सकता है। मूलोद्योग या शिल्प-कार्य की योजनाएँ वनाते समय वालक उन पर विचार-विमर्श करते हैं। इस अवसर पर वालक-वालिकाएँ अपने विचार स्वतत्रता से व्यक्त करते हैं। शिक्षक भी सरल तथा वालको के समझने योग्य भापा का उपयोग करता है। विना भय तथा सकोच के अपने विचार व्यक्त करने से वालको की आत्माभिव्यक्ति की शक्ति का विकास होता है। इस चर्चा को वालक वाद मे लिखते भी हैं। इससे उन्हे अपने विचारो को लिखकर व्यक्त करने का अभ्यास भी होता है। साथ ही उनकी सृजनात्मक शक्ति का विकास भी इससे होता है।

मूलोद्योग तथा शिल्प-कार्य के लिए सामग्री जुटाने की योजना वनाते समय वालक आवश्यक सख्या तथा मात्रा पर विचार करते हैं, आवश्यक सामग्री को उपलब्ध करने के लिए शाला तथा समाज के लोगो से वातचीत

करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर पत्र लिखते हैं। सामग्री की सूची, प्राप्त होने वाले स्थानो की सूची आदि तैयार करने मे भी मातृभाषा का अभ्यास होता है। इस प्रकार के अभ्यास से बालक-बालिकाओ की अभिव्यजना-शक्ति का विकास होता है।

मूलोद्योग तथा शिल्प-कार्य की क्रियाएँ करते समय उनके मन मे सामग्री, क्रियाओ तथा परिस्थितियो से सम्बन्धित अनेक प्रश्न उठते हैं। उनके समाधान-हेतु शिक्षक या सहयोगियो से चर्चा भी मातृभाषा-शिक्षण का आधार बन जाती है। क्रियाएँ समाप्त करने पर की गई क्रिया का मूल्याकन भी किया जाता है। इससे की गई क्रिया के दोष तथा गुणो का पता चल जाता है। साथ ही भविष्य के लिए दोष दूर करने के सुझावो पर भी विचार-विमर्श हो जाता है। इससे बालको को पद्धतिबद्ध काम करने, सोचने तथा सही-सही बात सरल ढग से व्यक्त करने का अभ्यास होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मूलोद्योग तथा शिल्प मातृभाषा-शिक्षण के लिए अनेक परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं तथा अवसर प्रदान करते हैं।

स्वस्थ तथा सरल जीवन का अभ्यास, नागरिकता का अभ्यास तथा सास्कृतिक जीवन का अभ्यास बालक-बालिकाओ को ऐसे अवसर प्रदान करते हैं जिनका उपयोग मातृभाषा-शिक्षण मे

सामाजिक क्रियाकलाप

सरलता से किया जा सकता है। बुनियादी शालाओ मे बालक-बालिकाएँ इन अभ्यासो के अनुसार जीवन व्यतीत करते हुए मानवीय व्यवहारो को उचित रीति से करने तथा निबाहने का पाठ सीखते हैं। उन्हे माता-पिता, सम्बन्धियो, पडोसियो, सहयोगियो, बडे-बूढे, सभी लोगो से उचित व्यवहार का ज्ञान हो जाता है। वे अपनी तथा सामूहिक सफाई का ध्यान रखने लगते हैं, शाला मे अनेक प्रकार के समारोह मनाते हैं। ये सभी क्रियाकलाप बालक-बालिकाओ को मातृभाषा का उपयोग तथा बोलचाल का अभ्यास कराते है। इनके सम्बन्ध मे विवरण लिखकर वे अपने विचारो को व्यक्त

करने का अभ्यास भी करते है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मामाजिक कार्यक्रम मातृभापा के सृजनात्मक उपयोग के अनेक अवसर प्रदान करते है तथा हमे इनका उचित उपयोग मातृभापा-गिक्षण मे आवश्यकतानुसार करना चाहिए।

वुनियादी गालाओं मे प्रकृति-अवलोकन के माध्यम से भी वहुत सी वातो का ज्ञान कराया जाता है। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पेड़-पौधे, आस-पास की भूमि, पत्थर, पहाड, नदियां, जानवर, कीडे-मकोडे, शाक-भाजी आदि, सभी का ज्ञान प्रकृति-अवलोकन से ही प्राप्त किया जाता है। प्रकृति-अवलोकन से वालक-वालिकाओ के मन मे जिज्ञासा उत्पन्न होती है। यही जिज्ञासा उन्हे प्रकृति से और अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। इस जिज्ञासा का उपयोग हमे अपने मातृभापा-शिक्षण मे भी करना चाहिए। इसके लिए हमे इन वातो से सम्वन्वित साहित्य का ज्ञान देना चाहिए तथा इनके सम्वन्ध मे रचनाएँ भी लिखवानी चाहिएं।

प्रकृति-अवलोकन

इस प्रकार हम देखते है कि वुनियादी गालाओ मे मूलोद्योग तथा शिल्प की क्रियाएं, सामाजिक क्रियाकलाप तथा प्रकृति-अवलोकन ही मातृ-भापा-शिक्षण के प्रमुख आवार होगे तथा इन्ही के माध्यम से हमे वालक-वालिकाओ को मातृभापा सम्वन्वी शिक्षा देनी चाहिए।

मातृभाषा-शिक्षक के गुण

मातृभापा-शिक्षक मे निम्न गुण होने चाहिएँ—

१. स्पष्ट, शुद्ध तथा उचित स्वर से वोलने की योग्यता।
२ शुद्ध और स्पष्ट लिखने की क्षमता।
३. मुहावरो, कहावतो आदि का ठीक-ठीक उपयोग करने की योग्यता।
४. व्याकरण और रचना के सावारण नियमो का ज्ञान।
५. साहित्यिक गोष्ठियों, वैठको आदि की व्यवस्था-क्षमता।
६. लेखको, कवियो, नाटककारो आदि के साहित्य की रसानुभूति करने की क्षमता।

७ बुनियादी शालाओं के लिए उपयुक्त साहित्य की रचना-क्षमता।

८ बालको के साहित्यिक प्रयत्नो की रसानुभूति तथा सहानुभूति-पूर्वक उनमे आवश्यकतानुसार सुधार करने की योग्यता।

९. बालकों मे उनके मानसिक स्तर की जाँच करके उपयुक्त साहित्यिक सामग्री चयन करने की योग्यता।

१० बालक-बालिकाओ मे साहित्यिक रुचि उत्पन्न करने की योग्यता।

मातृभाषा-शिक्षण के लिए सहायक सामग्री

मातृभाषा-शिक्षण को सरल तथा अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए हम निम्न सहायक सामग्री का आवश्यकतानुसार उपयोग कर सकते हैं—(१) पाठ्य-पुस्तकें, (२) अभ्यास की कापियाँ, (३) समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएं, और (४) चित्र तथा चार्ट आदि।

अनेक शिक्षकों की धारणा है कि बुनियादी शालाओ मे पाठ्य-पुस्तको की आवश्यकता नही है। यह केवल उनका भ्रम है। इस भ्रम का कारण

पाठ्य-पुस्तकें

बुनियादी शिक्षा मे मूलोद्योग तथा जीवन की ठोस परिस्थितियो के आधार पर ज्ञान देने पर अधिक बल देना है। बुनियादी शिक्षा के इस सिद्धान्त के अनुसार जीवनोपयोगी क्रियाकलाप ही सभी प्रकार के ज्ञान के आधार होंगे। अत परम्परागत चली आई पाठ्य-पुस्तकें तथा उनको ही सबसे महत्त्वपूर्ण मानकर उनके आधार पर दिये जाने वाले मातृभाषा-शिक्षण के लिए वास्तव मे बुनियादी शिक्षा मे कोई स्थान नही है। पर क्रिया करने की विधि का ज्ञान प्राप्त करने, समाज तथा प्रकृति के सम्बन्ध मे प्रत्यक्ष क्रियाओ द्वारा प्राप्त ज्ञान को परिमार्जित करके उसका विकास करने आदि के लिए बुनियादी शालाओ मे अन्य शालाओ की अपेक्षा और भी अधिक पुस्तको की आवश्यकता पडती है। अत शिक्षको तथा शिक्षार्थी-बन्धुओ के स्वाध्याय तथा पथ-प्रदर्शन के लिए बुनियादी शालाओ मे अच्छी उपयोगी पुस्तको की आवश्यकता है। आज बाजारो मे चलने वाली अनेक पुस्तकें वास्तव मे बुनियादी शालाओ के लिए उपयोगी नही हैं, क्योंकि

वे क्रियाओ, विशेषत: मूलोद्योग तथा शिल्प और जीवन की ठोस क्रियाओं, के आवार पर नही लिखी गई हैं। अत. बुनियादी शालाओ मे मातृभाषा-शिक्षण के लिए यदि कोई पाठ्य-पुस्तक इन जीवनोपयोगी क्रियाकलापो के आधार पर लिखी जाती है तो अति उपयोगी सिद्ध होगी।

पाठ्य-पुस्तक के आवश्यक गुण

१. भाषा वालक तथा वालिकाओ के मानसिक विकास के अनुकूल हो।
२. ऐसी लोकोक्तियो, एव जनश्रुतियो का समावेश किया गया हो जो घरेलू वातावरण से सम्वन्धित हो। धीरे-धीरे साहित्यिक पुट उच्च कक्षाओ के लिए दिया गया हो।
३ वर्णित विषय वालक-वालिकाओ की अनुभव-परिधि के भीतर ही हो।
४. स्थानीय सीमा से क्रमश. प्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय विपयो का समावेश हो।
५. वर्णन-शैली आकर्षक, मनोरजक तथा विद्यार्थियो की रुचि के अनुकूल हो।
६. वर्णनात्मक पाठो से क्रमश. कल्पना-प्रधान, विचार-प्रधान तथा गवेपणात्मक पाठ दिये गए हो।
७ रचनात्मक स्वरूप प्रस्तुत करे।
८. पाठ छोटे तथा वालको की ग्रहण-शक्ति के अनुकूल ही हो।
९ पाठ मूलोद्योग, शिल्प तथा जीवन की ठोस क्रियाओ से सम्वन्वित हो।
१० पाठ अन्य विपयो के ज्ञान मे सहायक हो।
११. सास्कृतिक विपयों मे पहले स्थानीय तथा वाद मे प्रान्तीय और अन्त मे सार्वदेशिक सभ्यता से सम्वन्धित हो।
१२. पाठ केवल ज्ञान वढाने मे सहायक ही न हो, वरन् व्यावहारिक कुशलता की वृद्धि मे भी सहायक हो।
१३ पलायनवादी या उदासीन वृत्ति वढाने वाले पाठ न हो।

१४. प्रान्तीय, जातीय तथा राष्ट्रीय कटुता या द्वेष बढाने मे सहायक पाठ न हो।
१५. अवाछित उद्वेगो वाले पाठ न हो।
१६. पाठ के अन्त मे बोध-परीक्षात्मक तथा अभ्यासात्मक प्रश्न हो।
१७ कागज अच्छा तथा छपाई अच्छी, शुद्ध तथा उपयुक्त टाइप मे हो।
१८ आवश्यकतानुसार उपयोगी सुन्दर चित्र तथा आवश्यक सकेत दिये गए हो।
१९ पुस्तक की आकृति अनुकूल हो।
२०. माध्यमिक कक्षाओ मे बहुत सक्षिप्त तथा उच्च कक्षाओ मे सक्षिप्त लेखक-परिचय दिया गया हो।

बुनियादी शालाओ मे बालको को लिखना सीखते ही डायरी रखनी चाहिए। डायरी मे दो या तीन शब्द से अधिक के वाक्य न होने चाहिएँ।

अभ्यास की कापियाँ

प्रारम्भ मे बालक-बालिकाएँ शिक्षक की सहायता से डायरी भरें, पर धीरे-धीरे स्वय भरने का अभ्यास करना चाहिए। शिक्षक को डायरी प्रतिदिन देखनी चाहिए तथा आवश्यकतानुसार यथास्थान उसे सुधारना चाहिए। मूलोद्योग, शिल्प तथा अन्य क्रियाओ से सम्बन्धित कापियाँ भी बालको को रखनी चाहिएँ। भाषा के विभिन्न रूपो मे सम्बन्धित कापियाँ भी होनी चाहिएँ, जैसे कहानी, कविता, गद्य आदि की।

बालोपयोगी सरल समाचार-पत्र तथा विभिन्न प्रकार की पत्र-पत्रिकाएँ बालको की रुचि तथा भाषा-कौशल बढाने मे बड़ी सहायक होती है। बालक

समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएँ

तो स्वभावत ही चित्रो वाली सरल पत्रिकाएं देखने तथा पढने मे रुचि रखते है। पत्र-पत्रिकाओ मे कविता, कहानी, लेख, कथाएं, कहावते आदि रहती हैं। इनके पढने से बालक-बालिकाओ का मातृभाषा का ज्ञान बढता है। प्रत्येक बुनियादी शाला मे इनकी उचित व्यवस्था होनी चाहिए। ये शालाओ मे केवल खरीदी ही न जायँ,

वरन् विद्यार्थियो के पढने के लिए उपलब्ध भी हो।

चित्र तथा चार्ट आदि

चित्र तथा चार्ट वालको के विचार स्पष्ट करने तथा समझाने के लिए वडे उपयोगी होते है। मातृभापा-शिक्षण मे वर्णमाला के चार्ट, कहानियो के चित्र, भाषा-सम्वन्धी खेलो तथा व्याकरण के नियमो के चार्ट आदि वड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं। मौखिक तथा लिखित निवन्धो के अभ्यास के लिए भी अनेक प्रकार के चित्र तथा चार्टो का उपयोग किया जा सकता है।

मातृभापा-शिक्षण-विधि

वार्तालाप तथा मौखिक शिक्षण : महत्त्व

हमारे जीवन मे वार्तालाप तथा मौखिक कार्य का वडा महत्त्व है। घर और समाज, सभी स्थानो मे अच्छे वार्तालाप पर ही हमारी सफलता तथा सुख-दुख निर्भर रहता है। जीवन के हर क्षेत्र मे अच्छी वोलचाल की आवश्यकता पडती है। घर मे नौकर से काम लेने, भोजन मांगने, कपड़े वनवाने के लिए माँ-बाप से प्रार्थना करने, वाजार से चीजें खरीदने, व्यापार मे चीजे वेचने, नौकरी के लिए प्रत्यक्ष भेंट करने, समय-समय पर अपने अधिकारी से मिलने, चुनाव मे जीतने, न्यायालय मे न्याय पाने, हर समय तथा स्थान पर अच्छे वार्तालाप तथा वोलने पर ही हमारी सफलता निर्भर रहती है। अच्छे वोलने वाले व्यक्ति मामूली वात को महत्त्वपूर्ण वना कर सभी का ध्यान उस ओर आकर्पित कर लेते है तथा अकुशल वार्तालाप करने वाले महत्त्वपूर्ण वातो को भी मामूली वना देते हैं। अच्छा वोलने वाला शिक्षक वालको को अपनी ओर खीच लेता है तथा अपनी वातें उनसे मनवा लेता है। ये सव वातें तो व्यावहारिक जीवन से सम्वन्धित हुई। अत हम यह कह सकते हैं कि यदि हमे जीवन के किसी क्षेत्र मे सफलता प्राप्त करना है तो हमे अच्छा वार्तालाप करने वाला वनना चाहिए।

व्यावहारिक जीवन के सिवाय मातृभापा-शिक्षण के शास्त्रीय दृष्टि-

कोण से भी वार्तालाप तथा मौखिक शिक्षा का वडा महत्त्व है। भापा सीखने के लिए उसका बोलना आवश्यक है। वालक सवसे पहले भापा वोलना ही सीखता है। वोलचाल द्वारा भापा का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है। इतना ही नही, वार्तालाप तथा मौखिक कार्य लिखना सीखने के लिए भी अत्यावश्यक हैं। अच्छा लिखना सीखने के लिए अच्छा वोलना आवश्यक है। लेम्वार्न महोदय का कथन है कि अच्छा लेख सावधानीपूर्वक रचित एक वातचीत ही है।

व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए भी वार्तालाप तथा मौखिक शिक्षा आवश्यक हैं। हम देखते हैं कि अपने दैनिक जीवन के अधिकाश कार्य हम वोलकर ही करते है। हम अपने अनुभव वोलकर ही प्रकट करते है। अत यह आवश्यक है कि हमारी शालाओ मे भी वार्तालाप-शिक्षण को अधिक महत्त्व दिया जाय। साथ-ही-साथ वालक के शालेय जीवन मे घरेलू जीवन से एकदम परिवर्तन न होना चाहिए। शाला मे भरती होने के पूर्व वह वार्तालाप ही अधिक करता है। फिर एकाएक लिखने पर अधिक वल देना कैसे स्वाभाविक कार्य हो सकता है ! अत प्रारम्भ मे वार्तालाप-शिक्षण पर ही अधिक वल देना चाहिए।

यह तो मानी हुई वात है कि सम्पर्क, अनुभव, अनुकरण तथा अभ्यास द्वारा हो सरलता से कोई भापा सीखी जा सकती है। ये सव वार्तालाप तथा मौखिक शिक्षा मे ही सम्भव हैं। अत मातृभापा-शिक्षण मे वार्तालाप तथा मौखिक कार्य का वडा महत्त्व है।

वार्तालाप तथा मौखिक कार्य के उद्देश्य

१ सरल, स्पष्ट तथा शुद्ध शब्दो मे भावो तथा विचारो को व्यक्त करने की क्षमता वढाना।

२ अनुभवो तथा विचारो को दूसरो के सामने प्रभावोत्पादक शैली से व्यक्त करने की शक्ति का विकास करना।

३ अनुभवो तथा विचारो का तर्कपूर्ण प्रतिपादन करने की योग्यता लाना।

४. आवश्यकतानुसार सही-सही तथा जितना उचित हो उतना ही बोलने की योग्यता का विकास करना।

अच्छे वार्तालाप के गुण

१ स्वाभाविक।
२. गतिशील (एक ही स्वर से कहना अप्रभावपूर्ण रहता है)।
३ हाव-भावयुक्त।
४. श्रोता के अनुकूल।
५ स्थिति तथा अवसर के अनुकूल।
६ स्पष्टता।
७ लोकोक्ति तथा जनश्रुति के अनुकूल।
८. लक्ष्य का ध्यान रखकर कहना।
९. सामाजिक शिष्टता के अनुकूल होना।
१० सत्यता तथा प्रियता होना।
११. स्वराघात (वाक्य मे आये शब्दो पर उचित बल देते हुए बोलना)।
१२ मधुरता।

वार्तालाप-शिक्षण-विधियाँ या साधन

प्रारम्भिक कक्षाओ मे (१) सुनने तथा विचार ग्रहण करने, (२) बार-बार सुनकर ध्वनियो का रूप याद रखने, तथा (३) सुनी हुई ध्वनियो को अभ्यास से शुद्ध रूप मे व्यक्त करने पर ही अधिक बल दिया जाता है। ये तीनो कार्य कुटुम्ब तथा समाज मे भी चलते रहते हैं, पर स्थानीय तथा ग्रामीण दोषो को दूर करने का ध्यान शाला मे रखा जाना चाहिए। हाँ, जिन बालकों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है उन्हें हिन्दी सीखने के लिए इन कार्यो की ओर विशेष ध्यान देना पडेगा।

उच्च कक्षाओ मे बालक बोलने तथा वार्तालाप मे काफी अभ्यस्त हो जाते हैं। उन्हे शुद्ध उच्चारण का ज्ञान भी हो जाता है। अत. उनके सम्बन्ध मे निम्न कार्यो का ध्यान रखना तथा कराया जाना उपयोगी सिद्ध होगा—(क) वाक्य-रचना शुद्ध होना, (ख) वार्तालाप मे मधुरता,

प्रभावोत्पादकता, सशक्तता, व्यावहारिकता आदि गुणो का लाना, तथा (ग) उचित स्वराघात तथा उतार-चढाव के साथ अपने विचार तथा भाव व्यक्त करना आदि।

वार्तालाप तथा मौखिक कार्य मे दक्षता लाने के लिए निम्न उपायो या विधियो का उपयोग करना लाभदायक सिद्ध होगा—

१ साधारण बातचीत या सम्भाषण-विधि। प्रारम्भिक कक्षाओ मे बातचीत के घण्टे अलग से रखना ठीक है। पर शिक्षक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालक किसी नियम मे बँधकर बातचीत न करें। बातचीत अनियमित तथा अनौपचारिक ढग से ही हो। मिस वेलॉक का तो सुझाव है कि इस घण्टे मे बातचीत समाचारो से ही प्रारम्भ की जानी उपयोगी होगी। बातचीत घर या बाहर की कोई घटना, आपसी वार्तालाप, रास्ते मे चलते हुए देखे गए दृश्य, बालक दिन मे तथा शाम को क्या करते हैं, बालक द्वारा बनाई गई वस्तुएँ आदि साधारण बातो पर की जानी चाहिएँ। इस अवस्था मे बोलने तथा वार्तालाप के लिए बालक-बालिकाओ को प्रोत्साहित करना ही ध्येय होना चाहिए। अत यदि बालक शुद्ध भाषा न भी बोलें तो कोई एतराज़ न होना चाहिए। यदि भाषा-व्यवस्था व शुद्धता की ओर अधिक ध्यान दिया गया तो बालक बोलने से झिझकने लगेंगे तथा अपने अनुभव प्रकट न कर सकेंगे।

२. समवाय-विधि। बुनियादी शालाओ मे बालक मूलोद्योग तथा शिल्प-सम्बन्धी प्राय प्रतिदिन कोई-न-कोई कार्य या क्रिया करते हैं। अत स्वाभाविक है कि वे अपने किये गए कार्य या क्रिया के सम्बन्ध मे बातचीत करना चाहेंगे। उनकी इस प्रवृत्ति का सदुपयोग हमे करना चाहिए। किये गए कार्य का वर्णन या बनाई गई वस्तु की चर्चा सरलता से की जा सकती है। कभी-कभी सम्पूर्ण कक्षा को छोटे-छोटे समूहो मे भी विभक्त करके बातचीत कराई

जा सकती है। इन्ही अवसरो पर वालकों को वनाई गई वस्तुओं के सम्वन्ध मे कविताएँ या विवरण ढूंढने तथा पढने के लिए भी प्रेरित किया जा सकता है। कविता तथा विवरण-पाठ इस कार्य मे वड़े उपयोगी सिद्ध होगे।

३. खेल तथा अभिनय-विधि। वालको को खेल तथा अभिनय अच्छे लगते है। अत· शाला मे उनसे घर या समाज की कुछ उपयोगी वातो के अभिनय कराए तथा खेल खिलाए जा सकते है; जैसे घर मे रहना, ऐतिहासिक कहानियो-सम्वन्धी अभिनय आदि। वालिकाएँ गुडियो का खेल, भोजन पकाने का खेल आदि खेल सकती है; जैसे रानी दुर्गावती, झासी वाली रानी, गाधीजी सम्वन्धी आदि ऐतिहासिक घटनाओ का अभिनय गद्य तथा पद्य दोनो मे हो सकता है। मातृभापा सिखाने के अनेक खेलो का उपयोग मौखिक कार्य तथा वार्तालाप-शिक्षण के लिए किया जा सकता है। इनमे से कुछ खेलो का विवरण अन्त मे दिया गया है।

तात्कालिक अभिनयो का उपयोग भी वार्तालाप मे दक्षता लाने मे वडा सहायक होगा।

४ कहानी-कथन-विधि। वालकों को कहानी सुनने का वडा शौक होता है। वे कहानी कहना भी चाहते हैं। अत कहानी का उपयोग करना वार्तालाप-शिक्षण मे वडा सहायक होगा। कही गई कहानी फिर से दुहराई जा सकती है। उसका अन्त वतलाकर प्रारम्भ वतलाने के लिए कहा जा सकता है। प्रारम्भ वतलाकर कहानी पूरी कराई जा सकती है। कही गई कहानी के अनुरूप दूसरी कहानी भी कहलाई जा सकती है। चित्रो की सहायता से कहानी विकसित करना भी उपयोगी रहता है। कुछ उच्च कक्षाओ मे कहानी की रूपरेखा देकर वालको से कहानी कहलाई जा सकती है।

५ चित्र-विधि । आजकल अनेक प्रकार के चित्र तथा चार्ट आदि बनाए जाते हैं । अखबारो मे भी इनकी भरमार रहती है । शालाओ मे भी अनेक प्रकार के जानवरो, मानवो तथा उनके जीवन-सम्बन्धी चित्र बनाए जा सकते हैं । हाँ, प्रारम्भिक कक्षाओ मे चित्र सरल तथा स्पष्ट होने चाहिएँ । साथ-ही-साथ चित्र मे उनके अनुभव की बातो का ही समावेश होना चाहिए । चित्र बडे हो तथा उनमे बहुत अधिक बातो का समावेश न किया गया हो ।

इन चित्रो को दिखाकर वार्तालाप किया जाना चाहिए । इससे बालक न केवल वार्तालाप मे दक्ष होगे, वरन् उनकी रुचियो का भी विकास होगा । साथ ही उच्च कक्षाओ मे उनका कलात्मक अभ्यास भी बढेगा ।

६ भाषण तथा वादविवाद-विधि । प्रारम्भिक कक्षाओ मे बालक को वार्तालाप का अच्छा अभ्यास हो जाता है । प्रारम्भिक शाला की उच्च कक्षाओ तथा पूर्व-माध्यमिक कक्षाओ मे बालको को छोटे-छोटे भाषण देने के लिए प्रेरित किया जा सकता है । बुनियादी शालाओ मे तो विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक समारोह मनाए जाते हैं । बालको को इनमे भाषण देने तथा कविता पाठ करने के लिए प्रेरित करना बडा उपयोगी सिद्ध होगा । बालको के भाषणो मे जो दोष हो उन्हे शिक्षक को नोट करते जाना चाहिए तथा बाद मे धीरे-धीरे उन्हे पूरा करने के लिए बालको को उपाय बतलाने चाहिएँ । भाषण के समय उन्हे रोकना या बाद मे निरुत्साहित करना उचित नही है ।

कक्षा तथा सम्पूर्ण शाला की वादविवाद-प्रतियोगिताएँ समय-समय पर आयोजित करनी चाहिएँ । बहुधा देखा गया है कि इन प्रतियोगिताओ मे केवल अच्छे वक्ताओ को ही बोलने के अवसर दिये जाते हैं । इससे अनेक बालक, जिनमे वक्ता बनने

की क्षमता गुप्त रहती है या किन्ही कारणो से उनकी यह क्षमता प्रस्फुटित नही हो पाती, अपनी शक्तियो का विकास करने से वंचित रह जाते हैं। अत कक्षा की वादविवाद-प्रतियोगिताओ मे तो कम-से-कम इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि कक्षा के सभी वालक-वालिकाओ को दो-चार वार वोलने या सभापति वनने आदि के अवसर अवश्य दिये जायँ।

७. पुस्तक-समालोचना-विधि। उच्च कक्षाओ मे कक्षा के वालक पढ़ी गई पुस्तको की समालोचना करने के लिए प्रेरित किये जा सकते हैं। इस प्रकार पढी गई पुस्तक ही वालको की वातचीत का विपय वन जाती है।

८. विचार-विमर्श-विधि। किसी योजना या कार्य पर सामूहिक विचार-विमर्श करना वडा उपयोगी होता है। विचार-विमर्श के लिए कक्षा को टोलियो मे भी विभक्त किया जा सकता है। विचार-विमर्श मे सभी सदस्य अनौपचारिक ढग से निर्धारित विपय या योजना के सम्वन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते हैं। विचार-विमर्श-विधि मे वालक आपस मे आवश्यकतानुसार प्रश्नोत्तर करके अपनी शकाओं का समाधान भी कर सकते हैं। उन्हे किसी विपय के सम्वन्ध मे विभिन्न दृष्टिकोणो का पता भी हो जाता है। सामूहिक विचार-विमर्श-विधि वादविवाद-विधि से अधिक उपयोगी है, क्योकि इसमे केवल तर्क के लिए ही कोई तर्क नही दिया जाता और न इसमे भाषण देने की कुशलता से लोगो को प्रभावित किया जा सकता है। इस प्रकार वादविवाद के दोपो को दूर करते हुए सभी लाभ विचार-विमर्श-विधि मे मिल जाते हैं।

वार्तालाप तथा वाचन मे शुद्ध उच्चारण का वडा महत्त्व है। अत प्रारम्भ से ही हमे शुद्ध उच्चारण का ध्यान रखना चाहिए तथा वालको को शुद्ध उच्चारण करने के लिए प्रेरित करते रहना चाहिए। अशुद्ध

उच्चारण का महत्त्व उच्चारण से भाषा विकृत होती है। उसका सम्पूर्ण ज्ञान भी बिना शुद्ध उच्चारण के सम्भव नही है। बहुधा बालक स्थानीय, ग्रामीण या प्रान्तीय प्रभाव के कारण अशुद्ध भाषा बोलते है। प्रारम्भ से ही यदि इस ओर ध्यान न दिया गया तो इनका दुष्प्रभाव उनकी भाषा पर जीवन-भर पडा रहेगा। अशुद्ध उच्चारण के निम्न कारण हो सकते है—

१ निकट सम्पर्क के लोगो के उच्चारण-दोष का प्रभाव।

२. वर्णों के शुद्ध उच्चारण का अज्ञान।

३ प्रारम्भिक शिक्षा मे उच्चारण-सम्बन्धी असावधानी।

४ मनोवैज्ञानिक कारण, अर्थात् सकोच या भय के कारण दोषपूर्ण आदतो का निर्माण।

५ ध्वनियो तथा शब्दो के उच्चारण मे पूर्ण प्रयत्न न करना, अर्थात् प्रयत्न-लाघव।

६ ध्वनि-यत्र या गले, ओठ, तालु, दाँत आदि मे कोई विकार।

७ अन्य भाषाओ का प्रभाव।

स्वर-लोप, स्वरागम, चन्द्रबिन्दु तथा अनुस्वार का भ्रम, ऋ, र आदि का भ्रम, न, ण का भ्रम, क्ष तथा छ, ष और श, स का भ्रम, अशुद्ध स्वराघात, शब्दांश-विपर्यय आदि उच्चारण-दोष बहुधा बालक किया करते है। इनके सुधार के लिए निम्न उपाय आवश्यकतानुसार काम मे लाने चाहिएँ—

उच्चारण-दोष दूर करने के उपाय

१ बातचीत, कहानी, विचार-विमर्श, वादविवाद, कविता तथा विवरण-पाठ आदि का उपयोग करके बोलने का अभ्यास कराना।

२ न, ण, श, ष, स, क्ष, छ, ऋ, र आदि के उच्चारण-दोषो को समझाने के लिए इन शब्दो के उच्चारण करने का ढग समझाना चाहिए। बालको को जीभ कहाँ लगानी है, कितना मुँह खोलना है आदि का ज्ञान कराना चाहिए। आवश्यकतानुसार

स्वर-यंत्रों के चित्रों का उपयोग भी किया जा सकता है। यदि सुविधा हो तो फ्रोनोग्राफ, एक्सरे, कृत्रिम तालु, लैरिंगोस्कोप, ब्रीदिंग फ्लास्क, आटोफोनोस्कोप आदि नवीन वैज्ञानिक यंत्रों की सहायता से ध्वनियाँ निकालने का सही ढग बतलाया जा सकता है।

३. जिन ध्वनियो मे बालक प्राय गलती करते है उन्हे उन विशेष ध्वनियों का परस्पर-भेद बतलाना चाहिए।
४. शुद्ध उच्चारण की आवृत्ति कराके बार-बार शुद्ध उच्चारण कराया जाना चाहिए।
५. बड़े-बड़े शब्दो की ध्वनियो का विश्लेषण करके जैसे चा + हि + ए या प्रा + रम् + भिक आदि का स्पष्ट उच्चारण कराना चाहिए।
६. बालक कभी-कभी श्वास लेने की क्रिया मे दोष रहने से भी शुद्ध उच्चारण नहीं करते। अत. ऐसे बालको को श्वास-सम्बन्धी व्यायाम कराके शुद्ध उच्चारण-योग्य बनाना चाहिए। पर उडाना, गुब्बारा फुलाना, फूल सूंघना आदि अनेक प्रकार के खेल इसके लिए उपयोगी रहेंगे।
७. शारीरिक दोषो के कारण, जैसे गिल्टियो या कौओ के बढने आदि के कारण, बालक अशुद्ध उच्चारण करते हैं। वे तुतलाने और हकलाने भी लगते हैं। इस प्रकार के बालक-बालिकाओ का डॉक्टरो की सलाह से इलाज कराना चाहिए।
८ हकलाना और तुतलाना डर या घबराहट आदि मनोवैज्ञानिक कारणो से भी हो सकता है। अत. बालक-बालिकाओ मे इन कारणो को दूर करने के प्रयत्न करने चाहिएं।
९. प्रारम्भिक कक्षाओ मे तथा आवश्यकता पडने पर जीभ ऐंठने वाली पदावली का उपयोग करके—जैसे तचा, तचतै तचत तचि—या जीभ के नीचे मुलैठी या अन्य खाने की चीज़ रखकर बोलने

का अभ्यास कराने से भी उच्चारण-शुद्धि मे सहायता मिलती है।

१० शिक्षक को हमेशा शुद्ध स्पष्ट बोलना चाहिए। बालक शिक्षक का अनुकरण ही तो करते हैं।

११ उच्चारण-शुद्धि के समय बालक-बालिकाओ की झिझक न बढने देनी चाहिए।

साधारणत: पुस्तक या समाचार-पत्र पढने को ही पठन या वाचन कहते हैं। पर बिना अर्थ समझे हुए पढने को हम वाचन नही कह सकते, क्योंकि वाचन मे लिपि पढ लेना ही सब-कुछ नही है। लिपि पढकर उसे समझना तथा उसका अर्थ ग्रहण करना ही उपयुक्त वाचन कहलाएगा।

वाचन-शिक्षण

वाचन-प्रक्रिया की हम निम्न चार अवस्थाएँ कर सकते हैं—

१ लिपि देखना।

२ ध्वनियाँ निकालना।

३ ध्वनियो को समझना।

४ ध्वनियो से अर्थ ग्रहण करना।

प्रारम्भिक कक्षाओ में वाचन एक बहुत ही महत्त्व का विषय है। यदि हम बालक-बालिकाओ को शीघ्र-से-शीघ्र आत्म-निर्भर तथा स्वय अध्ययन करने वाला बनाना चाहते है तो हमे उन्हे स्वय पढने की शिक्षा अच्छी तरह तथा जल्दी-से-जल्दी देनी चाहिए। प्रारम्भिक अवस्था मे बालक केवल वर्णों तथा शब्दो को पहचानने के लिए ही वाचन करते है। धीरे-धीरे जब वे वाचन-क्रिया मे दक्ष होने लगते है तो वे और अधिक बातो की जानकारी प्राप्त करने के लिए वाचन करते हैं। उच्च कक्षाओ मे आते-आते वे सौन्दर्य-ग्रहण के लिए वाचन करते है। पर बहुत कम बालक या प्रौढ इस तीसरी अवस्था तक पहुँच पाते है।

महत्त्व

वाचन बालक-बालिकाओ के भावी जीवन तथा अध्ययन मे सहायक होता है। वाचन मे दक्षता न केवल मातृभाषा-शिक्षण मे सहायक होती

है, वरन् अन्य विषयो की ज्ञान-प्राप्ति के लिए भी वाचन मे कुशल होना आवश्यक रहता है। वाचन मे दक्ष होने से बालक किसी भी बात को अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं। इससे शिक्षक, अभिभावक, और समाज द्वारा वांछित विचारो की रुचि की वृद्धि भी होती है। बालक यदि वाचन मे दक्ष है तो अधिक ज्ञान-प्राप्ति के उद्देश्य से वाचन के लिए स्वयं प्रेरणा पाता है। बालक के व्यक्तित्व के विकास तथा स्थायित्व मे वाचन बड़ा सहायक है।

वाचन के प्रकार

वाचन के प्रमुखतः दो प्रकार होते हैं—(१) सस्वर वाचन तथा (२) मौन वाचन। कुछ विद्वान् अध्ययन को भी वाचन का ही प्रकार मानते हैं। वे अध्ययन को मौन वाचन का उच्च स्तर मानते हैं।

सस्वर वाचन से बालको को शब्दो के शुद्ध उच्चारण का ज्ञान होता है तथा अशुद्धियो का निराकरण होता है। इससे बालको को बोलने या वार्तालाप का अभ्यास होता है। भाषण-कला मे प्रवीण होने के लिए सस्वर वाचन मे प्रवीणता उपयोगी होती है। सस्वर वाचन मे वाचन-मुद्रा तथा वाचन-शैली दोनो का ध्यान रखना चाहिए। वाचन-मुद्रा के सम्बन्ध मे वैज्ञानिक खोजो ने बडा परिवर्तन कर दिया है। अभी तक लोगो का विश्वास था कि बालक को प्रत्येक शब्द पर दृष्टि रखते हुए पढ़ना चाहिए। पर वैज्ञानिक खोजो से पता चला है कि प्रत्येक शब्द पर दृष्टि न रखकर अक्षरो के समूहो पर दृष्टि रखनी चाहिए। अक्षरो के समूह की पहचान के अभ्यास से वाचन के समय बालक अक्षर-समूह को देखते ही पहचानकर वाचन कर सकेंगे। इसीलिए आजकल पहले वर्णों का ज्ञान न कराके पहले शब्दो तथा वाक्यो का ज्ञान कराने पर बल दिया जाता है तथा बाद मे उनका विश्लेषण करके वर्णों का ज्ञान कराया जाता है।

सस्वर वाचन

वाचन-शैली मे शब्दोच्चारण, अक्षर-व्यक्ति (Articulation), बल तथा विराम, सस्वरता (Intonation), लय तथा गति, प्रभावोत्पादकता

आदि शामिल है। हमे इनका ध्यान रखते हुए ही सस्वर वाचन कराना चाहिए। शिक्षक को आवश्यकतानुसार सस्वर वाचन का आदर्श प्रस्तुत करते रहना चाहिए।

हमारे जीवन मे मौन वाचन का बहुत अधिक महत्त्व है। क्योकि सारे जीवन-भर हमे मौन वाचन से ही सभी कार्य करने पडते है, अत. इसकी उचित शिक्षा-दीक्षा बालक को शाला मे अवश्य मिलनी चाहिए। मौन वाचन अर्थ-ग्रहण मे बडा सहायक होता है। मौन वाचन हम सस्वर वाचन की अपेक्षा अधिक गति से कर सकते हैं। यह न केवल वाचन की गति मे तीव्रता लाता है, वरन् समझने की गति को भी बढाता है। वैज्ञानिक प्रयोगो से सिद्ध हुआ है कि व्यक्ति निश्चित अवधि मे मौन वाचन द्वारा सस्वर वाचन की अपेक्षा दुगने अक्षर पढ सकता है। हाँ, प्रारम्भिक कक्षाओ मे मौन वाचन तथा सस्वर वाचन की गति प्राय बराबर रहती है। इसी-लिए प्रारम्भिक कक्षाओ मे इसकी उतनी उपयोगिता नही है। पर चौथी या पाँचवी कक्षा से मौन वाचन की गति बढने लगती है।

मौन वाचन

मौन वाचन के समय हमे ध्यान रखना चाहिए कि बालक ओठ खोल-कर या हिलाकर न पढे। ओठ हिलाकर या खोलकर आवाज करते हुए पढना मौन वाचन नही कहला सकता। तथ्यो को समझने तथा हृदयगम कराने के लिए ही मौन वाचन कराना चाहिए। मौन वाचन मे दक्ष करके तथा इसमे बालक-बालिकाओ की रुचि उत्पन्न करके हम उन्हे और अधिक ज्ञान-वर्द्धन की दृष्टि से पढने के लिए प्रेरित कर सकते है।

वाचन की नवीन प्रवृत्तियाँ

१ अभ्यासात्मक से कलात्मक दृष्टि। पहले केवल अभ्यास के लिए एक-दो पाठ्य-पुस्तको तक ही वाचन सीमित रहता था। पर अब विचार-सग्रह, प्रश्नो के उत्तर खोजना, पढी वस्तु का आनन्द सहपाठियो तथा अन्य लोगो तक पहुँचाना, समस्याओ के समाधान खोजना आदि के लिए वाचन कराया जाता है।

२. व्यापकता । पहले वाचन केवल वाचन के घण्टो तक ही सीमित रहता था । पर अब पूर्ण शाला-कार्य मे वाचन का स्थान है ।
३. प्रोत्साहन । पहले वाचन बलपूर्वक कराया जाता था, पर अब वाचन से बालक-बालिकाओ को प्रोत्साहित किया जाता है ।
४. विभिन्न विधियो का उपयोग । वाचन-शिक्षण के लिए आजकल अनेक विधियो का उपयोग किया जाता है । इनका विवरण आगे दिया गया है ।
५. विचार की इकाई । अब वाचन के अभ्यास के लिए निरर्थक शब्द नही पढाए जाते । अब तो यह विचार की इकाई से सम्बन्वित है, अत समझकर पढ़ने पर ही अधिक बल दिया जाता है।
६. व्यक्तिगत सहायता । वाचन मे दक्ष करने तथा उसके दोषो को दूर करने के लिए अब व्यक्तिगत सहायता आवश्यक मानी जाने लगी है ।
७ व्यक्तित्व का विकास। वाचन अब व्यक्तित्व के विकास के लिए बड़ा उपयोगी तथा आवश्यक साधन माना जाने लगा है। इसके अभाव मे भावुकता की कमी आ जाती है ।
८. पुस्तकालय की आवश्यकता । पहले वाचन-शिक्षण के लिए पुस्तकालय आवश्यक नही समझा जाता था, पर अब पुस्तकालय की ओर झुकाव आवश्यक समझा जाता है, जिससे बालक अपनी रुचि के अनुसार पुस्तको का चुनाव कर सके ।

वाचन-शिक्षण के उद्देश्य

१. शुद्ध उच्चारण करने की क्षमता का विकास करना ।
२ स्वर, गति, लय आदि के साथ वाचन करने की क्षमता वढाना ।
३. शीघ्र वाचन करते हुए अर्थ ग्रहण करने की क्षमता बढ़ाना ।
४. वाचन मे रुचि उत्पन्न करना तथा क्रमश. अधिक ज्ञान बढ़ाने के लिए प्रेरित करना ।

५ वाचन से मनोरंजन प्राप्त करना, अवकाश के समय का सदुपयोग करना तथा रचनात्मक कार्य की ओर प्रवृत्त होना।

वाचन-शिक्षण-विधियाँ

वाचन-शिक्षण के लिए आजकल सामान्यत निम्न विधियो का उपयोग किया जाता है—

१ देखो तथा पढो विधि। इसमे शिक्षक चित्र की सहायता से श्यामपट पर वाक्य लिखता है। शिक्षक एक-दो बार पढकर सुना देता है। फिर बालक देख-देखकर उसकी आवृत्ति करते है। बुनियादी शालाओ मे उद्योग तथा शिल्प-कार्यो-सम्बन्धी शब्द या वाक्यांश श्यामपट पर लिखकर बालको से दुहरवाना चाहिए। यह विधि पुरानी वर्ण-विधि के विरुद्ध है।

२ वाक्य-शिक्षण-विधि। यह विधि 'देखो तथा पढो' विधि का परिवर्द्धित तथा विकसित रूप ही है। बुनियादी शालाओ मे मूलोद्योग तथा अन्य व्यावहारिक कार्यो-सम्बन्धी वाक्यो से वाचन प्रारम्भ करना चाहिए। इसके बाद विश्लेषण-विधि से शब्दो तथा वर्णो को समझाना चाहिए। इसमे बालक की रुचि तथा अनुभव का ध्यान रखते हुए कहानी, चित्र आदि का उपयोग भी किया जा सकता है।

३ अनुकरण-विधि। इस विधि मे शिक्षक पहले शब्द का उच्चारण करता है तथा बाद मे बालक उसे दुहराते हैं। इसे 'सुनो और कहो' विधि भी कहा जाता है। इसमे अक्षरो तथा शब्दो का ज्ञान दिया जाता है। यह विधि हिन्दी के लिए उपयोगी नहीं है।

४ ध्वनि-साम्य-विधि। इस विधि मे समान ध्वनि वाले शब्दो को एक साथ सिखाया जाता है, जैसे नल, जल, रल, चल आदि। ऐसे शब्दो से बाद मे वर्णो का ज्ञान कराया जाता है। पर यह विधि कठिन है तथा कई निरर्थक शब्द भी ध्वनि-साम्यता के

कारण पढाने पडते हैं। ध्वनि-साम्यता वाले इतने अधिक शब्द प्राप्य भी नही हैं।

५ भापा-शिक्षण यत्र-विधि। यह अनुकरण-विधि का परिवर्द्धित तथा वृहद् रूप है। इसमे विशेष उपयोग के लिए रिकार्ड रहते हैं जिनमे गद्य या वातचीत के स्वर भरे रहते है। ग्रामोफोन की सहायता से ये रिकार्ड वालकों को सुनाए जाते हैं। वालक ध्वनि सुनकर सही उच्चारण करना सीखते हैं। इसे लिग्वाफोन-विधि भी कहते हैं। हमारे देश मे धन की कमी से इस विधि का उपयोग बहुत ही कम किया जा सकता है। यह विधि अधिक खरचीली है। साथ ही ग्रामोफोन तथा रिकार्डों का सुरक्षित रखना भी एक समस्या ही है।

६. साहचर्य-विधि। इस विधि का गठन माण्टेसरी-विधि के आधार पर ही किया गया है। इस विधि मे कार्डो पर वस्तुओ के चित्र बना लेते हैं तथा अन्य कार्डो पर वड़े अक्षरो मे उनके नाम लिख लेते हैं। इन चित्रों तथा नाम लिखे कार्डों को मिला दिया जाता है। फिर एक विद्यार्थी को कोई चित्र का कार्ड उठाने के लिए कहते है। इस चित्र के लिए उपयुक्त नाम वाला कार्ड उठाने के लिए दूसरे वालक को कहा जाता है। इस प्रकार खेल चलता जाता है। इससे वालको को वाचन का अभ्यास होता है तथा मनोरजन भी होता है।

७ सामूहिक शिक्षण-विधि। इस विधि मे शिक्षक छोटे पद्य पढकर सुनाता है तथा फिर सम्पूर्ण कक्षा के वालक सामूहिक रूप से उसे दुहराते हैं। यह विधि अनुकरण तथा भापा-शिक्षण-यत्र-विधि का मिश्रण ही है, क्योकि यत्र के स्थान पर इस विधि मे शिक्षक हाव-भाव से पढता है।

मौखिक तथा लिखित भाषा विचारो को व्यक्त करने के दो साधन हैं। ये दोनो साधन एक-दूसरे से भिन्न हैं। वालक प्रारम्भ से ही अग-

लेखन-शिक्षण का महत्त्व

संचालन द्वारा तथा (मौखिक) कहकर ही अपने विचार व्यक्त करता है। अत अग-मचालन की क्रियाओ तथा मौखिक रूप से कहकर विचार व्यक्त करना ही उसके लिए स्वाभाविक लगता है। लिखना तो उसे वडा कृत्रिम तथा अस्वाभाविक क्रिया ही प्रतीत होती है। पर समयानुसार उसे लिखना सिखाना वडा उपयोगी तथा महत्त्व-पूर्ण है। भाषा की ध्वनियो का शुद्ध रूप वोलने के लिए उच्चारण की शिक्षा दी जाती है तथा इन ध्वनियो को लिखने के लिए लेखन का शिक्षण आवश्यक है। लेखन-शिक्षा शालेय शिक्षा-प्राप्ति के लिए एक प्रमुख साधन है। वालक पाठ्य-पुस्तक पढते हुए या वाचन करते हुए शब्दों के अर्थ लिखना चाहते हैं, भाषा के अतिरिक्त अन्य विषयो-सम्वन्धी वातो को टीपना या लिखना चाहते है तथा विभिन्न विषयो का गृह-कार्य करना चाहते हैं। सभी मे लेखन आवश्यक है। इतना ही नहीं, शाला के वाहर व्यावहारिक जीवन मे मित्रो, सम्वन्धियो, व्यापारियो, अपने अफसरो आदि के लिए तथा घरो मे हिसाव-किताव करने के लिए भी लेखन का अच्छा ज्ञान वाछनीय है। आत्माभिव्यक्ति तथा व्यवसाय-व्यापारादि के लिए भी लेखन आवश्यक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लेखन हमारे शालेय तथा व्यावहारिक जीवन के लिए अनिवार्य-सा है।

लेखन की अवस्थाएँ

लेखन की निम्न चार अवस्थाएँ मानी जा सकती है। पहली अवस्था है लेखन की तैयारी। इसमे वालक-वालिकाओ को लेखन के लिए तैयार किया जाता है तथा उनकी रुचि लेखन की ओर वढाई जाती है। दूसरी अवस्था है अक्षर-रचना। इसमे वालक अक्षर लिखना सीखते हैं। तीसरी अवस्था है शब्द तथा वाक्य-रचना। इसमे वे शब्द तथा वाक्य लिखते हैं। चौथी अवस्था है अभ्यास तथा सुडौल लेखन। इसमे वालक लिखने का अभ्यास करते हैं तथा अपनी लिपि सुधारकर सडौल तथा आदर्श वनाने का प्रयत्न करते हैं।

लेखन के दोष

शालाओं मे हम बालकों की लिपि मे प्राय: निम्न दोष देखते हैं। शालाओं मे ही क्यों, सभी स्थानों मे इनमे से कुछ-न-कुछ दोष देखे जा सकते हैं। आजकल तो अच्छी लिपि या लिखावट देखने को भी कम मिलती है।

१. अक्षरो का झुकाव किसी एक ओर होता है, जैसे दाहिनी ओर या बाईं ओर।
२. कुछ अक्षरों का कम स्थान में सिमटना तथा कुछ का फैले रहना।
३. अक्षरो का सुडौल तथा उचित आकार न होना। कुछ अक्षर नीचे तथा कुछ बहुत छोटे बीच में ही रुककर रह जाते हैं।
४ अक्षरों की शिरोरेखा का स्थान-स्थान पर टूटा रहना।
५. अक्षरों की बनावट में रेखाएँ मोटी-पतली होना।
६. अशुद्ध अक्षर लिखना।
७ अनुनासिक, चन्द्रविन्दु तथा अनुस्वार का अशुद्ध प्रयोग करना।
८. स्वरो पर मात्राएँ लगाना, रेफ की अशुद्धि करना, तथा क्, फ्, भ् या द, ह, श, ड, ढ, छ आदि का अशुद्ध सयोग करना।

लेखन-शिक्षण

लेखन-शिक्षण के लिए शालाओ में प्राय. निम्न कार्य कराए जाते हैं—

१. रेत या तख्ती पर लिखना। प्रारम्भिक अवस्था मे जब बालक शाला जाना आरम्भ करता है तथा पढना सीखता है तब पढ़ने के साथ-साथ रेत या तख्ती पर अक्षरो का अभ्यास कराया जाता है। चूंकि प्रारम्भ मे बालक की उँगलियो के स्नायुओ का अच्छा सामजस्य नही हो पाता और वह अक्षरो को बना नही पाता, अत रेत या तख्तियों पर बड़े-बड़े आकार के अक्षरों को बनाने का अभ्यास कराना आवश्यक होता है। हम पुराने समाचार-पत्रों पर दातुन की कूची या सीस पेंसिल से भी लिखवाने का कार्य

करा सकते हैं। इससे बालकों की उँगलियों को उचित आकार में मुड़ने का अभ्यास हो जाता है।

२ अनुलिपि। अनुलिपि के लिए बालक-बालिकाओं को प्रत्येक पृष्ठ पर ऊपर की ओर सुडौल मोटे अक्षर लिखी हुई कापियाँ दी जाती हैं। बालक-बालिकाएँ इन अक्षरों की नकल करके वैसे ही सुडौल अक्षर लिखने का प्रयत्न करते हैं। अनुलिपि करते समय बालकों को ठीक ढंग से बैठकर लिखना चाहिए। बालकों की लिपि-सम्बन्धी अशुद्धियों की ओर शिक्षक को ध्यान रखना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार श्याम-पट पर समझाना भी चाहिए।

३ प्रतिलिपि। अनुलिपि के अभ्यास के बाद बालक-बालिकाओं को पाठ्य-पुस्तक या समाचार-पत्रों से किसी पृष्ठ या अंश को देख-देखकर लिखने के लिए कहा जाता है। यही प्रतिलिपि कहलाती है। इससे बालक-बालिकाओं का शब्द-भण्डार बढ़ता है तथा शुद्ध भाषा लिखने का अभ्यास होता है। छपी पुस्तक या अंश का अनुकरण करके वे सुडौल अक्षर बनाना भी सीखते हैं।

४. श्रुतलिपि। श्रुतलिपि में शिक्षक बोलता है तथा बालक लिखते जाते हैं। पूरा लिखा जाने के बाद शिक्षक उनके लिखे अंश की जाँच करता है तथा अशुद्धियाँ बतलाता है। बालक इन अशुद्धियों को शुद्ध रूप में लिखने के लिए पाँच या दस बार, जैसा शिक्षक निश्चित करता है, लिखते हैं। श्रुतलिपि के लिए सरल तथा पढ़ा हुआ विषय या अंश ही चुनना चाहिए। अंश अधिक भी नहीं होना चाहिए।

श्रुतलिपि से बालक-बालिकाओं को सही-सही सुनने का अभ्यास होता है तथा सुनकर लिखने की गति बढ़ती है। इससे उन्हें अक्षर-विन्यास या हिज्जों की शिक्षा मिलती है। इसमें बालक-बालिकाओं द्वारा सुनी गई भाषा की बोध-परीक्षा भी हो जाती है। साथ-ही-साथ गति, स्पष्टता तथा सुडौल लिपि सभी की परीक्षा एक साथ हो जाती है।

उच्च कक्षाओ मे तो लिपि के अभ्यास की आवश्यकता नही है, पर यदि प्रारम्भिक कक्षाओ मे लिपि-पुस्तको से शुद्ध, सुडौल लिपि का अभ्यास कराया जाय तो लेखन सुन्दर हो सकता है।

लिपि आजकल कुछ विद्वान् लिपि-पुस्तको से लिखने को अनुपयोगी मानते हैं। अत कुछ वर्षो से लिपि लिखवाना बन्द-सा हो गया है। शायद इन विद्वानो का विचार है कि लिपि-पुस्तको द्वारा लिखवाने से लिपि की व्यक्तिगत शैली का विकास नही हो पाता। पर लिपि की व्यक्तिगत शैली का विकास तो सामान्य शैली से सुडौल लिखने के अभ्यास के बाद भी कराया जा सकता है।

सुलेखन के गुण :

१. स्पष्ट।
२. सुन्दर, सुडौल तथा आकर्षक।
३. शब्दो मे एक-सा अन्तर।
४. पंक्तियो में एक-सा अन्तर।
५. अक्षर सानुपातिक।
६. कागज़ के चारों ओर यथोचित स्थान छूटा हो।
७. अक्षरो पर शिरोरेखाएँ बराबर लगी हो।

सुलेखन के उपाय ·

१. लेखन-शिक्षण बालक-बालिकाओ द्वारा लिखने की आवश्यकता प्रतीत होने पर ही प्रारम्भ किया जाय।
२. बुनियादी शालाओ मे प्रतिदिन उपयोग मे आने वाले शब्दो से ही लिखना प्रारम्भ किया जाय। शब्द क्रमशः सरल से कठिन होते जायँ।
३. प्रारम्भ मे अक्षर बडे तथा दूर-दूर लिखने का अभ्यास कराया जाय।
४. प्रारम्भ मे उँगलियो से रेत या ज़मीन पर लिखवाया जाय। फिर क्रमश. खडिया मिट्टी से श्याम-पट, तख्तियों पर, स्लेट-पेंसिल

से स्लेट पर, मीस पेंसिल से कागज़ पर तथा अन्त मे स्याही-कलम आदि मे कागज़ पर ।

५ लेखन-शिक्षण का घण्टा अपेक्षाकृत छोटा होना चाहिए ।

६. जहाँ तक हो वही लिखवाना चाहिए जिसका उपयोग पढाई के अन्य घण्टो मे भी किया जा सके ।

७ लेखन-शिक्षण के प्रारम्भिक काल मे सम्पूर्ण शब्द या शब्द-समूह की सबसे छोटी इकाई बनाई जाय, न कि कोई वर्ण या अक्षर ।

८ लिखते समय बालको को ठीक आसन से बैठकर लिखने का अभ्यास कराया जाय ।

९ डब्ल्यू० एम० रायबर्न ने अपनी पुस्तक 'मातृभाषा-शिक्षण' मे बताया है कि लिखने की प्रथम सीढी चित्रकारी है। अत प्रारम्भ से ही बालक-बालिकाओ को रगीन चॉक देकर श्याम-पट पर आडी-टेढी लकीरे, गोला आदि बनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए ।

१०. प्रारम्भ मे अक्षर रेगमार कागज, दफ्ती आदि के बनाए जायँ तथा बालको को उन पर उँगलियाँ फेरने का अभ्यास कराया जाय ।

११ लिखने के अभ्यास के लिए बालक-बालिकाओ को प्रतिलिपि करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ।

१२ शिक्षक को बालको द्वारा लेखन-कार्य मे की गई अशुद्धियो का बडा ध्यान रखना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार उन्हे सुधरवाते रहना चाहिए ।

१३ कभी-कभी सुलेख-प्रतियोगिताएं भी आयोजित करनी चाहिएँ ।

१४ शिक्षक को स्वयं लेखन का अच्छा आदर्श बालक-बालिकाओ के सामने उपस्थित करना चाहिए, क्योकि जैसा शिक्षक लिखेंगे विद्यार्थी अनुकरण करके वैसा ही लिखने का अभ्यास करेगे ।

अपने विचारों को क्रमवद्ध करके व्यक्त करने को ही रचना कहा जाता है। रचना (क) मौखिक तथा (ख) लिखित दोनो प्रकार की होती है। हमारी साधारण वोलचाल में रचना का मौखिक रूप ही रहता है। वालक ही नही ससार के अधिकाश व्यक्ति अपने अधिकाश विचार मौखिक रचना के रूप मे ही व्यक्त करते हैं।

रचना-शिक्षण का महत्त्व

हाँ, वालक प्रमुख रूप से मौखिक रचना का ही उपयोग करते है, पर लिखित रचना का भी वहुत अधिक महत्त्व है। लिखित वात मौखिक वात की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होती है। वह प्रामाणिक भी होती है। लिखित वातो का उपयोग व्यापार, सरकारी नौकरी तथा निजी पत्र-व्यवहार, पुस्तक-रचना आदि अनेक स्थानो मे होता है। न्यायालय मे तो लिखित प्रमाण की ही आवश्यकता पडती है। लिखित रचना से विचारो को क्रमवद्ध करने मे सहायता मिलती है। जितनी चुस्ती तथा क्रमवद्धता से हम लिखित रूप मे अपने विचार व्यक्त कर सकते है उतनी चुस्ती, तर्क तथा अच्छी विधि से मौखिक रूप से विचार व्यक्त करना कठिन-सा ही है। लिखित रचना द्वारा विभिन्न शैलियो, जैसे कहानी, सवाद, नाटक, निवन्ध, पत्र आदि, का निर्माण होता है। इनके सिवाय प्रत्येक व्यक्ति भी अपनी स्वतत्र शैली का निर्माण करता है। अत लिखित रचना के अभ्यास पर ही विभिन्न शैलियो का निर्माण निर्भर रहता है।

इस प्रकार हम देखते है कि मौखिक तथा लिखित दोनो प्रकार की रचनाओ का भाषा-शिक्षण, विशेषत मातृभाषा-शिक्षण, मे वहुत अधिक महत्त्व है।

मौखिक रचना के उद्देश्य

१. शुद्ध तथा स्पष्ट वार्तालाप करना।
२. अपने भाव तथा विचार क्रमवद्ध तथा अच्छे ढग से व्यक्त करना।
३. शव्द-भण्डार की वृद्धि करना।
४. नये शव्दो के प्रयोग तथा सीखे शव्दो के नये प्रयोग सीखना।

बुनियादी शालाओ मे मूलोद्योग तथा शिल्प की क्रियाओ के सम्बन्ध मे योजनाएँ बनाते समय, क्रिया करने के पश्चात् की गई क्रिया का मूल्याकन करते समय, शाला-सभा, कक्षा-सभा, उत्सव आदि मनाते समय, और ऐसे ही विभिन्न अवसरो पर मौखिक रचना का काफी अभ्यास हो जाता है। इनके अतिरिक्त वार्तालाप (की गई क्रियाओ, दैनिक जीवन की घटनाओ तथा अन्य साधारण बातो पर), भाषण तथा वादविवाद (प्रारम्भिक कक्षाओ मे नही), कहानी कहलाकर, पर्यटन के अवलोकन तथा मेले या बाज़ार आदि का विवरण पूछकर तथा चित्रो की सहायता से कहानी या घटनाओ का विवरण कहलवाना आदि अनेक साधनो का उपयोग मौखिक रचना-शिक्षण के लिए किया जा सकता है।

मौखिक रचना के अभ्यास के साधन

मौखिक रचना का अच्छा अभ्यास ही लिखित रचना की नीव है। जिस प्रकार बोलने का अभ्यास लिखित अभ्यास के लिए आवश्यक तथा उपयोगी होता है, उसी प्रकार मौखिक रचना का अभ्यास लिखित रचना के लिए लाभप्रद होता है। प्रारम्भिक कक्षाओ मे तो बालको के शब्द-भण्डार तथा विचार सीमित होने और लिखने का अभ्यास कम रहने से लिखित रचना के लिए उतनी अधिक गुजाइश नही है। पर आगे की कक्षाओ मे इसकी उचित व्यवस्था से बालको को क्रमबद्ध सोचने, विचारने तथा लिखने का अभ्यास कराया जा सकता है।

लिखित रचना

लिखित रचना-शिक्षण के उद्देश्य

१ शुद्ध, प्रभावोत्पादक लिपिबद्ध भाषा मे अपने भाव तथा विचार व्यक्त करने की क्षमता उत्पन्न करना।

२. रचना की विभिन्न शैलियो से परिचित कराना।

३ अपनी स्वय की स्वतन्त्र रचना-शैली का विकास करना।

४ अपने अनुभवो को लिपिबद्ध करने की क्षमता का विकास करना।

५. सत्साहित्य की सृष्टि करने की योग्यता बढाना।

लिखित रचना-शिक्षण के साधन

१ पर्यटन, निरीक्षण तथा अन्य अनुभव। बुनियादी शालाओ मे बालक अनेक विषयो-सम्बन्धी ज्ञान-प्राप्ति हेतु पर्यटन के लिए जाते है। वे अवलोकन करते हैं तथा आवश्यकतानुसार उन्हें लिपिबद्ध करते है। इस प्रकार निरीक्षण, अवलोकन, पर्यटन आदि सभी बालक-बालिकाओ के लिए रचना—मौखिक तथा लिखित—के लिए सामग्री जुटाते हैं।

२. मूलोद्योग तथा जीवन की अन्य ठोस क्रियाएँ। बुनियादी शालाओं मे मूलोद्योग तथा जीवन की ठोस परिस्थितियाँ सभी ज्ञान का आधार होती हैं। अत. ये सभी प्रकार की क्रियाएँ बालक-बालिकाओ के रचना-अभ्यास के अच्छे साधन हो सकती है। बालक-बालिकाएँ की गई क्रिया का विवरण, जीवन व्यतीत करते समय सफाई, भोजन-व्यवस्था तथा अन्य क्रियाओ के अनुभव लिपिबद्ध कर सकते है। ये क्रियाएं कार्यान्वित करने के लिए बनाई गई योजना, क्रिया पूर्ण होने के पश्चात् उसका मूल्याकन आदि भी रचना-लेखन के ऐसे उपयुक्त साधन हैं जिनका उपयोग हमे शालाओ मे करना चाहिए।

३. सास्कृतिक तथा अन्य कार्यक्रम। सास्कृतिक तथा अन्य आयोजन मनाने के लिए योजनाएँ बनाई जाती हैं। निमत्रण-पत्र, सूचना-पट-लेखन, प्रतिवेदन तैयार करना, भाषण, कविता-पाठ आदि की तैयारी के लिए विभिन्न पुस्तको से सामग्री चयन करके लिपि-बद्ध करना, आवश्यकतानुसार पत्र-व्यवहार करना आदि अनेक प्रकार के साधन बुनियादी शालाओ मे सरलता से जुटाए जा सकते हैं।

प्रत्येक बुनियादी शाला मे बाल-सभा होती है। इसके अन्तर्गत प्रति सप्ताह विभिन्न कार्यक्रम, जैसे वादविवाद, कहानी-कथन, कविता-गान, सगीत, निबन्ध-पठन आदि होते है। इनमे

सामाजिक तथा प्राकृतिक वातावरणों से सम्बन्धित विषयों का समावेश किया जाना चाहिए। इन वादविवादों की रिपोर्ट या विवरण बालकों से लिखवाना लाभप्रद होता है।

४ साहित्य-सृजन। इसके लिए शाला तथा कक्षा के पत्र-पत्रिकाओं के लिए कविता, कहानी, प्रहसन, पत्र, निबन्ध आदि लिखवाए जा सकते हैं।

५ डायरी। बुनियादी शालाओं मे बालक-बालिकाएँ डायरी भरने का कार्य करते है। इन डायरियों के भरने का रचना-शिक्षण मे बड़ा महत्त्व है। बालक के लिखना सीखते ही मूलोद्योग का लेखा रखना तथा डायरी भरना आवश्यक होना चाहिए। डायरी चाहे केवल कुछ शब्दों के रूप मे ही हो, पर भरी अवश्य जानी चाहिए। प्रारम्भिक कक्षाओं मे तो यह केवल कुछ शब्दों तथा अंकों मे ही भरी जायगी। प्रारम्भिक कक्षाओं मे बालकों को डायरी भरने मे शिक्षक को सहायता देनी चाहिए। तीसरी या चौथी कक्षा से बालक स्वयं ही डायरी भरने लगेंगे। डायरी मे दैनिक प्रगति तथा कार्य-विवरण के साथ-साथ कार्य और क्रिया के सम्बन्ध मे बालक के अपने विचार अवश्य व्यक्त किये जाने चाहिएँ। इसके लिए शिक्षक को केवल उचित निर्देश ही देना चाहिए।

६ पत्र-लेखन। हमारे जीवन मे निजी कार्यवश या व्यावसायिक कार्यों के लिए पत्र-व्यवहार करना पडता है। अत हमें बालकों को निजी, व्यावसायिक तथा नौकरी-सम्बन्धी पत्र लिखने का अभ्यास भी कराना चाहिए। बालकों को आवश्यकतानुसार सम्बन्धियों तथा मित्रों को पत्र लिखने के लिए प्रेरित करना चाहिए। ऐसे अवसरों की खोज मे भी हमें रहना चाहिए जब बालक अधिकारियों को आवेदन-पत्र, निमन्त्रण आदि लिख सकें।

रचना के गुण

१. संक्षिप्त तथा सगत ।
२. स्पष्ट, प्रभावोत्पादक तथा विषयानुकूल ।
३. भाव की एकता ।
४. आडम्बरहीन ।
५. भाव तथा अर्थ के अनुसार शब्दो का प्रयोग।,
६. यथोचित अनुच्छेदो मे विभक्त ।

रचना-शिक्षण की विधियाँ

रचना-शिक्षण मे उपरोक्त साधनो के समुचित उपयोग के लिए अनेक विधियो का उपयोग किया जा सकता है। इनमे से निम्न प्रमुख हैं—

१. चित्र-विधि । इस विधि में शिक्षक एक या अधिक चित्र विद्यार्थियो के समक्ष उपस्थित करता है । शिक्षक प्रत्येक चित्र से सम्बन्धित प्रश्न करता है तथा बालक उनका उत्तर देते हैं । प्रश्नोत्तरो के बाद बालक लिखते भी हैं । यह विधि रोचक है ।
२. उद्बोधन-विधि । इसमे शिक्षक विद्यार्थियो से किसी विषय पर (विशेषत· आत्मकथा, जीवनी या दृश्य-वर्णन मे) बातचीत करता है तथा क्रमबद्ध सकेतो के रूप मे श्यामपट पर लिखता जाता है। विद्यार्थी इन सकेतो के आधार पर तथा इसकी सहायता से रचना लिखते हैं ।
३. प्रश्नोत्तर-विधि । इसमे शिक्षक विषय के सम्बन्ध मे प्रश्न करता है तथा विद्यार्थी उसका उत्तर देते है । इस विधि मे प्रारम्भिक कक्षाओं मे आस-पास के दृश्यो, वस्तुओं, जीव-जन्तुओ आदि के सम्बन्ध मे चर्चा करते हैं । इससे बालको की अभिव्यंजना तथा कल्पना-शक्ति का विकास होता है ।
४. तर्क-विधि । इस विधि का उपयोग किसी विवाद वाले या तर्क-पूर्ण विषय, जैसे सह-शिक्षा, नागरिक व शहरी जीवन, युद्ध और शान्ति आदि, के लिए उपयुक्त रहता है । विद्यार्थी विषय पर

आपस मे विवाद तथा तर्क करके रचना लिखते हैं।

५ सूत्र-विधि। इस विधि मे शिक्षक किसी वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक जीवन-चरित्र के सम्बन्ध मे श्यामपट पर सकेत लिख देता है। इन्ही सकेतो के आधार पर ही विद्यार्थी रचना लिखते है। पर इनमे विचार-विमर्श न होने के कारण बालको का ठीक से मार्ग-दर्शन नही हो पाता।

६ स्वाध्याय या मत्रणा-विधि। इसमे शिक्षक बालको को विषय के सम्बन्ध मे सहायक पुस्तको, पत्रिकाओ आदि की सूची बतला देता है। विद्यार्थी इनका अध्ययन करके रचना लिखते हैं। यह विधि उच्च कक्षाओ के लिए अधिक उपयोगी है।

७ आदर्श विधि। रचना को एक आदर्श रूप मे शिक्षक प्रस्तुत करता है। तत्पश्चात् बालक रचना लिखते हैं।

८. समवाय विधि। इसमे सामाजिक अध्ययन, विज्ञान, शारीरिक शिक्षा, मूलोद्योग, शिल्प-कार्य आदि विभिन्न विषयो के साथ रचना का सम्बन्ध जोडा जाता है। इन विषयो के शिक्षण के समय आवश्यकतानुसार सम्बन्धित विषयो पर रचना भी लिखवाई जाती है, जैसे की गई क्रिया का विवरण या पर्यटन के अवलोकन पर रचना, आदि।

९ प्रवचन-प्रणाली। यह विधि वर्णनात्मक विषयो, जैसे जीवनी, मेले या त्योहार का वर्णन, दृश्य का वर्णन या कहानी आदि, के लिए ठीक रहती है। इसमे शिक्षक इनके सम्बन्ध मे मौखिक विवरण देता है तथा विद्यार्थी इसके आधार पर रचना लिखते हैं।

रचना-लेखन के सम्बन्ध मे सुझाव

१ बालक-बालिकाओ को रचना-कार्य के लिए अधिक-से-अधिक अवसर देना चाहिए। शिक्षक को इसमे आवश्यक सहायता भी प्रदान करनी चाहिए।

२ बालकों को रुचि के अनुसार किसी भी विषय पर लिखने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

३. विद्यार्थी जो कुछ भी लिखे उसे शिक्षक को दिखलाने तथा उसमे आवश्यकतानुसार संशोधन और सहायता पाने के लिए स्वतत्र होना चाहिए।

४. शाला मे ऐसे वातावरण का निर्माण होना चाहिए जिससे विद्यार्थी अपने अनुभव तथा विचार बिना डर और संकोच के व्यक्त कर सके।

५. मौखिक रचना के लिए भी पर्याप्त अवसर प्रदान करना चाहिए। इसके लिए कभी-कभी विद्यार्थियो को अपनी रचनाएँ कक्षा में सुनाने के लिए प्रेरित करते रहना चाहिए।

६. विद्यार्थियो से उनके जीवन के सभी पहलुओ से सम्बन्धित विषयों पर रचनाएँ लिखने तथा बोलने के लिए कहना चाहिए।

७. विद्यार्थियो को अच्छी रचनाएँ लिखने योग्य बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हे अधिक-से-अधिक उपयोगी पुस्तकें पढने के लिए दी जायँ।

८. विद्यार्थियो को उनकी साधारण स्वाभाविक भाषा मे लिखने की प्रेरणा ही देनी चाहिए। इससे वे अपने विचारो को व्यक्त करने के लिए प्रेरित होंगे तथा उनकी अपनी शैली का विकास होगा।

९. लेख छोटे तथा उपयोगी होने चाहिएँ।

१०. कभी-कभी विद्यार्थियों को अपने अन्य साथियो की रचनाएँ पढने तथा उनके गुण-दोष बतलाने के लिए प्रेरित करते रहना चाहिए।

११. विद्यार्थियो को विभिन्न विषयों पर वार्तालाप करने के अवसर देने चाहिएं। इससे उन्हें अनेक प्रकार के विचार मिलते हैं।

गद्य-शिक्षण के उद्देश्यो को हम विशिष्ट तथा सामान्य उद्देश्यों मे विभाजित कर सकते हैं। सामान्य उद्देश्यो का सम्बन्ध गद्य से सम्बन्धित सभी प्रकार की रचनाओं, जैसे कहानी, जीवनी, वर्णनात्मक तथा खेल-सम्बन्धी

गद्य-शिक्षण : उद्देश्य

विषय आदि, से रहता है। प्रारम्भिक कक्षाओ मे तो विशिष्ट तथा सामान्य उद्देश्यो को पृथक्-पृथक् नही रख सकते, पर उच्च कक्षाओ मे इनका ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

विशिष्ट उद्देश्य

(क) कहानी। (१) कहानी की वर्णन-शैली से परिचित कराना। (२) नैतिक तथा सामाजिक कहानियो से चरित्र-सम्बन्धी या सामाजिक बातो-सम्बन्धी विषयो का ज्ञान कराना। (३) कल्पना-शक्ति का विकास करना।

(ख) जीवनी। (१) देश-विदेश के महान् पुरुषो तथा महिलाओ से परिचित कराना। (२) जीवन के आदर्शों का ज्ञान कराना। (३) चरित्र-निर्माण करना।

(ग) वर्णन तथा यात्रा। (१) प्रकृति-प्रेम जागृत करना। (२) कल्पना-शक्ति का विकास करना। (३) वर्णन-शैली से परिचित कराना।

(घ) विचारात्मक रचनाएँ। (१) तर्क-शक्ति का विकास करना। (२) बुद्धि का विकास करना। (३) प्रमुख लेखको की शैली से परिचित कराना।

(ङ) सामाजिक रचनाएँ। (१) समाज-सम्बन्ध बातो का ज्ञान देना। (२) अच्छे नागरिक बनने की क्षमता का विकास करना।

(च) वैज्ञानिक रचनाएँ। (१) विज्ञान की बातो से परिचित कराना। (२) बालको की जिज्ञासा-शक्ति का विकास करना। (३) ज्ञान की वृद्धि करना।

सामान्य उद्देश्य

१ लिखित बातो का वाञ्छित भाव तथा अर्थ स्पष्ट रूप से समझने की शक्ति का विकास करना।

२ स्वतत्र रूप से अर्जित ज्ञान अपने शब्दो मे व्यक्त करने की क्षमता बढाना।

३. शब्द-भण्डार की वृद्धि करना।
४. श्रेष्ठ विचार-संकलन की योग्यता बढाना।
५. विचार व्यक्त करने तथा लिखने की अपनी स्वतत्र शैली का विकास करना।
६. दूसरों द्वारा व्यक्त किये गए भावो को पढ़कर आनन्दित होने तथा अपनी रचनाओ से वैसा ही आनन्द दूसरो को दे सकने की क्षमता वढाना।
७ कल्पना-शक्ति का विकास करना।
८ पढे गए पाठो से शिक्षा ग्रहण करना।
९. व्यावहारिक ज्ञान की वृद्धि करना।
१० विषय, श्रोता, स्थिति आदि के अनुकूल हाव-भावयुक्त स्वाभाविक भाषा मे वार्तालाप तथा भाषण करने की क्षमता वढाना।
११. मुहावरो, लोकोक्तियो के अर्थ समझना तथा उनका प्रयोग करने की क्षमता का विकास करना।

गद्य-शिक्षण के उपरोक्त उद्देश्यो की पूर्ति के लिए बुनियादी शालाओ मे निम्न प्रकार की सामग्रियाँ सहायक हो सकती हैं—

(क) समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएँ।
(ख) विभिन्न विषयो पर अच्छे चुने हुए पाठो का सकलन।
(ग) मूलोद्योग तथा शिल्प-सम्बन्धी क्रियाओ पर सरल तथा उपयोगी पुस्तकें।

समाचार-पत्र और पत्र-पत्रिकाएँ, घटनाओ, भापा, साहित्य तथा देश-विदेशो के विकास से वालक-वालिकाओं को परिचित कराते है। अतः कक्षा के स्तर के अनुसार पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ाना आवश्यक है। विद्यार्थी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के विपयों का सग्रह भी कर सकते हैं। बुनियादी शिक्षा मे निर्देश-शिक्षण का वडा महत्त्व है। इसमे पाठ्य-पुस्तक पढ़ाना उतना महत्त्व का नही होता जितना पढने की ओर रुचि जागृत करना। अत. हमे विद्यार्थियो को स्वयं अध्ययन करने के लिए प्रेरित करते

रहना चाहिए। शाला मे किये जाने वाले विभिन्न आयोजनों के समय विद्यार्थियो को आयोजनो से सम्बन्धित विषयो की पुस्तके पढने के लिए देनी चाहिएँ। इतना ही नही, पढने के वाद उनसे कुछ प्रश्न पूछकर जानकारी भी प्राप्त करनी चाहिए।

गद्य-शिक्षण-विधि

गद्य-शिक्षण-विधि के सम्बन्ध मे तीन बातो का ध्यान रखा जाना आवश्यक है—(क) वाचन, (ख) व्याख्या, और (ग) विचार-विश्लेषण।

पहले शिक्षक गद्याश से परिचय कराने के लिए आदर्श वाचन करता है तथा बाद मे बालको से सस्वर वाचन कराया जाता है। इस प्रकार

वाचन

अनुकरण से बालक शुद्ध उच्चारण, स्वर, लय, गति आदि सीखते हैं। बालको द्वारा सस्वर वाचन के बाद मौन वाचन कराया जाता है। कुछ विद्वान् बालको के सस्वर वाचन के पूर्व ही उनके द्वारा मौन वाचन कराने के पक्ष मे रहते है। इससे बालक गद्याश का कुछ अर्थ ग्रहण कर लेते है।

सस्वर तथा मौन वाचन के सम्बन्ध मे विस्तार से चर्चा की जा चुकी है।

शिक्षक तथा बालको द्वारा वाचन समाप्त होने पर कठिनाइयो पर विचार तथा उनका हल ढूंढा जाता है। कठिनाइयो के हल के समय

व्याख्या

गद्याश मे आए मुहावरे, लोकोक्तियाँ, कठिन वाक्याश आदि की व्याख्या तथा स्पष्टीकरण आवश्यक होता है। कठिनाइयो के हल तथा व्याख्या के लिए निम्न विधियो मे से किसी भी उपयुक्त विधि का उपयोग किया जाता है—

(क) उद्बोधन-विधि। इसमे शिक्षक स्वय अर्थ नही बतलाता। वह विभिन्न साधनो से, जैसे प्रत्यक्ष वस्तु दिखाकर, चित्र बनाकर, अभिनय करके तथा दृष्टान्त देकर, अर्थ उद्बोधित करता है। इसमे बालक कल्पना, अनुमान या प्रत्यक्ष अनुभव से अर्थ समझने का प्रयत्न करते हैं।

(ख) प्रवचन-विधि। इसके अन्तर्गत समानार्थी, विरुद्धार्थी शब्द बतलाना, अर्थ का विस्तार करना, अन्य भाषा में अनुवाद करना आदि साधन आते हैं। इन साधनो द्वारा शिक्षक स्वयं कहकर या पूछकर अर्थ स्पष्ट करता है।

(ग) स्पष्टीकरण-विधि। अर्थ-स्पष्टीकरण के लिए व्युत्पत्ति बतलाना, तुलना करना, वाक्य-प्रयोग, समास, सन्धि-विग्रह आदि साधनो का उपयोग किया जाता है।

लोकोक्तियो तथा मुहावरो के अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए वाक्य-प्रयोग, आधारभूत कथा कहना, लाक्षणिक अर्थ बताना आदि का उपयोग किया जाता है।

प्रत्येक गद्य-पाठ में आवश्यकतानुसार विभिन्न साधनो तथा विधियो का उपयोग करना चाहिए। इससे पाठ मे रोचकता बनी रहती है तथा बालक थकते नही हैं।

विचार-विश्लेषण

यह विचार-ग्रहण के लिए आवश्यक है। वाचन तथा व्याख्या विचार-ग्रहण मे सहायक होते हैं। विभिन्न पाठो मे विभिन्न प्रकार के विचार होते हैं। इन विभिन्न प्रकार के विचारों को बालक-बालिकाओ के अनुभवो से सम्बद्ध करना, उनका लेखक से तादात्म्य स्थापित कराना आदि आवश्यक है। इसके लिए दृष्टान्त या उदाहरणों की सहायता से कठिन विचारो को स्पष्ट करना तथा बोध-प्रश्न करना आवश्यक है। इसी समय आवश्यकतानुसार लेखक का जीवन-परिचय भी दिया जा सकता है।

बोध-प्रश्न पूछने के बाद पुनरावृत्ति के प्रश्न पूछने चाहिएँ। इससे सम्पूर्ण पाठ के विषयो पर विभिन्न दृष्टिकोणो से विचार भी हो जाता है तथा क्रमबद्धता भी आ जाती है।

हम सभी आनन्द की प्राप्ति करना चाहते हैं। कविता इसी साध्य-प्राप्ति का एक प्रमुख साधन है। हम बहुधा कविता पढ़ते या सुनते समय

कविता शिक्षण महत्त्व

रस-मग्न हो जाते है। कविता वास्तव मे अलौकिक आनन्द देने वाली है। कविता हमारी दृष्टि को व्यापक बनाती है तथा हमे आशा और उल्लास से भर देती है। इस प्रकार हम देखते है कि कविता न केवल हमारा मनोरजन करती है, वरन् हमारी भावनाओ का परिष्कार भी करती है। कविता के अप्रत्यक्ष उपदेश तथा शिक्षा भी बडे प्रभावोत्पादक होते है। इतिहास मे हमे इसके अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। प्राचीन काल मे तो कवि तथा भाटो को प्रेरणा देने के लिए युद्ध-भूमि मे भी ले जाया जाता था।

मानव मे अपने आस-पास के वातावरण के प्रति सजगता की वृद्धि करना ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। कविता इस उद्देश्य-पूर्ति मे सहायक होती है।

कविता-शिक्षण के उद्देश्य

१ विद्यार्थियो की भाव, लय, स्वर आदि के अनुसार कविता-पाठ करने की क्षमता बढाना।
२ काव्य के प्रति विद्यार्थियो की रुचि बढाना।
३. विद्यार्थियो मे कवि के भावों, अनुभवो, कल्पनाओ आदि को समझने तथा ग्रहण करने की शक्ति का विकास करना।
४. विद्यार्थियो का रागात्मक तथा भावात्मक प्रवृत्तियो का सशोधन तथा परिमार्जन करना।
५ विद्यार्थियो की सौन्दर्यानुभूति की वृद्धि करना।
६ विद्यार्थियो के चरित्र-निर्माण मे सहायता देना।
७. विद्यार्थियो की कल्पना-शक्ति का विकास करना।
८. कवि के सन्देश को विद्यार्थियो तक पहुँचाना।
९ कविता की शैली से विद्यार्थियो को परिचित कराना।

कविता-पाठ मे भी गद्य के समान वाचन, व्याख्या तथा भाव-विश्लेषण पर प्रमुखत. ध्यान देना चाहिए। 'राग द्वारा भाव तथा भाषा का मधुर

कविता-शिक्षण की विधियाँ

मिलन ही कविता है।' अत. पहले स्वय शिक्षक को वार-वार कविता का लययुक्त सस्वर वाचन करने के वाद वालको द्वारा लययुक्त सस्वर वाचन कराके कविता के भावों तथा सौन्दर्य से रसमय कराना ही हमारा प्रमुख उद्देश्य रहता है। कविता-वाचन या पाठ मे एक लय होनी चाहिए, जिससे कक्षा मे सौन्दर्य, कला तथा संगीत के वातावरण का निर्माण हो सके। इसके वाद भाव-विश्लेषण के लिए विचार, कल्पना, शैली तथा भाव-सौन्दर्य की अनुभूति की जानकारी करने के लिए प्रश्नोत्तर का सहारा लेना चाहिए, पर इन प्रश्नो के पूछने से पहले वालक-वालिकाओ को कुछ समय तक कविता मे रस-मग्न रहने देना चाहिए। हेडो आदि कुछ शिक्षा-शास्त्रियो का तो कथन है कि वालक-वालिकाओ का कविता मे रसमग्न कराना ही सफल कविता-शिक्षण की सच्ची कसौटी है।

भाव-विश्लेपण के उपरात कक्षा मे दो-तीन वार पुन कविता का लययुक्त सस्वर पाठ होना चाहिए।

कविता-शिक्षण मे निम्न विधियो का आवश्यकतानुसार उपयोग किया जा सकता है—

१. गति तथा नाट्य-विधि। प्रारम्भिक कक्षाओ के लिए यह विधि वड़ी उपयुक्त है, क्योंकि इन कक्षाओ मे छोटी आयु के वालक-वालिकाएँ रहते है। ये कविता के वाह्य रूप पर ही अधिक आकर्पित होते है। उनका आकर्पण लय, राग आदि की ओर ही अधिक होता है। नाट्य आदि के लिए वार्तालाप वाली कविताएँ गाने के लिए दी जा सकती हैं।

२. शब्दार्थ-कथन-विधि। इस विधि मे एक-दो वार कविता गाने के वाद उसका अर्थ वतला देते है। इसमे वालक काव्य-सौदर्य मे रस-मग्न हो ही नही पाते। हमारे यहाँ की अधिकाश शालाओ

मे इसी विधि का उपयोग किया जाता है, पर यह विधि ठीक तथा उचित नही है।

३ व्याख्या-विधि। यह विधि कविता के अन्तस्तल तक पहुँचने के लिए उपयोगी है। इसके द्वारा बालको को अर्थ तो समझ मे आ ही जाता है। साथ-ही-साथ कविता की प्रेरक प्रवृत्ति, शैलीगत विशेषताओ तथा आन्तरिक उद्देश्य की विवेचना तथा व्याख्या भी हो जाती है। पर व्याख्या के समय शिक्षक कुछ अनावश्यक बातें भी बतला सकते है। छोटे विद्यार्थियो के लिए यह विधि उपयुक्त नही है, क्योंकि उनके अनुभव तथा शब्द-भण्डार कम रहते हैं, जिससे वे विस्तृत व्याख्या कर ही नही सकते। हाँ, प्रश्नोत्तरो के रूप मे साधारण व्याख्या की जा सकती है।

व्याख्या-विधि के निम्न भेद है—

(क) व्यास-विधि। इसमे शिक्षक ही प्रधान होता है। यह विधि उच्च कक्षाओ तथा महाविद्यालयो के लिए ही उपयुक्त है।

(ख) समीक्षा-विधि। इसमे स्वय अध्ययन द्वारा समीक्षा की जाती है। यह भी उच्च कक्षाओ के योग्य है।

(ग) तुलना-विधि। इससे कवि की रुचि, भाव-प्रवणता, कला आदि का बोध स्पष्ट हो जाता है। इसमे कवियो की शैली, भाव-वर्णन आदि की विभिन्नता का पता भी चल जाता है। इस विधि के उचित निर्वाह के लिए शिक्षक का ज्ञान-भण्डार अधिक होना चाहिए।

४ प्रश्नोत्तर-विधि। यह विधि हमारी बुनियादी शालाओ के लिए बड़ी उपयोगी है। इसमे शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनो का योग रहता है। उचित प्रश्नो की सहायता से कवि की कल्पनाओ की उड़ानो, क्लिष्ट भावो आदि तक बालको को पहुँचाया जा सकता है।

नाटक-शिक्षण के उद्देश्य

१ अनुकरण की मूल प्रवृत्ति के उदात्तीकरण तथा अभिव्यजना के अवसर प्रदान करना।

२. विद्यार्थियो का मनोरजन करना।

३. विद्यार्थियो को जीवन की विभिन्न परिस्थितियो तथा व्यवहारो से परिचित कराना।

४ रगमच पर अभिनय करने तथा भाषा का शुद्ध उच्चारण तथा प्रयोग करने की क्षमता उत्पन्न करना।

५. विद्यार्थियो के मनोभावों का परिष्कार करना।

नाटक-शिक्षण-विधियाँ

नाटक-शिक्षण के लिए निम्न विधियो का उपयोग किया जा सकता है—

१. आदर्श नाट्य-विधि। इसमे शिक्षक स्वयं नाटक के सभी पात्रो का आदर्श अभिनय करता है। बीच-बीच मे वह आवश्यकतानुसार भावों का स्पष्टीकरण तथा कठिन शब्दो के अर्थ स्पष्ट करता जाता है। इसमे बालक-बालिकाएँ नाटक देखने वाले तथा सुनने वाले बनकर रसास्वादन करते हैं। इसका दोष यह है कि नाटक-सम्बन्धी कार्य शिक्षक को ही करना पडता है।

२. व्याख्या-विधि। इस विधि मे शिक्षक नाटक के सभी तत्त्वो, जैसे कथावस्तु, पात्र, शैली, कथोपकथन और उद्देश्य, पर स्वयं प्रकाश डालकर नाटक की व्याख्या करता है। इस प्रकार बालको को नाटक की सम्पूर्ण समीक्षा की जानकारी हो जाती है। बालक इसमे सक्रिय भाग नही लेते। यह विधि केवल महाविद्यालीय कक्षाओ के लिए ही उपयुक्त रहती है, क्योंकि माध्यमिक शालाओ मे तो विद्यार्थी नाटकों के सम्पूर्ण तत्त्वो के शास्त्रीय विवेचन से पूर्णत परिचित भी नहीं होते।

३ अभिनय-विधि। इस विधि में नाटक का अभिनय प्रमुख रहता

है। अभिनय रगमच तथा कक्षा दोनो स्थानो मे हो सकता है। रगमच पर तो कभी-कभी ही नाटक खेले जा मकते हैं, क्योकि इसके लिए बहुत अधिक तैयारी की आवश्यकता है। इसमें धन, समय तथा परिश्रम सभी अधिक व्यय होता है। पर कक्षा मे भी विना अधिक साज-सज्जा के साधारण रूप से नाटकीय ढग मे सवाद पढे जा सकते हैं तथा अभिनय किया जा सकता है।

४ सयुक्त विधि। इस विधि मे उपरोक्त सभी विधियो के गुण ले लिये गए हैं। आदर्श अभिनय-विधि में शिक्षक के आवश्यकतानुसार आदर्श नाट्य-प्रदर्शन, बीच-बीच में व्याख्या, कठिन शब्दो के अर्थ तथा स्पष्टीकरण आदि कराने के वाद कक्षा के वालक नाटक के किसी अश का या पूरे नाटक का अभिनय कक्षा मे या सुविधा होने पर रगमच पर करते हैं।

इस प्रकार सयुक्त विधि मे सभी अन्य विधियो की अच्छाइयो का समावेश किया जाता है। इस विधि के अनुसार वर्ष मे एक-दो वार रगमच पर अभिनय तथा अन्य समय मे कक्षा मे ही अभिनय किया जाना उपयुक्त रहेगा।

नाटक-शिक्षण के समय ध्यान मे रखने योग्य बातें

१ नाटक की कहानी बालको को पहले से न बतलानी चाहिए। इससे घटनाओ-सम्बन्धी बालको की उत्सुकता नष्ट हो जाती है।

२ नाटको मे अनेक स्थलो पर गीतो का उपयोग किया जाता है। इन गीतो तथा पद्याशो के शिक्षण के लिए सगीत-शिक्षण-विधियों का उपयोग करना चाहिए।

३. एक वार मे केवल एक अक ही पढ़ाना ठीक रहता है। एकाकी नाटको का एक दृश्य एक वार मे पूर्ण किया जा सकता है।

४ नाटक आरम्भ करने के पूर्व उसकी सामाजिक, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा नाटककार का परिचय वतला देना चाहिए।

व्याकरण की शिक्षा वालको को मातृभापा के शुद्ध प्रयोग का ज्ञान कराने के लिए दी जाती है। विद्यार्थी वहुधा लिपि, उच्चारण, शब्द-रचना, वाक्य-विन्यास, लिंग, वचन आदि की ही गलतियाँ करते हैं। ये गलतियाँ दूर करने के लिए व्याकरण की शिक्षा आवश्यक है। पर इन गलतियों का निराकरण आवश्यकतानुसार अवसर आने पर मातृभाषा के विभिन्न क्षेत्रो के शिक्षण के समय कराया जा सकता है। यह सुविधाजनक तथा उचित भी है। अत. बुनियादी शालाओ मे अलग से व्याकरण के नियम रटाने की आवश्यकता नही है। बुनियादी शालाओ मे होने वाले विभिन्न कार्यकलापो के समय भी वालको को वाक्य-रचना, लिंग, वचन, उच्चारण आदि का ज्ञान दिया जा सकता है। अवसरानुकूल अभ्यास से ही वालको को शुद्ध भापा वोलने तथा लिखने का अभ्यास हो सकता है। इसमे समय भी कम लगेगा तथा नियम आदि भी रटने न पड़ेंगे।

व्याकरण-शिक्षण

जाँच तथा सुधार शिक्षण के अभिन्न अग हैं। अतः मातृभापा के वोलने, वाचन करने तथा लिखने की प्रारम्भिक अवस्था मे ही सुधार किया जाना चाहिए। यदि इस अवस्था मे सुधार न किया गया तो इनसे सम्वन्धित गलतियाँ वढती ही जाती हैं। इसलिए वालक के वोलने के अभ्यास, वाचन के अभ्यास तथा लिखने के अभ्यास के साथ-साथ इनसे सम्वन्धित सशोधन-कार्य चलता ही रहना चाहिए। वालक-वालिकाओ की उच्चारण, व्याकरण, रचना आदि से सम्वन्धित अनेक गलतियो के निराकरण तथा सशोधन के लिए निम्न उपाय करने चाहिएं—

मातृभापा-शिक्षण में सशोधन-कार्य

हिज्जे की गलतियों का संशोधन

१. शब्द का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने का अभ्यास देना चाहिए, जिससे दृष्टि पडते ही वालक गलत या सही का पता लगा सकें।

२ किसी पुस्तक से प्रतिदिन एक या दो पृष्ठ नकल कराए जायँ। इससे आँख, मस्तिष्क तथा हाथ का सम्बन्ध जमता है।
३ शुद्ध लेख का अभ्यास कराया जाय।
४ प्रारम्भिक अवस्था मे हिज्जे ज़ोर-ज़ोर से पढाए तथा याद कराए जायँ। इससे कान, आँख और जीभ का सम्बन्ध जुटता है।
५ शब्द-कोष का उपयोग सिखाया जाय।
६ शब्द-निर्माण का खेल खेलने के लिए प्रेरित किया जाय।

उच्चारण-सम्बन्धी गलतियो का संशोधन

इसके सम्बन्ध मे उच्चारण की चर्चा करते समय विचार किया जा चुका है।

रचना-सम्बन्धी गलतियो का सशोधन

१ जहाँ तक हो रचनाएँ विद्यार्थियो के सामने ही जांची जायँ।
२ विद्यार्थियो को कारण-सहित गलतियो का ज्ञान कराया जाय।
३ जांच बारीकी से की जाय। इसके लिए शिक्षक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सभी रचनाएँ किंचित् रूप मे जांची जाने की अपेक्षा कुछ रचनाएँ ही बारीकी से जाँची जायँ।
४ बालको द्वारा गलतियो का सुधार करने के बाद भी शिक्षक को देखना चाहिए कि सुधार-कार्य ठीक-ठीक किया गया है या नही।
५ जाँच का कार्य यथासमय ही किया जाना चाहिए।
६ अधिकाश बालको द्वारा की गई गलतियो के शुद्ध रूप सम्पूर्ण कक्षा को बताए जाने चाहिएँ।
७ बालको को रचना पर श्रेणी क, ख, ग, घ या अक दिये जायँ जिससे उन्हे अपने स्तर का पता लग सके।
८ बहुत अधिक अशुद्धियाँ होने पर रचना फिर से लिखवाई जाय।
९ उच्च कक्षा के बालको से भी निम्न कक्षा के बालको की रचनाओं को जँचवाया जा सकता है। कभी-कभी बालको को आपस मे

भी रचनाएँ जाँचने का काम करना चाहिए। वालकों द्वारा जांचने के वाद शिक्षक रचनाएँ देखें।

१०. कभी-कभी रचनाओ को कक्षा मे भी पढवाना चाहिए जिससे उनकी सामूहिक आलोचना की जा सके।

११. वालक अनेक गलतियाँ असावधानी से काम करके भी करते हैं। ऐसी गलतियो को दूर करने के लिए उन्हे काम सावधानी से करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

१२ प्रयोगात्मक व्याकरण की ओर समुचित ध्यान देना चाहिए। इससे व्याकरण की गलतियो का सारा भार रचना पर न पड़ेगा।

भापा-सम्बन्धी खेल

उच्चारण, हिज्जे, शब्द, वाचन, रचना आदि सम्वन्धी अनेक खेलो का उपयोग करके भापा-शिक्षण को रोचक वनाया जा सकता है। हमारी वुनियादी शालाओं मे तो मूलोद्योग तथा जीवन की ठोस परिस्थितियो-सम्वन्धी विभिन्न क्रियाओं के आधार पर ही मातृभापा-शिक्षण आधारित होगा, पर समय-समय पर अभ्यास की अरोचकता दूर करने के लिए या गलतियो के सुधार के लिए अनेक भापा-सम्वन्वी खेल खिलाए जा सकते हैं। कुछ खेल निम्न हैं—

वाचन-सम्वन्धी खेल

१. एक वड़े-से चित्र मे अनेक वस्तुएँ वनाई जायँ। चित्र मे वस्तुओ के नाम भी उनके नीचे लिखे हो। वालक इस चित्र से ऐसी वस्तुओ के नाम पढें जो एक विशेप वर्ण से प्रारम्भ होते हो।

इसका उपयोग लेखन-योग्यता वढाने के लिए भी किया जा सकता है, क्योंकि पढ़ने के साथ-साथ वालक लिख भी सकते हैं।

२. कुछ लम्वी दफ्तियो पर सरल वाक्य या शव्द लिखे जायँ। कुछ अन्य छोटी दफ्तियो पर वर्ण लिखे जायँ। वालको को वड़ी दफ्ती मे लिखे वाक्य या शव्द के अनुसार उसके नीचे अलग-अलग वर्ण

वाली दफ्तियों से उसीके अनुसार शब्द या वाक्य बनाने को कहा जाय।

३ कुछ दफ्तियों पर शब्द या वाक्य लिखकर कक्षा के बालकों में वितरित किये जायें। अब कक्षा को दो खण्डों में विभाजित करके किसी एक खण्ड को अपनी एक दफ्ती दूसरे खण्ड को दिखाने के लिए कहा जाय। कक्षा के दूसरे खण्ड के बालक उसे दो-तीन सेकण्ड में ही पढ़े। यदि पढ़ लें तो वे अपने पास की दफ्ती पहले खण्ड वालों को दिखाएँ। यदि पढ़ न सकें तो पहले खण्ड वाले ही अपनी दूसरी दफ्ती दिखाएँ। साथ-ही-साथ जिस खण्ड वाला बालक पढ़ न सके उस खण्ड का एक बालक दूसरे खण्ड में चला जाय। खेल के अन्त में जिस खण्ड में अधिक बालक हों वही खण्ड जीता समझा जाय।

४ कुछ दफ्तियों पर वाक्य लिख दिये जायें। इन दफ्तियों को मिलाकर रखा जाय। अब शिक्षक या कक्षा का मुखिया दफ्तियों में लिखे गए वाक्य में से कोई वाक्य श्यामपट पर लिखे। कक्षा के किसी भी बालक से लिखे गए वाक्य के समान लिखी दफ्ती को ढूंढने के लिए कहा जाय। ढूंढने में एक-दो मिनट से अधिक न लगाना चाहिए। यदि वह सही दफ्ती का पता लगा सके तो उसे दफ्तियों में से कोई एक वाक्य श्यामपट पर लिखने के लिए कहा जाय तथा कक्षा के किसी अन्य बालक से सही दफ्ती निकालने को कहा जाय। पर सही न बतला पाने पर उनसे दूसरे वाक्य की दफ्ती निकालने को कहा जाय।

शब्द-सम्बन्धी खेल

१ कुछ शब्दों के दो सेट तैयार किये जायें। कक्षा को दो टोलियों में विभाजित करके शब्द-दफ्तियां उनके सामने रखवाई जायें। शिक्षक अब एक क्रम से शब्द कहता जाय तथा बालक अपने सामने रखी दफ्ती से सही दफ्ती चुनकर रखता जाय। जो दल

सब दफ्तियाँ पहले चुने वह जीता माना जाय।

२ दो डिब्बो को तैयार करके एक मे चित्र बने कार्ड तथा दूसरे मे चित्र के नाम लिख रखिए। कक्षा को दो दलो मे विभक्त कर दिया जाय। एक टोली का बालक चित्र वाले डिब्बे से कोई चित्र निकालकर दूसरी टोली के बालक से चित्र का नाम बतलाने तथा सही शब्द वाले कार्ड को कार्ड वाले डिब्बे से ढूंढने को कहता है। चित्र का सही नाम बतलाने तथा सही शब्द ढूंढने पर टोली को दो नम्बर तथा केवल एक ही बात बतलाने पर एक नम्बर दिया जाय। दोनो मे से किसी एक भी बात का सही उत्तर न देने पर शून्य दिया जाय। अन्त मे जिस टोली के अधिक नम्बर हो, वही टोली जीती समझी जाय।

३. सम्पूर्ण कक्षा दो टोलियो मे विभक्त की जाय। एक टोली वाला एक अक्षर कहे तथा दूसरी टोली वाला एक बालक दूसरा अक्षर उसमे जोडे तथा कोई शब्द बनाने मे सहायक हो। अब पुनः पहली टोली वाला बालक अक्षर जोड़कर शब्द बनाने का प्रयत्न करे। शब्द न बनने पर अन्य टोली से बनाए जाने वाले शब्द को पूछे तथा शब्द का पता लगाकर हारा समझा जाय। जानने वाली टोली को एक नम्बर दिया जाय। अन्त मे जिस टोली के नम्बर अधिक हो, वही टोली जीती समझी जाय।

४. पहेली-बुझौवल के खेल भी उपयुक्त रहते हैं।

५. कक्षा को दो दलों मे विभक्त किया जाय। एक दल कठिन शब्द कहे तथा दूसरा दल उसका अर्थ बतलाए। बारी-बारी से कठिन शब्द कहने तथा अर्थ बतलाने का काम चले। प्रत्येक सही पर एक नम्बर दिया जाय। अधिक नम्बर पाने वाला दल विजयी समझा जाय।

रचना-सम्बन्धी खेल

१. श्यामपट पर कुछ शब्द चुनकर लिख दिये जायँ। बालक इन शब्दो के वाक्य बनाकर रचना या कहानी लिखने का प्रयत्न करें।

सबसे अच्छी रचना या कहानी लिखने वाला विजयी समझा जाय।

२ अपूर्ण वाक्यो तथा उनके पूरक शब्दो की दो-दो तख्तियाँ तैयार की जायँ। कक्षा को दो दलो मे विभक्त किया जाय। अपूर्ण वाक्य तथा पूरक शब्दो की इन तख्तियो को मिलाकर अलग-अलग डिब्बो मे रखकर दो सैट तैयार करें। एक-एक दल को एक-एक सैट दें तथा वाक्य पूर्ण करने के लिए कहे। जो दल अपूर्ण वाक्यो के पूरक शब्दो को सही-सही जल्दी जोड ले वह विजयी समझा जाय।

३ अन्त्याक्षरी-प्रतियोगिता का आयोजन करके कविता का अभ्यास कराया जाय।

४ चित्रो की सहायता से रचना कराई जाय। कक्षा को दो दलो मे विभक्त करके भी चित्र-कहानी कहलाई जा सकती है। एक दल कहानी प्रारम्भ करे तथा दूसरा दल उसे वढाए। सही-सही समाप्त करने वाला दल विजयी समझा जाय।

हिज्जे-सम्बन्धी खेल

१ श्यामपट पर शिक्षक एक शब्द लिखकर वालकों को कुछ समय तक देखने दे। फिर शिक्षक उसे ढक दे तथा वालको से उसे लिखने को कहे। कुछ देर तक अनेक शब्दो के लिए इस प्रकार कार्य चलने के वाद जाँच की जाय कि किस वालक ने कितने सही शब्द लिखे है। अधिक सही या पूर्ण सही शब्द लिखने वाले वालक को विजयी समझा जाय।

२. शिक्षक कुछ शब्दो के वर्णो को अस्त-व्यस्त क्रम से रखकर श्याम-पट पर लिख देते है। विद्यार्थी इनको ठीक क्रम मे रखकर सही शब्द वनाते हैं।

२ विद्यार्थियो को एक शब्द दिया जाता है तथा उसमे एक अक्षर वदलकर वे जितने अधिक शब्द वना सकते है वनाते हैं, जैसे नल, चल, पल, लड, आदि।

४. श्यामपट पर शब्द इस प्रकार लिखा जाय कि उसके बीच के एक या दो वर्ण न लिखे जायँ तथा इनके स्थान में आवश्यकतानुसार एक या दो गुणा के चिह्न लगा दिये जायँ। विद्यार्थी जितने गुणा के चिह्न लगे हो उतने उपयुक्त वर्ण मिलाकर सही शब्द बनाएँ। जैसे त×ल, स×ल, त× ×र आदि से क्रमश. तरल, सरल, तलवार शब्द बनाए जायँ।

खण्ड ३

परिशिष्ट :
अभ्यास पाठ

पाठ १

कक्षा —४
समय —५० मिनट
विषय —स्वास्थ्य-ज्ञान
प्रसंग —मच्छर और मलेरिया का ज्ञान
समवाय-केन्द्र—'समाज'

सामान्य उद्देश्य

१ कार्य के प्रति बालको की अभिरुचि जागृत करना।

२ श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना।

३ स्वच्छता के प्रति रुचि जागृत करते हुए बालको को स्वस्थ एव शुद्ध जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देना।

४. बालको मे सामाजिक उत्तरदायित्व वहन करने की भावना का विकास करना।

५ बालको का सर्वांगीण विकास करना।

विशिष्ट उद्देश्य

१. कक्षा की सफाई कराके विद्यालय के पीछे की गन्दी नाली साफ कराना, उसमे डी० डी० टी०, मिट्टी का तेल और फिनाइल छिड़कवाना तथा बालको को गन्दगी से होने वाले मच्छरो का प्रत्यक्ष ज्ञान कराना।

२ बालको को मच्छरो की उत्पत्ति, उनसे हानि तथा उन्हे नष्ट करके उनसे बचने के उपायो का ज्ञान कराना।

पूर्व ज्ञान

बालक मच्छरो के सम्बन्ध में कुछ जानकारी रखते है। वे अपने घरो में मच्छरदानी लगाकर सोते हैं या दूसरों को सोते देखा है।

योजना का प्रारूप

१ क्रिया का स्पष्टीकरण। शाला मे स्वच्छता-सप्ताह के अन्तर्गत चौथी कक्षा ने अपनी कक्षा की सफाई की है। सफाई करते समय मच्छरो का प्रसग आया। कक्षा की सफाई करते समय अलमारियो को हटाकर कोनो को झाड़ा गया था। इसी प्रसग मे मच्छरो को समाप्त करने की योजना का निर्माण हुआ। आज विद्यार्थी गदे स्थान, नाली आदि साफ करके उसमे डी० डी० टी०, मिट्टी का तेल और फिनाइल छिड़केंगे, ताकि मच्छरो का उत्पन्न होना रोका जा सके। इस कार्य के लिए निम्न सामग्री की आवश्यकता पडेगी—

२ आवश्यक सामग्री। बाँस के एक छोर मे बँधी झाडू, चार बाल्टियाँ, पानी, डी० डी० टी०, फिनाइल, मिट्टी का तेल, टोकनी, छ फ्लिट पम्प, लोटा, तौलिया, साबुन आदि। यह सामग्री यथास्थान रखी रहेगी।

३. योजना का क्रमिक विकास। शिक्षक सर्वप्रथम बालको से कक्षा मे चलने वाली योजना की चर्चा करेंगे। आज की क्रिया स्पष्ट होने पर उसमे लगने वाली आवश्यक सामग्री की चर्चा होगी। विभिन्न क्रियाओ के लिए कक्षा को चार दलो मे विभाजित किया जायगा। प्रत्येक दल के पास आवश्यक सामग्री रहेगी।

पहली टोली नाली को साफ करेगी। दूसरी टोली नाली मे फिनाइल डालेगी। तीसरी टोली जमाव वाले स्थानो पर मिट्टी का तेल छिड़केगी। चौथी टोली नाली और आसपास के स्थानो मे डी० डी० टी० छिडकेगी।

सर्वप्रथम शिक्षक प्रत्येक क्रिया का आदर्श प्रस्तुत करेंगे। इसके बाद विद्यार्थी क्रियाशीलन करेंगे। इस बीच शिक्षक उन्हे आवश्यक सावधानियाँ

और सुझाव देते रहेंगे तथा त्रुटियो का निवारण करेंगे ।

यह क्रिया लगभग बीस मिनट तक चलेगी । क्रिया समाप्त हो जाने पर बालक पक्तिबद्ध होकर निश्चित स्थान पर पहुँचकर हाथ-पैर साफ करेंगे। इस समय शिक्षक उन्हे रासायनिक पदार्थों मे सुरक्षा की आवश्यकता समझाएँगे ।

क्रियाशीलन पर चर्चा करते हुए इसी सदर्भ मे शिक्षक मच्छरो की उत्पत्ति के स्थान, उन्हे नष्ट करने के उपाय, मच्छरो से होने वाले मलेरिया बुखार के लक्षण तथा उसके उपचार के सम्बन्ध मे ज्ञान देगे ।

क्रियाशीलन . उत्प्रेरण

कक्षा की व्यवस्था पर ध्यान देते हुए शिक्षक कक्षा मे चल रही योजना पर चर्चा करेंगे और प्रश्नो द्वारा पिछले कार्य से सम्बन्ध स्थापित करेंगे।

प्रश्नोत्तर

१ तुम्हारी कक्षा मे कौनसी योजना चल रही है ? (उत्तर मच्छर नष्ट करने की ।)

२ इस योजना मे कल तुमने कौनसी क्रिया की थी ? (उत्तर कक्षा की सफाई की ।)

३ क्या कक्षा की सफाई करने से मच्छर नष्ट हो जायेंगे ? (उत्तर नही ।)

४ मच्छरो को नष्ट करने के लिए हमे क्या करना चाहिए ? (उत्तर : आस-पास की गदगी साफ करना और मिट्टी का तेल डालना ।)

उद्देश्य-कथन

आज हम मच्छर और उनके अण्डे नष्ट करने के लिए नाली साफ करके उसमे मिट्टी का तेल, फिनाइल और डी० टी० टी० छिडकेंगे ।

क्रिया का आदर्श और क्रियान्विति

कक्षा पक्तिबद्ध होकर क्रिया-स्थल पर पहुँचेगी। यहाँ शिक्षक कक्षा को टोलीवार खडा करेंगे एव आज की क्रिया का कार्य वितरण करेंगे। प्रत्येक टोली का कार्य निश्चित हो जाने पर पहली टोली नाली रहेगी,

शेष तीन टोलियाँ पक्तिवद्ध होकर निरीक्षण करेंगी। शिक्षक नाली साफ करने का आदर्श प्रस्तुत करेंगे। आदर्श प्रस्तुत करते समय उसकी सावधानियों की ओर कक्षा का ध्यान आकर्पित किया जायगा।

सावधानियाँ

१ झाडू बाँस के ऊपरी सिरे पर पकडकर आगे की ओर धकेलना चाहिए।

२. झाडू धीरे-धीरे आगे वढाना चाहिए ताकि नाली की गदगी उसके किनारे पर न फैले।

३. नाली को साफ करने के वाद गदगी एक निश्चित स्थान पर डाल दी जाय।

४. सफाई के वाद एक वाल्टी पानी नाली के ऊपरी सिरे पर डाल देना चाहिए ताकि शेप कचरा वह जाय।

आदर्श-कथन के वाद टोली मे सामग्री वितरित की जायगी।

प्रथम टोली की क्रिया समाप्त हो जाने पर शिक्षक दूसरी टोली को खडा करेंगे और मिट्टी का तेल डालने की क्रिया करेंगे।

इसके वाद तीसरी टोली खडी होगी। शिक्षक उसे फिनाइल डालने का महत्त्व स्पष्ट करते हुए आदर्श वताएँगे। फिर वालक तेल और फिनाइल डालने की क्रिया करेंगे। आदर्श के वाद टोली क्रिया करेगी।

अंत मे शिक्षक डी० डी० टी० पाउडर छिडकने का आदर्श वताएँगे। आदर्श के वाद चौथी टोली नाली और आस-पास के स्थानो मे डी० डी० टी० छिडकेगी।

निरीक्षण एवं त्रुटि-संशोधन

विद्यार्थियो के क्रिया करते समय शिक्षक कार्य का निरीक्षण करेंगे और आवश्यक सशोधन तथा सहायता देंगे।

क्रिया की समाप्ति

यह क्रिया २० मिनट तक चलती रहेगी। क्रिया समाप्त होने पर वालक सामग्री यथास्थान रखकर हाथ-पैर धोकर कक्षा मे जायँगे।

क्रियाशीलन का निष्कर्ष—कक्षा मे यथास्थान बैठ जाने पर क्रिया के सम्बन्ध मे चर्चा करते हुए क्रिया का निष्कर्ष निकाला जायगा।

१ आज तुमने कौनसी क्रिया की है ? (उत्तर नाली साफ करके डी० डी० टी०, तेल और फिनाइल छिडका।)

२ रासायनिक पदार्थ किस स्थान पर छिडके गए ? (उत्तर नाली और आस-पास के स्थानो मे।)

३. रासायनिक पदार्थ छिडकने से क्या लाभ होगा ? (उत्तर. मच्छरो के अण्डे नष्ट हो जायँगे।)

४. ये दवाइयाँ नाली मे ही क्यो छिडकी गई ? (उत्तर क्योंकि गदगी रहने से मच्छर वही पैदा होते हैं।)

५. मच्छर और कहाँ-कहाँ पैदा होते हैं ? (उत्तर डबरे, कुएँ और तालाब के किनारे गदी जगहो पर।)

प्रस्तुतीकरण

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
मच्छरो के उत्पन्न होने के स्थान	प्रश्न . नाली के अतिरिक्त मच्छर पैदा होने के कौन-कौनसे स्थान है ? कथन द्वारा मच्छर गदे पानी के स्थानो, जैसे डबरा, नाली, कुआँ, तालाब आदि, मे उत्पन्न होते है। अधेरा स्थान मच्छरो के छिपने की जगह होती है।	मच्छर पानी-भरे गदे स्थानो मे उत्पन्न होते है, जैसे डबरा, नाली, कुएँ के पास, तालाब के किनारे।
	चित्र दिखाकर . इस चित्र मे मच्छर पैदा होने के स्थान देखो।	मच्छर दिन को अधेरे स्थान मे छिपे रहते हैं।

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
मच्छर के प्रकार	प्रश्न : तुमने कितने प्रकार के मच्छर देखे हैं ?	(१) क्युलैक्स (२) एनॉफलीस
	कथन द्वारा (चित्र दिखाते हुए) : जो मच्छर हम देखते हैं वे रंग मे एक ही समान दीखते है, पर वास्तव मे इनके दो प्रकार हैं। इनका अंतर हम बैठने की विधि से जानते हैं। चित्र में इन मच्छरो के बैठने का ढग देखो।	
	(१) सीधा बैठने वाला मच्छर क्युलैक्स कहलाता है।	क्युलैक्स सीधा बैठता है।
	(२) तिरछा बैठने वाला मच्छर एनॉफलीस कहलाता है। मादा एनॉफलीस अण्डे देती है। इसी के काटने से मलेरिया फैलता है।	एनॉफलीस तिरछा बैठता है।
	प्रश्न : (१) मच्छर किस मौसम मे अधिक होते हैं ? (२) मलेरिया बुखार कुवार और चैत के माह मे क्यो अधिक होता है ? प्रश्न : तुमने किसी मलेरिया बुखार के रोगी को देखा है ?	एनॉफलीस के काटने से ही मलेरिया बुखार होता है। यही मादा मच्छर है जोकि अण्डे देती है।
	कथन द्वारा· मलेरिया बुखार मे खूब ठण्ड लगती है और तेजी से बुखार हो जाता है। कुछ देर बाद गरमी लगती है, शरीर से पसीना निकलने लगता है और बुखार उतर जाता है।	मलेरिया बुखार ठण्ड देकर आता है और पसीना देकर उतर जाता है।

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
मलेरिया बुखार के प्रकार।	कथन द्वारा मलेरिया बुखार चार प्रकार से आता है—(१) प्रतिदिन आने वाला मलेरिया कहलाता है। (२) एक दिन छोडकर आने वाला इकतरा कहलाता है। (३) दो दिन छोडकर आने वाला तिजारी। (४) तीन दिन छोडकर आने वाला चौथिया। ये सब बुखार ठण्ड देकर आते हैं।	मलेरिया के रूप—इकतरा, तिजारी, चौथिया।
मलेरिया से बचाव।	प्रश्न · मलेरिया से बचने के लिए तुम क्या करोगे ? कथन · मलेरिया से बचने के लिए निम्न प्रतिबधक उपाय हैं—(१) गड्ढो मे मिट्टी का तेल छिडकना। (२) कमरो मे, गदे स्थानो आदि मे डी० डी० टी० डालना। (३) सफाई करना, डबरे बंद करना। (४) धुआँ करना। प्रकाश का खूब प्रबध रखना। सोते समय तेल-मालिश करना। मच्छरदानी का प्रयोग करना।	
मलेरिया का उपचार।	उपचार—बुखार आ जाने पर उपरोक्त सावधानियाँ रखने के अलावा कुनीन, पैलोड्रिन, मैपाक्रिन आदि मलेरिया की अच्छी दवाइयों का उपयोग। दवाइयो के साथ ही प्रतिबधक उपाय भी करने चाहिएं।	कुनीन, पैलोड्रिन, मैपाक्रिन आदि दवाइयाँ।

1268

पुनरावलोकन

विद्यार्थियों के अर्जित ज्ञान की जानकारी के लिए पुनरावृत्ति के प्रश्न किये जायेंगे और इस प्रकार उनके द्वारा अर्जित ज्ञान स्थायी किया जायगा।

१. मच्छर किन स्थानों मे उत्पन्न होते है ?

२. मच्छर कितने प्रकार के होते हैं ?

३. किस मच्छर के काटने से मलेरिया आता है ?

४. मलेरिया किन-किन महीनो में अधिक फैलता है ?

५. मलेरिया से बचने के कौन-कौनसे उपाय हैं ?

प्रयोग

खाली स्थान भरो—

१. ······मच्छर के काटने से आता है।

२. मलेरिया ···· देकर आता है।

३. एक दिन छोड़कर आने वाला बुखार·· ···कहलाता है।

४. मच्छर के अण्डे नष्ट करने के लिए······छिडकना चाहिए।

५. मच्छरो से बचने के लिए रात्रि को······लगाकर सोना चाहिए।

पाठ २

कक्षा	—४
छात्र-संख्या	—२०
बालकों की औसत आयु	—१० वर्ष
समय	—५० मिनट
विषय	—मूलोद्योग (ओटाई की क्रिया का शास्त्रीय ज्ञान + भाषा)
समवाय केन्द्र	—मूलोद्योग

सामान्य उद्देश्य

१ उद्योग की क्रिया मे बालको को कुशलता प्राप्त कराना।
२ उद्योग मे स्वावलम्बन प्राप्त करने की योग्यता का विकास करना।
३ उद्योग के सचालन तथा व्यवस्था की योग्यता का विकास करना।
४ उद्योग द्वारा उत्पन्न प्रक्रियाओ मे शोध की दृष्टि उत्पन्न करना।
५ उद्योग द्वारा बालको मे लिखित तथा मौखिक ढग से अपने भावो को व्यक्त करने की क्षमता का विकास करना।
६. बालको मे दूसरो के विचार समझने की शक्ति उत्पन्न करना।

विशिष्ट उद्देश्य

१ सलाई पटरी से कपास की ओटाई करना।
२. हाथ-ओटाई के अग तथा उनके कार्यों का ज्ञान देना।

योजना का प्रारूप

पिछले दिन बालको से कपास की सफाई करवाई गई थी। आज बालको द्वारा सलाई पटरी से ओटाई करवाई जायगी। इस कार्य को करने के लिए निम्न सामग्रियो की आवश्यकता होगी।

आवश्यक सामग्री

२० लोहे की सलाइयाँ, २० ओटनी पटरी, फिरकनियाँ एव कागज़ के टुकडे।

योजना का क्रमिक विकास

(क) उत्प्रेरण। ओटाई करने के लिए बालको को उत्प्रेरित करने के उद्देश्य से कुछ प्रश्न पूछे जायँगे तथा उन्हे क्रिया के विकास के लिए तत्पर किया जायगा।

(ख) क्रिया का आदर्श। तत्पश्चात् शिक्षक द्वारा क्रिया का आदर्श प्रस्तुत किया जायगा। आदर्श-प्रदर्शन करते समय ओटाई की प्रत्येक उपक्रिया के 'क्यो' और 'कैसे' पर प्रकाश डाला जायगा।

(ग) व्यवस्था एव सामग्री-वितरण। इसके पश्चात् टोली-नायको द्वारा व्यवस्थित ढग से सामग्री वितरण करने का कार्य करवाया जायगा।

उस समय गणित-सम्बन्धी चर्चा की जायगी ।

(घ) कक्षा द्वारा क्रियान्वयन । सामग्री-वितरण के पश्चात् वालको को कार्य करने का आदेश दिया जायगा ।

(ङ) निरीक्षण एव त्रुटि-संशोधन । क्रियारत वालको के कार्य का निरीक्षण एवं दोपो का निराकरण किया जायगा ।

(च) क्रिया की समाप्ति । ओटाई की क्रिया दस मिनट तक चलेगी । समय होने पर कार्य समाप्त करने को कहा जायगा । सामग्रियो को व्यवस्थित ढंग से एकत्रित किया जायगा ।

क्रिया का निष्कर्ष

रुई एकत्रित की जायगी तथा कार्य की सम्प्राप्ति निकाली जायगी । निष्कर्ष को आधार मानकर हाथ-ओटनी के अंग तथा उनके कार्यों की चर्चा की जायगी और भापा-सम्बन्धी ज्ञान दिया जायगा । उस कार्य के लिए निम्न सामग्रियो की आवश्यकता होगी—(१) एक सजी हुई हाथ-ओटनी । (२) एक विना सजी हाथ-ओटनी (इसका उपयोग प्रस्तुतीकरण मे होगा) । (३) हाथ-ओटनी तथा उसके अगो के कार्य दरशाने वाले पुट्ठे के टुकड़े । (इसका उपयोग पुनरावृत्ति के समय किया जायगा ।)

क्रियाशीलन (प्रश्नोत्तर पद्धति) : उत्प्रेरण

१. कपास दिखाकर यह क्या है ? (उत्तर · कपास)

२. रुई दिखाकर : यह क्या है ? (उत्तर : रुई)

३. इन दोनो मे क्या अन्तर है ? (उत्तर . कपास में विनौला रहता है ।)

४. कपास से रुई पाने के लिए क्या करते है ? (उत्तर : ओटाई)

५ हम ओटाई किससे करते हैं ? (उत्तर · सलाई पटरी से)

उद्देश्य-कथन

आज हम सलाई पटरी से ओटाई करेंगे ।

क्रिया का आदर्श

क्रिया का आदर्श वताते समय वीच-वीच मे विभिन्न प्रश्न किये जायेंगे—

१. सलाई पटरी से ओटने के पहले क्या करते हैं ?
२. कल पूरी कक्षा से कितनी फिरकियाँ बनवाई गईं ? (इस पाठ के एक दिन पहले कक्षा के विद्यार्थियों से फिरकियाँ बनवाई गई थीं। फिरकियाँ बनाने का उद्देश्य भी उन्हें बताया गया था ।)
३ ओटाई करने से पहले फिरकियाँ क्यों बना लेते हैं ? (बिनौले आसानी से निकलते हैं ।)
४. ओटने से पहले पटरी को क्या करते हैं ? (साफ)
५ पटरी को साफ क्यों करते हैं ? (रुई खराब न हो ।)
६ पटरी की सतह कैसी होनी चाहिए ? (खुरदरी)
७. सतह खुरदरी क्यों होनी चाहिए ? (रेशे पकड़ने के लिए)
८ सलाई क्यों साफ करते हैं ? (सलाई में लगी जंग से रुई खराब न हो।)
९. पटरी पर कितनी फिरकियाँ रखी गईं ? (तीन)
१०. अधिक फिरकियाँ क्यों नहीं रखी गईं ?
११. ओटते समय किस तरह बैठते हैं ? (दोनों पैरों के सहारे)
१२ सलाई किस हाथ से पकड़ते हैं ? (दाहिने)
१३. सलाई कहाँ रखी गई ? (कपास के बीच में)
१४ अब क्या किया गया ? (सलाई को हथेली से दबाकर झटका दिया गया ।)

ओटने के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं—

१ ओटते समय बीज टूटना नहीं चाहिए ।
२ पटरी हिलनी नहीं चाहिए ।

प्रश्नोत्तर-पद्धति

१ ओटते समय किस बात का ध्यान रखना चाहिए ?
२ बीज टूटने से क्या होगा ? (तेल निकलेगा, पटरी गीली होगी, रेशे खराब होंगे ।)
३ पटरी क्यों नहीं हिलनी चाहिए ? (ओटने में अड़चन होगी ।)

४. बिनौले कहां रखने चाहिएँ ? (पटरी के सामने कागज पर)
५. बिनौलो का क्या उपयोग होता है ? (तेल निकालने, बोने के काम)

सामग्री-वितरण

आदर्श क्रिया समाप्त होने पर टोली-नायको द्वारा सामग्री वितरण करवाना। इसके लिए टोली-नायको को बालकों की सख्या गिनने के लिए कहना तथा लगने वाली सामग्री की परिभाषा के सम्बन्ध में उनसे प्रश्न करना। प्रश्नो का क्रम निम्न होगा—

१. तुम्हारी टोली मे कितने विद्यार्थी हैं ?
२ तुम्हारी टोली मे कितनी पटरियाँ बँटेंगी ?
३. कितनी सलाइयाँ बँटेंगी ?
४ प्रत्येक विद्यार्थी को दस फिरकियो के हिसाब से कितनी फिरकियाँ बँटेंगी ?
५ प्रति विद्यार्थी तीन टुकडो के हिसाब से कितने टुकड़े लगेंगे ?

कक्षा द्वारा क्रिया का क्रियान्वयन

सामग्री-वितरण के पश्चात् कक्षा को कार्य करने का आदेश दिया जायगा।

निरीक्षण एवं त्रुटि-संशोधन

क्रियारत बालको के कार्य का निरीक्षण किया जायगा तथा उनके दोषो का निराकरण किया जायगा।

क्रिया की समाप्ति

ओटाई की क्रिया दस मिनट तक चलेगी, फिर बन्द की जायगी। इसके पश्चात् सामग्री व्यवस्थित ढग से एकत्रित की जायगी।

क्रिया का निष्कर्ष

१. पूरी कक्षा को ओटाई के लिए कपास की कितनी फिरकियाँ दी गई थी ?
२. कितनी फिरकियाँ ओटी गईं ?

३ कितनी फिरकियाँ शेष रह गई ?
४. पूरी कपास ओटने के लिए क्या करना पड़ता है ?
५. हमने कितनी देर काम किया ?
६. दस मिनट मे पूरी कपास कैसे ओटी जा सकती है ? (समस्यात्मक प्रश्न)

कथन

दस मिनट मे हमने जितनी कपास ओटी है उनसे अधिक कपास हाथ-ओटनी से ओट लेते। हाथ-ओटनी से थोड़े समय मे अधिक काम हो सकता है। आगे चलकर हम हाथ-ओटनी से कार्य करेंगे।

प्रस्तुतीकरण

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
हाथ-ओटनी के अग— १ चौखूटा २ बैठक ३ बेलन के खम्भे ४ पट्टियाँ ५. बेलन ६. सलाख ७ हत्था ८ पच्चर	सजी हुई हाथ-ओटनी और उसके विभिन्न अगो को क्रमश प्रत्यक्ष दिखलाना तथा उनके कार्यों का वर्णन करना। कथन-पद्धति यह हाथ-ओटनी है और कपास ओटने के काम आती है। प्रश्नोत्तरी (हाथ-ओटनी की ओर सकेत करके) : यह क्या है ? हाथ-ओटनी किस काम मे आती है ? कथन-पद्धति (चौखूटा बताकर) : यह चौखूटा है। इसमे खम्भे और बैठक लगे रहते हैं। प्रश्नोत्तर-पद्धति (चौखूटे की ओर सकेत करके) : (१) यह क्या है ? (२) चौखूटे मे क्या लगे रहते है ?	लपेट श्यामपट पर हाथ-ओटनी के अग तथा उनके कार्य लिखे रहेंगे। लपेट श्यामपट धीरे-धीरे खोला जायगा जिससे बारी-बारी हर अग के नाम और कार्य का पता लगेगा।

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	कथन-पद्धति (बैठक दिखाकर) : यह बैठक है। बैठक हाथ-ओटनी के छोर पर रहती है। इस पर बैठक ओटाई करते हैं।	
	प्रश्नोत्तर-पद्धति : (१) बैठक कहाँ लगी रहती है ? (२) यह किस काम आती है ?	
३. वेलन के खम्भे	कथन-पद्धति (वेलन के खम्भे दिखाकर) : ये वेलन के खम्भे हैं। इनके सहारे वेलन और सलाख लगे रहते हैं।	
	प्रश्नोत्तर-पद्धति (वेलन के खम्भे दिखाकर) : (१) ये क्या हैं? (२) ये खम्भे किस काम आते हैं ?	
४. पट्टियाँ	कथन-पद्धति (पट्टियाँ दिखाकर) · ये लोहे की पट्टियाँ हैं। ये वेलन के खम्भे को सहारा देती हैं और उन्हें ओटने वाले की ओर झुकाए रखती हैं।	
	प्रश्नोत्तर-पद्धति (पट्टियाँ दिखाकर) . (१) इन्हें क्या कहते हैं? (२) इनका क्या काम है ?	
५. वेलन	कथन-पद्धति (वेलन दिखाकर) · यह वेलन है। यह लकड़ी का बना है। इसके ऊपर सलाख रहती है। वेलन घूमने से सलाख भी घूमती है। दोनों के घूमने की दिशा एक-दूसरे से उल्टी रहती है। कपास को इसके बीच में रखकर ओटते हैं।	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	प्रश्नोत्तर-पद्धति (वेलन दिखाकर) (१) वेलन किससे बनता है ? (२) इसके ऊपर क्या रहता है ? (३) वेलन घूमने से क्या होता है ? (४) वेलन और सलाख किस तरह घूमते हैं ? (५) कपास किस तरह ओटते हैं ?	
६ सलाख	कथन-पद्धति यह सलाख है। लोहे की गोल छड को 'सलाख' कहते है। यह वेलन के ऊपर रहती है। वेलन और सलाख एक-दूसरे को छूते हुए घूमते हैं।	
	प्रश्नोत्तर-पद्धति · (१) सलाख किसे कहते हैं ? (२) सराख कहाँ लगी रहती है ? (३) सलाख और वेलन कैसे घूमते हैं ?	
७ हत्था	कथन-पद्धति (हत्था दिखा-कर) यह हत्था है। हत्था वेलन खम्भे की दाहिनी ओर वेलन से लगा रहता है। इसे घुमाने से वेलन और सलाख घूमते है।	
	प्रश्नोत्तर-पद्धति : (१) हत्था कहाँ लगा रहता है ? (२) इसे घुमाने मे क्या होता है ?	
८ पच्चर	कथन-पद्धति ये पच्चर हैं। पच्चर लकडी के होते हैं। ये	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	दोनो वेलन-खम्भो मे वेलन के नीचे लगे रहते हैं। ये वेलन और सलाख की दूरी को कम-ज्यादा करने के काम आते है। इससे ओटनी की चाल ठीक की जाती है। प्रश्नोत्तर-पद्धति : (१) पच्चर कहाँ लगे रहते हैं? (२) पच्चर किस काम आते हैं?	

पुनरावलोकन एवं अभ्यास (खेल-पद्धति)

पुट्ठे के टुकड़ो पर हाथ-ओटनी के अगो के नाम अलग-अलग लिखे हैं। दूसरे पुट्ठो पर इन अंगो के चित्र दिये गए हैं। पहले कक्षा को पहला नाम वाला पुट्ठा दिखाया जायगा। फिर चित्र वाला पुट्ठा अन्य पुट्ठो मे से किसी एक बालक द्वारा ढुढ़वाया जायगा और उचित स्थान पर लगवाया जायगा। इसी तरह प्रत्येक अग के काम दरशाने वाले पुट्ठे अलग-अलग हैं।

पाठ ३

कक्षा —६
आयु —१२ वर्ष
समय —५० मिनट
विषय —सामान्य विज्ञान
समवाय-केन्द्र—मूलोद्योग

सामान्य उद्देश्य

१. बालको का सर्वांगीण विकास करना।

२ बालको के हृदय, हाथ तथा मस्तिष्क का समन्वय करते हुए मानसिक एव नैतिक विकास करना।

३' स्वावलम्बन एव आत्म-निर्भरता द्वारा सुयोग्य नागरिक के गुणो के विकास-हेतु छात्रो को उत्साहित करना।

४ लिखित और मौखिक अभिव्यक्तियो को ठीक-ठीक समझने की शक्ति का विकास करना।

५ अपनी क्रियाओ का स्पष्ट और विशुद्ध विवरण प्रस्तुत कर सकने की कला से अवगत कराना।

विशिष्ट उद्देश्य

१ तर्क और विचार-शक्ति को प्रेरित करना।

२. रुचिपूर्वक कार्य करने की उत्सुकता जागृत करना।

३. सरल भाषा मे अपने विचार व्यक्त करने की क्षमता विकसित करना।

४. बालको को सूत रँगने की क्रिया का ज्ञान देना।

५. सेंटीग्रेड तथा फैरनहीट तापमापक यत्रो का सामान्य ज्ञान देना।

योजना का प्रारूप

छठी कक्षा के बालक योजना के अतर्गत दरी बुनते रहे हैं। दरी की बुनाई का कार्य रगीन सूत समाप्त हो जाने के कारण रुक गया है। अपनी योजना आगे बढाने के लिए रगीन सूत की आवश्यकता पडने पर बालक स्वय अपने काते हुए सूत को रँगेंगे। इसलिए आज रँगाई की क्रिया होगी।

इस क्रिया मे निम्न सामग्री की आवश्यकता होगी—

आवश्यक सामान

एक स्टोव, एक टब, पानी, रग आधा तोला, फूला तथा कुटा हुआ सूत २५ तोले, नमक ५ तोले, बाल्टिया ५, कमची ५, डण्डे ५, सोडा आधा तोला, तौलिये २, प्यालियाँ ६, फैरनहीट तथा सेंटीग्रेड तापमापक यत्र। लपेट श्यामपट, बरफ, हिप्सोमीटर, चार्ट।

तैयारी

२५ तोला सूत पानी में २४ घटे पहले भिगोया गया है। उसे कूटकर कमचियो पर लटका दिया गया है। सूत के वज़न से वीस गुना पानी एक टव मे स्टोव पर गरम हो रहा है। उसमे आधा तोला सोडा डाल दिया गया है। वालको को सूत भिगोने, कूटने तथा सोडा डालने के कारण ज्ञात हैं। प्यालियो मे रंग तथा नमक घुला हुआ है।

योजना का क्रमिक विकास

स्टोव पर गरम होते हुए पानी का तापक्रम सेटीग्रेड तापमापक यत्र से नापा जायगा। पानी का तापक्रम ५०° से ६०° के वीच होने पर रँगाई की क्रिया आरम्भ की जायगी। ताप नापते समय वालको को वताया जायगा कि जिस वस्तु का तापक्रम लेना हो, उस वस्तु मे तापमापक यत्र की घुण्डी डुवा देते है। ताप पाकर पारा ऊपर चढने लगता है। जिस चिह्न के सामने पारा रुक जाता है उसे हम पढ लेते हैं। यदि सेंटीग्रेड मे ५५° पर पारा रुका तो हम कहेगे कि पानी का तापक्रम ५५° सेंटीग्रेड है।

वर्ग-व्यवस्था

कार्य की सुविधा, व्यवस्था एव वालको की रुचि के अनुसार कक्षा को चार टोलियों मे विभाजित किया जायगा। कक्षा मे संभावित उपस्थिति वीस छात्रो की होगी, अतः प्रत्येक टोली मे पाँच-पाँच वालक कार्य करेंगे।

विभिन्न प्रक्रियाएँ तथा उनकी समाप्ति

वालक अपनी-अपनी टोली मे पानी का तापक्रम सेंटीग्रेड तापमापक यंत्र से ज्ञात करेंगे। उचित तापक्रम होने पर अपना सूत रँगकर छाया मे सुखा देंगे। अपनी-अपनी टोलियों का सामान साफ करके एक स्थान पर एकत्रित करेंगे तथा अपने हाथ-पैरो की सफाई करके कक्षा मे जायँगे।

क्रियाशीलन

प्रश्नोत्तर-विधि से वालको को कार्य की ओर अग्रसर किया जायगा।

शिक्षक बालको से निम्न प्रश्न करके कार्य के प्रति उनकी अभिरुचि जागृत करेंगे—

१ हमे दरी बुनने का कार्य बन्द क्यो कर देना पडा है ? (उत्तर : दरी की बुनाई के लिए सूत नही है ।)

२. दरी बुनने के लिए हमे किस प्रकार के सूत की आवश्यकता है ? (उत्तर रगीन सूत की ।)

३ रगीन सूत पाने के लिए हमे क्या करना पडेगा ? (उत्तर सफेद सूत की रँगाई ।)

उद्देश्य-कथन

हम अपनी दरी-योजना की पूर्ति के लिए आज सूत रँगने की क्रिया करेंगे ।

शिक्षक द्वारा क्रिया का आदर्श

गरम हो रहे पानी का तापक्रम सेंटीग्रेड तापमापक यत्र से नापने के पूर्व बालको को बताया जायगा कि सूत रँगने के लिए गरम पानी की आवश्यकता होती है, क्योकि गरम पानी मे रग सरलता से घुलता है, रग पूर्ण रूप से रेशो मे भिदता है तथा पक्का और एक समान चढता है । पानी का उचित ताप न होने पर भी रँगाई ठीक नही होती । हम हाथ मे तापक्रम की ठीक-ठीक जाँच नही कर सकते । (प्रयोग द्वारा उपर्युक्त कथन का स्पष्टीकरण) अत पदार्थों के तापक्रम को नापने के लिए एक यत्र बनाया गया है जिसे हम तापमापक यत्र कहते हैं ।

(तापमापक यत्र दिखाकर) यह यत्र काँच की एक पोली नली का बना होता है । इसके नीचे के सिरे पर एक लम्बी घुण्डी होती है तथा ऊपर का सिरा बन्द रहता है । इसका सूराख बहुत पतला रहता है । घुण्डी मे एक चमकदार द्रव्य भरा रहता है, जिसे पारा कहते हैं । ताप पाकर नली का पारा घुण्डी मे ऊपर चढने लगता है । सूराख बिलकुल खाली रहता है, इसलिए उसमे पारे के चढने मे कोई रुकावट नहीं होती । पानी मे तापमापक यत्र की घुण्डी डुबा दी जायगी तो पारा ऊपर को चढने

लगेगा। पारा जिस चिह्न के सामने रुक जायगा उसे पढ़ लेंगे। यदि ५०° के सामने रुका तो हम कहेंगे कि पानी का तापक्रम ५०° सेंटीग्रेड है।

सूत रँगने के लिए हमे ५०° से ६०° सेंटीग्रेड पानी के तापक्रम की आवश्यकता होती है। इस तापक्रम पर शिक्षक एक बाल्टी मे पानी लेकर उसमे रंग का घोल मिलाएँगे। रग का घोल पानी मे मिलाकर सूत वाली एक कमची को बाल्टी मे डुबाया जायगा। डण्डे से सूत को रग के घोल में अच्छी तरह से डुबाया जायगा। कमची ऊपर उठाकर बाल्टी के ऊपर करके उसे धीरे-धीरे निचोड़ लेंगे तथा सूत को छाया मे सूखने डाल देगे। छाया मे सुखाने मे सूत का रग नही उड़ता।

वर्ग द्वारा क्रिया की कार्यान्विति

शिक्षक के बताए अनुसार बालक अपनी-अपनी टोलियो मे कार्य करेंगे। इस समय शिक्षक घूमकर बालको का कार्य देखेंगे तथा होने वाली त्रुटियो का संशोधन करेंगे।

क्रियाशीलन का निष्कर्ष

शिक्षक निम्नलिखित प्रश्नो द्वारा क्रियाशीलन का निष्कर्ष निकालेंगे—

१. सूत की रँगाई से हमारी कौनसी समस्या हल हुई है? (उत्तर: दरी बुनने का कार्य आरम्भ हो जायगा।)

२. रंग के घोल मे नमक तथा सोडा क्यों मिलाया गया? (उत्तर. इस तरह रग पक्का चढता है।)

३. रगा हुआ सूत छाया मे क्यो सुखाना चाहिए? (उत्तर. इससे रग नही उड़ता।)

४. सूत को गरम पानी मे क्यो रँगते हैं? (उत्तर: रग का सरलता से घुलना, रेशों मे भिदना तथा पक्का और एक समान चढना।)

५. तापक्रम बताने वाले यंत्रो को हम क्या कहते हैं? (उत्तर: ताप-मापक यंत्र)

६. हमने कौनसे तापमापक यंत्र द्वारा पानी का तापक्रम नापा था? (उत्तर: सेंटीग्रेड)

प्रस्तुतीकरण

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
तापमापक यंत्र	प्रश्न · (१) सूत रँगने के लिए पानी का तापक्रम कितना होना चाहिए ? (२) रगते समय हमने पानी का तापक्रम कितने अंश नापा था ? (३) तापमापक यंत्र मे कहाँ-से-कहाँ तक निशान लगे हैं ? (४) इसका शुरू का निशान कौनसा है ?	५०° से ६०° से० ५५° (सभावित) ० से १००° ०° (शून्य अंश)
	शिक्षक सेंटीग्रेड तापमापक यंत्र द्वारा बरफ मे घुण्डी डुबाने का प्रयोग करते हुए बालकों को पारे को शून्य अंश पर उतारने का ज्ञान देंगे तथा बताएंगे कि इस चिह्न को 'हिमाक' कहते हैं। फिर निम्न प्रश्न करेंगे—	
	(५) अब पारा किस चिह्न पर उतर आया है ? (६) इस चिह्न को 'हिमाक' क्यो कहते हैं ? (७) इस यंत्र मे अन्तिम चिह्न कौनसा है ?	०° १००°
	शिक्षक भाप मे तापमापक यंत्र का प्रयोग करके पारे को १००° पर पहुँचाकर दिखाएगा। इस चिह्न को 'क्वथनाक' कहते हैं।	१००°
	(८) अब पारा किस निशान पर पहुँच गया है ? (९) इस चिह्न पर पारा कब पहुँचता है ?	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	(१०) हमने पानी का तापक्रम किस प्रकार नापा था ?	पानी मे ताप-मापक यत्र की घुण्डी डुबाने से पारा ऊपर चढ़ने लगा था। पारा जिस चिह्न के सामने रुक गया उसे पढ लिया था।
फैरनहीट का चित्र दिखाकर	सेंटीग्रेड के समान ही यह एक दूसरा तापक्रम बतलाने वाला यत्र है। इसे 'फैरनहीट' कहते है। इसके तथा सेंटीग्रेड के नाप मे अन्तर है। फैरनहीट ताप-मापक यंत्र मे ०° से २१२° तक निशान लगे रहते हैं। इसमे हिमांक ३२° पर रहता है।	० से २१२° ३२° हिमाक
	जिस प्रकार हमने सेंटीग्रेड तापमापक यत्र का हिमाक चिह्न निकाला था, उसी प्रकार यदि इस तापमापक यंत्र की घुण्डी पिघलते बरफ मे रखें तो इसका पारा ३२° पर रुक जायगा। फैरनहीट तापमापक यत्र का क्वथनाक २१२° पर रहता है।	
	भाप मे इस यत्र की घुण्डी रखने पर इसका पारा २१२° पर पहुँचेगा।	२१२° क्वथनाक
	३२° से नीचे का तापक्रम बरफ मे नमक मिलाने से आता	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	है। इस विषय मे निम्न प्रश्न पूछे जायँगे— (१) फैरनहीट तापमापक यत्र की बनावट कैसी है ? (२) इस तापमापक यत्र का हिमाक किस अश पर रहता है ? (३) फैरनहीट तापमापक यत्र के २१२° के चिह्न को क्या कहते हैं ? (४) इस तापमापक यत्र मे कहाँ-से-कहाँ तक चिह्न लगे रहते हैं ?	

पुनरावलोकन

१. सेंटीग्रेड तापमापक यत्र मे कहाँ-से-कहाँ तक चिह्न लगे रहते हैं ?
२ सेंटीग्रेड तापमापक यत्र का क्थनाक किस अश पर रहता है ?
३ फैरनहीट तापमापक यत्र मे कहाँ-से-कहाँ तक निशान लगे रहते हैं ?
४ फैरनहीट तापमापक यत्र मे हिमाक से क्थनाक चिह्नो की दूरी कितने भागो मे वँटी है ?
५ फैरनहीट मे ३२° से नीचे तापक्रम कब होता है ?
६ से० तथा फै० तापमापक यत्रो के चिह्नो मे क्या अन्तर है ?

प्रयोग

अपनी कापी मे दोनो तापमापक यत्रो के चित्र बनाओ।

पाठ ४

कक्षा —३
वालकों की संख्या—२०
समय —५० मिनट
विषय —मूलोद्योग + भापा (रचना) एवं चित्रकला।
समवाय-केन्द्र —मूलोद्योग

सामान्य उद्देश्य

१. वालको का सर्वागीण विकास करना।
२. श्रम के प्रति सम्मान की भावना उत्पन्न करना।
३. कलात्मक प्रवृत्ति का विकास करना।

विशिष्ट उद्देश्य

१. कताई करने के लिए चरखा तैयार करना तथा प्रारम्भिक अवस्थानुसार कताई की क्रिया के लिए आवश्यक अंग-संचालन की शिक्षा देना।
२ चरखे के विभिन्न अग और उनके कार्य के शास्त्रीय ज्ञान के माध्यम द्वारा मौखिक रचना (वार्तालाप) शिक्षण।
३. वालको द्वारा चरखे के कुछ अंगो का चित्र-निर्माण।

पूर्व ज्ञान

वालक तकली द्वारा सूत कातना जानते हैं। तकली के विभिन्न अग और उनके कार्य का उन्हें ज्ञान है। सामान्य रूप से वे चरखे को केवल पहचानते हैं एव उसका कार्य जानते हैं।

योजना का प्रारूप

१. वालको द्वारा चरखा तैयार करने की प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त किया जाना।
२. कताई के समय होने वाले अंग-संचालन का प्रशिक्षण।

३. चरखे के मुख्य अग और उनके कार्य की जानकारी।

४ चरखे के अंग और उनके कार्य के आधार पर सम्भाषण का प्रशिक्षण।

५ अगो के चित्र-निर्माण द्वारा कलात्मक ज्ञान की प्राप्ति।

योजना का क्रमिक विकास

शिक्षक द्वारा बालको को चरखा चलाना सीखने की आवश्यकता अनुभव कराके समस्या पैदा करना। ममस्या के समाधान हेतु आवश्यक सामग्री पर विचार-विनिमय तथा उसकी व्यवस्था।

आवश्यक सामग्री

२१ चरखे, १ बडल पूनी, नीला कपडा १ टुकडा, चरखे के विभिन्न अग एव उनके कार्य-दर्शक चित्र एव चार्ट्स, लपेटा, श्यामपट।

शिक्षक द्वारा क्रिया का आदर्श एव बालको द्वारा अनुकरण। पूर्व क्रिया के आधार पर समवायित ज्ञान।

आज की समस्त गतिविधियो का मूल्याकन।

क्रियाशीलन

शिक्षक द्वारा चरखा चलाने की आवश्यकता अनुभव कराके बालको को अभीष्ट क्रिया की ओर जागरूक करना।

प्रश्न

१. तुम लोग अभी तक किस चीज से सूत कातते थे? (उत्तर: तकली से।)

२ तकली द्वारा सूत कातते समय किन-किन चीजो की जरूरत पडती है? (उत्तर: तकली, पूनी, दफ्ती, राख-डिब्बी)

३ तकली के सिवाय और किस चीज से सूत काता जाता है? (उत्तर. चरखे से।)

४ छठी कक्षा के लडके किस चीज से सूत कातते है? (उत्तर. चरखे से।)

५ तकली और चरखे मे से किससे अधिक सूत निकलता है? (उत्तर: चरखे से ।)

६. अधिक सूत निकालने के लिए तुम क्या करोगे? (उत्तर · चरखा चलाना सीखेंगे ।)

कथन

आज हम चरखे द्वारा कताई सीखेंगे ।

क्रिया का आदर्श-कथन

चरखा चलाने से पहले उसे तैयार करना पडता है। विभिन्न अंग बताकर शिक्षक द्वारा चरखा तैयार करने की प्रक्रिया (अमाल एव माल चढ़ाना, घिर्री को बीच मे रखना) का सटीक प्रदर्शन किया जायगा। चरखा तैयार हो जाने पर उसे चलाकर बालको को दिखाना।

अनुकरण

शिक्षक द्वारा प्रदर्शित क्रिया का अनुकरण। शिक्षक द्वारा दिये जाने वाले खडात्मक निर्देशन के आधार पर बालक शिक्षक के साथ-साथ चरखा सजाएँगे। क्रिया के साथ-साथ शिक्षक एक-एक करके चरखे के सब अगो का नाम, आकार आदि बताएँगे तथा बालक उन्ही अंगो को पहचान-पहचानकर शिक्षक के समान क्रिया करेंगे। शिक्षक द्वारा चरखे की जाँच की जायगी। तत्पश्चात् बालक कताई की क्रिया के अनुरूप अंग-सचालन करेंगे। इसके अंतर्गत पूनी पकड़ना, हाथ का धीरे-धीरे बाजू की ओर ले जाना, दूसरे हाथ से मूलचक्र घुमाना, पूरा हाथ खिच जाने पर मूलचक्र रोकना, पूनी वाला हाथ ऊपर उठाना, मूलचक्र को घुमाकर सूत लपेटना आदि क्रियाएं सम्मिलित रहेगी। आवश्यकतानुसार शिक्षक द्वारा पुन. प्रदर्शन एव बालको द्वारा क्रियाशीलन के अवसर पर निरीक्षण एव व्यक्तिगत सहयोग। पर्याप्त अभ्यास के पश्चात् कार्य की समाप्ति।

क्रियाशीलन का निष्कर्ष

प्रश्न—अभी हम क्या चला रहे थे? (चरखा)

अब हम चरखे के प्रत्येक अंग के कार्य पर बातचीत करेंगे।

प्रस्तुतीकरण

(चरखे के विभिन्न अंगो का अवलोकन तथा कार्य का परिचय)

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
चरखे का पटिया	प्रश्न (चरखे के पटिये को दिखाकर) · यह क्या है ? इस का आकार कैसा है ? इस पर कौन-कौनसी चीजें लगी हैं ?	(चित्र) यह चरखे का पटिया है। इसका आकार लम्बा और चपटा है। इस पर चरखे के सब अंग लगे रहते हैं।
मूल चक्र	प्रश्न (श्याम-पट पर चित्र बनाकर) · यह क्या है ? अपना मूल चक्र दिखाओ। इसका आकार कैसा है ?	(चित्र) यह मूल चक्र है। इसका आकार गोल है।
	(चरखा चलाकर) इसके चलाने से क्या होता है ?	इसके चलाने से चरखे के सब अंग चलते हैं।
	यदि इससे अमाल उतार ली जाय तो क्या हो ? (चरखा चलना बन्द हो जाय)	(चित्र)
गति-चक्र	प्रश्न (दिखाकर एवं श्याम-पट पर चित्र बनाकर) · यह क्या है ? यह मूल चक्र के मुकाबले में कैसा है ?	यह गति-चक्र है। यह मूल चक्र से छोटा है।
	(अमाल उतारकर गति-चक्र घुमाना और गति-चक्र के कार्य का निरीक्षण कराना)	गति-चक्र तकुए को तेजी से घुमाता है।
तकुआ	प्रश्न (तकुआ दिखाकर तथा श्यामपट पर चित्र बनाकर) : यह क्या है ? (सूत की कताई का प्रदर्शन करके) तकुआ क्या काम करता है ?	यह तकुआ है। तकुआ सूत को बट देता है और लपेटता है।

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
मोड़िया	प्रश्न (मोड़िया दिखाकर एव चित्र वनाकर)—यह क्या है ? (तकुए को फँसाकर) इसमे क्या फँसाया जाता है ? इसका क्या काम है ?	(चित्र) यह मोड़िया है। इसमे तकुआ फँसाया जाता है।
माल	प्रश्न (दिखलाकर) : यह क्या कहलाती है ? यह क्या करती है ? यह किस चीज़ मे फँसाई जाती है ?	माल तकुए को घुमाती है। यह गति-चक्र और तकुए मे फँसी रहती है।
अमाल	कथन-विधि . यह अमाल है। यह गति-चक्र को घुमाती है। अमाल मूल चक्र और गति-चक्र मे फंसी रहती है।	अमाल यह गति-चक्र को घुमाती है।
	प्रश्न : यदि अमाल टूट जाय तो क्या होगा ? यदि माल टूट जाय तो क्या होगा ?	"
नीला कपडा	शिक्षक द्वारा कथन-विधि से इसके उपयोग की जानकारी कराई जायगी। वालको द्वारा पारस्परिक वातचीत (खेल-विधि) कक्षा के वालक दो-दो की टोलियो मे विभाजित होकर खडे होंगे। एक वालक चरखे के अग-विशेप का प्रतिनिधित्व करेगा, दूसरा उसके नाम और काम के सम्वन्ध मे प्रश्न करेगा। शिक्षक के आदर्श के पश्चात् वालक यह क्रिया करेंगे।	नीला कपडा विछाने से सूत साफ दीखता है।

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	उदाहरण—मूलचक्र का प्रतिनिधि बालक पूछे जाने पर उत्तर देगा—मैं मूल चक्र हूँ। मेरा आकार गोल है। मैं गति-चक्र को चलाता हूँ। इसी भाँति दलगत प्रश्नो द्वारा प्रत्येक अग के प्रतिनिधि छात्र अग का नाम तथा कार्य का वर्णन पूर्ण तथा शुद्ध वाक्यो मे करेंगे। भाषा-सम्बन्धी त्रुटियो को अन्य बालको द्वारा शुद्ध कराया जायगा।	

पुनरावलोकन

प्रयोग १ खेल के रूप मे—शिक्षक द्वारा श्यामपट पर अग-विशेष का चित्र टाँगना तथा बालको द्वारा उससे सम्बन्धित कार्य की तख्ती का खोजना। इसके विपरीत कार्य-सम्बन्धी तख्ती के लिए सम्बन्धित अग के चित्र की तख्ती खोजना।

२ लपेट श्यामपट पर लिखित इन शब्दो को ठीक स्थान मे भरो—मोडिया, माल, मूलचक्र।

(१) ··· तकुए को घुमाती है।

(२) ··· गति-चक्र को चलाता है।

(३) तकुआ····· मे फँसाया जाता है।

बालको द्वारा कापी पर गति-चक्र, मूल चक्र तथा तकुए का चित्र बनवाना तथा शेष कार्य की घर से पूर्ति कर लाने का आदेश देना।

पाठ ५

कक्षा —७
वालको की संख्या —२०
वालको की औसत आयु—१३ वर्ष
समय —५० मिनट
विषय —समाज+समवायित ज्ञान (सतुलित आहार)
समवाय-केन्द्र —समाज

सामान्य उद्देश्य

१. वालको का सर्वागीण विकास करना।
२. वालको को लोकतत्र के सिद्धान्तो पर सामुदायिक जीवन का अभ्यास देना।
३. उन वृत्तियो को विकसित करना जो शुद्ध तथा स्वस्थ सामाजिक जीवन-यापन मे सहायक हो।
४. वालको मे सामुदायिक उत्तरदायित्व का भार वहन करने की क्षमता उत्पन्न करना।
५. सामाजिक जीवन मे समुचित व्यवहार, नियमितता, समयानुवर्तिता और सयम की भावना जागृत करना।
६ वालकों को सुनागरिक वनाना।

विशिष्ट उद्देश्य

१ अल्पाहार-आयोजन का व्यावहारिक ज्ञान देना तथा अल्पाहार कराना।
२ भोजन के प्रमुख तत्त्वो का ज्ञान देना।

पूर्व ज्ञान

वालक भोजन के उपयोग मे आने वाली वस्तुओ से सामान्यत. परिचित हैं। उन्होंने इस योजना की पहली इकाई अर्थात् दोने वनाने का काम सम्पन्न कर लिया है।

योजना का प्रारूप

आज योजना की दूसरी इकाई ली जायगी। इसमे सम्मिलित होने के लिए अतिथियो को भी आमन्त्रित किया जायगा। निमन्त्रण-पत्र लेकर दो विद्यार्थी अतिथियो के पास पहले से ही चले जायेंगे। जलपान की आवश्यक तैयारी के बाद सामूहिक अल्पाहार का कार्य होगा। समय के पूर्व शिक्षक सम्पूर्ण आवश्यक सामग्री जुटाकर अपने पास व्यवस्थित रूप से रख लेगा, घटी बजते ही कक्षा को व्यवस्थित रूप से दलो मे बिठाकर पिछले पाठ पर चर्चा करते हुए दोने बनाने के उद्देश्य पूछेगा। तत्पश्चात् उन्हे आवश्यक तैयारी कर आज ही अल्पाहार का अभ्यास करने के लिए उत्साहित करेगा। कक्षा सतुलित जलपान की तैयारी के लिए टोलियो मे दोने सजाने एव परसने का काम करेगी। शिक्षक द्वारा निरीक्षण के बाद त्रुटियो का सुधार करके अतिथियो के बैठने की भी समुचित व्यवस्था की जायगी। फिर शिक्षक श्यामपट पर निम्नलिखित भोजन-मन्त्र लिखेगा।

"ओ सहनाववतु, सहनौभुनक्तु, सहवीर्यम् करवावहै।
तेजस्विना वधीत अस्तु, मा विद्विपा वहै.।
ओ शाति शाति · शाति।"

इस मंत्र का उच्चारण करते हुए अल्पाहार का कार्य प्रारम्भ होगा। समाप्त होने पर विद्यार्थी अपने दोनो को निर्दिष्ट स्थान पर रखे पात्र मे डालेंगे तथा पानी पीकर पुन· अपना स्थान ग्रहण करेंगे। तत्पश्चात् शिक्षक आज की क्रिया की सावधानियो तथा सीखी हुई बातो पर प्रश्नोत्तर-प्रणाली से चर्चा करेगा और अल्पाहार मे समावेश की गई सामग्री तथा उसमे निहित भोजन-तत्त्वो का महत्त्व चार्ट की सहायता से बतलाएगा। सतुलित-असतुलित भोजन का अन्तर समझाकर सतुलित भोजन के महत्त्व का ज्ञान कराया जायगा।

आवश्यक सामग्री

अकुरित तले हुए चने, नीबू, गाजर, दूध, केला, नमक, रसगुल्ला, चाकू, पानी, गिलास, पानी का ड्रम, दोना तथा भोजन-तत्त्वो का चार्ट।

क्रिया की उत्प्रेरणा

१ कल तुमने कौनसा काम किया था ? (उत्तर · दोना वनाना)

२. दोने किसलिए वनाए थे ? (उत्तर : अल्पाहार के लिए)

३. दो वजे की छुट्टी मे तुम लोग क्या खाते हो ?

४. क्यो खाते हो ? (उत्तर भूख लग आती है।)

उद्देश्य-कथन

तो अब तुम्हे भूख लग आई होगी, इसलिए हम सब मिलकर जलपान करेंगे।

क्रिया का आदर्श

शिक्षक जलपान की सामग्री को एक दोने मे सवसे पहले चने तथा उसके ऊपर गाजर, नीवू का टुकड़ा तथा केला रखकर दोने सजाने की आदर्श क्रिया प्रस्तुत करेगा। एक अलग कटोरी में प्रत्येक वालक को व्यवस्थित ढग से दूध देने की आदर्श क्रिया भी प्रस्तुत की जायगी।

सामग्री-वितरण

टोली-नायक द्वारा दोनो मे सजाकर अल्पाहार तथा कटोरियो मे दूध प्रत्येक वालक को वितरित किया जायगा।

क्रियाशीलन

टोली-नायक दोने मे अल्पाहार सजाकर तथा कटोरी मे दूध वालको को परसेंगे। खाने के पूर्व मत्र होगा, तत्पश्चात् भोजन प्रारम्भ होगा। जलपान का कार्य लगभग १५ मिनट तक चलेगा। वालक जलपान कर अपने दोने उठाकर निश्चित स्थान पर डालेगे तथा कटोरियाँ भी निश्चित स्थान पर रखेंगे। इसके पश्चात् हाथ-मुंह धोकर एव पानी पीकर शातिपूर्वक स्थान ग्रहण करेंगे।

क्रियाशीलन का निष्कर्ष

शिक्षक प्रश्नोत्तर-विधि द्वारा वालको से आज की क्रिया पर चर्चा करेगा—

१. आज के हमारे भोजन मे कौन-कौनसी चीज़ें शामिल थी ?

२ फल कौन-कौनसे थे ?

३ खारी और चटपटी चीज़ कौनसी थी ?

४ मीठी चीज़ कौनसी थी ?

५ तुम्हे कौनसी चीज पसद आई ?

प्रस्तुतीकरण

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	प्रश्न . (१) भोजन मे इनके सिवाय और कौन-कौनसी चीज़े आती हैं ? (२) घर मे जब तुम अच्छा भोजन करते हो तो कौन-कौनसी चीज़ें परसी जाती हैं ? (रोटी, दाल, चावल सब्ज़ी, घी, खटाई, दूध, शक्कर, चटनी तथा फल) (३) इनमे से पेट भरने के लिए आवश्यक चीज़ें कौनसी हैं ? (चावल, रोटी) (४) इन्हे किन चीजो के साथ मिलाकर खाते हैं ? (दाल, तरकारी) (५) चटनी और अचार क्यो खाते है ? (६) दूध के साथ क्या खाते है ? (७) दूध क्यो पीते हैं ? (ताकत के लिए) (८) भोजन के बाद फल क्यो खाते हैं ?	
	कथन इस प्रकार हमने देखा कि हमारे भोजन मे जो चीजे शामिल रहती है उनमे से कुछ पेट भरने के लिए और कुछ चिकनाई के लिए हैं। इन चीजो मे कुछ-न-कुछ भोजन के ऐसे	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य		
		पदार्थ	प्राप्ति के साधन	उपयोगिता
	तत्त्व रहते हैं जो शरीर को पुष्ट बनाने के लिए जरूरी हैं। उदाहरणार्थ—पेट भरने के लिए रोटी, चावल खाना। इनको कार्बोज पदार्थ कहते हैं।			
कार्बोज पदार्थ	प्रश्न : (१) अपने आज के आयोजन मे कार्बोज पदार्थ किन-किन चीजो में थे ? कथन : इन पदार्थों से शक्ति और गरमी मिलती है। (२) इसी प्रकार के अन्य कार्बोज पदार्थ कौनसे हो सकते हैं ?	कार्बोज पदार्थ	चावल, गेहूँ, ज्वार, वाजरा, चुकन्दर, आलू शक्कर, शहद आदि।	उष्णता तथा शक्ति-वर्धक
स्निग्ध पदार्थ	(१) अल्पाहार मे चिकने पदार्थ कौनसे थे ? (२) और कौन-कौनसे चिकने पदार्थ होते हैं ? (३) हम घी-दूध क्यो खाते हैं ? कथन : इनसे ज्यादा ताकत आती है। कार्बोज पदार्थों से चिकने पदार्थों मे दुगनी ताकत रहती है। इसलिए ये शरीर को पुष्ट बनाने के लिए बहुत जरूरी हैं।	स्निग्ध पदार्थ	घी, मक्खन, मलाई, तेल, मूंगफली आदि	उष्णता और शक्ति के लिए तथा त्वचा मे चिकनाई लाने के लिए आवश्यक।
नाइट्रोजन-युक्त पदार्थ	प्रश्न : भोजन में दाल और सब्जी क्यो खाते हैं ? कथन : स्वाद के लिए, क्योंकि इनमे नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ होते हैं। इनसे स्वाद आता है। ये शरीर को पुष्ट करते है, ताजा बनाते हैं एव			

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	शरीर की टूट-फूट पूरी करते हैं। इसे उदाहरण देकर समझाया जायगा। (२) दालो और सब्जियो के नाम गिनाओ। कथन इनके सिवाय दूध, अण्डा, माँस, मछली आदि मे भी नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ या प्रोटीन होते है।	
क्षार पदार्थ या लवण	प्रश्न : (१) तले चनो का स्वाद कैसा था ? (२) हम कौन-कौनसी चीजो मे नमक खाते हैं ? (३) खारे स्वाद वाली कौन-कौनसी वस्तुएँ होती हैं ? कथन · नमक शरीर मे खून साफ करने के लिए, अवयव-वृद्धि, शरीर की आरोग्यता, हड्डी तथा दाँतो के लिए उपयोगी है।	
जीवन-सत्त्व	प्रश्न (१) कई बालकों को बढिया भोजन मिलने पर भी उनका स्वास्थ्य अच्छा न रहने का क्या कारण है ? (२) रोगो को रोकने वाले तत्त्व को क्या कहते हैं ? (रोग-रोधक या जीवन-सत्त्व) (३) डॉक्टर लोग फल खाने के लिए क्यो कहते हैं ? (४) जीवन-सत्त्व किन-किन पदार्थों मे पाया जाता है ?	
जल	प्रश्न (१) तुमने जलपान के बाद क्या पिया था ? (२)	

पदार्थ	प्राप्ति के साधन	उपयोगिता
नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ	दूध, अण्डा, माँस, मछली, हरी सब्जी, तथा सब प्रकार की दाले।	शरीर को पुष्ट एवं ताजा बनाते हैं तथा छीजन की पूर्ति करते हैं।
लवण	साक, भाजी, फल, अण्डा, दूध, छाछ, नमक इत्यादि	शरीर की आरोग्यता, अवयव-वृद्धि, रक्त-शुद्धि, छीजन-पूर्ति, हड्डी तथा दाँतों के लिए आवश्यक।

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य		
	प्यास क्यो लगती है ? (३) पानी से हमारे शरीर को क्या लाभ है ? (४) पेय पदार्थ और कौन-कौनसे हैं ?	पदार्थ	प्राप्ति के साधन	उपयोगिता
	कथन : आज हमने जितने तत्त्वो की वात की वे सब शरीर को पुष्ट करने के लिए ज़रूरी है। इनमे से किसी एक या दो की कमी हो जाने पर शरीर ठीक तरह से नही वढता, जैसे गरीब लोग सिर्फ दाल-रोटी खाकर रह जाते हैं। इसलिए उनके शरीर का विकास ठीक नही होता, क्योंकि उनको भोजन के सब तत्त्व प्राप्त नही होते। पर जिन्हे ये सब तत्त्व मिलते है उनका भोजन संतुलित माना जाता है। चार्ट दिखाकर इसे और स्पष्ट किया जायगा।	जीवन-सत्व	दूध, मक्खन, अण्डा, मछली का तेल, शाक-भाजी, रसदार फल, अंकुर वाले अनाज।	शरीर की आरोग्यता तथा बढ़ने के लिए आवश्यक।

पुनरावलोकन

१. भोजन मे कौन-कौनसे तत्त्व होते है ?

२. चिकने पदार्थों से शरीर को क्या लाभ होता है ?

३. क्षार पदार्थ शरीर में क्या काम करते हैं ?

४. संतुलित भोजन किसे कहते हैं ?

५. संतुलित भोजन न करने से कौनसी हानि होगी ?

प्रयोग

वस्तु वताकर तत्त्व पूछना और तत्त्व का नाम लेकर वस्तु निकलवाना।

पाठ ६

कक्षा —८
बालकों की संख्या—१६
औसत आयु —१४ वर्ष
समय —५० मिनट
समवाय-केन्द्र —मूलोद्योग
समवायित विषय —भौतिक विज्ञान
योजना —अच्छे सूत की कताई हेतु
आज की इकाई —रुई की धुनाई करना
प्रकरण —ध्वनि की उत्पत्ति, प्रसरण एव श्रवण

सामान्य उद्देश्य

१ बालको का सर्वांगीण विकास करना।
२ बालको को जीवनोपयोगी कार्य करने के लिए उत्साहित करना।
३ बालको मे प्रत्येक कार्य की विभिन्न प्रक्रियाओ के वैज्ञानिक ढग (क्यो और कैसे) को समझने की वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास करना।
४ बालको मे मूलोद्योग की प्रक्रिया से सम्बन्धित सामान्य विज्ञान के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करना।

विशिष्ट उद्देश्य

अच्छी धुनाई और साधारण धुनाई के अन्तर मे कार्य-कारण चर्चा-सहित करते हुए धुनाई की क्रिया कराना।

धुनाई की क्रिया मे होने वाले तांत के कम्पन एव अच्छी तथा बुरी धुनाई की तुलना अच्छी व साधारण ध्वनि से करते हुए ध्वनि-सम्बन्धी सामान्य ज्ञान देना।

पूर्व-ज्ञान

बालको को बाल-धुनकी से धुनाई करने का अभ्यास है।

बालकों को यह ज्ञात है कि गोटीले द्वारा चोट देकर कम्पन के कारण ही बुनाई की क्रिया होती है।

बालकों को यह अनुभव है कि ध्वनि द्वारा अच्छी और साधारण बुनाई की पहचान की जा सकती है।

योजना का प्रारूप

१. क्रिया का स्पष्टीकरण। अच्छी कताई के उपयुक्त पूनी एवं अच्छी धुनी हुई रुई के महत्त्व की चर्चा करते हुए धुनाई की क्रिया करेंगे। बालकों से धुनाई की क्रिया बाल-धुनकी द्वारा कराएँगे। बुनाई के लिए कुल चालीस तोले रुई ली जायगी। शिक्षक प्रश्नोत्तर-विधि से धुनाई का आदर्श देंगे। सामग्री-वितरण के बाद बालक स्वयं धुनाई करेंगे।

क्रिया-सम्बन्धी निम्न सामग्री का आयोजन पहले ही कर लेंगे।

२ आवश्यक सामग्री। (क) बीस धुनकियों के लटकाने का पूरा प्रबन्ध, स्थान एवं मंडप की सामग्री तथा रस्सियाँ। (ख) रुई चालीस तोला। (ग) चालीस बाल-धुनकियाँ, पटे, गोटीले, रूमाल, चटाइयाँ। (घ) सीताफल की पत्तियाँ, कागज़ के टुकड़े। (ङ) धुनी हुई रुई। (च) (पोल) रखने के लिए पेटी।

योजना का क्रमिक विकास

१ पूर्व तैयारी। शिक्षक बाल-धुनकियों को लटकाने की पूर्ण व्यवस्था, स्थान, मंडप तैयार करने और कमान लटकाने का प्रबन्ध दो-तीन दिन पूर्व कर लेंगे। एक दिन पूर्व बीस धुनकियों पर कार्य कराने के लिए उपरोक्त सभी आवश्यक सामग्री एकत्रित करके रख लेंगे।

२ कक्षा का प्रबन्ध। कक्षा की कार्य करने की व्यवस्था दो स्थानों में होगी। इस हेतु कक्षा को तीन टोलियों मे विभक्त किया जायगा।

दो टोलियाँ प्रांगण में मंडप के नीचे तथा तीसरी टोली बरामदे मे बैठेगी।

प्रत्येक टोली का एक नायक होगा, वही सामग्री का वितरण एव एकत्रीकरण कराएगा। शिक्षक वरामदे मे ऐसे स्थान पर सामग्री एव अपने कार्य की व्यवस्था रखेंगे, जिससे सभी विद्यार्थी सरलता से देख सकें, तथा उनका निरीक्षण किया जा सके और सामग्री का वितरण व एकत्रीकरण सरलता से हो सके।

विभिन्न प्रक्रियाएं तथा उनकी समाप्ति

कक्षा के वालको के एकत्रित होते ही शिक्षक उन्हे धुनाई की क्रिया करने के लिए उत्प्रेरित करे। क्रिया का आदर्श प्रस्तुत करने के उपरात कक्षा को तीन टोलियो मे विभक्त करके उन्हे निर्देशित स्थान पर बैठने का आदेश देकर टोली-नायको द्वारा सामग्री का वितरण कराए।

सामग्री-वितरण के उपरात वालक अपनी-अपनी धुनकियो को रस्सियो से लटकाकर रुई को धुनकी के सामने रख लेंगे, तांत पर गोटीले से चोट देकर वालक कम्पन पैदा करेंगे और रुई के रेशो को फैलाएंगे।

वालक क्रिया के आदर्श का अनुकरण करते हुए अच्छी धुनाई करने की क्रिया का स्पष्ट अनुभव करते जायेंगे।

धुनाई की क्रिया मे तांत का कम्पन देने से रुई के रेशे फैलाने तक की क्रिया के कार्य-कारण का ध्वनि की उत्पत्ति से सम्वन्ध दरशाते हुए ध्वनि-सम्वन्धी ज्ञान का परिचय देना।

समवायित ज्ञान के लिए निम्नलिखित उपकरणों का उपयोग किया जायगा—

१ वाल-धुनकी, धनुप-धुनकी।
२ एकतारा।
३ दो पत्थर, एक घटा।
४ तार के कम्पन का चित्र।
५ कांच का हौज, पानी और पत्थर।
६ छोटे-छोटे गेंद।

७. हवा के कम्पन का चित्र।

८ कान पर पडती हुई लहरो का चित्र।

९. शख, ग्रामोफोन रिकार्ड, सीटी आदि।

क्रियाशीलन : उत्प्रेरण

एक वाल-धुनकी तथा दूसरी धनुष-धुनकी की पोल द्वारा तैयार पूनियों को दिखाते हुए शिक्षक वालको से निम्न प्रश्न पूछेंगे—

१. शीघ्रता से और अच्छे सूत की कताई के लिए इनमे से कौनसी पूनी अच्छी है ? (उत्तर · दाहिने हाथ वाली।)

२. इस दूसरी पूनी में क्या खरावी है ? (उत्तर . इसमे फुटकियाँ पडी हैं।)

३ यह पूनी किस पोल से वनाई गई है ? (उत्तर . अच्छी पोल से।)

४. यह पोल किस पूनी से प्राप्त किया गया है ? (उत्तर · वाल-धुनकी से।)

५. अच्छे और शीघ्र सूत की कताई के लिए रुई की धुनाई किस धुनकी से करेंगे ? (उत्तर · वाल-धुनकी से।)

उद्देश्य-कथन

आज हम वाल-धुनकी से धुनाई करेंगे।

क्रिया का आदर्श

वालको को वाल-धुनकी से धुनाई करने का साधारण अभ्यास है। अत. शिक्षक क्रिया का आदर्श देते समय विभिन्न क्रियाओ की सावधानियो आदि पर प्रश्न करते जायेंगे।

प्रश्नोत्तर

१. रुई को ताँत पर चिपकने से वचाने के लिए क्या करेंगे ? (उत्तर : सीताफल की पत्ती।)

२ वाल-धुनकी तथा गोटीले को किस हाथ मे रखना चाहिए ? (उत्तर : क्रमश वाएँ-दाएँ।)

३ रुई को कहाँ रखना चाहिए ? (उत्तर गोटीले से ४"–५" दूर और माथे के बीच।)

४. रुई को कैसे रखना चाहिए ? (उत्तर · गोटीले की तरफ ज्यादा, माथे की तरफ कम।)

५ चोट देते समय तांत को रुई से कितने अंश का कोण बनाते रखना चाहिए ? (उत्तर · १५° और २१३° का।)

६ गोटीले से तांत पर चोट देने मे क्या सावधानियाँ रखनी चाहिएँ ? (उत्तर . तांत को खीचते हुए ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर नहीं मारना चाहिए।)

७. तांत पर चोट किस प्रकार देनी चाहिए ? (उत्तर . चटाई के समानातर।)

८ तांत पर चोट का क्या असर पडता है ? (उत्तर तांत खिचती है और कम्पन होता है।)

९. तांत पर कम्पन देने से रुई पर क्या असर पडता है ? (उत्तर · रुई की गांठे फूटती हैं। ऐसी रुई बारीक धुनी जाती है और अन्त मे एक-एक रेशा धुनकर फैलता है।)

१०. तांत पर चोट ठीक से पड रही है इसके क्या लक्षण है ? (उत्तर · रेशे फैले हुए, आवाज अच्छी।)

११. अच्छी धुनी हुई रुई के क्या लक्षण है ? (उत्तर . आयतन अधिक, रेशे फैले।)

१२ तांत पर चिपकी हुई रुई के रेशे किन तरह निकालने चाहिएँ ? (उत्तर गोटीले से चोट देकर, पहली-दूसरी उँगली की कैची से।)

सामग्री का वितरण

क्रिया का आदर्श देने के बाद क्रियान्विति-हेतु कक्षा को निर्देश देकर बालको को अपने-अपने स्थान पर बैठने के लिए कहेंगे।

कक्षा को तीन टोलियो मे विभक्त करके प्रत्येक टोली के नायक द्वारा

सामग्री का वितरण करेंगे। प्रत्येक वालक को दो-तीन तोले रुई बाँटी जायगी तथा क्रिया आरम्भ करने का आदेश देंगे।

कक्षा द्वारा क्रियान्विति

सामग्री वितरण के पश्चात् वालक अपनी-अपनी वाल-धुनकी द्वारा धुनाई की क्रिया करेंगे। धुनाई करते समय क्रिया के आदर्श में दिये गए सकेतो एवं निर्देशो पर वालक उचित ध्यान देंगे।

निरीक्षण एवं त्रुटि-संशोधन

अच्छी धुनाई की क्रिया-सम्बन्धी उपर्युक्त निर्देशो को वालक किस तरह अपना रहे हैं, यह देखने के लिए शिक्षक व्यक्तिगत रूप से सभी वालको की क्रिया मे आने वाली कठिनाइयो का निराकरण करेंगे।

क्रिया की समाप्ति

धुनाई की क्रिया आरम्भ होने के पन्द्रह मिनट वाद कार्य समाप्त करने का आदेश दिया जायगा। टोली-नायको से वाल-धुनकी एव गोटीले एकत्रित कराके, धुनी तथा विना धुनी रुई को अलग-अलग रखवा लेंगे। ताँत को ढीली करके धुनकी हत्थे मे लपेट लेंगे तथा उस पर कपड़ा लपेटकर उन्हे एकत्रित कर लेंगे। सव वालकों से अपनी-अपनी चटाई के आस-पास कचरा एकत्रित कराके एक तरफ रखवा लेंगे। समय के अभाव के कारण, धुनी हुई रुई की पूनी वनाने तथा मडप मे धुनकियाँ लटकाने और साज-सामान निकालने का कार्य काल-खड के वाद अलग से किया जायगा।

क्रियाशीलन का निष्कर्ष

एकत्रित की हुई रुई को तोलकर यह देखा जायगा कि कुल कितनी रुई धुनी गई।

प्रश्नोत्तर

१. कुल कितनी रुई ली थी ? कितनी धुनी गई ?

२. इतनी शीघ्र धुनाई क्यो और कैसे हो सकी ?

३. वाल-धुनकी से क्या लाभ है ? (शीघ्रता और अच्छाई)

४. अच्छी धुनाई के लिए ताँत कैसी होनी चाहिए ?

५. गोटीले से ठीक प्रकार से चोट देने से रुई पर क्या प्रभाव पड़ता है ? (रेशे अच्छी तरह फैलते हैं।)
६. गोटीले की चोट ठीक तरह से पड रही है, इसकी क्या पहचान है ? (चोट द्वारा होने वाले ध्वनि।)
७ धुनाई के समय होने वाली ध्वनि ही धुनाई की पहचान क्यो है ?

प्रस्तुतीकरण

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
ध्वनि की उत्पत्ति	प्रश्नोत्तर-प्रणाली (१) धुनाई करते समय कौन-कौनसी विशेप क्रिया करने पर ध्वनि होती है ? (२) गोटीले द्वारा चोट देने का तांत पर क्या असर पडता है ? (कम्पन) प्रत्यक्ष प्रयोग करके (३) एकतारे से ध्वनि कब निकलती है ? (उँगली की चोट देने पर) (४) उँगली की चोट से एक तारे पर क्या प्रभाव पडता है ? (कम्पन) तुलनात्मक प्रयोग (५) बिना काकर पट्टी या आत्मा की धुनकी से कैसी आवाज निकलती है ? (भद्दी) (६) इन तरह की भद्दी आवाज का क्या कारण है ? (तांत कम कसी है।) (७) तांत ढीली होने पर ध्वनि पर असर क्यो पडता है ? (समाधानकारक न होने पर)	बान-धुनकी (चित्र) कब, क्या, कैसे गोटीले से चोट।

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	प्रयोग करते हुए : (८) इस कमान-धुनकी पर उंगली की चिमटी से चोट देने पर ध्वनि कैसी होती है? (मंद और भद्दी) (९) ध्वनि मद क्यो	
प्रयोगो का निष्कर्ष	होती है ? (तांत ढीली)(१०) इन चारो प्रयोगो मे ध्वनि कब हुई ? (उंगली या गोटीले से चोट देने पर।) (११) तांत या तार पर चोट का क्या असर पडा ? (कम्पन) (१२) कम या अधिक ध्वनि का क्या	
दृढीकरण	कारण है ? (कम-अधिक कम्पन)	
ध्वनि का प्रसरण	'ट्यूनिंग फोर्क' का प्रयोग करके, कथन : यहाँ पर बैठे हम कह सकते हैं कि रेवाप्रसाद की धुनाई अच्छी और रामप्रसाद की धुनाई अच्छी नही है। प्रश्न : (१) यहाँ पर बैठे-बैठे हम धुनाई की क्रिया मे अन्तर कैसे पहचान लेते हैं ? (ध्वनि से) (२) इस प्रकार तांत और उसके कम्पन द्वारा हुई ध्वनि हमारे पास तक कैसे आती है ? (३) तांत और हमारे बीच मे क्या है ? (हवा और रुई) (४) तांत के कम्पन का रुई पर क्या प्रभाव पडता है ? (रेशे फैलते हैं।) (५) चोट देने पर फैले रेशे कहाँ जाते हैं ?	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	(दूर छिटक जाते है।) (६) यदि तांत के आस-पास रुई की अपेक्षा हवा हो और गोटीले से चोट दी जाय तो तांत के कम्पन का हवा पर क्या प्रभाव पडता है ? (हवा मे कम्पन होगा।) (७) हवा का कम्पन हमारे पास तक कैसे आता है ? (८) यह कम्पन किस प्रकार आगे बढता है ?	
	समाधानकारक उत्तर न आने पर कथन ·	
	तुम सबने तालाब मे पत्थर डालकर सतह पर कुछ परि-वर्तन होते देखा है।	तालाब मे लहरे
	(९) यह परिवर्तन क्या है ? (लहरें)	
	प्रयोग करते हुए . (१०) इस हौज मे पत्थर डालने पर क्या परिवर्तन देखा ? (लहरें) (११) ये लहरें एक स्थान से दूसरे स्थान तक कम्पन कैसे पहुँचाती हैं ? (एक लहर दूसरे को धक्का देते हुए।)	पानी मे लहरे
	प्रयोग करते हुए (१२) इस छोर मे गोली की चोट देने पर दूसरे छोर तक प्रभाव कैसे पहुँच सकता है ? (एक गेंद दूसरे गेंद को धक्का देते हुए अत तक कम्पन पहुँचाता है।) (१३) तांत पर गोटीले से चोट देने	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	पर हवा पर क्या प्रभाव होगा ? (कम्पन) (१४) यह कम्पन हमारे पास तक कैसे आता है ? (एक लहर दूसरे को धक्का देते हुए।) (१५) हमे ध्वनि की समवेदना कैसे मिलती है ? (उत्तर न आने पर) (१६) सुनने की अनुभूति प्राप्त करने के लिए लहरों को कहाँ तक पहुँचना चाहिए ? (कान तक)	
कान का चित्र दिखाकर	कान मे पहुँचकर ये लहरें किस भाग पर प्रभाव डालती हैं ? (कान के परदे पर) कथन : कान के परदों पर पडने वाला यह कम्पन नसो द्वारा मस्तिष्क मे पहुँचकर शब्द का रूप ग्रहण कर लेता है।	

पुनरावलोकन

१. किसी भी पदार्थ से ध्वनि कब होती है ? (उत्तर : चोट देने पर)

२. ध्वनि कैसे होती है ? (उत्तर : कम्पन से)

३. ध्वनि एक स्थान से दूसरे स्थान तक किस माध्यम द्वारा आती है ? (उत्तर : हवा से)

४. वह किस रूप मे आती है ?

५ ध्वनि की समवेदना किस प्रकार प्रात होती है। (उत्तर : कान के परदे पर नसो के द्वारा; मस्तिष्क पर।)

प्रयोग : प्रश्नोत्तर-प्रणाली

१. ध्वनि और बुनाई मे क्या-क्या समानता है ?

२ दोनो कब होती हैं। (उत्तर चोट देने पर)

३ गोटीले की चोट का दोनो पर क्या प्रभाव पडता है ? (उत्तर : कम्पन)

४. तांत के ज्यादा कसने पर धुनाई तथा ध्वनि दोनो पर क्या प्रभाव पडता है ? (उत्तर . दोनो अच्छी तरह होती हैं।)

५ तांत के लचीलेपन का क्या प्रभाव पडता है ? (उत्तर रुई के रेशे समानान्तर फैलते हैं, हवा के कण आगे-पीछे जाते हैं।)

६. गोटीले की उचित चोट का दोनो पर क्या प्रभाव पडता है ? (उत्तर दोनो अच्छी तरह होती हैं।)

७ अच्छी धुनाई की पहचान क्या है ? (उत्तर : ध्वनि)

८ हम ध्वनि किस तरह करते हैं ? (उत्तर · मुंह के अगो द्वारा हवा मे लहरें पैदा करके।)

९. सीटी या शख से इतनी ऊँची ध्वनि क्यो होती है ?

अभ्यास व गृह-कार्य

१. ध्वनि कब और कैसे होती है तथा किस माध्यम से और कैसे फैलती है ? हम किस तरह सुनते हैं ? आदि पर एक छोटा-सा निवन्ध लिखिए।

२. ग्रामोफोन की रचना देखकर उससे ध्वनि होने का कारण बताइए। (बालको को ग्रामोफोन का रिकार्ड एव उनका साउण्ड बाक्स दिखाकर)

बुनियादी शाला मे अवसर एव उसके अनुकूल क्षण का महत्त्व है जिससे विषय का समवायित ज्ञान दिया जा सके। इसलिए ध्वनि के निम्नांकित घटना-क्रम को स्पष्ट करने का अवसर प्राप्त करते ही उन्हें समझने का प्रयत्न करेंगे। (उदाहरण—यदि किसी की तांत टूट गई और उसे जोड़कर बांधना पडे तो (स्थिति-स्थापकत्व) लचीलापन का धुनाई और ध्वनि दोनो पर प्रभाव समझा देंगे।

ध्वनि की मूल घटना निम्न है—

१. वह चोट से प्रारम्भ होती है।

२. वह चोट ज्यादा स्थिति-स्थापकत्व वाले पदार्थ मे तीव्र कम्पन पैदा करती है।

३. यह कम्पन हवा मे लहरें पैदा करता है।

४. हवा ये लहरें कान तक पहुँचाती है।

५. कान के कुछ अगो मे इन लहरो से कम्पन पैदा होता है।

६. कम्पन की समवेदना मस्तिष्क मे पहुँचकर शब्दो मे वदल जाती है।

पाठ ७

कक्षा —७

विषय —मूलोद्योग+गणित

समवाय-केन्द्र —मूलोद्योग

सामान्य उद्देश्य

वालको का सर्वांगीण विकास करना।

विशिष्ट उद्देश्य

१. नियमपूर्वक कार्य करने का अभ्यास देना।

२. अच्छी कताई का अभ्यास देना।

३. वालको की विचार-शक्ति एव तर्क-शक्ति का विकास करना।

४. कताई की सहायता से 'फलित गति' का ज्ञान देना तथा फलित गति सूत्र का उपयोग करना।

पूर्व-ज्ञान

वालक अंक निकालना जानते हैं। वालक वर्गमूल निकालना जानते है। वालक अनुपात निकालना जानते है।

योजना का प्रारूप

वालकों के सामने अच्छे और खराब सूत प्रस्तुत करके उन्हें अच्छे सूत कातने की प्रेरणा देना। अच्छे सूत कातने के लिए और गति बढाने के लिए आवश्यक वातों पर चर्चा करना। अच्छी कताई के साधनों पर भी चर्चा करना। आदर्श कताई का प्रदर्शन करना। इसके पश्चात् वालकों को सावधानी और सतर्कतापूर्वक १५ मिनट तक कातने को कहना। १५ मिनट की कताई पर चर्चा करना और फलित गति का ज्ञान देना।

क्रियाशीलन

समान और असमान सूत वताकर वालकों से प्रश्न करना—

१ इन दोनों प्रकार के सूतों में क्या अन्तर है? (उत्तर: एक समान और दूसरा असमान है। एक मजबूत और दूसरा कमजोर।)

२ हमें इन दोनों प्रकार के सूतों में से किस प्रकार का सूत कातना चाहिए? (उत्तर: हमें समान और मजबूत सूत कातना चाहिए।)

३. हमें समान और मजवूत सूत कातने के लिए क्या करना चाहिए? (उत्तर: हमें प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए। हमें अच्छी पूनी का प्रयोग करना चाहिए। हमारे चरखे में किसी प्रकार की गड-वडी नहीं होनी चाहिए।)

कथन

आज हम तुम्हें अच्छी पूनियाँ और अच्छे चरखे दे रहे हैं। तुम्हें समान और मजवूत सूत कातना है।

पूनियों का वितरण तथा कातने का निर्देश देना। सनगीत कताई प्रारम्भ होगी। वालकों के कार्य करते समय शिक्षक द्वारा पर्यवेक्षण तथा व्यक्तिगत त्रुटियों का निराकरण किया जायगा।

वालक १५ मिनट तक कताई करेंगे। इसके पश्चात् वालकों को अपनी-अपनी अटेरन पर सूत लपेटने को कहना तथा तारों की संख्या अपनी-अपनी लेखा-वही पर लिखने को कहना।

प्रस्तुतीकरण

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	पाठक कक्षा द्वारा काते हुए सूतो के सम्बन्ध मे वालको से पूछेंगे तथा किन्ही दो वालको से तारो की एक-सी सख्या लेकर श्यामपट पर लिखेंगे।	
	प्रश्न : (१) इन दोनो मे से किसकी कताई अच्छी है, कैसे मालूम करोगे? (अक जानकर) (२) अंक निकालकर कैसे मालूम करोगे कि किसकी कताई अच्छी है? (अधिक अक तो काम अधिक अच्छा, अक कम तो काम कम अच्छा) (३) केवल एक ही वार मे तोलकर कैसे पता लगाओगे? (जिसका वज़न कम उसका अंक अधिक और वज़न अधिक तो अंक कम)	केदार ने ४० तार काते। नारायण ने भी ४० तार काते।
	अव शिक्षक दोनो के तारो को अलग-अलग पलड़ो पर रखेंगे और तोलकर वालको द्वारा निष्कर्ष निकलवाएंगे।	
	अव शिक्षक दो प्रकार के सूत क्रम से ६० और ५० तार लेंगे। इनका अक पहले से ज्ञात होगा। अंक क्रम से ६ और १६ होगा।	
	कथन एवं प्रश्न · दो विद्यार्थियो ने एक ही समय मे क्रम से ६० और ५० तार निकाले।	६० तार ५० तार ६ अक १६ अक

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	पहले का ग्रक ९ ग्रौर दूसरे का ग्रंक १६ है। दोनो मे किसका काम ग्रच्छा है ? यह समस्या वालको के समक्ष रखी जायगी। प्रत्यक्ष कार्य द्वारा दो वालको के कार्य की तुलना हीरालाल चरखा चलाना ग्रच्छी तरह नही जानता, वह मूलचक्र को धीरे-धीरे घुमाता है। (१) उसका निकाला हुग्रा सूत मोटा होगा या महीन ? (मोटा) (२) उसके द्वारा निकाले हुए सूत के ग्रक के विपय मे तुम क्या कह सकते हो ? (ग्रक कम होगा।) (३) उसकी गति के विपय मे तुम क्या कह सकते हो ? (गति कम होगी।) गणेशप्रसाद चरखे से सूत कातने मे होशियार है। उपरोक्त तीनो प्रश्न इसके सम्बन्ध मे भी किये जायेंगे। ग्रव पाठक पूनी मे से थोडे रेशे लेकर उनमे वट देकर वालको को दिखाएँगे। जव पूनी के रेशो की लम्वाई कम होती है तव कम वट देने पडते है ग्रौर इस तरह धागा मोटा होता है। (१) मोटे धागे का ग्रक कैसा होगा ? (कम) ग्रव निलक रेशो को खीचेंगे ग्रौर ग्रधिक वट	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	देंगे। अब सूत पतला होगा। (२) अब सूत तुम्हे महीन दिखाई देता है या मोटा? (महीन) (३) पहले की अपेक्षा इसमे कम वट देने पड़े या अधिक? (अधिक) (४) पहले की अपेक्षा इसका अंक कैसा होगा? (अधिक) अब शिक्षक एक मोटी रस्सी और दूसरी पतली रस्सी की समान लम्बाई लेकर बालको को इस बात का ज्ञान देंगे कि मोटे सूत मे कम वट और पतले सूत मे अधिक वट होता है। पतली रस्सी और मोटी रस्सी दिखाकर: (१) इन दोनो मे से किसका अक अधिक होगा? (पतली रस्सी का) (२) इन दोनो मे किसमे अधिक वट होगा? (पतली रस्सी मे) (३) अक की सख्या और वट की संख्या मे क्या सम्बन्ध है? (अंक कम तो वट अधिक और अंक अधिक तो वट कम) अब बालको के समक्ष 'अक और वट' का चित्र प्रस्तुत किया जायगा और बालकों को अक और वट की संख्या के बीच जो सम्बन्ध है, उसका ज्ञान दिया जायगा। (क) अक १·· वट ४ } चित्र अंक ४ ··वट ८ }	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य

(ख) अक ९ वट १२ }
अक १६ वट १६ } चित्र

इसके पश्चात् अक और वट का सख्या-सूचक चित्र बालको के सम्मुख प्रस्तुत किया जायगा।

एक इच धागे मे	अक		वट
यदि	१	....	४
,, ,, ,,	४	.. .	८
,, ,, ,,	९	. .. .	१२
,, ,, ,,	१६	.	१६
,, ,, ,,	२५	. . .. .	२०
,, ,, ,,	३६	. .	२४

अक		वट
यदि		
४ गु०	बढा	२ गु०
९ ,,	,,	३ ,,
१६ ,,	,,	४ ,,
२५ ,,	,,	५ ,,
३६ ,,	,,	६ ,,
४९ ,,	,,	७ ,,
६४ ,,	,,	८ ,,
८१ ,,	,,	९ ,,
१०० ,,	,,	१० ,,

अब बालको से प्रश्न पूछे जायेंगे—

(१) पहले की अपेक्षा दूसरे मे अक कितना गुना अधिक है? (चार गुना) (२) परन्तु पहले की अपेक्षा दूसरे मे वट कितना गुना बढा? (दो गुना)

इसी तरह पहले तीसरे, पहले चौथे, पहले पाँचवे से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जायेंगे और बालको के उत्तर श्यामपट पर लिखे जायेंगे।

प्रश्न श्यामपट देखकर बताओ कि अक के बढने तथा वट के बढने मे क्या सम्बन्ध है? (अक वर्ग मे और वट वर्ग-मूल मे बढता है।)

अक
वर्ग मे बढता है।
वट
वर्गमूल मे

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	उत्तर न मिलने पर। जव अक ९ गुना तो वट ३ गुना वढता है। (क) ९ को ३ का क्या कहोगे? (वर्ग) (ख) ३, ९ का क्या है? (वर्गमूल)	
	(१) श्याम-पट देखकर अक और वट के वढने का कोई भी एक अनुपात वताओ। (२) इस अनुपात को सरल करो। (३) ३, ९ का क्या है? (वर्गमूल) (४) ९ क्या है? (अक है।)	अक वट ३ १ ३, ९ का वर्गमूल है ९ अक है। अक का वर्गमूल : १
	(५) अव कोई दूसरा अनुपात वताओ। (६) इस अनुपात को सरल करो। (७) ५, २५ का क्या है? (वर्गमूल) (८) २५ क्या है? (अक)	५ : १ ५,२५ का वर्गमूल है अक वर्गमूल : १
	इसी प्रकार तीन उदाहरण लेकर वालको को यह वात समझाई जायगी। कथन द्वारा पाठक वालको को यह अच्छी तरह समझाएँगे कि अक के वढने मे दोनों का क्या अनुपात है।	
	प्रश्न : (१) गति से तुम्हे किस वात का वोध होता है? (तारों की सख्या) (२) केवल तारो की संख्या से क्या हम यह कह सकते हैं कि किसी ने अच्छा कार्य किया है? (नही) (३) किसी सूत कातने वाले की	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	सही गति अथवा उसका कार्य अच्छा है या नही यह जानने के लिए हम किन-किन बातो पर ध्यान देंगे ? (क) तारो की संख्या पर, (ख) अक पर, और (ग) वट पर।	(क) तारो की संख्या पर (ख) अक पर (ग) वट पर
	कथन . इन तीनो के आधार पर जो गति निकाली जाती है उसे फलित गति कहते हैं। अभी हमने देखा है कि अक और वट के बढाने मे क्या अनुपात है। अक जितना होगा, अनुपात मे हमे उसका वर्गमूल लेना पडेगा।	फलित गति
	प्रश्न · (१) यदि अक ९ हो तो अनुपात मे हमे कितना लेना पडेगा ? (तीन) (२) यदि २५ हो तो अनुपात मे कितना लेना पडेगा ? (पाँच) (३) यदि ३६ हो तो अनुपात मे कितना लेना पडेगा ? (४) यदि ४९ हो तो अनुपात मे कितना लेना पडेगा ? (५) अनुपात मे वट हमेशा कितना होता है ?	
	कथन : फलित गति निकालने के लिए तारो की संख्या को अक के वर्गमूल से गुणा करते हैं। वट के अनुपात का गुणा नही करते, क्योंकि अनु-	फलित गति = तारो की संख्या × अक का वर्गमूल = तारो की संख्या × √अक

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	पात मे वट हमेशा १ होता है। किसी भी संख्या को १ से गुणा करने पर वह सख्या उतनी ही रहती है।	
	प्रश्न : (१) ३० को १ से गुणा करने पर कितना होगा ? (२) ५८ को १ से गुणा करने पर कितना होगा ? (३) ६५ को १ से गुणा करने पर कितना होगा ?	
	किसी भी फलित गति को जानने के लिए इस सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है। इस सूत्र की सहायता से कातने वालो की एक-दूसरे से तुलना की जा सकती है।	सूत्र फलित गति= तारो की सख्या X √अक
	अब हम ६० तार ६ अक वाले तथा ५० तार १६ अक वाले की फलित गति की तुलना करेंगे।	६० तार ५० तार ६ अक १६ अंक
	(१) ६ अक वाले ६० तार की फलित गति कैसे निकालेंगे ? (२) फलित गति का सूत्र क्या है ? (३) तारों की संख्या कितनी है ? (६०) (४) इसके बाद क्या करेंगे ? (५) अंक का वर्गमूल कितना होगा ? (६) किस-किस का गुणा करेंगे ? (७) फलित गति कितनी होगी ?	फलित गति= तारो की सख्या X √अक (क) ६० X ३ = १८०

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	इसी तरह शिक्षक बालको की सहायता से श्यामपट पर १६ अक वाले ५० तारो की फलित गति निकालेंगे।	(ख) ५० × ४ = २००
	प्रश्न—किसकी फलित गति अधिक है ? (दूसरे की) किसका कार्य अच्छा है ? (५० तार वाले का)	

सामान्यीकरण

१ 'गति' से तुम्हे किस बात का बोध होता है ?

२ फलित गति किन-किन बातो पर आधारित है ?

३ सही गति जानने के लिए कौनसी गति निकालनी चाहिए ?

प्रयोग

१ एक व्यक्ति प्रति घटा ६ अक के २२० तार सूत कातता है। दूसरा व्यक्ति उतने ही समय मे १६ अक के २५० तार सूत कातता है। दोनो मे किसकी गति अच्छी है ?

२ तुलसीराम से तुलसीराम, तुम अपनी लेखा-बही देखकर बताओ कि तुमने जनवरी के माह मे कितनी गुण्डियाँ जमा की है ? उन गुण्डी का अक कितना है ?

बालको से पूछना तुलसीराम की फलित गति निकालो।

पाठ ८

कक्षा —४
बालकों की औसत आयु—११ वर्ष
समय —५० मिनट
विषय —कताई
समवाय केन्द्र —मूलोद्योग
साधन —तकली
समवायित ज्ञान —गणित, इतिहास, भूगोल, भाषा।
प्रकरण —एकेक नियम, तकली का इतिहास, मध्य प्रदेश मे लोहा और पीतल मिलने के स्थान, पद्य (तकली-गीत)

सामान्य उद्देश्य

१ बालको मे श्रम एव स्वावलम्बन की भावना जागृत करने के लिए वस्त्र-पूर्ति की योग्यता प्रदान करना।
२. वस्त्र-विद्या की क्रिया द्वारा तत्सम्बन्धी बातो का ज्ञान देना।
३. श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना।
४ बालको की तर्क-शक्ति का विकास करना। इतिहास के प्रति रुचि उत्पन्न करना, उनकी बौद्धिक शक्ति का विकास करना तथा काव्य के प्रति रुचि उत्पन्न करना।

विशिष्ट उद्देश्य

बालकों को तकली द्वारा अधर कातने तथा अधर लपेटने की क्रिया सिखाना, तारो से समवायित एकेक नियम, तकली से सम्बन्धित उसका इतिहास, लोहे और पीतल के क्षेत्र (म० प्र० मे) तथा पद्य द्वारा सस्वर पठन का अभ्यास और रसानुभूति कराना।

पूर्व ज्ञान

बालक तकली द्वारा दफ्ती पर टिकाकर कातना जानते हैं।

योजना का प्रारूप

शिक्षक बालकों को कताई की आवश्यकता बतलाकर उन्हें क्रिया का प्रयोजन स्पष्ट करेंगे कि उन्हें कताई की नई क्रिया सीखनी है। प्रयोजन स्पष्ट करने के पश्चात् शिक्षक नई क्रिया का आदर्श बालकों के सम्मुख प्रस्तुत करेंगे। बालक उस क्रिया का निरीक्षण करेंगे। आदर्श कताई के पश्चात् शिक्षक टोली-नायकों द्वारा पूनी का वितरण करेंगे और बालकों को नई रीति से कताई करने का आदेश देंगे। बालक कताई प्रारम्भ करेंगे। शिक्षक प्रत्येक बालक के पास जाकर उसकी क्रिया का निरीक्षण और त्रुटियों का निराकरण करेंगे। कताई की क्रिया १० मिनट तक चलेगी। कताई बन्द होने के पश्चात् बालक काते हुए सूत को लपेटे में गिनकर लपेटेंगे।

सूत लपेटने के बाद टोली-नायक बची हुई पूनियाँ एकत्रित करके अपने पास रखेंगे। प्रत्येक बालक अपने आसपास की छीजन एकत्रित करके अपने पास रखेगा, जिसे टोली-नायक पूनी के साथ उठा लेगा। बालक अपना लपेटा अपनी बाईं ओर रखकर ध्यान से बैठेंगे तथा शिक्षक समवायित ज्ञान प्रारम्भ करेंगे।

कताई की क्रिया नई है और अधर कातने की है। अतएव अधिक समय तक कातने से हाथ की पेशियों को कष्ट होने लगता है।

सहायक सामग्री

२६ तकली, २६ दफ्ती, २८ लपेटा, ६० पूनी, श्यामपट, चॉक, झाडन, चित्र (मकडी के जाले का, हड्डी को बाँधकर बट देते हुए आदमी का, और तकली कातते हुए व्यक्ति का), मध्य प्रदेश का खाका (Outline), लपेट श्यामपट।

कक्षा का प्रबन्ध

समस्त बालक चार टोलियों में विभाजित रहेंगे और पंक्तिवार बैठेंगे। टोली-नायक प्रत्येक टोली के सामने बैठेंगे। प्रत्येक विद्यार्थी के पास एक

तकली, १ दफ्ती और एक लपेटा होगा। क्रिया के आदर्श के बाद टोली-नायकों द्वारा पूनी वितरित की जायगी।

क्रियाशीलन

१ क्रिया का उत्प्रेरण। बालको के व्यवस्थित बैठने के पश्चात् शिक्षक कताई की क्रिया करने के लिए निम्न प्रश्न पूछेंगे—

(क) तुम सूत किससे कातते हो ? (तकली से)

(ख) कातते समय तुम तकली किससे टिकाते हो ? (दफ्ती से)

(ग) लपेटते समय तुम तकली किससे टिकाते हो ? (दफ्ती से)

(घ) तकली कातने का दूसरा तरीका कौनसा है ? (उत्तर नही मिलेगा)

उद्देश्य-कथन

आज हम सूत कातने का नया तरीका सीखेंगे जिसे अधर कातना और अधर लपेटना कहते हैं।

क्रिया का आदर्श

शिक्षक दाहिने हाथ मे तकली और बाएँ हाथ मे पूनी लेकर पहला धागा निकालने के लिए दफ्ती का सहारा लेंगे, तत्पश्चात् तकली को घुमाकर दफ्ती से ऊपर उठा लेंगे। दाहिना हाथ तकली और पूनी के बीच मे रहेगा, तकली अधर रहेगी। सूत को सहारा दाहिने हाथ की उगलियो का रहेगा और बायाँ हाथ धीरे-धीरे ऊपर उठता जायगा। पूरे हाथ सूत कातने के पश्चात् तकली को उल्टा कर दिया जायगा। हथेली मे तकली की नाक टिकाकर चुटकी से तकली की डडी को घुमाया जायगा। बायाँ हाथ धीरे-धीरे चकती की ओर आता जायगा और कुकड़ी भरती जायगी।

सावधानियाँ

१. पहली बार वट देते समय दफ्ती का सहारा लिया जाय।

२. दाहिने हाथ की उँगलियो से सूत को सहारा दिया जाय।

३. पूरे वट दे चुकने के बाद लपेटना प्रारम्भ किया जाय।

४. लपेटते समय बायाँ हाथ तकली की ओर आए।

५. सूत ढीला व थोडा आए।

क्रिया की कार्यान्विति

शिक्षक आदर्श क्रिया की समाप्ति के बाद अपनी टोली मे बालको को दो-दो पूनियाँ वितरित करेंगे। इनके पश्चात् शिक्षक कक्षा को कताई करने का आदेश देंगे। कताई प्रारम्भ होगी। शिक्षक अपने स्थान से उठकर प्रत्येक बालक के पास घूम-घूमकर उनके कार्यों का निरीक्षण करके त्रुटियो का निराकरण करेंगे। ऐसी त्रुटियाँ, जो सामूहिक रूप से होती दिखाई पड़ेंगी, उनका निराकरण शिक्षक स्वय समस्त बालकों की कताई बन्द करवाके प्रदर्शन के रूप मे करेंगे। कताई की क्रिया बालको द्वारा १० मिनट तक चलेगी।

क्रिया की समाप्ति

पन्द्रह मिनट कताई करने के पश्चात् शिक्षक कताई बन्द करने का आदेश देंगे। तत्पश्चात् बालक अपने काते हुए सूत को लपेटे मे लपेटेंगे और तारो की सख्या गिनते जायेंगे। सूत लपेटने के पश्चात् टोली-नायक अपनी टोली के बालको के पास जाकर बची हुई पूनियाँ और औजन वापस लाएँगे और उन्हे अपने सामने रखेंगे। सूत लपेटने के पश्चात् प्रत्येक विद्यार्थी लपेटा अपनी बाई ओर रखेगा।

क्रियाशीलन का निष्कर्ष

शिक्षक निम्न प्रश्नो द्वारा समवायित ज्ञान प्रारम्भ करेंगे—

१ (किसी एक बालक से) तुमने कितने तार काते ?

२. इतने तार तुमने कितने समय मे काते ?

३ यदि तुम एक घटा कताई करते तो कितने तार कातते ?

प्रस्तुतीकरण

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
एकेक नियम गणित	शिक्षक पूछे गए तार की सख्या (क) श्यामपट पर अंकित करेंगे।	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	प्रश्न · (१) हरी ने कितने तार काते ? (२) ये तार उसने कितने समय मे काते ? (१० मिनट) (३) १ मिनट मे वह कितने तार कातेगा ? शिक्षक सवाल 'जबकि' की रीति से श्यामपट पर बताएँगे। (४) १ मिनट मे कम कातेगा या अधिक ? (५) १ घटा मे कितना कातेगा ?	हरी ने १० मिनट मे क्ष तार काते ∴ १० मिनट में... क्ष तार ∴ १ मिनट मे $\frac{१}{१०} \times \frac{क्ष}{१}$ ∴ { १ घटे मे या ६० मिनट मे $\frac{१}{१०} \times \frac{६०}{१}$ ६ तारो की सख्या
	प्रयोग शिक्षक दूसरे बालक से उसके तारो की संख्या पूछेंगे और उसी के आधार पर प्रश्न हल करवाएँगे। बालक अपनी कापी मे सवाल हल करेंगे। बालको के हल करने के पश्चात् शिक्षक प्रश्न पूछेंगे। प्रश्न · (१) १ घटे मे वह कितने तार कातेगा ? (२) तार वह किसके द्वारा कातेगा ? (३) हम सबने आज किससे कताई की ? (४) हमारे पास आज कातने का कौनसा साधन है ? (५) शुरू मे मनुष्य के पास तकली नही थी तब वह किससे कातता था ? (६) बुनने की बात मनुष्य ने कहाँ से सीखी ? (उत्तर नही मिलेगा।)	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	चित्रावलोकन (मकडी के जाले का चित्र दिखाते हुए)	
तकली का इतिहास (इतिहास)	प्रश्न (१) यह किसका चित्र है ? (मकडी के जाले का) (२) मकडी की ओर सकेत करते हुए) यह क्या है ? (मकडी) (३) मकडी ने जाले मे कौनसी क्रिया की ? (बुनाई)	
	कथन सबसे पहले मनुष्य जगल मे रहता था। वह पेड की छाल पहनता था। उसने मकडी के जाले को देखकर बुनना सीखा। बुनाई के लिए उसे बट देने की जरूरत पडी। उसने बटदार रस्सी बनाना चाहा। उसने पेड की छाल को अपनी जाघ मे बट दिया। (चित्रावलोकन)	
	प्रश्न (१) मनुष्य ने बुनना किससे सीखा ? (२) पेड की छाल पर उसने कैसे बट दिया ? (३) उसके बाद उसने क्या किया होगा ? (उत्तर अस्पष्ट)	
	चित्रावलोकन (रस्सी मे हड्डी का भार देकर बट देते हुए व्यक्ति का चित्र दिखाते हुए) उसने रस्सी मे वजन के लिए हड्डी बाँध ली और उससे बट देने लगा। उसके बाद उसने हड्डी के स्थान पर लकडी बाँधी और उससे बट देने लगा। धीरे-	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	धीरे वह तकली से वट देकर सूत कातने लगा।	
	प्रश्न (१) मनुष्य ने बुनना किससे सीखा? (समाज से) (२) पहले उसने किससे वट दिया? (हड्डी से) (३) हड्डी के स्थान पर उसने क्या रखा? (लकडी) (४) आज हमारे पास क्या साधन है? (तकली) (५) हमारी तकली किन धातुओं की बनी है?	
	पूरक प्रश्न : (६) डडी किस की बनी है? (लोहे की) (७) चकती किसकी बनी है? (पीतल की) (८) मध्य प्रदेश मे लोहा कहाँ-कहाँ मिलता है? (उत्तर नही मिलेगा।) (६) पीतल के काम कहाँ-कहाँ हैं (उत्तर नही मिलेगा।)	
मध्य प्रदेश में लोहे के क्षेत्र तथा पीतल के काम के क्षेत्र भूगोल	मध्य प्रदेश का खाका खीच-कर शिक्षक उसमे निम्नलिखित क्षेत्र बालकों को बताएँगे—	
	लोहे के क्षेत्र : (१) दुर्ग, (२) बस्तर, (३) सागर, (४) होशंगाबाद।	
	पीतल बनने के स्थान : (१) बालाघाट, (२) छिंद-वाड़ा, (३) नरसिंगपुर।	
	कथन . हमारी तकली, जिससे हम सूत कातते हैं, मध्य प्रदेश में नही बनती। बम्बई	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	राज्य मे वर्धा मे सेवाग्राम नामक स्थान है, जहाँ तकली वनाई जाती है।	
	प्रयोग शिक्षक टोली-नायको द्वारा मध्य प्रदेश का खाका कागज पर खिचा हुआ वितरित करवाएंगे और देख-देखकर भरने को कहेंगे।	
	प्रश्न (१) तकली किन धातुओ की वनी है ? (२) लोहा कहाँ-कहाँ मिलता है ? (३) पीतल कहाँ-कहाँ वनता है ? (४) तकली कहाँ वनाई जाती है ? (५) तकली कातना हमे किसने सिखाया ? (६) वापू ने हमे सूत कातने को क्यो कहा था ?	
	कथन हम एक कविता पढेंगे जिसमे गाँधीजी ने हमे तकली के वारे मे उपदेश दिया है।	
तकली-गीत पद्य भाषा तकली · ···· ·· ····· हमारा	गीत लपेट श्यामपट पर लिखा रहेगा जिसे शिक्षक खोलेंगे।	
	सस्वर पठन।	
	शिक्षक सर्वप्रथम गीत का सस्वर पठन करेंगे। वालक उनका अनुकरण करेंगे।	
	प्रश्न (१) तकली मे कौन-कौनसे अग होते है ? (२) हम जो सूत कातते हैं, उसका क्या वनता है ? (३) वापू ने हमे कातने को क्यो कहा था ?	

पुनरावलोकन : प्रश्न :

१. सबसे पहले मनुष्य किससे बट देता था ?
२. हमारी तकली किन-किन धातुओ की बनी है ?
३. तकली कहाँ बनती है ?
४. बापू ने तकली कातने को क्यो कहा था ?

पाठ ६

कक्षा —६
बालको की संख्या —२०
समवाय केन्द्र —प्रकृति
समय —५० मिनट
विषय —कृषि-सिंचाई + समवायित ज्ञान
बालको की औसत आयु—१२ वर्ष
प्रकरण —भारत मे सिंचाई के साधन

सामान्य उद्देश्य

१. बालको मे श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना।
२. सहयोग द्वारा कार्य कराके बालकों मे सामाजिकता की भावना भरना।
३. बालको मे स्वावलम्बन की भावना भरना।
४. बालकों के हृदय, हाथ और मस्तिष्क के समन्वय द्वारा उनका शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास करना।
५ बालको को क्रियाशील बनाते हुए उनका सर्वांगीण विकास करना।

विशिष्ट उद्देश्य

१ बालकों से बगीचे मे पपीते के झाड, कपास के पौवे और पुष्पो के पौधो की सिंचाई करवाना ।

२ बालको मे तर्क और विचार-शक्ति को प्रेरित करके कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न करना ।

३ बगीचे की सिंचाई करवाके उन्हे 'भारत मे सिंचाई के साधनो' का ज्ञान देना ।

योजना का प्रारूप

१ क्रिया का स्पष्टीकरण । बगीचे मे दो काफी लम्बी क्यारियाँ हैं जिनमे पपीते के झाड, कपास के पौवे और पुष्पो के पौधे लगे हुए हैं। बालको से इन्ही फल-फूलो के झाडो की सिंचाई कराना ही आज की क्रिया का उद्देश्य है। बालक अपनी शाला की साग-भाजी की क्यारियो की सिंचाई का कार्य कर चुके है और उन्हें सिंचाई करने का अभ्यास है। इस सिंचाई के कार्य-हेतु बालको को निम्न सामग्री की आवश्यकता पडेगी ।

२ आवश्यक सामग्री ।

(क) ८ हजारे, ८ बाल्टियाँ, पानी से भरे बडे घडे, चॉक, झाडन, २३ भारत के सीमाकार नक्शे ।

(ख) भारत का एक मानचित्र जिसमे उत्तर भारत, मध्य भारत और दक्षिण भारत मे उपयोग मे आने वाले साधन दिखाये गए हो ।

(ग) भारत का एक मानचित्र, जिसमे निम्न बडी बाँध योजनाएँ दिखाई गई हो—(१) भाखरा नगल, (२) दामोदर घाटी योजना, (३) हीराकुण्ड बाँध योजना, (४) तुंगभद्रा बाँध योजना और (५) चम्बल नदी बाँध योजना ।

(घ) एक चित्र, जिसमे नदी पर बाँध बाँधकर नहरो द्वारा सिंचाई दिखाई गई है ।

(ड) एक चित्र, जिसमे सिंचाई के विभिन्न उपकरण दिखाये गए हो। (१) मोट, (२) रहट, (३) ढेंकी और (४) पाताली नल या कुंआ (ट्यूववेल)।

योजना का क्रमिक विकास

वालको को शाला की क्यारियो की सिंचाई का अभ्यास है। पहले सिंचाई-कार्य-हेतु वालको को तीन टोलियो में वांट दिया जायगा। प्रत्येक टोली का एक-एक दल-नायक रहेगा। पहली टोली दो-दो के गुट वनाकर ४ वाल्टियो से नल व घडे मे एकत्रित पानी लाकर पहली टोली के वालको को देगी। तीसरी टोली के वालक वाकी ४ वाल्टियो मे नल व घड़े से पानी निकालकर रखेंगे जो कि दूसरी टोली को दिया जायगा। पाठक के निर्देशन पर ही वालक सामग्री लाकर उसका वितरण करेंगे। इसके पूर्व पाठक सिंचाई का आदर्श ढंग व सावधानियाँ वताएँगे। इस क्रिया की समाप्ति पर वाल्टियाँ व हजारे निश्चित स्थान पर जमा किये जायँगे। वालक एक लाइन मे नल पर पहुँचेंगे और हाथ-पैर धोकर अनुशासन के साथ एक कतार में अपने कक्षा-स्थल पर पहुँचेंगे जहाँ पर भारत मे सिंचाई के सावनो की चर्चा द्वारा उनका ज्ञान-वर्द्धन किया जायगा।

क्रियाशीलन · उत्प्रेरण

१. साग-भाजी पैदा करने मे हमे किन-किन चीज़ो की ज़रूरत पडती है? (उत्तर : वीज, प्रकाश, मिट्टी, पानी और खाद)

२ वरसात के दिनो मे हम सिंचाई क्यो नही करते? (उत्तर : क्योकि वर्षा का जल मिलता है।)

३ हमे किन ऋतुओ मे सिंचाई करनी पडती है? (उत्तर · गरमी व जाड़े मे)

४. इन ऋतुओ मे हम पानी कहाँ से देते है? (उत्तर : कुएँ, तालाव आदि से)

५ इस प्रकार पानी देने के ढग को हम क्या कहते हैं? (उत्तर : सिंचाई करना)

उद्देश्य-कथन

आज हम बगीचे की सिंचाई करेंगे।

आदर्श क्रिया

शिक्षक हजारे मे पानी भरकर उसे अपने दाहिने (क्रियाशील) हाथ मे लेकर उससे पौधो की सिंचाई का आदर्श प्रस्तुत करेंगे।

सावधानियाँ

१ हजारे को दाहिने हाथ से पकडना चाहिए। उसे सिर्फ उतना ही भरना चाहिए जिससे वह एक हाथ मे सरलता से उठाया जा सके।

२ पौधो की जडो मे पानी देना चाहिए। जब तक जड वाले भाग पर थोडा पानी एकत्रित न हो जाय तब तक हजारे को आगे-पीछे झुलाते हुए सिंचाई करनी चाहिए।

३ अधिक व कम पानी नही देना चाहिए।

४ पौधो व क्यारियो को नुकसान नही पहुँचाना चाहिए।

सामग्री-वितरण

इसके पश्चात् बालको को सिंचाई की सामग्री दे दी जायगी।

कक्षा द्वारा क्रियाशीलन

बालक अपनी-अपनी टोली मे बँटकर सिंचाई-कार्य करने लगेंगे। शिक्षक घूम-घूमकर बालको की त्रुटियाँ ठीक कराएँगे व कक्षा मे अनुशासन रखेंगे।

क्रिया की समाप्ति

करीब २० मिनट बाद सिंचाई-कार्य बंद किया जायगा और बालको को एक कतार मे नल पर हाथ धोने हेतु जाने दिया जायगा। टोली-नायक सब सामग्री यथास्थान रख आएँगे। फिर बालक पंक्तिबद्ध ही अनुशासन के साथ कक्षा-स्थल पर पहुँचेंगे। फिर शिक्षक बालको से निम्न प्रश्न पूछेंगे—

१ तुम लोगो ने आज कौनसी क्यारियाँ सींची ?

२ इसके आलावा और कौन-कौनसे झाडो को पानी दिया ?
३ नल के सिवाय हमे पानी और कहाँ से प्राप्त होता है ?
४. कृषि को पानी न मिले तो क्या होगा ?
५ कृषि-रक्षा हेतु हमे पानी किस प्रकार देना चाहिए ?

प्रस्तुतीकरण

पाठ्य-क्रम	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
नल व कुएँ	प्रश्न . (१) हम घर के वगीचे के लिए पानी कहाँ से प्राप्त करते है ? (नल व कुएँ से) (२) इसी प्रकार वडे-वड़े खेतो के लिए पानी कहाँ से लेना चाहिए ? (तालाव, झील आदि से) (३) भारत की ३० करोड एकड मे से ५ करोड एकड भूमि मे इसी प्रकार सिंचाई होती है ।	घर की साग-भाजी नल व कुएँ से सींचते है । भारत की ३० करोड एकड मे से ५ करोड़ एकड़ मे सिंचाई होती है । तालाव मे पानी सीमित रहता है ।
	कथन . तालाव मे सीमित मात्रा मे पानी रहता है और यदि आस-पास के वहुत से खेतो मे सिंचाई करनी पड़ी तो पानी जल्दी समाप्त हो जायगा । हमारा देश भी एक वहुत वड़ा देश है। यहाँ का मुख्य व्यवसाय कृषि है ।	भारत का मुख्य व्यवसाय कृषि है । इससे पानी की अधिक जरुरत पडेगी ।
मोट रहट व ढेंकी	तालाव, कुएँ, नाले, झील आदि से सिंचाई करने के लिए हम मोट, रहट, ढेंकी आदि का प्रयोग करते हैं। किंतु ये उपकरण वडी भूमि की सिंचाई के लिए अनुपयोगी हैं।	भारत मे सिंचाई (१) मोट, (२) ढेंकी, और (३) रहट द्वारा होती है।

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	चित्र द्वारा सिचाई के विभिन्न उपकरणो का चित्र दिखाएँगे।	
	प्रश्न (१) यदि फसल ठीक से न आएगी तो क्या होगा ? (अकाल पडेगा।) (२) उत्तम फसल पैदा करने के लिए पानी कहाँ से लेना चाहिए ? (तालाव, कुएँ आदि से)	थोडी सिचाई तालाव व कुएँ द्वारा।
नदी, नहरे	(३) (चित्र दिखाकर) नदी से दूर-दूर तक पानी ले जाने के लिए क्या करना चाहिए ? (नहरे वनाना) (४) नहरो मे पानी देने के लिए नदी के पानी का क्या करना पडेगा ? (रोकना पडेगा) (५) नदी का पानी कैसे रोक सकते हैं ? (वाँध-वाँधकर)	
वाँध	उत्तर न आने पर शिक्षक वालको को वाँध वाँधकर नहरो द्वारा सिचाई करने का चित्र वताएगा। इसी प्रकार किसी भी नदी पर वाँध वाँधकर लाखो एकड जमीन सीची जा सकती है।	नदी का पानी वाँध द्वारा रोक सकते हैं।
	प्रश्न भारत की वडी-वडी नदियाँ कौनसी है ? (गगा, यमुना, सिन्ध आदि)	भारत मे गगा, यमुना, सिन्ध आदि वडी नदियाँ हैं।
भारत के वडे-वडे वाँध	कथन यदि वडी-वडी नदियो पर वाँध वाँध दिये जायँ तो सिचाई की समस्या हल हो	नदियो पर वाँध वनाना चाहिए।

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	जायगी। यही देखकर हमारी सरकार ने देश मे पाँच वडे-वडे वांध वनवाने शुरू किये हैं, जिनसे करोडो एकड ज़मीन की सिंचाई होने लगेगी।	
	इस समय शिक्षक वाँध वाला मानचित्र दिखाकर समझाएगा।	
	शिक्षक भारत का मानचित्र खींचकर उसमे उत्तर भारत मे नहरें दिखाएगा।	नहरें
भारत मे सिंचाई के विभिन्न साधन	कथन उत्तर भारत मे नदियाँ अधिक होने से नहरें भी अधिक हैं। पानी की सतह ऊपर होने से कुएँ भी अधिक हैं और अव पाताली नल भी लग रहे हैं।	सिंचाई ट्यूववेल—१००० एकड। कुआँ—५ एकड।
पाताली कुएँ या ट्यूब-वेल	ऐसा ही एक नल अपने वगीचे के सामने भँवर ताल के वगीचे मे लगा है। यह १००० एकड जमीन सींचता है, जव कि कुआँ सिर्फ ५ एकड। उत्तर प्रदेश मे २००० ट्यूव वेल लगाये गए हैं।	उत्तर प्रदेश मे २००० ट्यूवत्रेल लगाये गए हैं।
	मध्य भारत मे कुएँ, तालाव और नहरें हैं। किन्तु दक्षिणी भाग पहाडी होने से उसमे प्राकृतिक तालाव अधिक हैं। वहाँ कुएँ भी अधिक हैं। अव दक्षिण मे वांध भी वांधे जा रहे हैं।	दक्षिण की पहाडी भूमि मे प्राकृतिक तालाव हैं।
	इस प्रकार सारे भारत मे सिंचाई के लिए विशेप प्रवन्ध	

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	किया जा रहा है। हमारे प्रदेश की सिंचाई-योजना चम्बल नदी की है।	मध्य प्रदेश का वडा वाँध चम्बल नदी पर है।
	सब वाँधो से २ करोड एकड भूमि की सिंचाई होगी।	२ करोड एकड भूमि की सिंचाई होगी।

पुनरावलोकन

१ सिंचाई के लिए पानी किन-किन साधनो से प्राप्त करते है ?
२ दूर तक पानी ले जाने का सरल तरीका क्या है ?
३ छोटे कुएं से कितनी सिंचाई हो सकती है ?
४ टयूबवेल से कितनी सिंचाई हो सकती है ?
५ सरकार सिंचाई के लिए नदियो का पानी किस ढग से दे रही है ?
६ हमारे प्रदेश का वडा वाँध किस नदी पर वाँधा जा रहा है ?

प्रयोग

वालको को हिन्दुस्तान का एक-एक मानचित्र दिया जायगा, जिसमे वे भारत मे उपयोग मे आने वाले विभिन्न क्षेत्रो के सिंचाई के साधन भर लेंगे।

पाठ १०

कक्षा —२
बालकों की संख्या—२०
औसत आयु —८ वर्ष
समय —५० मिनट
विषय —कक्षा की सजावट+भाषा (निवन्ध)
साधन —सजावट
समवाय केन्द्र —समाज

सामान्य उद्देश्य

१ वालको के हाथ, हृदय और मस्तिष्क का समन्वय करना तथा उनका सर्वांगीण विकास करना ।

२ विद्यार्थियो मे सुन्दर कलात्मक वस्तुओं के निर्माण की रुचि का विकास करना तथा सौन्दर्यानुभूति कराना ।

३. स्वच्छता एव सौन्दर्य-बोध का ज्ञान कक्षा की सजावट के माध्यम से देना ।

४ वालक कक्षा की सजावट द्वारा आत्म-प्रकटन का प्रत्यक्ष अनुभव रखें और इससे समय का आनन्द के साथ सदुपयोग कर सकें तथा उनकी सुरुचि का विकास हो ।

विशिष्ट उद्देश्य

१. क्रिया-सम्बन्धी । कक्षा की सजावट के लिए चित्रों का सकलन एव उन्हे यथाविधि काटकर, किनारा सजाकर कक्षा मे व्यवस्थित रूप से लगाने का प्रत्यक्ष एव व्यावहारिक ज्ञान देना ।

२ (क) ज्ञान-सम्बन्धी । कक्षा की सजावट मे किये गए कार्यों के आधार पर संक्षिप्त एव सरल निवन्ध लिखाना । (ख) वाचन एव लेखन का अभ्यास कराना ।

पूर्व ज्ञान

बालकों ने सजा हुआ कमरा देखा है ।

योजना का प्रारूप

१ क्रिया का स्पष्टीकरण । कक्षा महाविद्यालय के व्याख्यान-कक्ष मे लगेगी, उसके आधे भाग की सजावट बालको से करानी है । कक्षा की सजावट-योजना की निम्न चार इकाइयां हैं—

(क) योजना बनाना तथा कक्षा की सजावट मे लगने वाली सामग्री सग्रह करने के लिए बालको को सुझाव देना ।

(ख) पुराने कैलेण्डर के चित्रो को सम्पूर्ण कैलेण्डर मे से काटकर अलग करना ।

(ग) चित्रों की सुरक्षा के लिए उन्हे मोटे सफेद कागज़ पर चिपकाना तथा उन्हें सुन्दर बनाने के लिए उनके किनारो को रगीन कागज़ की पट्टियो से सजाना ।

(घ) तैयार किये हुए चित्र दीवार पर लगाना ।

२ सहायक सामग्री । पुराने कैलेण्डर, मोटा सफेद कागज़, चिकने रगीन कागज़, चाकू, कैंची, कीलें, हथौडी, टेप, लेई, रगीन फीता ।

योजना का क्रमिक विकास

बालको द्वारा चित्रो का सग्रह, इन चित्रों को यथाविधि काटना, चित्रों को मोटे सफेद कागज पर चिपकाना, रगीन कागज़ की पट्टियों से किनारे सजाना, कीलो से कागज़ लगाना, दीवार पर समान ऊँचाई से फीता लगाना और सजे हुए चित्रो को दीवार पर ठोकना ।

ये सब क्रियाएँ क्रमश कराई जायेंगी ।

पूर्व तैयारी

कक्षा की सजावट मे लगने वाली सामग्री का बालको तथा शिक्षक ने पहले से सग्रह कर लिया है । योजना की प्रथम तीन इकाइयो का कार्य शिक्षक के निर्देशन एव सहायता से पूर्ण किया जा चुका है ।

आज की इकाई

आज योजना की अन्तिम इकाई (चित्रो को दीवार पर लगाना) ली जायगी। इस इकाई के अन्तर्गत बालको से कीलो से कागज़ लगवाना, समान ऊँचाई से दीवार पर रंगीन फीता लगवाना तथा सजे हुए चित्रो को दीवार पर यथाविधि लगवाने का कार्य लिया जायगा।

कक्षा का प्रबन्ध

कक्षा के २० छात्रो को तीन टोलियो मे विभक्त किया जायगा। पहली एव दूसरी टोली मे ६-६ बालक रहेगे और शेष तीसरी टोली मे। इसमे कक्षा के बड़े छात्र होंगे। प्रत्येक टोली का एक टोली-नायक रहेगा, जो सामग्री-वितरण का कार्य करेगा।

विभिन्न प्रक्रियाएँ तथा उनकी समाप्ति

कक्षा की तीन टोलियो के लिए कार्य का वितरण निम्न प्रकार होगा—

पहली टोली कीलो से कागज़ लगाने का कार्य करेगी।

दूसरी टोली दीवार की समान ऊँचाई पर टेप से नापकर (शिक्षक की सहायता से) रगीन फीता लगाने का कार्य करेगी।

तीसरी टोली, जिसमे कक्षा के बडे छात्र रहेंगे, चित्रो को दीवार पर लगाने का कार्य करेगी।

उपरोक्त सभी कार्यो मे शिक्षक बालको को यथास्थान निर्देश एव सहायता देते रहेगे। यह क्रिया ३० मिनट तक चलती रहेगी। फिर कार्य समाप्त किया जायगा। बालक कक्षा मे अपने-अपने स्थान पर बैठेंगे और क्रिया का निष्कर्ष निकाला जायगा।

क्रियाशीलन उत्प्रेरण

१ हमारी योजना क्या है ?

२. सजावट के लिए हमने कौन-कौनसा काम कर लिया है ?

३ आज हमे कौनसा काम करना है ?

उद्देश्य-कथन

आज हम कक्षा सजाएँगे।

क्रिया का आदर्श

शिक्षक बालको के सम्मुख चित्र को दीवार पर लगाने का आदर्श प्रस्तुत करेगा।

प्रश्नोत्तर

१ हमे अपने चित्रो को कहाँ लगाना है ? (उत्तर कक्षा की दीवार पर)

२. हम इन्हे दीवार पर कैसे लगाएँगे ? (उत्तर कीलो से ठोककर)

कथन

चित्रो को कीलो से ठोकने से पहले हमे कीलो पर कागज फँसाना पडेगा। कीलो मे कागज लगाने का तरीका एव उसके महत्त्व के बारे मे बताया जायगा।

दीवार पर चित्र समान तथा एक ही ऊँचाई पर लगें, इसके लिए दीवार को फर्श की सतह से ३½ फुट ऊँचाई तक नाप लिया जायगा और चित्र लगने वाली तीन दीवारो पर रगीन फीता लगाया जायगा।

इसके बाद शिक्षक एक चित्र लेकर उसे दीवार पर सही तरीके से लगाने की आदर्श क्रिया प्रस्तुत करेगा। इसके अतिरिक्त मूलभूत सावधानियो से (कीलो मे कागज फँसाते समय उँगली कील के छोर से न लगे, हथौडी से कील ठोकते समय उँगली को सम्हालना, चित्रों का निचला भाग फीते की ऊपरी सतह पर रखना) अवगत कराया जायगा।

सामग्री-वितरण

आदर्श प्रदर्शन के बाद सामग्री का वितरण किया जायगा। पहली टोली के नायक को कील तथा कागज दिया जायगा। दूसरी टोली के नायक को रगीन फीता, कील तथा हथौडी दी जायगी। तीसरी टोली का नायक सजे हुए चित्र, हथौडी तथा पहली टोली द्वारा कागज लगाए हुए कीलो को लेता जायगा।

टोली-नायक अपनी-अपनी टोली के वालकों को सामग्री वितरित करेंगे।

वर्ग द्वारा क्रिया की कार्यान्विति

वालकों को क्रिया करने का आदेश दिया जायगा। वालक जव कार्यरत रहेंगे तव शिक्षक कक्षा मे घूम-घूमकर छात्रो की त्रुटियो का सशोधन एव निराकरण करता रहेगा। गलत कार्य करने वाले छात्रो को सही तरीके से कार्य करके दिखाया जायगा।

क्रिया की समाप्ति

२० मिनट के वाद क्रिया समाप्त की जायगी। शेप सामग्री एकत्रित करके व्यवस्थित रूप से रखी जायगी। वालक अपने-अपने स्थान पर नियमित रूप से वैठेंगे।

क्रियाशीलन का निष्कर्ष

शिक्षक पूरी योजना की सफलता पर छात्रो से चर्चा करेंगे—

१. हमने कक्षा-सजावट की योजना कव प्रारम्भ की थी ?

२ हमने इसे कितने दिन कार्य करके पूर्ण किया ?

३. इसमे हमने किन-किन साधनो को काम मे लिया ?

४ सजावट मे हमने कौनसी नई वातें सीखी ?

प्रस्तुतीकरण

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
कक्षा की सजावट पर वालकों से निवन्ध लिखाना।	प्रश्नोत्तर विधि (१) आज हमने कौनसा काम किया ? (२) यह काम हमने किस प्रकार किया ? (३) सजावट के लिए हमने कौन-कौनसे चित्र लगाए ? (४) चित्रो को	आज हमने कक्षा की सजावट का काम किया। यह काम हमने चित्र लगाकर किया।

पाठ्य-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्यामपट-कार्य
	अच्छा बनाने के लिए हमने क्या किया ? (५) अब हमारी कक्षा कैसी दीखती है ? (६) इससे हमने क्या सीखा ?	हमने भगवान् के चित्र लगाए। हमने नेताओ के चित्र लगाए। हमने और भी दूसरे सुन्दर चित्र लगाए। हमने चित्रो को अच्छा बनाने के लिए उनमे रगीन कागजो का किनारा लगाया। सजावट के बाद हमारी कक्षा सुन्दर दीखती है। इसी प्रकार हमे अपने घर को भी सजाना चाहिए।

पुनरावलोकन

तीन-चार बालको से श्यामपट पर लिखे वाक्यो को पढवाया जायगा और अन्त मे कक्षा सामूहिक रूप से श्यामपट पर लिखे वाक्यो को पढेगी।

प्रयोग

बालको को अपनी-अपनी स्लेट पर श्यामपट पर लिखे निबन्ध को नकल कर लेने के लिए कहा जायगा।